गांधीजी के जीवन-प्रसंग

गांधीजी के जीवन-प्रसंग

[देश-विदेश के तिरपन लेखकों की कलम से]

संपादक
चंद्रशंकर शुक्ल

अनुवादक
यशवन्त तेंडुलकर

वोरा एण्ड कंपनी पब्लिशर्स लिमिटेड, बम्बई २
सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

(माननीय श्री सी. राजगोपालाचारी द्वारा प्राप्त पत्र)

प्रिय चंद्रशंकर,

मैंने 'इनसिडेंट्स आव् गांधीजीज लाइफ' नामक आपकी उत्कृष्ट पुस्तक के दो लेख, प्रूफ रूप में, अभी अभी पढे, और कुछेक पन्नों पर भी सरसरी निगाह डाली। इससे आपके कल्पना-सौंदर्य का पता तो चला ही; साथ ही, चलचित्र क्षेत्र की भाषा में कहा जाय तो, मैंने देखा कि इसका दिग्दर्शन भी आप बडे सफल ढंग से कर सके हैं। यह छपकर तैयार होने पर एक उत्तम पुस्तक गिनी जायगी, और आधुनिक आंग्ल-भारतीय साहित्य के लिए एक अनुपम देन।

हरेक चीज़ के अपने दो रूप होते हैं। याने एक तो वास्तविक; और दूसरा वह, जो कि लोगों को उसका दिखाई पड़ता है। अब इन दो रूपों में से,-अर्थात् गांधीजी, जैसे कि वस्तुतः वे रहे, और गांधीजी, जैसे कि दूसरों को समय समय पर वे दिखाई दिये, कौनसा अधिक वास्तविक, या अधिक महत्त्व का है, यह तो एक परमात्मा ही जाने। अलबत्ता दूसरी कोटि के लेख-संग्रह की दृष्टि से आपकी पुस्तक काफ़ी रोचक बनेगी।

आपने इन संस्मरणों के भीतर का अहंवादी अंश कुशलता के साथ हटाकर वस्तुतः उचित ही कार्य किया है, हालाँकि ऐसे लेखन-कार्य में इस दोष का न्यूनाधिक भागी बनना अपरिहार्य ही है। फिर भी इन संस्मरणों के लेखकों में जो ऊँचे दर्जे के लेखक हैं उन्होंने बडी सावधानी से काम लेकर उक्त दोष से अपने आप को बचाया है, और यही इस किस्म के काम की खूबी होती है।

ऐसी रचनाओं को भी, जो कि निरी अहंवादी है, प्रस्तुत पुस्तक में कतई स्थान न दिया जाना मुझे सर्वथा उचित जान पडा। क्योंकि आचरण-शून्य लेखकों की कलम से उतरी हुई रचनाएँ गांधीजी के गुणगान से सराबोर होनेपर भी वे पढ़ते समय जी तो ऊबेगा ही। ऐसे लेखकों से आपने अपना पिंड छुड़ाया है यह देख कर मुझे प्रसन्नता हुई। खेद है कि २४ अक्तूबर को आपके द्वारा कृपापूर्वक दी गई प्रूफ-सामग्री का इससे अधिक अंश अबतक मैं पढ़ नहीं पाया। फिर भी सोचा, कि पहली ही दफा इसे पढ़नेपर जो राय बनी वह धुंधली होने से पूर्व ही आपको लिख दूँ।

ग्वालियर,
२५ अक्तूबर, १९४८

आपका,
सी. राजगोपालाचारी

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक मे गाधीजी के जीवन-प्रसगो पर प्रकाश डालने वाले एसे लेखा का सकलन किया गया है जो कि देश-विदेश के उनके विभिन्न स्नेहियो और सहयोगियो द्वारा लिखे गये है। इन लेखो मे वर्णित घटनाएँ ये महानुभाव अपनी आँखो देख चुके है, और साथ ही उन्होने इन घटनाओ को अतर्मुख वृत्ति से उपस्थित करने की ,भरसक चेष्टा की है। ऐसे स्मृति चित्र धुँधले होते, या काल के गाल मे समाते जा रहे है। साराश, बहुमूल्य चरित्र–सामग्री इस प्रकार नष्ट होती जा रही है कि जिसकी पुन पूर्ति नही हो सकती। अत इसकी यथासभव रक्षा करने का यत्न तो होना ही चाहिये। क्योकि इस प्रकार सकलित की गई सामग्री कभी न कभी प्रकाशित की जा सकती है। किंतु, यदि समय रहते ऐसे सस्मरण सकलित नही किये गये तो वे सदा के लिए लुप्त हो जायँगे। इसी भावना से प्रेरित होकर मैने यह काम् उठाया, और सभवत इसी भावना ने लखका को इस कार्य मे कृपापूर्वक योगदान करने की प्रेरणा दी है।

लगभग तीन वर्ष पूर्व इस पुस्तक के लिए लेख सकलित करने का काम शुरू किया गया था। किन्तु इस बीच देश में घटना-चक्र इतनी तीव्र गति से चला, कि जिससे इस कार्य म व्याघात पहुँचा। राजनीतिक परिस्थिति मे हुई उथल पुथल और दगा-फिसाद आदि के कारण भी इसमें विलब होता गया। और स्वय मै भी और अधिक लेख, खास तौर से उन लोगो के जिनका अभाव खटकने की आशका थी, इकट्ठा करने की आशा से इसका प्रकाशन बार बार स्थगित करता गया। उस समय किसी ने भी यह बात, कि निकट भविष्यमें हमारे देश का ही एक गुमराह व्यक्ति राष्ट्रपिता की हत्या का पाप माथे लेने जा रहा है, सपने मे भी सोची न होगी। खैर, गाधीजी की मृत्यु के कारण ऐसे सस्मरणो का सकलन-कार्य और भी अधिक आवश्यक एव अपरिहार्य बन गया।

निश्चय ही इस प्रकार के बहुमूल्य सस्मरणो का कभी अत ही नही आता। तुर्किस्तान की सुप्रसिद्ध महिला हलिदे एदिव १९३५ की अपनी भारत-यात्रा के बाद लिखती हैं, "मैं मन ही मन बोली, कि गाधीजी बीसवी सदी के इतने महान् व्यक्ति हैं कि उनके बारे में कुछ भी लिखते समय यथासभव अधिक से अधिक सचाई और सावधानी बरती जानी चाहिये।"

इसकी जब योजना बनी तब, जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ, गाधीजी जीवित थे। इसके लिए उनके आशीर्वाद भी प्राप्त हो चुके थे। इसके दो कारण थे। एक तो इस प्रकार के लेखन की ओर अतर्मुख होकर देखने की उनकी वृत्ति; और दूसरा, यह विश्वास, कि इसमें अपना निरा महिमाख्यानही न होगा। स्मरण रहे कि इसी भाँति उस समय तक प्राप्त हुए सस्मरण, उनमे वर्णित बातो की सचाई जाँचने के हेतु, कृपापूर्वक पढने का कष्ट भी उन्होने उठाया।

उन ख्यातनाम लेखको के प्रति, जिनके शुभाशीष, सहयोग और सहायता के बिना इस कार्य में मैं कदापि सफल नही हो सकता था, उचित शब्दो में कृतज्ञता ज्ञापन करने में मैं अपने आप को असमर्थ पा रहा हूँ। इस बीच इनमे से दो लेखको का स्वर्गवास हो चुका है। एक है, डा रूफ्स् एम् जोन्स, जो कि गत जून मे चल बसे। इन्होने काफी लबी उम्र पायी, शिक्षा के क्षेत्र में ठोस कार्य किया, एव धार्मिक और दार्शनिक विषयो पर पचास से अधिक पुस्तकें भी लिखी है। दूसरे सज्जन है श्री तात्यासाहब केलकर, जिनसे मैंने खुद भेंट कर स्मृति–लेख की प्रार्थनापूर्वक माँग की थी। तुरत वे बोले, कि राजनीतिक क्षेत्र में गाधीजी से अपना मतभेद होने पर भी उनके व्यक्तित्व के प्रति अपने मन में बहुतही आदरभाव रहा है। इसके बाद उन्होंने १९२५ तक के गाधीजी के साथ के अपने सबधो पर प्रकाश डाला। बोले, कि उम्र मे गाधीजी मे तीन ही बरस छोटे होने के कारण अपनी मृत्यु भी उनके गुजर जाने पर ही होगी। उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की योजना का स्वागत किया, और इसके लिए अपना लेख भेजने का भी वचन दिया,

जो कि शीघ्र ही प्राप्त हुआ। इस प्रकार एक महान् देशभक्त ने, जिसके जीवन और लेखन-कार्य ने बहुतों को प्रेरणा प्रदान की है, अपने आचरण द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में सहनशीलता और सद्भाव का जो उदाहरण उपस्थित किया है उसका आज हम सब अपने व्यक्तिगत हित और अंगीकृत कार्य की सिद्धि की दृष्टि से अवश्य अनुसरण करें।

प्रस्तुत पुस्तक की योजना बनाते समय ही यह तय किया गया था, कि इसमें गांधीजी के कोरे गुणगाना या प्रशस्तिपूर्ण लेखों को कतई स्थान न दिया जायगा। संस्मरण-लेखकों ने यह मर्यादा मान ली, जिससे, आशा है, कि पुस्तक की उपादेयता बढ़ ही गई होगी। विपरीत इसके यदि कोई प्रशस्ति के फेर में पड़ता तो वस्तुतः वह दुस्साहस ही माना जाता। क्योंकि, जैसा कि भारतके प्रधान मंत्री ने गांधीजी की मृत्यु के बाद कहा है,—"हम उनकी प्रशस्ति कैसे कर सकते हैं? हम सब, न्यूनाधिक मात्रा में उनकी आत्मिक संतान होने, एवं अपने ही रक्त-मांस की उनकी संतान की अपेक्षा संभवतः उनके अधिक संनिकट होनेपर भी, इस योग्य कहाँ? उनके अपूर्ण कार्य को सविनय और सेवाभाव से पूरा करने का गुरुतर भार हमारे कंधोंपर आ पड़ा है। कवि. हेन्री डेविड थोरो के शब्दों में—

'Tis sweet to hear of heroes dead,
To know them still alive,
But sweeter if we earn their bread,
And in us they survive

वड़ोदा,
२६-१२-१९४८

च० शु०

विषय सूची

लेखक-परिचय

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल– (ज. १९१२), आचार्य, गोविंदराम सेक्सरिया कालेज आव् कामर्स, वर्धा; गांधीवादी लेखक।

श्री होरेस अलेक्जेंडर–(ज १८८९), २० से अधिक वर्ष तक वूडब्रूक, वर्मिंगहैम, में प्रोफेसर; १९२७–२८, '३०, '४२ और पुनः १९४६ मे भारत–यात्रा की; 'द इंडियन फर्मेंट' 'इंडिया सिन्स न्रिप्स' आदि ग्रंथो के लेखक।

मा. राजकुमारी अमृत कौर–(ज. १८८९) १९३० से अ. भा. महिला–परिषद् की एक प्रमुख कार्यकर्त्री; १९४७ से भारत सरकार की स्वास्थ्य-मंत्रिणी।

डा भगवानदास–(ज. १८६९); एम्. ए., डी लिट्., १९२१ से काशी विद्यापीठ के कुलपति; १९३४ से ३९ तक केंद्रीय धारासभा के कांग्रेसी सदस्य, दर्शनशास्त्र विषयक अनेक अंगरेजी ग्रंथोंके लेखक।

श्री घनश्यामदास बिड़ला–(ज १८९१); सुप्रसिद्ध उद्योगपति, फेडरेशन आव् इंडियन चेम्बर आव् कामर्स के भूतपूर्व सभापति (१९२९); दूसरी गोलमेज–परिषद् (१९३१) के एक प्रतिनिधि, १९३२ से अ भा. हरिजन सेवक संघ के सभापति, ग्रंथ.—बापू, डायरी के पन्ने, बिखरे विचार।

श्री फेन्नर ब्राक्वे–(ज. १८८८) पत्रकार; 'न्यू लीडर' (लंदन) के भू पू संपादक, १९२१ तक निकलनेवाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ब्रिटिश शाखा के 'इंडिया' नामक मुखपत्र के अंतिम संयुक्त संपादक।

डा. जार्ज कैटलिन–(ज. १८९६), एम्. ए., पी–एच. डी, १९२४ से १९३५ तक कार्नेल विश्वविद्यालय में राज्यशास्त्र के अध्यापक, मास्को, स्पेन, दिमित्रोव और न्यूरेम्बर्ग ट्रायल, एवं १९४५ की शिमला–परिषद् में वैदेशिक संवाददाता, संप्रति लंदन स्कूल आव् इकनामिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस में अध्यापक।

डा. सी एम्. डोक–(ज. १८९३), बी ए., डी लिट्., गांधीजी के सर्वप्रथम अंगरेजी चरित्रकार स्व. रेवरेंड जे. जे डोक के सुपुत्र।

कुमारी आलिव डोक-स्व जे जे डोक की सुपुत्री, उत्तरी रोडेशिया में गत ३२ वर्षों से मिशनरी कार्यकर्त्री।

श्रीमती वैडा डिनोसका (उमादेवी) -पोलैंड की एक सामाजिक कार्यकर्त्री, गीता के पोलिश भाषा के सस्करण की अनुवादिका।

डा वेल्थी होनसिगर फिशर-(ज १८८०), ए एम्, डी लिट अपने पति स्व बिशप फ्रेड्रिक फिशर के साथ कई वर्ष तक भारत में रही, अमेरिका की उच्च कोटिकी प्रथम पाच व्याख्यात्रिओ में से एक।

श्री एस के जार्ज-(ज १९००), गाधीजी से प्रभावित एक भारतीय ईसाई, १९३२ के सत्याग्रह आदोलन के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के कारण इन्हे कलकत्ता के बिशप कालेज के अपने अध्यापक पद से हाथ धोना पडा। ईसा और गाधीजी के अगरेजी भाषा के चरित्र लेखक।

श्री रिचार्ड बी ग्रैग-गाधीजी के अमरीकी स्नेही और सहयोगी, १९२५ से २७ तक, और पुन १९३० में भारत में रहे।

कुमारी एगाथा हैरिसन-प्रथम विश्वयुद्ध के समय स्वदेश के कल-कारखानो मे सेवाकार्य करती रही, 'रायल कमीशन आन लेबर' के साथ १९२९ में भारत पधारी, तब से कई बार भारत-यात्रा कर चुकी हैं।

श्री कार्ल हीथ-(ज १८६९), ससार-प्रसिद्ध शातिवादी, ग्रथ एमृ के गाधी, पैसिफिज्म इन टाइम आफ वार, आदि।

रेवरड डा जे जेड् होज्ज--१९१७ मे चपारन में गाधीजी से पहले पहल मिले। भारत में कई वर्षतक काम करने के बाद अवकाश ग्रहण कर स्वदश लौट गये। ग्रथ - सैल्युट टु इडिया।

श्री जे एफ होरैबिन-(ज १८८४) पत्रकार और नक्शानविस, १९११ से लदन के 'न्यूज क्रानिकल' के सपादकीय विभाग में।

श्री जान एस् हाइलैड--सोलह साल तक भारत में रहे नागपुर के हिस्लाप कॉलेज म व पश्चात् बर्मिंगहैम के वुडब्रुक कॉलेज में प्रोफेसर।

माननीय श्री जयरामदास दौलतराम-(ज १८९२), १९१७ से अ भा काग्रेस कमेटी के सदस्य, १९३१ से ३४ तक अ भा काँग्रेस कमेटी के महामत्री, विहार के गव्हर्नर १९४७, पश्चात् मई '५० तक भारत सरकार के खाद्य-मंत्री। अब आसामके गवर्नर।

डा. रूफस एम्. जोन्स, ए. एम्, एल–एल. डी.–(१८६३–१९४८) हेवफोर्ड कॉलेज (अमे.) में १९०१ से ३४ तक दर्शन–शास्त्र के अध्यापक।

डा. बी. डी. कालेलकर, बी. ई. (बं.), एम्. एस्–सी. (मैंशा.), पी–एच. डी. (कार्नेल)–(ज. १९११), श्री काकासाहब कालेलकर के कनिष्ठ पुत्र; कार्नेल में युनिवर्सिटी फेलोशिप प्राप्त करनेवाले, एव कार्नेल के इजिनियरिग कॉलेज में लेक्चरर के पद पर नियुक्त किये जानेवाले सर्वप्रथम भारतीय।

श्री एन्. सी. केलकर, बी. ए., एलूएल. बी.–(१८७२–१९४७), लोकमान्य तिलक के सर्वोत्तम शिष्य और सहयोगी; मराठी के ख्यातनाम साहित्यकार; अगरेजी मे भी कई पुस्तके लिखी है, जिनमे लोकमान्य का चरित्र विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

श्री पी. कोदंडराव, एम्. ए.–(ज. १८८९), पूना के भारत सेवक समाज के सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता।

आचार्य जे. बी. कृपलानी, एम् ए.–१९३४ से ४६ तक कॉंग्रेस के महामत्री; १९४७ में राष्ट्रपति निर्वाचित; ग्रथ: दि गाधियन वे, दि लेटेस्ट फैड, फेटफुल इअर, आदि।

डा. भारतन् कुमारप्पा, एम्. ए (मद्रास), बी. डी., (हार्टफोर्ड) पी–एच् डी. (एडिंबरो और लदन)–वर्धा स्थित अ. भा. ग्रामोद्योग सघ के सहायक मत्री।

श्री जे सी. कुमारप्पा, बी. एस्–सी. (लदन), एम्. ए., (कोलबिया)–अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ मे प्रोफेसर, १९३१ में कॉंग्रेस द्वारा नियुक्त 'डेट इन्क्वायरी कमीटी' के सदस्य और मत्री; १९३४ से अ. भा. ग्रामोद्योग सघ के मत्री। अर्थशास्त्र विषयक कई अंगरेजी पुस्तको के लेखक।

कुमारी म्यूरीएल लेस्टर—लदन के सुप्रसिद्ध किंग्सली हाल की सस्थापिका, १९३१ की अपनी लदन-यात्रा के समय गाधीजी यहीं ठहरे थे। १९२६ के बाद कई वार भारत-यात्रा, और साथ ही विश्व-भ्रमण कर चुकी हैं। ग्रथ : माइ होस्ट दि हिंदू, एटर्टेनिंग गाधी, आदि।

लार्ड लिंडसे आव् बर्कर, एल्–एल् डी –(ज. १८७९), १९२४ से आक्सफर्ड के एक कालेज में अध्यापक, १९३५ से १९३८ तक आक्सफर्ड विश्वविद्यालय के उपकुलपति।

श्री एन्. आर. मलकानी, एम् ए, एल्–एल् बी –(ज. १८९०,) १९२० मे असहयोग आंदोलन में सम्मिलित, पश्चात् सात साल तक अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ में उप आचार्य, अ भा हरिजन सेवक संघ के सात साल तक संयुक्त मंत्री, चार बार जेल हो आये है; १९४८ मे भारत की ओर से पाकिस्तान मे डिप्टी हाइ कमिश्नर नियुक्त।

श्री गुरुदयाल मल्लिक–(ज १८९६), शुरू मे कराची के शारदा मंदिर में अध्यापक रहे। गत कई वर्षों से गुरुदेव के शांतिनिकेतन मे कार्य कर रहे हैं।

सर रुस्तम मसानी, नाइट, एम् ए.–गुजराती 'गपसप' के १८९७ मे संयुक्त संपादक, बंबई म्यूनिसिपैलिटी के कमिश्नर पद को प्राप्त करनेवाले सर्वप्रथम भारतीय, १९३९ से ४२ तक बम्बई विश्वविद्यालय के वाइस चैन्सलर।

माननीय श्री जी. वी मावलकर, बी ए, एल्-एल् बी.–सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेकर चार बार जेल हो आये हैं। १९३७ से ४५ तक बम्बई की धारा-सभा के स्पीकर; १९४६-४७ मे केंद्रीय धारा-सभा के स्पीकर, १९४७-४८ से भारतीय पार्लमेंट के स्पीकर.

श्री गगनविहारी मेहता, एम् ए –(ज. १९००), १९४२-४३ मे फेडरेशन आव् इंडियन चेम्बर्स आव् कामर्स के अध्यक्ष, सरकार द्वारा समय समय पर नियुक्त कई कमीटियों के सदस्य, भारत सरकार द्वारा नियुक्त इंडियन टैरिफ बोर्ड के १९४७ से सभापति।

श्रीमती मीरा बहन (मिस मैडेलिन स्लेड)–एडमिरल सर एडमंड स्लेड की पुत्री। १९२५ में यूरोप से भारत आकर साबरमती आश्रम में रहने लगीं, सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेकर एक से अधिक बार जेल हो आई हैं, आजकल उत्तर प्रदेश में हृषिकेश नामक स्थानपर पशु-संवर्धन के हेतु एक किसान आश्रम का संचालन कर रही हैं।

श्री प्यारेलाल नैय्यर, बी ए–१९२० मे कालेज छोड़कर असहयोग आदोलन मे शामिल, तब से १९४८ तक गाधीजी के सेक्रेटरी; १९४६ और ४८ के बीच अगरेजी 'हरिजन' एव विभिन्न भाषाओ मे निकलने वाले उसके सस्करणो के सपादक।

डा. सुशीला नय्यर, एम् डी. (दिल्ली)–गाधीजी के साथ उनके चिकित्सक के नाते १९३९ से १९४८ तक काम करती रही।

श्रीमती रामेश्वरी नेहरू–अ. भा. महिला परिषद् की अध्यक्षा (१९४०), १९३५ से अ भा. हरिजन सेवक सघ की उपाध्यक्षा।

माननीय श्री एम्. एम्. पक्वासा, बी ए, एल्–एल्. बी–(ज १८८२), बम्बई मे तीस साल तक सालीसिटर। १९३७ से ४७ तक बम्बई की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के अध्यक्ष; १९४७ से मध्यप्रदेश और बरार के गवर्नर।

डा बी पट्टाभी सीतारामय्या, बी ए, एम् बी, एल्-एल्–(ज १८८०), १९०६ से १६ तक डाक्टरी करते रहे। १९१६ से अपना सारा समय राजनीतिक कामो मे ही लगा रहे हैं। १९४८ में बहुमत से राष्ट्रपति निर्वाचित्-हुए।

श्री हेन्री एस् एल् पोलॅक–गाधीजी के दक्षिण अफ्रीका स्थित निकटवर्ती सहयोगी; गाधीजी द्वारा स्थापित 'इडियन ओपीनिअन' नामक पत्र के कई वर्ष तक सपादक, दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह आदोलन में भाग लेकर जेल हो आये, १९१७ से लदन मे सालिसिटर।

डा. एडमड प्रिवॅट–स्विट्सर्लॅण्ड के एक विश्वविद्यालय में प्रोफेसर।

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, नाइट–(ज १८७९), रिजर्व बैंक आफ इडिया के डाइरेक्टर, १९३०–३३ की लदन की गोलमेज–परिषद् के एक प्रतिनिधि, बम्बई की ईस्ट इडिया काटन एसोसिएशन के अध्यक्ष।

माननीय डा टी. एस् एस्. राजन, एम् आर सी. एस्., एल्. आर. सी पी. (लदन)–(ज. १८८०), १९१४ से कॉंग्रेस के कामो में भाग लेने लगे। १९२२ में कॉंग्रेस के महामत्री, १९३४-३५ में केंद्रीय धारा-सभा के सदस्य निर्वाचित, १९३७-३९ मे, और पुनः १९४७ से मद्रास के मत्रिमडल मे सम्मिलित।

डा. राजेन्द्र प्रसाद, एम्. ए, एम् एल्–(ज १८८४), कई वर्षतक अ. भा. कॉंग्रेस कमिटी और कॉंग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य, तीन बार राष्ट्रपति निर्वाचित, १९४७ में केंद्रीय मंत्रिमंडल में सम्मिलित, १९४६ से १९५० तक भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष; १९५० में भारतीय प्रजातंत्र के सर्वप्रथम राष्ट्रपति निर्वाचित। ग्रंथ : आत्मचरित्र, डिवाइडेड इंडिया आदि।

श्री रेजिनाल्ड रेनाल्डस्—(१९०५) इंग्लैण्ड के एक सामाजिक कार्यकर्ता; १९२९-३० में भारत पधारे। फरवरी १९३० में आप ही लार्ड इर्विन के पास गांधीजी का पत्र ले गये थे।

मादेलीन रोलां—स्वर्गीय रोमां रोलां की बहन।

मा० नलिनी रंजन सरकार—१९३४-३५ में कलकत्ते के मेयर, १९३७-४१ में, और पुनः १९४७ से बंगाल के एक मंत्री, १९४१-४३ में वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य।

श्री चंद्रशंकर शुक्ल—(ज १९०१), १९२० में कालेज छोड़कर असहयोग आंदोलन में सम्मिलित, पश्चात् अहमदाबाद के गुजरात विद्यापीठ में अध्ययन; १९२१-२३ में 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के संपादकीय विभाग में, १९२४–२७ में साबरमती आश्रम में और १९२८-३२ में गुजरात विद्यापीठ में अध्यापक, १९३३-३४ में गांधीजी के सेक्रेटरी, १९३५ से ४० तक 'हरिजन' के सहसंपादक, १९४३ में भारतीय विद्याभवन के पीठस्थविर; १९४८ में गुजराती दैनिक हिंदुस्तान (बंबई) के संपादक, प्रस्तुत एवं इसी प्रकार की अन्य कई पुस्तकों के संपादक।

डा. पी. सुब्बारायन, एम्. ए (आक्सन), बी सी एल (आ०), एल्-एल्. डी. (डब्लिन) एल्.एल्. बी (लंदन)–१९२६–३० में मद्रास के प्रधान मंत्री, १९३७–३८ और १९४७–४८ में मद्रास के एक मंत्री; १९५० में इंडोनेशिया में भारतीय राजदूत नियुक्त।

डा जी आर तलवलकर, एल्. एम्. एण्ड एस् (ब), टी. डी. डी (वेल्स)–बंबई के एक ख्यातनाम डाक्टर।

श्री तान युन शान–(ज १९००), गुरुदेव टागोर के निमंत्रण पर १९२८ से ३१ तक भारत में रहकर शांति निकेतन में विश्वभारती का चीन-हिंद विभाग संगठित किया। १९४७ से भारत में ही निवास।

गांधीजी के कुछ संस्मरण

श्रीमन्नारायण अग्रवाल

१

अप्रैल १९३६ में पहली बार गाधीजी से मगनवाडी (वर्धा) मे मिलने पर तब मैने तीव्र भ्रम-निरसन अनुभव किया। अवश्य ही निराशा के वशीभूत होने के कारण नही, अपितु जो कल्पना गाधीजी के बारे मे मैने कर रक्खी थी उससे वे बिल्कुल भिन्न नजर आने से मुझे ऐसा लगा। दूसरे बहुत से लोगो की भाति मेरी भी यही धारणा बन गयी थी कि महात्मा तो पूर्णतया अतर्मुख और अचल गभीर मनोवृत्ति के व्यक्ति होगे। किन्तु कितने अचम्भे की बात है कि उनके इस प्रथम परिचय के कुछ ही क्षणो में मुझे वे ऐसे विशुद्ध मानव दिखाई दिये कि जिसके भीतर से प्रेरक प्रतिभा और मन प्रसन्न करने-वाली विनोदप्रियता की धारा अविरल रूप से बह रही थी।

"मेरे लिए यहा क्या काम करना तुम पसद करोगे ?" गाधीजी ने पूछा।

"मै तो आपकी सेवा में हाजिर हू, बापूजी। कृपया आप ही फरमाइये।"

'यह तो मैं जानता हू कि तुम हाल ही मे विलायत से लौटे हो, और खासा साहित्यिक कार्य कर सकते हो। लेकिन वह तो मैं तुम्हें सौपूगा नही। क्या तुम चरखे का शास्त्र जानते हो ?, देखो, मेरा यह चरखा नादुरुस्त होकर पडा है। क्या इसे तुम ठीक कर सकोगे ?"

"चरखे के बारे में मैं बिल्कुल ही कोरा हूं। अतः मुझे पहले उसका शास्त्र जान लेना होगा।"

"तब क्या तुम्हारा सारा पढ़ना-लिखना बेकार ही साबित नही होता? अपनी एक कहावत के अनुसार तुमने तो पढ़-लिख कर खाक ही छानी ऐसा कहना पडेगा!" अट्टहास के साथ गांधीजी ने टिप्पणी की।

"बिल्कुल कबूल, बापूजी!" मुस्कराते हुए मैंने कहा।

"अच्छा, तब यथार्थ में वही खाक छानने का काम मै तुमको दूगा। यहां खाई खोद कर बनाये गये शौचकूपों के लिए साफ़ मिट्टी छानने के काम में ज़रा श्री एम. एस. की मदद करो ना?"

"बडी खुशी के साथ यह काम कर सकता हूं!" मैंने झट जबाब दिया; और कहा, "बागबानी के काम का खूब अनुभव होने से यह काम मुझे नया न मालूम पडेगा।"

"ठीक है!" हसकर गाधीजी बोले। और इसके बाद कुछ महीनो तक हर इतवार को यह काम मैं करता रहा।

२

बहुत करके सन् ३७ के मार्च महीने की ही बात होगी। स्व० जमनालाल जी बजाज के सभापतित्व में आयोजित अ. भा. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के लिए गाधीजी मद्रास जा रहे थे। गाधीजी की रेल-यात्रा में उनके आकर्षण से स्टेशन-स्टेशन पर लोग हज़ारो की तादाद में जमा तो होते ही हैं। उन दिनो प्रान्तो में कांग्रेस पद-ग्रहण करेगी या नही इस बात से देशभर के लोगो का दिमाग़ परेशान था। ग्रैण्ड ट्रंक एक्सप्रेस, जिससे कि गांधीजी सफर कर रहे थे, सुबह के वक़्त बेज़वाडा पहुचा। स्टेशन पर महात्माजी के दर्शन के लिए बडी भीड़ उमड़ पड़ी थी। किसी तरह इस अपार भीड़ को चीरता हुआ, पसीने से तर-बतर, एक पत्र-प्रतिनिधी गांधीजी के पास पहुंच कर सहसा उनसे पूछ बैठा, "बापूजी, क्या कांग्रेस मन्त्रीपद ग्रहण करेगी?"

यह तो स्पष्ट ही है कि इस महत्वपूर्ण प्रश्न का जो भी जवाब गांधीजी देते उसको काफी प्रसिद्धि मिल जाती। इतना ही नही बल्कि इस विषयक उनके मौन का भी अखबार वाले अर्थपूर्ण उपयोग किये बिना न रहते। किन्तु उनसे अपना पिण्ड छुड़ाने की कला में गांधी जी अत्यन्त निपुण जो हैं!

"क्यो, क्या आप मन्त्री बनना चाहते हैं ?" मुस्कराते हुए अभिजात विनोदवृत्ति से गाधी जी ने पूछा ।

इस पर सारी भीड खिलखिला पडी और बेचारे पत्र-प्रतिनिधि को अपनासा मुह लेकर तेजी से रास्ता नापने के सिवाय कोई चारा ही नहीं रहा ।

३

गत वर्ष वर्धा की मेरी कुटिया मे दो बार ठहरने की गाधी जी ने कृपा की । सन् १९४४ के दिसम्बर मे जब पहली बार वे पधारे तब रात के वक्त तीन तकिये इस्तेमाल करते थे । सन् '४५ के फरवरी मे उनके दुबारा पधारने पर मैंने देखा कि तकिये का प्रयोग उन्होने कतई तज दिया है ।

"बापूजी, आजकल आप तकिये क्यो इस्तेमाल नहीं करते ?" कुछ दुविधा से मैंने जिज्ञासा की ।

"मैंने कही पढा है कि शवासन से गाढ नीद आती है । सो उसका प्रयोग मैं कर रहा हू ।' गाधी जी ने जवाब दिया ।

"बापू जी, आपकी पूरी जिन्दगी प्रयोगो से भरी पडी है । अब इस ढलती उम्र मे आपको दूसरो पर प्रयोग करने चाहिए । क्योकि ऐसे प्रयोगा के लिए आपका नाजुक और कीमती स्वास्थ्य बहुत महगा पडेगा ।"

"नहीं जी ! मेरी जिन्दगी ही खुद एक प्रयोग है । और मेरे ये प्रयोग केवल मेरी मौत के साथ ही बन्द हो जायगे ।" सस्मित गाधी जी ने कहा ।

४

गत वर्ष जब गाधी जी बगाल के दौरे पर रवाना होने वाले थे, तब उनके और उनके साथ के लोगो के लिए तीसरे दर्जे के दो डिब्बे रिजर्व कराये गये । उन्होने देखा कि दो डिब्बो की कोई आवश्यकता नही, सिर्फ एक ही डिब्बे मे अपनी पार्टी का आसानी से गुजर हो सकता है । अत उन्होने कनु गाधी को बुलाकर दो मे से एक डिब्बा खाली कर देने के लिए कहा ।

"लेकिन दोनो ही अपने लिए रिजर्व किये गये हैं, बापू जी । रेल-अधिकारियो को इनका किराया भी चुकता किया गया है ।'

"फिर भी कुछ हर्ज नही ! हम लोगो को, जो भूखे क्षुधा पीडित गरीबो की सेवा के लिए बगाल जा रहे हैं, आरामदेह सफर करना शोभा नहीं देता ।

अलावा इसके क्या तुम्हे तीसरे दर्जे के और और डिब्बो के भीतर की दम घोटनेवाली भीड दिखाई नही देती ? ऐसी स्थिति मे हमें निहायत जरूरत से ज्यादा जगह घेरनी न चाहिए । इन दिनो में तीसरे दर्जे मे इतनी अधिक जगह रिजर्व करा कर सफर करना क्रूर मजाक माना जायगा !" प्रत्युत्तर मे गाधी जी बोले ।

अब अधिक बहस की गुजाइश ही नही थी । सारी पार्टी ने दो मे से एक डिब्बा दूसरे मुसाफिरो के लिए खाली कर दिया ।

और तभी गाधी जी सुख की नीद सो गये ।

वर्धा,
१-६-१९४६.

महात्मा गांधी और मूक-प्रार्थना

होरेस जी. अलेक्जेण्डर

सन् १९३१ के शरत्काल मे, जब लन्दन म दूसरी गोलमेज-परिषद् हो रही थी तब, वहा की सोसाइटी आफ फ्रेण्ड्स् ने व्यक्तिगत रूप से परिचित परिषद् के कई सदस्यो को फ्रेण्ड्स्-हाउस मे हर सप्ताह नियमपूर्वक होनेवाली आराधना और मूक प्रार्थना-सभाओ मे से एक मे भाग लेने के लिए निमत्रण दिया था । आशा यह की जाती थी कि मूक सत्सग के ये क्षण शान्ति और एकता का प्रादुर्भाव करने के साथ ही, सभवत उन प्रतिनिधियो व अन्य लोगो को, जो परिषद् की सफलता के लिए सचेष्ट थे, परिषद् से सबधित सवालो की ओर बहस-मुबाहसे के बीच पैदा होनेवाली पक्षपाती भावना की अपेक्षा स्थायी मूल्यो के प्रकाश मे देखने की दृष्टि भी प्रदान कर सकेंगे ।

इस प्रकार की बिलकुल शुरू की एक प्रार्थना-सभा में गाधी जी, लार्ड सैकी और डा. एस के दत्त जैसे परिषद् के कुछ अन्य सदस्य उपस्थित थे । एक दूसरे मौके पर श्री श्रीनिवास शास्त्री, और एक बार मौलाना शौकत अली भी पधारे थे ऐसा मेरा ख्याल है । इस आयोजन मे गाधीजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होने पुन आने की इच्छा प्रकट की । लेकिन महीनाभर से भी अधिक समय तक अनगिनत मुलाकातो के भार से दबे रहने के कारण वे ऐसा कर न सके । परिषद् के अन्तिम सप्ताह मे होने वाली प्रार्थना-सभा मे उपस्थित रहने का

उन्होने निश्चय कर रक्खा था, किन्तु उन्हे जोर का जुकाम हो गया, जिससे हम लोगो ने ही उस दिन घर पर रहकर अपने जुकाम का इलाज करने के लिए उनकी अनुनय विनय की।

उपरात परिपद् कुछ दिनो के लिए वढा दी गई, जिससे और एक मौका हाथ लगा। लेकिन इस वार की प्रार्थना-सभा के दिन ही उनका जुकाम बढ गया और उन्हे खासी भी काफी आने लगी। दरअसल मे वह मामूली तौर पर होनेवाली सर्दी नही थी, जिससे कि सर-दर्द करता है। वह तो परिपद् के कार्य की प्रगति के साथ साथ जिस असहच एकान्त की ओर वे ढकेले जा रहे थे उससे उनपर पडनेवाले भारी तनाव का नतीजाभर था। एक दिन वे खुद होकर मुझसे बोले, "कडुए घूटो का यह प्याला मुझे तलछट सहित खाली करना पड रहा है!" इन सभी बातो से उनके स्वास्थ्य को आघात पहुचा था। उनका मनोधैर्य और मन शान्ति विलक्षण थी, लेकिन उनका शारीरिक स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। जुकाम से वे बुरी तरह परेशान हैं यह देखकर हमने उनसे अनुरोध किया कि प्रार्थना में न आवे। किन्तु वे बोले, "ना, मैं चल रहा हू। आना तो मुझे पिछले सप्ताह ही चाहिए था। अब और एक मौका मुझे दिया जा रहा है। इसे खोना न चाहिए।" हम जान गये कि वे निश्चय कर चुके है और अब उससे फिर नही सकते।

उस दिन की प्रार्थना-सभा दिसबर के प्रथम सप्ताह में होने के कारण, जब कि इग्लैण्ड के विभिन्न भागो के क्वेकर्स अपनी कमेटियो की बैठको के लिए लन्दन मे इकट्ठा हुआ करते हैं, क्वेकर्स और दूसरे लोग बडी सख्या में उसमे उपस्थित थे। शान्त प्रार्थना मे हम एकाग्र चित्त हो ही रहे थे कि इतने में गाधी जी को खासी का जबरदस्त दौर आया। उनकी हालत का ख्याल कर मुझे, और निस्सन्देह अन्य उपस्थित लोगो को भी, बडी बेचैनी हुई। लेकिन मैंने महसूस किया कि ऐसे समय कुछ भी कर सकने मे हम असमर्थ है, बल्कि हमारे लिए यही बेहतर होगा कि हम उस सर्वशक्तिमान की शरण में जाय जिसकी अभ्यर्थना के लिए एकत्रित हुए थे। इस विचार के साथ अपनी मनो-कामना प्रभु में समर्पित करते ही मेरे मस्तिष्क मे तीव्र शूल उठा, जो कुछ देर तक रह कर उतर गया। तब मैंने पुन मन स्वास्थ्य और आत्म विश्वास प्राप्त किया और शेष आध घटा गभीर नीरव वातावरण की प्रार्थना में बीता।

प्रार्थना समाप्त होने पर मुझे ऐसा लगा कि 'मित्र संघ' के कुछ सदस्य, जो पहले कभी गांधी जी से मिल न पाये हैं या उन्हें देखभर भी न सके हैं, उनसे अपनी मुलाकात हो जाने की उम्मीद करते होंगे। वे सब आदरपूर्वक उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। 'क्या अब हम चलें?' ऐसा या कुछ इसी तरह की बात गांधी जी ने धीरे से पूछी। 'हां, अगर थोड़ा रुककर इनमें से किसी के साथ आपको बात करनी न हो तो फिर चलें,' मैंने जवाब दिया। "तब तो चलें ही," वे बोले, और तुरंत मोटर में बैठकर हम नाइट्स् त्रिज स्थित उनके दफ्तर को लौट आये। ज्योंही हम वहां पहुंचे डा० दत्त मेरे पास आकर बोले, "गांधी जी को बुरी तरह से सर्दी हुई है, और उसमें जरा भी सुधार नहीं दीखता। मेरे विचार से वे किसी डाक्टर की मार्फत अपने स्वास्थ्य की जांच करावें, या कम से कम खुद ही कोई उचित उपचार कर अपने काम का बोझ अवश्य हलका कर दें"। मैंने कहा, "आपकी बात से मैं पूरी तौर से सहमत हूं, किंतु चूंकि आप डाक्टर हैं इसलिए आप ही उनको मनावें।" अतः हम दोनों दोतल्ले पर के उनके दफ्तर में जा पहुंचे, जहां डाक्टर महोदय ने बड़ी गंभीरतापूर्वक उनकी खांसी के बारे में चर्चा छेड़ी। फौरन गांधी जी ने अपनी प्रसन्न किन्तु उपहासात्मक हंसी से, जिससे कि उनके मित्र चिर-परिचित हैं और जिसके द्वारा वे अपने सामने प्रायः छेड़ी जानेवाली गंभीर किन्तु अनावश्यक बातों को उड़ा देते हैं, डाक्टर महोदय को भी टोका। "क्या?" बेचारे डा० दत्त की दिल्लगी उड़ाते हुए उन्होंने पूछा, "मुझपर अपनी डाक्टरी का आप प्रयोग करना चाहते हैं? बिल्कुल बेकार!" और फिर बोले, "मेरी खांसी फ्रेण्ड्स्-हाउस की प्रार्थना-सभा में ही गायब हो गई।" दरअसल में बात भी ऐसी ही थी। इसकी कारण-मीमांसा कुछ भी क्यों न हो, इतना तो सही ही है कि प्रार्थना-सभा से, वे स्वस्थ होकर लौटे थे। मैंने हेतुपूर्वक ही सभा-स्थान की सारी बातों का विस्तार से वर्णन किया है, क्योंकि कम से कम उक्त घटना के लगभग पन्द्रह वर्ष बाद उस संबंधी अपने अनुभवों का मुझे जहां तक स्मरण है, मैंने निवेदन कर दिया है। उक्त सभा में मेरा भी कोई महत्त्वपूर्ण भाग रहा यह जताने का तो इसमें कोई उद्देश्य है ही नहीं, यद्यपि मेरी यह भावना है कि यदि उनकी खांसी से व अधिक अस्वस्थ हो जाते तो उससे गोलमेजपरिषद् के कार्यों में अवश्य बाधा पहुंचती। निस्सन्देह अपने आध्यात्मिक बल के कारण ही व्यथा और व्याधि से व मुक्त हुए थे, किन्तु इसमें भी उनके निकटस्थ सह-उपासकों की

सम्मिलित प्रार्थना का कुछ हाथ तो रहा ही होगा। शरीर और मन की व्यथाओ का शमन करने की आत्मैक्य मे कितनी शक्ति भरी रहती है इस विषय मे हम अल्पज्ञ है। फिर भी कदाचित् बाह्य उपासनाओ की अपेक्षा उनका आतरिक प्रभाव ही बलवत्तर हो।

इस घटना का एक उत्तर भाग है। सन १९३१ के अन्त मे हिंदुस्तान लौटने के कुछ ही दिन बाद गाधी जी और उनके साथी गिरफ्तार कर लिये गये। सन् '३२ के ग्रीष्म मे यरवदा जेल से मेरे नाम उनका एक पत्र आया, जिसका आशय (वह ज्यो का त्यो उद्धृत करने के लिए इस समय मेरे पास नही है) कुछ ऐसा ही है —"कुछ दिन पूर्व साबरमती से मेरे नाम जो पत्र आये है उनसे ऐसा झलकता है कि आश्रमवासियो के सामने कुछ कठिनाइया पैदा हुई है, और इसमें वे मुझसे मार्गदर्शन की अपेक्षा रखते है। लन्दन की अपनी मूक-प्रार्थनाओ का स्मरण कर मैंने उन्हे सुझाया है कि वे प्रतिदिन की प्रार्थना के बाद चन्द मिनट मौन धारण करे। उन्होने इसका अवलब किया है, और आश्रम के जीवन पर इसका अच्छा ही प्रभाव पड़ रहा है ऐसा उनका अनुभव है।"

शिक्षक गांधीजी

राजकुमारी अमृत कौर

स्वर्गीय गोखले जी मेरे पिता जी के प्रतिष्ठित मित्रो मे से एक थे और अक्सर हमारे घर ठहरा करते थे। मै कह सकती हू कि भारत को विदेशी शासन से मुक्त देखने की तीव्र लालसा उस छोटी उम्र मे मेरे भीतर उनके ही सम्पर्क से सुलग उठी। एक बार मुझ से वे बोले, "आशा है कि शीघ्रही एक दिन एक ऐसे व्यक्ति के तुम्हे दर्शन होगे कि जिसके भाग्य मे भारत की बहुत बडी सेवाये करना बदा है।" इसी विचार के साथ गाधी जी से परिचय प्राप्त करने का जो सब से पहला मौका मिला उससे मैने लाभ उठाया। सन् १९१५ मे लार्ड सिन्हा के सभापतित्व मे आयोजित बबई-काग्रेस के समय की यह बात है। काग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित रहने का यह पहला ही सुअवसर मुझे मिल रहा था। हिन्दुस्तान के उस समय के राजनीतिक जीवन मे गाधी जी की हस्ती नही के बराबर थी। अदमान से अभी अभी लौटे हुए लोकमान्य तिलक के लिए ही तब स्वागत के नारे बुलन्द होते थे। दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो के बारे मे गाधी जी ने चन्द बाते कही। उस जमाने मे लाउड-स्पीकर्स-न होने से उनका भाषण मच पर बैठे हुए या श्रोताओ की अगली कतारो मे उपस्थित लोगो के सिवाय किसी को भी साफ सुनाई न पडा। परन्तु उनमे जो नि शब्द सामर्थ्य, जो लगन और गहरी विनयशीलता थी वह मेरे युवा हृदय को बरबस छू गई। मै समझती हू कि तभी से उनके व्यक्तित्व एव जीवन विषयक उनके सिद्धान्तो के प्रति मेरी निष्ठा बनी रही, हालाकि प्रतिकूल परिस्थिति के कारण एक लबे अरसे तक मै उनके साथ अपना सीधा सपर्क स्थापित कर न सकी।

जलियावाला-हत्याकाड के बाद वे जलन्धर पधारे। उस समय तक तो वे जनता के आराध्य-देवता बन चुके थे। चुनाचे लोगो की बेकाबू भीड दर्शनार्थ उन पर टूट पडी। इससे शाम के ६ बजे उन्हे तेज बुखार चढ आया और भीडमे बुरी तरह कुचले गये उनके पैर मे भी दर्द होने लगा। मेरे डाक्टर-भाई ने, जो वहा के सिविल सर्जन थे, उनसे अनुनय किया कि चौबीस घटे के लिए वे अपना सफर रोक दें। "लेकिन उन बहुतसारे लोगो को, जो जगह जगह मेरी राह जोहते होगे, मै कैसे निराश कर सकता हू ?" अविलब उत्तर मिला। और पुन

बोले, "आपको मैं विश्वास दिलाता हू कि सुबह के १० बजे तक, जो कि मेरी ट्रेन के छूटने का वक्त है, मैं ज्वर-मुक्त हो जाऊगा।" मैंने गर्म जल से भरी एक बोतल उनके लिए भेज दी और उनसे प्रार्थना की कि सफर मे उसे साथ रक्खे। दूसरे दिन सुबह उक्त बोतल मुझे लौटा दी गई, जिसके साथ महादेव भाई के हाथ का लिखा हुआ धन्यवाद का यह पुर्जा था —"आपको जानकर खुशी होगी कि जलन्धर छोडने के पूर्व ही उनका बुखार रफूचक्कर हो गया, जिससे बाद मे बोतल की कोई गरज ही नही रही।"

उसी साल दुबारा जलन्धर पधारने पर मेरी बीमारी की खबर पाकर वे मुझसे मिलने आये। बोले, "अपनी यह बेशकीमती विलायती पोशाक उसकी होली जलाने के लिए मुझे दे डालो और तुम खादीधारी बनो।" अपने पास बहुत ज्यादा विलायती वस्त्र होने की बात से जोरदार इन्कार करते हुए मैंने कहा, कि अब तो मैं सिर्फ 'स्वदेशी' ही खरीदती हू। "वह भी तो बेशकीमती ही है।" उनका उत्तर रहा। दलील करते हुए मैंने कहा कि होली का यह तरीका सरासर गलत है। प्रत्युत्तर मे उन्होने पूछा, "क्या ये सारी की सारी चीजे हमारी दासता की शृखलास्वरूप होने पर भी जलायी न जाय? खैर, अगर तुम इन्हें जलाना चाहती ही नही तो कम से कम मुझे दे डालो, ताकि अफ्रीका-निवासी गरीब भारतीयो के पास ये भेज दू। और अब से तुम कातने व खादी पहनने लगो।"

खेद! उनके इतना कह देने के बावजूद भी उस समय मेरे कानो पर जू न रेगी। खादीधारी बनने की कोशिश तो मैंने की, किन्तु मेरी दुराराध्य रुचि को वह बहुत ही घटिया मालूम हुई। उन दिनो आजकल की तरह आन्ध्र और बिहार की महीन खादी मिलती न थी। फिर भी गाधी जी के प्रभावशाली शब्दो के कारण मैं कातना सीख गई, और अपना काता हुआ सूत असहाय बच्चे या स्त्री के कपडे के लिए बुनवा लेने लगी। झाड़न, तौलिये या इसी तरह की रोजमर्रा की घरेलू जरूरतो के लिए खादी खरीदना मैंने शुरू किया। आगे चलकर गाधी जी मुझे बोले, "कई लोगो ने पायदाज़ के तौर पर खादी का उपयोग किया है, लेकिन वे यह महसूस नही करते कि उनके इस प्रकार के व्यवहार के कारण खादी के प्रति, और साथ ही साथ जिन बातो की वह निशानी है उनके प्रति भी, कितना अन्याय

हुआ है !" खादी मे किन बातो का अभिप्राय है इसका जब कालान्तर मे मुझे ज्ञान् हुआ, तब वहाँ गाधी जी के इस कथन का भावार्थ, कि खादी के अलावा बाकी किसी भी किस्म का कपडा हमे गुलाम बनाये रखने मे अज्ञात कारणभूत होता है, मेरी समझ मे आया। वर्षो बाद जब मैं मगनवाडी मे उनके साथ रहने आई तब उन्होने ऐसा देखा, या शायद अनुभव किया, कि अपने निरापद जीवन मे जिन सुख सुविधाओं की मैं आदी हो गई हू उनमे से कुछेक से छुटकारा पाना मेरे लिए सहज नही है। उस समय मेरी बाबत कितनी समझदारी से काम लिया उन्होने ! शुरू शुरू मे वे जमीन पर मुझे सोने न देते थे। अपने ही बर्तन वगैरह भी मुझे माजने न दिये जाते थे। हालाकि मैं सब कुछ करने की इच्छुक थी, और उनसे, इसकी इजाजत पाने के लिए, दलील भी किया करती थी। लेकिन गाधी जी लोगो को अपनी ओर आकर्षित करने की जैसी स्पृहणीय क्षमता रखते हैं, उससे कही अधिक क्षमता उनमे उन्ही लोगो को अपने सहयोगी बनाकर रखने की भी तो है। नाजुक मौको पर नरमाई से काम लेने की खुद की इस प्रवृत्ति के कारण ही वे छोटे-बडे सभी के मन मे अपने प्रति एकसी निष्ठा निर्माण कर सके है।

यह तो एक बिल्कुल स्वाभाविक सी बात हो गई है कि ससार के हर कोने मे हरेक किस्म की घटनाय गाधी जी तक पहुच ही जाती है। किसी साधु-हृदय पुरुष के पास अन्धे, लूले, लगडे आदि सब कोई आश्रयार्थ आते थे ऐसी जो एक पुरानी कथा है वह गाधी जी पर ठीक ठीक चरितार्थ होती है। क्योकि जिस प्रकार मैंने उन्हे अपनी कोमल हथेली से ज्वर-पीडित मस्तकों को सहलाते, कोढियो के कष्टप्रद घावो को आनन्दपूर्वक धोते और दूसरे मरीजो की सेवा-शुश्रूषा करते देखा व अनुभव किया है, ठीक उसी प्रकार अपने प्यारभरे एव सहानुभूतिपूर्ण शब्दो द्वारा दुखी दिलो को सात्वना पहुचाते हुए भी देख लिया है। किन्तु उनके निकट सपर्क मे रहनेवाले लोग यह भी भली भाति जानते है कि काम लेने मे वे सब से बढकर कठोर हैं। हम मे से ऐसा कौन है जो उनकी न्यायनिष्ठुर ताडना से बचा हो ? इस प्रकार के प्रसगो पर आसू उन्हें विचलित नही कर सकते। एक बार वे मुझसे बोले, "जो पछतावा दरअसल मे शुरू होना चाहिए उसके परिचायक ये आसू हो नही सकते। वे तो तुम्हारे आन्तरिक अहकार और क्रोध के प्रतीक मात्र है। अपरिमित विनम्रता, जो कि अहिंसा के सर्वप्रथम सिद्धान्त स्वरूप है, तुम जानती ही नही।"

दैनंदिन जीवन की साधारण घटनाओ के द्वारा ही गाधी जी बड़े बड़े सबक सिखा देते हैं । मेरा थरमस टूट गया था । हम लोग दिल्ली से वर्धा जा रहे थे, और गाधी जी ने मुझे कह रक्खा था कि वे शाम का भोजन ट्रेन मे ही करना चाहते हैं । उनके लिए मुझे गर्म दूध और गर्म जल भी साथ ले चलना था । किन्तु अपने पास बचे हुए एक ही थरमस मे ये दोनो काम निकालना कठिन था । मेरी यह कठिनाई देखकर श्री घनश्यामदास जी बिड़ला ने अपना बिल्कुल नया थरमस, जिसे वे एक ही दिन पहले खरीद लाये थे, मुझे दे डाला । मैंने भी वह सहर्ष स्वीकार किया । जब ट्रेन मे इस थरमस मे मैंने दूध उडेला तब गाधी जी ने अपनी पैनी नजर से झट भाप लिया कि यह तो कोई नई चीज़ है । "क्या यह तुम खरीद लाई ?" वे पूछ बैठे । मैंने सारा किस्सा कह सुनाया । जिस तत्परता के साथ उक्त भेंट मैंने स्वीकार की उसको सुन कर मेरे प्रति उन्हे तीव्र निराशा हुई। बोले,–"क्या तुम इतनी अकिंचन हो कि अपने लिए तुम्हे दूसरो का पैसा खर्च कराना पड़े ? यह तो कोई बात ही नही हुई कि जिस बन्धु ने तुम्हे यह चीज दी वह ऐसा करने मे समर्थ है । तुम्हे जरा ज्यादा समझदारी से काम लेना चाहिए था । ईश्वर-कृपा से जिन्हे धन मिला है वे उसे पवित्र धरोहर माने, और उसमे की एक कौडी भी बिना ज़रूरत किसी के लिए, या किसी गैरजरूरी चीज़-वस्तु पर खर्च न करे ।"

महादेव भाई से, जो अगले स्टेशन से दिल्ली लौट जाने वाले थे, उक्त थरमस वापस करने के लिए कह दिया गया । बाद मे वह महादेव भाई की ही वस्तु हो गई । कितनी ही बार उसके दर्शन होने पर पन्द्रह मिनट का वह बोधप्रद पाठ मुझे स्मरण हो आया है ।

"जो कार्य खुद मुझे पसद है और जो दूसरो के लिए भी आनन्दप्रद है, उनसे मुझे विमुख करने की कभी चेष्टा न करना ।" सेवाग्राम के शुरू के दिनो मे एक दर्जन से भी अधिक आश्रमवासियो की रसोई बनाने मे उनके द्वारा दी जानेवाली सहायता मुझे अखरने पर उक्त शब्द उन्होने कहे थे। अब पहले की तरह रसोई बनाने, उसे परोसने, या कम से कम आश्रमवासियो के साथ सहभोजन करने में भी स्वय भाग न ले सकने की बात से वे दुखी है । कहते है, "अपनी मर्यादाओ का भी तो मुझे ध्यान रखना चाहिये !"

"पागल आश्रमवासियो की व्यक्तिगत बातो के पीछे आप अपना इतना वक्त क्यो बर्बाद करते है ?" बारम्बार दुहराये जानेवाले इस प्रश्न का अविलव उत्तर मिलता है, " मेरा आश्रम एक पागलखाना है और इन पागलो का मैं सिरताज हू यह तो मुझे भी मालूम है। लेकिन जो लोग इन पागलो के भीतर की अच्छाई देख नही पाते वे निरे अन्धे है।" मनुष्यमात्र के प्रति गाधी जी के इस प्रकार के व्यवहार को देखकर मुझे नाझारेथ के उस महान् सन्त का पुन पुन स्मरण हो आता है, जो दूसरो की सेवा करने, न कि दूसरो से सेवाये लेने के लिए, अवतरित हुआ था। वह कहता था, "चिकित्सक की आवश्यकता तो रोगी को होती है, न कि निरोगी को!"

"आत्मीयो के प्रति आप बडे ही निठुर है। क्योकि जब हिन्दू विरुद्ध मुसलमान का प्रश्न उपस्थित होता है तब आप सदैव ही मुसलमानो की तरफदारी करते है, यदि यही हरिजनो का सवाल हो तो आप हरिजनो की ओर हो जाते है, और स्त्रियो के तो आप सदैव ही पक्षपाती रहेगे!" एक जाने माने सहयोगी द्वारा परिहास के तौर पर की गई, किन्तु साथ ही सचाई से पूर्ण इस फब्ती पर गाधी जी क्या ही खिलखिला कर हस पडे है!

बच्चो के प्रति गाधी जी को एक अजीब आकर्षण है। उनके बीच वे भी बालक बन जाते है। "छोटा कान्हा कहानिया कहने के लिए मेरे पीछे पडकर इस कला में मुझे निपुण बनाता जा रहा है। बच्चो को हर तरह की शिक्षा देने का यह एक अद्भुत तरीका है। खुद के बच्चो को भी जो कुछ शिक्षा-दीक्षा मैं दे सका हू वह सब फिनिक्स से दर्बान तक के अपने पर्यटनो के दरमियान ही। इसके लिए और कोई वक्त मुझे मिलता ही न था। मैंने उन्हे स्कूल नही भेजा, और शायद वे मेरे खिलाफ यह शिकायत कर सकते है कि इम्तहान पास करने एव तथाकथित उच्च शिक्षा से विभूषित होने का मौका मैंने उन्हे नही दिया। फिर भी मेरी तो यही धारणा है कि मैंने उन्हे स्कूल या कालिजो मे मिलने वाली शिक्षा से कही अधिक शिक्षा दी है।" इसी कारण गाधी जी बुनियादी तालीम की अपनी योजना मे शिक्षको की योग्यता पर अधिक जोर देते हैं। वे कहते हैं, "यदि शिक्षक ज्ञान का भडार हो, और जैसा कि उसे होना ही चाहिए, तो पाठ्य-पुस्तको की वस्तुत कोई आवश्यकता ही नही रहती।"

आम तौर से यह कहा जाता है कि पुरुषो की अपेक्षा स्त्रिया अधिक बातूनी होती है। सो सही-गलत जो भी हो, वे गपशप बहुत करती है इसमे तो कोई सदेह ही नही। हम में इसकी अति होते देखकर एक दिन वे मुझे बोले, 'मौन स्वर्णतुल्य है' इस आशय की अग्रेजी की एक कहावत तुम जरूर जानती होगी। क्या इस सत्य के तह तक तुम कभी पहुची हो? यदि हा, तो मुझे घेरे रहने वाली इन युवतियो के सामने इसकी मिसाल पेश करने की कोशिश तुम्हे करनी चाहिए। दीर्घ काल से मैने यह जान रक्खा है कि मनुष्य को आवश्यकता से अधिक एक शब्द भी नही बोलना चाहिए। मेरे हास परिहास (और इसका उनके पास अशेष भडार है) के पीछे भी कोई न कोई सबक सिखाने का ही उद्देश्य रहता है। कोई भी व्यक्ति जिस क्षण आवश्यकता से अधिक बोलता है उसी क्षण सत्य से विमुख हो जाता है। और तुम तो जानती ही हो कि असत्य और हिंसा जुडवा बहने है। सप्ताह मे चौबीस घटे मौन धारण करने की मेरी आदत अपनी जिव्हा को अनुशासन मे रखने की इच्छा के साथ ही साथ खुद को आराम पहुचाने एव अपने ऊपर आ पडनेवाले कामो को शीघ्रता से निपटाने के लिए अधिक समय पाने की इच्छा के कारण भी डाली गई है।" हाल ही मे उन्होने मुझे कहा, "अपने विचारो की विशुद्धता के लिए मैं कितना सचेष्ट हू यह तुम नही जानती। मेरा ऐसा विश्वास है कि वाणी की अपेक्षा विचार अधिक श्रेष्ठ है। इसकी पूर्ति के लिए मुझे सत्य रूपी अथाह जलाशय मे निरतर गोते लगाने ही पडेंगे। और अपने मनोविकारो को धो डालने का भी यही एकमात्र उपाय है।" उस दिन प्रात काल हमारी एक सहेलीने उन्हे चिढाने जैसा कुछ कह दिया। इस पर वे बोले, "अवश्य ही उसकी गलती तो मुझे सुधारनी चाहिये थी, लेकिन उस पर नाराज तो किसी भी प्रकार नही होना चाहिये था, जैसा कि मै हो गया।"

'महात्मा' सबोधन से बढकर तापदायक बात उनके लिए और कोई हो ही नही सकती। "यदि मेरा विकास रुक गया हो तो मुझे सत्यशोधक बनने का कोई हक ही नही रहता," वे कहते है। अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्यो के सबन्ध म रात ही रात में निर्णय कर पूर्ण साहस और श्रद्धा के साथ वे उन्ह पार उतारते है। सेवाग्राम जा कर रहने का निश्चय उन्होने ऐसे ही यकायक कर डाला। कुटी बनी हो न हो, वर्षा होती हो न हो, रास्ता हो न हो, जून महीने मे वे

सेवाग्राम जाकर बसे। गाव मे प्राकृतिक चिकित्सालय चालू करने एव बडे शहरो मे जाने पर वहा की हरिजन-बस्तियो मे मुकाम करने सबधी हाल ही के उनके निर्णय इसी तरह यकायक किये गये है। किसी भी बात का जब एक बार वे निर्णय कर चुके हो तब अनुनय-विनय द्वारा भी उन्हे उससे विचलित नही किया जा सकता। और चकि सत्य एव अहिसा की उपासना द्वारा ही ऐसे निर्णयो पर वे पहुचते है इसलिये वे मूलत सही ही होते है।

अभी हाल ही मे उरुली म स्त्री पुरुष, गरीब-अमीर आदि सभी श्रेणियो के लोगो के लिए खुद उन्ही के द्वारा प्रारभ की गई सर्वप्रसिद्ध प्राकृतिक-चिकित्सा के काम मे उन्हे मगन देखना एक उत्साहवर्धक पाठ है। अधिकाश लोग एक खास उम्र गुजर जाने के बाद किसी नये काम को उठाने म हिचकते है, लेकिन इस ढलती उम्र मे भी जवानो जैसे जोश और उत्साह से गाधी जी नया काम शुरू कर देते है। उनका उत्साह दुर्निवार्य है। और जब कभी मै अपनी आखो उनकी रोग-निवारक शक्तिया म उरुली क इन स्त्री-पुरुषो का विशुद्ध विश्वास देखती हू तब मुझ आश्चर्य होता है कि हमारी समस्त प्रकार की व्याधियो, चाहे वे मानसिक हो या शारीरिक, की चिकित्सा स्वरूप गाधी जी की बताई हुई 'रामनाम की रामबाण औषधि म हमम से अधिकाश लोगो को क्यो विश्वास नही होता ?

सूझबूझ की कमी के लिए उनका रोषपात्र बनना पड़ा है। क्योंकि काम में कौशल की कमी, अथवा अविवेकपूर्ण भाषण, लेखन या वर्तन वह सहन नही कर सकते। एक बार किसी सभा में मैं उनके साथ गई थी तब वहा उन्होंने मुझे एक पुरजा...को देने के लिए दिया। आज्ञानुसार मैंने किया, और उक्त विशिष्ट सज्जन ने पुरज़ा पढकर गाधीजी से तत्सबधी बातचीत भी कर ली। पर जब हम सेवाग्राम वापस आये तब गाधीजी ने उक्त पुरजे की बाबत मुझसे जवाब तलब किया। मै बोली, "सो तो मैंने...को दिया, जिसे पढकर उन्हे जो कुछ कहना था उन्होने कह दिया, और मै समझती हू कि उक्त पुरजा फिर या तो उन्होने ही रख लिया, या मुझे वापस कर दिया होगा। चुनाचे मै समझी कि उक्त पुरजा...को देने के बाद अपनी जिम्मेवारी खत्म हुई।"

दूसरे दिन सुबह मुझे निम्न पत्र प्राप्त हुआ—

"चि० अमृत, आदर्श सेक्रेटरी जहा अपना चीफ पथभ्रष्ट होता हो वहा उसे सावधान कर सही रास्ता दिखाती है। उसके चारो ओर वह मडराती रहती है, उसकी हर हलचल पर निगरानी रखती है, और उसके द्वारा फाडकर फेंके गये कागज के टुकडे तक उठा लेती है,—इस लिए कि कही भूल से उसने महत्वपूर्ण कागज-पत्र ही फाड न डाले हो। इसीलिए वह उसके पीछे प्रस्थान करती है, और उससे जो जो चीजवस्त छूटी हो उसको ढूढ निकालती है; और यदि उस पर दूसरा कोई अपना हक जताता न हो तो उस वस्तु को भी उठा लेती है। कल तुमको मेरा झिडकना था तो सयुक्तिक, लेकिन जो निराशा और चिडचिडापन मैंने दिखाया वह सरासर गलत था। खैर, गलती भूल जा और गुण ग्रहण कर। जो कुछ मैंने कहा है वह सावधान भर कर देने के लिए ही। प्रस्तुत पत्र का भावार्थ ग्रहण कर तदनुसार आचरण करो, जिससे तुम एक आदर्श सेक्रेटरी बन जाओगी।

"वर्सगाठ के दिन तुम्हारे लिए यही मेरी भेंट है, और इसी में मेरी समस्त शुभकामनाए सन्निविष्ट है। बापूका प्यार।"

जन्मदिन का ऐसा जतन योग्य और अद्वितीय उपहार अन्य किसी के सग्रह में होगा या नही इसमें मुझे सन्देह है।

गांधी जी के प्रारभिक जीवन से सबधित इग्लैण्ड और दक्षिण अफ्रीका की घटनाओ का वर्णन खुद उन्ही के मुंह से सुनने में बडा मज़ा आता है। शायद उनकी आत्मकथा में ये सारी बातें आ गई हैं। हँसी के फव्वारोंके बीच वे स्वस्त:

के विरुद्ध कितनी ही कहानियां कहते हैं। विस्तृत वर्णनद्वारा वे अतीत की इन कहानियों को सजीव रूप में उपस्थित कर देते हैं। व्यावहारिक उदाहरण के तौर पर, और साथ ही सबधित विषय पर प्रकाश डालने के हेतु, वे ऐसी कहानियां निवेदन करते हैं। वे कहते है, "मेरे जीवन का यह एक नियम है कि कभी भी किसी को ऐसी बात करने के लिए न कहा जाय जो कि स्वतः द्वारा आचरित न की गयी हो।"

जिस समय श्री छोटेलाल की आत्महत्या की दु.खद वार्ता उनके कानों में पडी उस समय मैं उनके पास ही थी। हिंसात्मक बातों पर से अपना विश्वास हटाकर इतने वर्षों तक सचाई के साथ सेवामय जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति द्वारा हिंसक मार्ग से अपने जीवन का अन्त कर डालना एक बहुत ही निठुर प्रहार था। गाधीजी अपने आसू तो रोके रहे, किन्तु उनके हृदय में गहरा घाव हो गया, और कुछ देर तक वे निःस्तब्ध बैठकर विचारमग्न हो गये। क्या उनके अन्तर्हृदय में यह विचार-मथन चल रहा था कि छोटेलाल जी को हिंसा से परावृत करने में वे असमर्थ क्यो रहे? कई बार उन्होंने कहा है, "छोटेलाल को मैं कभी भूल नही सकता"। जमनालाल जी का देहावसान हुआ तब भी मैं उनके साथ थी। उक्त दु.खद प्रसग के कुछ ही क्षण बाद हम घटनास्थल पर उपस्थित हो गये। उनके परिवारवाले स्वाभाविक रूप से शोकाकुल हो रहे थे। यह आघात था भी अकास्मिक, और इस क्षति की पूर्ति होना तो असभवनीय था। फिर भी गाधीजी के पधारते ही सारे शोकविव्हल परिवार में असीम शान्ति छा गई।

"जब हम जानते है कि मृत्यु का अर्थ नवजीवन में प्रवेश करना मात्र है, तब फिर शोक किस बात का?" यद्यपि ऐसे प्रसगो पर शोकाकुल न बनने के वे स्वयं अभ्यस्त हो गये है, तथापि आत्मस्नेह व संवेदना द्वारा दूसरों के दु.ख में सहभागी बनकर उनका दु.खभार हलका करने के लिए वे उन्हें बल देते हैं। सेवाग्राम-आश्रम की उस दिन की सान्ध्य-प्रार्थना में अपने इस प्यारे सहयोगी के विषय में वे बोले। उन्होंने कहा कि आज वे एक ऐसे साथी को खो बैठे हैं, जो कि उन्हें वर्धा ले आया और जरूरत की हर चीज के लिए जिसका मुँह वे ताकते रहे। और बोले, "आज मुझे ऐसा लग रहा है कि मानो मेरा दाहिना हाथ ही कट गया हो!"

फिर भी वास्तविक बात यह है कि अपने निकटवर्ती सहयोगियो के रहते, और उनके न रहने पर भी, अपना काम निबटाने की गाधीजी मे पूरी क्षमता है। हाल ही मे जब उन्होने किसी भी सहयोगी को साथ लिये बिना अकेले शिमला जाने का यकायक फैसला कर डाला तब हममे से हरेक को उपरोक्त कथन की पूरी प्रतीति आई। वे बोले, "मै परमात्मा के सान्निध्य मे, जो कि मेरा एकमात्र आधार है, अकेले विचरना चाहता हू। एक अत्यत महत्वपूर्ण कार्य के लिए मै प्रस्थान कर रहा हू। मै लोगो से सदा यही कहता आया हू कि एकमात्र राम हमारे सहायक है। उनकी व्याधियो के इलाजस्वरूप भी मै उन्हे औषधियो की अपेक्षा रामनाम पर अवलबित रहने की सदा सलाह देता हू। अत अपनी इस श्रद्धा को मुझे कसौटी पर कसनाही चाहिए। और आप भी चिन्ता क्यो करते हैं ? आखिर वहा भी तो ऐसे कई सहयोगी है जो मेरी जरूरतो को समझकर तदनुसार मेरी देखभाल का काम कर सकते हैं।" कल मसूरी से दिल्ली जाते समय उन्होने ठीक इसी तरह का फैसला किया। श्री घनश्यामदास जी बिडला ने जिस आरामदेह कार से उन्हे मसूरी पहुचाया था उसी से वापस लौटने के बजाय बससे सफर करने का उन्होने फैसला किया। बस की अपेक्षा कार से जाने से कम कष्ट होगे, और दिल्ली मे जिस गरमी एव कार्यभार का सामना करना है उसका ख्याल करते हुए आपको आराम की आवश्यकता है आदि हमारी सारी दलील को उन्होने यह कहकर थप्पड लगाई कि अपने निर्णय का वास्तविक अर्थ किसी की भी समझ मे नही आया है। गाधी जी का जीवन मानो अधिकाधिक उत्तुग शैलशिखरो की आरोहण-यात्रा है। प्रत्येक महान् ध्येयवाद की अन्तिम अवस्था, अर्थात् आत्मसाक्षात्कार, की ओर उत्तरोत्तर बढते जाने वाले सच्चे यात्री की मुझे इससे पुन पुन याद हो आती है।

अगीकृत कार्य जितना ही अधिक कठिन होता है गाधी जी का स्वरूप उतना ही अधिक निखर पडता है। सम्माननीय एव समुचित समझौता उनके जीवन की रीढ-स्वरूप होने पर भी उनकी सिद्धान्तनिष्ठा अटूट होती है। "अहिसा में आस्था रखनेवाला व्यक्ति भावी परिणामो की आशका से कदापि विचलित नहीं होता, क्योकि अहिसा कभी पराजित होना जानती ही नहीं," वे कहते हैं। कभी कभी सहयोगियो को अपना दृष्टिकोण समझा न पाने पर वे बोले है, "जिस बात की सचाई में अपना विश्वास जम गया है उससे हटने

की अपेक्षा उस राह से अकेले चलते रहने मे मुझे संतोष मानना चाहिए।" मुझे अच्छी तरह याद है कि १९३९ ई० मे, लडाई के छिडने पर आयोजित, कांग्रेस वर्किंग कमेटी की बैठक मे भाग लेकर सेवाग्राम की कुटिया को लौटते समय महादेव भाई को उक्त शब्द उन्होंने कहे थे। फिर भी जब जब वे अपना दृष्टिकोण दूसरो को समझा नही पाते तब तब हृदय-मथन करते है। कहते है, "मेरे विचारो से असहमत होनेवालो का इसमे कोई दोष नही, अपितु अहिंसा विषयक विचारो को उपस्थित करने की मेरी पद्धति मे ही कही न कही त्रुटि है।"

"साम्प्रन की इस गरमी और कार्याधिक्य के बावजूद आपका स्वास्थ्य कैसा है?" किसीने पूछा।

"आप देख ही रहे है कि मै बिल्कुल चगा हू। यहा तक कि इसके लिए हर कोई मुझसे ईर्षा करता है। लेकिन वास्तव म मेरा स्वास्थ्य जितना मै चाहता हू उतना अच्छा नही है, क्योकि मै शीघ्र उत्तेजित हो जाता हू, और यह अस्वास्थ्य का लक्षण है। प्राय उत्तेजित होने के कारण ही मेरा रक्तचाप बढ जाता है, उनका उत्तर रहा।'

सात्वना और सलाह पाने के लिए आने वाले हजारो लोगो की बाते गाधी जी उनकी मनोभूमिका मे समरस होकर सुनते है। इसके स्पष्टीकरण स्वरूप वे कहते है, "यदि मुझे स्नेही, सहयोगी और सत्योपासक व्यक्तियो का मार्गदर्शक बनना हो तो अपनी श्रवणवृत्ति विकसित करनी ही चाहिये।"

जिस महति आशा से सारा ससार उसकी ओर ताक रहा है वह रामराज्य का अपना स्वप्न साकार करने मे सहायता पहुचाने की इच्छा से भी मै दीर्घ आयु की कामना करता हू, " वे कहते है । ईश्वर करे उनकी यह इच्छा पूरी हो ।

नई दिल्ली,
मई-जून, १९४६.

महात्मा गांधीके संस्मरण

डा. भगवानदास

महात्माजी से सर्वप्रथम मै कब मिला ? जरा सोच लू । अस्सी वरस की उम्र हो जाने के कारण अब याददास्त मेरी कमजोर, चचल एव दगाबाज हो गई है । सो सोचना ही पडेगा । याद पडता है कि फरवरी १९१६ के प्रथम सप्ताह म मैं पहलेपहल उनसे मिला । उस दिन, अर्थात् फरवरी की चौथी तारीख को, लार्ड हार्डिज के करकमलो द्वारा काशी विश्वविद्यालय का शिलान्यास-समारोह हुआ था । महात्मा जी उस उत्सव म उपस्थित थे । ना, सो तो नही । कम से कम उस भव्य समारोह म, जिसका लार्ड हार्डिज ने 'यह तो छोटा सा दिल्लीदरवार ही है' इन शब्दो म वर्णन किया था, उनकी उपस्थिति का मुझे स्मरण नही आता । लेकिन उसी मास की आठवी तारीख को, जब कि उन्होने राजा-महाराजाओ और बडे बडे अफसरो मे भगदड मचा दी थी, उनको निश्चित रूप मे मैने देख लिया था । श्रीमती एनी बेसेट एव मुझ जैसे उनके सहयोगियो द्वारा स्थापित सेट्रल हिन्दू कालेज को काशी विश्वविद्यालय मे परिवर्तित करने के लिए मालवीय जी धन-सग्रह में व्यस्त थे । इसी हेतु उन्होने तत्कालीन काशी-नरेश श्री प्रभुनारायण सिह द्वारा सेट्रल हिंदू कालेज के लिए प्रदत्त शानदार स्थान पर सर्वसाधारण की एक बैठक बुलवायी थी । इत्तफाक की बात है कि चौथी फरवरी को, अर्थात् वसत पचमी के दिन हवा जितनी गर्म थी उतनी ही आठ तारीख को वह बडे दिना जैसी ठड थी । अल्वर, नाभा, बीकानेर, बनारस, दरभगा आदि रियासतो के नरेश, बनारस के कमिश्नर, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री एव अन्यान्य महानुभाव उक्त अवसरपर उपस्थित थे । मालवीय जी ने एक के बाद एक लब्धप्रतिष्ठित वक्ता से मच पर

आकर वक्तृता देने एव विश्वविद्यालय के लिए धन की याचना करने की प्रार्थना की। अपने दुर्भाग्य से उन्होने गाधी जी से भी ऐसी ही प्रार्थना की। गाधी जी खडे हुए और उन्होनें अन्य बातो के सिलसिले में राजा-महाराजाओ, करोडपति जमीदारो एव तत्कालीन ब्रिटिश भारत-सरकार की गुजरात के उन बदरो की टोली से तुलना कर डाली जो खडी फसल पर धावा बोल देती हैं, और बोले, फिर ग्रामीण किसान व उनके कुटुम्बी,—मर्द, औरते और बच्चे, जिस प्रकार अपने घर के वर्तन, घासलेट के कनस्तर आदि जो भी हाथ लगे वह बजाते हुए खेतो में इकट्ठा होकर उन बन्दरो को भगाना शुरू करते है ठीक उसी प्रकार का कार्य उन्होने (गाधी जी ने) एव उनके दूसरे सहयोगियो ने प्रारभ किया है। और सचमुच में राजा-महाराजाओ की टोली मे भगदड मच गई। "आप क्या कह रहे है ?" मालवीय जी ने चिल्लाकर गाधी जी से पूछा। उत्तर मे गाधी जी बोले, *"क्यो, क्या कहा मैंने ? क्या मैंने सच्ची बाते ही नही कही हैं ? क्या* आप और आपके काग्रेसी अनुयायी ठीक यही बातें जरा अधिक सभ्यतापूर्वक नहीं कहते ?" इस पर मेरे पास ही बैठा हुआ बनारस का अग्रेज कमिश्नर जोर से गुर्राया, "इस आदमी की यह बकवाद हमे बन्द कर देनी चाहिए।" और बेचारे मालवीय जी रुष्ट राजा-महाराजाओ के पीछे दौडकर पुकारने लगे "श्रीमानो ! श्रीमानो ! कृपया लौट चले ! हमने उन्हे चुप कर दिया है," आदि। लेकिन सभी महानुभाव इस कदर भयग्रस्त हो गये थे कि किसी ने भी लौटने का नाम न लिया। मालवीय जी उदारमना, देशभक्त श्री शिवप्रसाद जी गुप्त की मोटर में बैठ गये और अपने साथ मुझे भी घसीट कर उन्होने ड्राइवर को काशी-नरेश के मिंट-हाउस, जहा महाराजा अलवर ठहरे हुए थे, चलने का हुक्म दिया। सौभाग्य से उन्होंने मुझे मोटर में ही बैठा रक्खा; अन्यथा मैं जाडे मे ठिठुरकर मर ही जाता। अधिक सौभाग्य की बात यह हुई कि शिवप्रसाद जी ने अपना भारीभरकम ऊनी ओवरकोट, तथा मालवीयजी ने उस रात की कडकडाती सर्दी मे अपनी यथाशक्ति रक्षा करने के लिए लाये हुए खुद के गपटे मोटर मे ही छोड दिये थे, जिससे अनायास ही मेरा लाभ हुआ। स्वय शिवप्रसाद जी की जाडे मे रक्षा करने के लिए उनकी मोटी चर्बी ही काफी थी। खेद है कि उस प्रसन्नवदन पुरुष को बनारस, और उनकी मौलिक कल्पनाओ को सारा देश आज खो बैठा है। समाचार-पत्रो, सभा-गोष्ठियो

एवं अदालतो द्वारा हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने की कल्पना के उत्साही जनक वे थे, न कि गाधी जी या नागरी-प्रचारिणी सभा । भव्योदात्त भारत-माता मदिर की कल्पना के भी वे ही प्रणेता थे । इस मदिर के भीतर ३१ वर्ग-फीट आकार में सफेद सगमर्मर का भारत का मानचित्र तैयार कर बिठाया गया है, जिस में हिमालय की चोटी की ऊचाई से लेकर समुद्र की गहराई तक सप्रमाण दिखाई गई है । यह काम बनारस के दुर्गाप्रसाद की देखरेख मे पूरा हुआ है । यह कलाकार, जो आदरणीय क्रिचटन के समान ही देशभक्त था, शिल्पी' चित्रकार, सगीतज्ञ एव ज्योतिर्विद भी रहा । सिवाय इसके घड़ीसाजी, हूबहू नैसर्गिक आकार-प्रकार की गानेवाली चिड़िया तैयार करना, डाक के टिकटो का सग्रह करना और हड़प्पा तथा मोहनजोदारो मे प्राप्त प्राचीन सिक्को व शिला-लेखो को पढ़ना आदि पुरातत्व सबधी कार्य मे भी यह शिल्पी बहुत ही निपुण था। उसके बनाये हुए उक्त मदिर का, जो सभी सप्रदायो के लिए खुला है, १९३६ ई० के अक्टूबर मे महात्मा जी के करकमलो द्वारा उद्घाटन हुआ । उस अवसर पर खान अब्दुल गफ्फार खा, डा० विधनचद्र राय, प. जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टडन एव सभी प्रान्तो और वर्गो के स्त्री-पुरुष प्रतिनिधि उपस्थित थे । अस्तु ।

महात्मा गाधी से दुबारा मैं कब मिला ? १९२० ई०मे ? ना,–१९१६ के दिसंबर मे लखनऊ मे आयोजित काग्रेस-सप्ताह मे । वहा भी मैं शिवप्रसाद जी गुप्त के साथ उनकी रावटी मे ठहरा हुआ था । तब जाड़ा कडाके का पड़ रहा था । सुबह के वक्त रावटी के पृष्ठभाग पर की ओस जम जाती थी । सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और लोकमान्य तिलक, जिन्हे मैंने पहली बार यहीं देखा ऐसा मेरा ख्याल है, उक्त काग्रेस में बोले । यही पर हिंदू-मुसलमानो के बीच प्रान्तीय धारासभाओ के प्रतिनिधित्व सबधी वह दुर्भाग्यपूर्ण समझौता, जो 'लखनऊ-पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है और जिसके द्वारा शनै शनै. द्विखडभारत की योजना के बीज बोये गये, सपन्न हुआ । इस प्रकार भारत-हितैषी बननेवाले किन्तु कपटपूर्ण वामनमूर्ति वायसराय मिटो की 'फूट डालो और शासन करो, की चाल सफल हुई । अस्तु । एक दिन प्रात काल इसी रावटी में मैंने महात्मा जी के दर्शन किये । मैंने झाक कर देख लिया कि वे सरकारी गजट की एक बड़ी जिल्द पढ़ रहे है । मैं तब तक चुपचाप बैठा रहा जब तक कि वे नीची निगाह किये

काग्रेस मे उपस्थित रहने के उद्देश्य से, वह इस वर्ष बनारस के बदले लखनऊ मे आयोजित की थी। तेजी से घटनेवाली अनगिनत घटनाओ के बीच नई पीढी को इस बात का विस्मरण हो गया है कि भारत को नि शस्त्र प्रतिकार और सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का पाठ सर्वप्रथम गाधी जी ने नही अपितु एनी बेसेन्ट ने पढाया है। उन्होने ही स्वराज्य-आन्दोलन की इस देश में नीव डाली। और राष्ट्रीय झडा बगलेपर फहराने के कारण वे, बी पी. वाडिया और बबई हाईकोर्ट के ख्यातनाम जज एव लो० तिलक के समान सस्कृत व अग्रेजी के प्रकाड पडित श्री काशीनाथ तेलग के सुपुत्र स्वर्गीय पढरीनाथ काशीनाथ तेलग जेल गये। आगे चलकर तीन मास बाद विभिन्न कारणो से तीनो रिहा कर दिये गये।

इसके बाद नवबर १९२० मे मैंने महात्मा जी को देखा। इसके कुछ ही दिन पूर्व उन्होने अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के छात्रो को असहयोग करने का उपदेश दिया था। इस पर उक्त यूनिवर्सिटी के अधिकारियो ने उनसे कहा था कि वे पहले स्वधर्मी काशी विश्वविद्यालय वालो को जाकर यह सलाह दे। फलत वे शीघ्र ही बनारस पहुच गये। अवश्य ही मालवीय जी ने विश्वविद्यालय के या सेट्रल हिंदू कालेज के मैदान मे उन्हे भाषण करने की अनुमति देने से साफ इन्कार किया। क्योकि कुछ दिन पूर्व फरवरी मे अ भा काग्रेस कमेटी के सदस्यो को भी बैठक के लिए ये दोनो स्थान देना उन्होने अस्वीकार किया था। चनाचे विद्यार्थियो और कुछ अध्यापको ने मिलकर सेट्रल हिन्दू कालेज के क्रीडागण के बिल्कुल बगलवाले मैदान मे शीघ्रता से गाधी जी की सभा का प्रबध कर लिया। सभा मे मुख्यतया विद्यार्थी और कुछेक सौ नागरिक उपस्थित थे। मैं मच पर मोतीलाल नेहरू, अबुल कलाम आजाद आदि नेताओ के पीछे एक कोने मे बैठा था। गाधी जी इस आशय का कुछ बोले, "कोई यह न सोचे कि मैं आप लोगो को आपकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक पथभ्रष्ट कर रहा हू। मेरे भी चार पुत्र हैं, पुत्र-हित को मैं भली भाति समझता हू और आप सब मुझे अपने पुत्रो के समान ही हैं," आदि। इसी समय आचार्य कृपलानी, जो अब काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं, लगभग ३० छात्रो के साथ असहयोग कर विश्वविद्यालय छोड आये। मैंने भी अस्सी घाट पर किराये के एक मकान में असहयोगी छात्रो और कुछ अध्यापको के साथ अपना अड्डा जमाया, यहीं

पर फरवरी १९२१ मे काशी विद्यापीठ की स्थापना की गई। इसके लिए श्री शिवप्रसाद जी गुप्त ने दस लाख का दान देकर एक ट्रस्ट बनवाया। अस्तु, मोतीलाल नेहरू, अबुल कलाम आजाद आदि की उपस्थिति मे गाधीजी के कर-कमलो द्वारा काशी विद्यापीठ का विधिवत् उद्घाटन हुआ। उपरोक्त सभा मे काफी तादाद मे लोग उपस्थित थे। सभा बिल्कुल खानगी जगह मे होने पर भी शहर-कोतवालने जिला मजिस्ट्रेट के हुक्म से बनारस मे पहली ही बार सभा-स्थान के बाहर गिरफ्तारिया की। फिर भी हमारे चारो ओर बढती जानेवाली जनता की भीड कही खुद की बोटी बोटी काट न डाले इस आशका से बेचारा कोतवाल नख-शिखान्त थर्रा रहा था। बडी कठिनाई से गाधी जी तथा अन्य नेतागण मोटर द्वारा अपने अपने डेरे पर पहुचाये गये। उसी शाम को टाउन हाल के मैदान में एक दूसरी सभा का आयोजन किया गया, जिसके लिए उक्त हाल के राजभक्त चेअरमैन से बडी मुश्किल से इजाजत मिली थी। इस बार तो सभा के लिए और ही अधिक भीड उमड पडी और शोरगुल तथा हलचल भी काफी रही। भारी डीलडौल वाले हमारे शिवप्रसाद जी भीड को शान्त करने गये, लेकिन अपने गल्त तरीके के कारण शोरगुल और ही अधिक बढा बैठे। किसी कदर पन्द्रह मिनट बाद शाति स्थापित हुई। तब गाधी जी ने छोटा सा भाषण दिया, जिसके बाद तुरत उन्हे सुबह की अपेक्षा और अधिक होशियारी से हटाया गया। मोटर में मै उनका अगरक्षक था। भीड बेहद होने से मोटर बहुत ही धीमी चाल से आगे बढ पा रही थी। लोगो के उत्साह की कोई सीमा न थी, और केवल 'की जय' के नारे बुलन्द करने भर से सतुष्ट न होकर वे गाधी जी को स्पर्श करने पर उतारू थे। किन्तु ऐसा करने मे स्वत को असमर्थ पाने पर वे बास की अपनी लम्बी लम्बी लाठिया उनके और साथ ही मेरे माथे की ओर इस तरह बढा देते थे कि खोपडी फट ही जाती। अगर हाथ या पैर से स्पर्श नही कर सकते तो लाठी की नोक मे ही सही, यह है हम हिदुओ की अन्धभक्ति और अनुशासन-हीनता! क्या काग्रेस ने इसके सुधार का कोई उपाय ढूढ निकाला है? खेद के साथ कहना पडता है कि, "यदि कुछ किया भी हो तो वह नगण्य है।" और हमने दिसम्बर १९२० की नागपुर काग्रेस मे काग्रेस के ध्येय से 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की व्याख्या हटाकर एव जनता को केवल सारहीन 'स्वराज्य' शब्द सिखाकर परिस्थिति और भी अधिक विषम बना दी।

अस्तु। अनन्तर जून १९२१ मे अ. भा. कांग्रेस कमेटी की बंबई की बैठक में, उक्त कमेटी के सदस्य के रूप मे, मैंने महात्मा जी के दर्शन किये। लोकमान्य तब गुज़र चुके थे। मुझे उनका दर्शन बंबई के सरदारगृह में स्थापित उनके ही कद की सजीववत् संगमर्मर की मूर्ति के रूप में हुआ। यही शिवप्रसाद जी गुप्त के साथ मैं ठहरा था। वृद्ध विजयराघवाचार्य जी के सभापतित्व मे आयोजित उस दिन की बैठक के बाद जब नाश्ता बांटा जा रहा था, तब लम्बे कद और स्थूल शरीरवाले शौकतअली बोले, "आज जितना अधिक इन उमदा चीजो को हम खा सके, खा ले; क्योकि अब कई साल तक हम ऐसा मौका पा न सकेगे।" कराची की आगामी लम्बी जेल-यात्रा का उन्हें मानो पहले ही से आभास मिल गया था।

दोपहर को चौपाटी पर सभा के लिए जनता की भारी भीड़ उमड़ पडी। चित्तरजन दास, मोतीलाल नेहरू, एम. आर. जयकर तथा अन्य नेता, एव स्वयं महात्मा जी पाच-पाच दस-दस मिनट तक बोले। महात्मा जी ने तो सदा की भांति सक्षेप मे और सीधीसादी पद्धति से भाषण दिया। न जरूरत से ज्यादा एक शब्द, न अलकारिक या आडबरपूर्ण वक्तृता, न प्रभाव जमाने की कोशिश। अपना हेतुभर विशद करने के लिए जितना आवश्यक था उतना ही वे बोले। विदेशी वस्त्रो की होली जलाने का निश्चय किया गया, और तदनुसार दूसरे दिन मिल-क्षेत्र मे प्रचड होली जली। अगले ही दिन एक सुन्दर भवन की तीसरी मजिल पर के उस कमरे मे मैं गया जहा महात्मा गांधी ठहरे थे। अ. भा. काग्रेस कमेटी के कई सदस्य भी वहा उपस्थित थे। मैंने पूछा, "महात्मा जी, औपनिवेशिक स्वायत्तशासन शब्द कुछ माने रखते थे; किन्तु केवल 'स्वराज्य' शब्द के कुछ भी माने नही होते। जिसके जी मे जो आय सो ही इसके माने लगा ले। इससे हिन्दू हिन्दूराज्य की, मुसलमान मुस्लिम-राज्य की, जमीदार जमीदारी-राज्य की, पूजीपति पूजीवादी-राज्य की, श्रमजीवी श्रमिक-राज्य की और इसी तरह अन्यान्य वर्ग अपने मनोनुकूल राज्य की कल्पना कर बैठते हैं। इस सब का नतीजा यह होगा कि आप जिस एकता का प्रचार करना चाहते हैं उसके स्थान पर भयानक स्वरूप का वर्गयुद्ध और गृह-युद्ध होकर रहेगा।" जवाब में उन्होंने बतलाया, "यदि कोई आपसे 'स्वराज्य' का अर्थ पूछ बैठे तो उसे 'राम-राज्य' कह दो।" इस पर मैंने पुनः कहा, " यह स्पष्टीकरण

समझना तो और भी अधिक दुस्तर हो जायगा। और यदि आप यह सोचते हो कि राम-राज्य मे हर कोई सुखी था व कोई भी गरीब न था, तो यह बडी भारी भूल होगी।" उदाहरण के तौर पर मैंने उन्हे वाल्मीकि रामायण की कुछ चौपाइया सुना दी। विस्तारभय के कारण वे यहा उद्धृत नही की जा सकती। फिर वे अन्य सदस्यो की ओर मुडे और मैंने उनसे विदा ली।

इसके बाद १९३१ ई० मे मै ने उनके दर्शन किये ऐसा ख्याल पडता है। बनारस और अन्यत्र के भयानक स्वरूप के साप्रदायिक दगे अभी अभी खत्म हुए थे। गाधी-इर्विन समझौते की हाल ही मे घोषणा होकर तदनुसार गाधी जी ने सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित किया था। इसके कुछ ही दिन पश्चात् अ. भा. काग्रेस कमेटी की बैठक बुलायी गई। उक्त कमेटी के सभी सदस्यो के रहने आदि का प्रबध काशी विद्यापीठ मे किया गया था। सदा की भाति अब की बार भी उदारमना शिवप्रसाद जी ने सबका आतिथ्य किया। सिर्फ अबुल कलाम आजाद किसी होटल मे जाकर ठहरे। उस साल आम की खासी अच्छी फसल आई थी। महात्मा जी ने सत्य का और एक प्रयोग शुरु किया था। यहा सत्य से आहार का आशय है। इस प्रकार के प्रयोग कभी कभी असफल रहते हैं। यद्यपि आयुर्वेद के अनुसार चालीस दिन तक शुद्ध और पतले अमरस का सेवन कायाकल्प औषधी के समान माना गया है, फिर भी दुर्भाग्य से उस रात को गाधी जी को अनिसार की शिकायत हो गई। भोर तक मैंने बनारस के सारे श्रेष्ठ एव ज्येष्ठ डाक्टर बुला लिये। अवश्य ही किसी प्रकार की फीस लिये बिना केवल सेवा-भाव से वे सब उपस्थित हुए थे। बडे आदर के साथ उन्होने गाधी जी की स्वास्थ्य-परीक्षा कर यह निर्णय दिया कि वास्तव मे उन्हे कोई शिकायत नहीं है। और तपस्वी के सदृश्य उनकी रहनसहन के कारण बीमारी कभी की रफूचक्कर हो गई थी। डाक्टरो की उपस्थिति मे सहज ही मेरे मुह से ये शब्द निकले,— "महात्मा जी कुपथ्य करते हैं।" इससे उन्हे कुछ गलतफहमी हुई और वे बोले, "आप ऐसा कहते हैं!" खुलासा करते हुए मैंने कहा, "साधारण कुपथ्य नही, अपितु अर्धरात्रि तक आप की मुलाकाते जो चलती रहती है और फिर दो ही घटे पूर्व सोये हुए अपने सेक्रेटरियों की नींद हराम कर आप उनसे लम्बे लम्बे खत भी लिखवाते हैं। मेरा मतलब इसी 'कुपथ्य' से है!" सुनकर उनके उद्विग्न चेहरे पर हसी झलक गई, और तब हम सभी ने सतोष की सास ली।

बनारस,
५-४-१९४८.

गांधीजी : १९४०-१९४८

घनश्यामदास बिड़ला

मई १९४० की बात है। गाधी जी वायसराय लार्ड लिनलिथगो से मिलने शिमला जा रहे थे। शिमला-यात्रा के लिए ट्रेन पर सवार होने के पूर्व स्नान और सैर कर लेने के उद्देश्य से वे चन्द घटे दिल्ली रुके। साधारणत दिल्ली मे मई का मौसिम गर्म रहता है, किंतु राते ठडी होती है। विशेषतया उस रात को हल्की वर्षा होने के कारण वातावरण प्रसन्न बना रहा। गाधी जी प्राय कहा करते है कि वे बिना भोजन के तो रह सकते है, किन्तु नित्य की प्रार्थना और सैर के बिना उन्हे चैन पड नही सकता। सो हम मजे मे घूमने निकले।

लडाई अभी गजगति से चल रही थी। मामला मुकाबिले पर आया न था। किन्तु सभवत शिमला के महारथी भावी घटनाओ का दु स्वप्न देख चुके थे। शुरु में हिटलर की शक्ति का सही अन्दाजा कोई लगा न सका। किन्तु अब आगामी ग्रीष्म कालीन भीषण चढाई की घटाय घिरती नजर आ रही थी।

भारत में बाह्यत तो शाति विराजमान थी, किंतु उसके भीतर ही भीतर जो अग्नि धधक रही थी वह किसी भी क्षण प्रज्वलित होकर सारे देश का दाह कर सकती थी। इसी से वायसराय गाधी जी के मन की बाते जान लेना चाहते थे।

उस चादनी रात मे हम साथ साथ घूम रहे थे। आगामी शिमला-वार्तालाप के सबधम मै आशापूर्ण था। सोचता था कि जिस ब्रिटेन को फासिस्ट और नाजी जैसे अन्देवताओ को प्रसन्न रखने में जरा भी हिचकिचाहट मालूम न हुई वही ब्रिटेन आज की विषम परिस्थिति मे भारत को प्रसन्न रखने म आनाकानी करने की मूर्खता कैसे कर सकता है ? लेकिन इस विषयक भावी वार्तालाप के सबध मे गाधी जी के मन म शायद ही कोई गभीर विचार उठा हो। इसके प्रति वे तो पूर्णत उदासीन थे। वायसराय क्या कहगे इससे उन्ह कुछ भी प्रयोजन नही था। किसी भी परिस्थिति म खुद को क्या कहना है इतना वे अवश्य जानते थ।

ऐसे ही अन्य अनेक महत्वपूर्ण प्रसगो पर गाधी जी की इस विशिष्ट मनोरचना के मुझे दर्शन हो चुके है। युयुत्सू का उस्ताद खिलाडी कभी भी खुद होकर प्रतिपक्षी पर आक्रमण नही करता। वह तो अपने प्रतिपक्षी के ही आक्रमण

योजनाये हजारो वर्षो के लिए होती है। अवश्य ही इसका यह अर्थ नही कि शताब्दियो के लिए योजनाए गढते समय वे तात्कालिक आवश्यकताओ की ओर ध्यान नही देते। और सत्य, अहिसा एव तत्सम व्यापक सिद्धान्तो मे जिसका विश्वास है ऐसे व्यक्ति को, चाहे आज के लिए योजना बनानी हो चाहे आज से सैकडो वर्ष आगे के लिए, किसी भी हालत मे अपनी मनोभूमिका मे विशेष परिवर्तन करना नही पडता। इस दृष्टि से देखा जाय तो उन्ह सकुचित अर्थ से 'राजनीतिज्ञ' कहने की अपेक्षा 'द्रष्टा' कहना अधिक सयुक्तिक होगा।

इस प्रकार की मनोरचना के कारण ही उन्हे नित नई शक्ति प्राप्त होती रहती है। अटकलबाजी, चिंता, व्यग्रता, उत्तेजना आदि से वे मुक्त रहते है, जब कि उनके विरोधक उनकी विचित्रताओ को देखकर अक्सर असमजस में पड जाते है। यही वजह है कि गाधी जी के पास वायसराय से निवेदन करने योग्य पहले से सोची हुई कोई योजना तैयार न थी।

"ऐसी परिस्थितियो मे ब्रिटिश लोग उचित बातो की कैसे उपेक्षा कर सकते है ? परिस्थिति कदम उठाने के लिए उन्हे बाध्य करेगी। एक प्रकार से प्रस्तुत युद्ध अनेक अन्यायो का अत कर देगा, और भारत का, जो कि एक पीडित राष्ट्र है, इस युद्ध से लाभान्वित होना तो अवश्यभावी है," मैंने कहा।

"क्या किसी बुराई के भीतर से कोई भली बात पैदा हो सकेगी ऐसा आप मानते है ? अतत युद्ध तो अमगल ही है। फिर अमगल से मगल भला कैसे निपज सकता है ? और हर हालत में, किसी की सकटपूर्ण स्थिति से लाभ उठाने की प्रवृत्ति पापमूलक ही मानी जायगी। अत प्रतिपक्षी की कमजोरियो की अपेक्षा अपने कार्य और व्यवहार के औचित्य पर ही हम निर्भर रहे।"

खासा सबक मिला मुझे।

पुन दिल्ली का ही प्रसग। १९४२ का वर्ष। युद्ध अपनी चरम सीमा पर था। जर्मनी भयानक ज्वार की तरह सारे पश्चिमी यूरोप पर कब्जा कर विगत वर्ष मास्को के दरवाजे तक असफलता पूर्वक खटखटा चुका था। यद्यपि मास्को मे वह घुस न सका, फिर भी किसी कदर उसका जोश भी घटा नहीं। बेल्जियम और फ्रास की तरह जो देश विशेष सामना किये बिना शत्रु की शरण में आये वे नष्ट होने से बचे रहे, जब कि शत्रु का मुकाबला करनेवाले रूस सरीखे देशो पर हमले हो ही रहे थे। फलत तीन पचवर्षीय योजनाओ द्वारा की गई रूस की सारी सुदर निर्मिति अक्षरश खाक में मिल रही थी।

इस प्रकार न केवल यूरोप की ही परिस्थिति विषम बन गई थी, बल्कि एशिया की भी परिस्थिति वैसी ही थी। भाप के अजस्र 'रोलर' की तरह जापान समस्त प्रतिकार को रौंदता हुआ आश्चर्यजनक गति से आगे बढ रहा था। जापानी आक्रमण के फलस्वरूप एक के बाद एक दुर्ग ताश के घर की भाति ढह रहे थे। अजेय सिंगापुर का पतन हो चुकने के कारण सारा ससार भयग्रस्त था। भविष्य के गर्भ मे क्या छिपा है यह जानने के लिए सभी आतुर थे।

प्रत्येक सधन व्यक्ति ने रेडियो खरीद लिया था और उसके द्वारा दिन-रात मे कई बार ससार के प्रमुख रेडियो-स्टेशनो से आनेवाली खबरे सुनी जाती थी। निश्चय ही वह अशुभ खबरे उगलता था।

जब मार्शल च्याग-काई-शेक अकस्मात वायुमार्ग से भारत पधारे, तब उनके आगमन के उद्दिष्ट के सबध मे लोगो मे तर्कवितर्क होने लगे। मार्शल आश्रयार्थ तो भारत भाग आये नही है ? उन सकटापन्न दिनो मे कुछ इसी तरह की कानाफूसी सुनने मे आती थी।

इसके ठीक बाद सर स्टेफोर्ड क्रिप्स भारत पधारे। भारत के इतिहास मे यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। क्रिप्स-मिशन के अतिम परिणाम के सबध मे हर कोई उत्कटापूर्वक अलग अलग अनुमान लगा रहा था।

गाधी जी दिल्ली बुलाये गये। क्रिप्स-प्रस्ताव के बारे मे उनके अपने अलग विचार थे। उनका यह स्वभाव है कि वे साधारण बातो पर से ही बडी बातो की बाबत फैसला करते है। इसीलिए देश की प्रति दिन की घटनाओ का उनकी दृष्टि मे जो महत्व था, वह क्रिप्स-प्रस्ताव का न था। और उससे उन्हे किसी प्रकार की आशा भी न थी।

जैसा कि सभी जानते है, उन दिनो सरकार सर्वथा उद्धत एव जनमत के प्रति पूर्णत उदासीन थी। छोटी छोटी बातो के सबध मे भी वायसराय स्वय निर्णय करते थे। महत्वहीन पदो पर भी अग्रेजो को नियुक्त कर भारतीयो की भावनाओ का वे खुल्लमखुल्ला पददलन कर रहे थे।

"इस प्रस्ताव के आधार पर मै निश्चय ही रचनात्मक कार्य कर सकता हू, किन्तु मुझमे इसके लिए कतई उत्साह नही रहा है," चर्खा चलाते हुए गाधी जी बोले।

"यदि ऐसी बात है तो क्यो प्रयत्न न किया जाय? और आपमे इतना निरुत्साह भी क्यो, और क्यो यह मौका गवाया जाय ?" मैंने पृच्छा की।

"बात तो ठीक है, किन्तु मुझे इस मे ईमानदारी नही दीखती। यदि सम्राट की सरकार सचमुच मे हिंदुस्तान को आजादी देना चाहती है तो फिर देश में रोज-ब-रोज घटनेवाली बातो का उसके साथ कैसे तालमेल बैठाया जाय ? अमेरिका के कुछ अखबारो मे छपा है कि क्रिप्स-प्रस्ताव को मैंने 'दिवालिया बैंक पर का अगली तारीख का चेक' सबोधित किया है। अवश्य ही ऐसी कोई बात तो मैंने नही कही। फिर भी यदि सारी बाते परख कर देखी जाय तो उक्त वर्णन यथार्थ प्रतीत होता है। चर्चिल दलील करते हुए स्पष्ट ही कहते हैं कि यदि स्वेच्छा से भारत का त्याग ही करना हो तो फिर लडने औरउसमें विजयी होने से लाभ ही क्या ? दरअसल में यदि भारत और अन्य एशियायी राष्ट्र स्वाधीन हो जाते तो विश्व-युद्ध की कोई सभावना ही नही रहती। किन्तु चर्चिल सभवत ऐसा सोचते है कि स्वेच्छा से भारत को त्यागने की अपेक्षा लड झगड कर उससे हाथ धो बैठना कही बेहतर है। जहा इस प्रकार की नीयत हो वहा प्रामाणिक व्यवहार असभव ही है। उनका सारा दृष्टिकोण ही,—अर्थात् वर्तमान और भूतकाल की गलतियो का प्रक्षालन करने सबधी अनिच्छा एव भविष्य के विषय में दुराग्रह,—किसी को भी निरुत्साही बनाने के लिए काफी है। फिर भी कौन जाने इसमें से भी कुछ न कुछ अच्छी बात निकल आ सकती है। जवाहर सारा मामला देख ही रहा है। मै भी इसके प्रति एक निरपेक्ष दृष्टिकोण रखता हू।" इतना कहकर वे अनासक्त भाव से शांति में लीन हो गये।

किंतु तुरत ही एक ऐसा नया विषय उपस्थित हो गया कि जिसने उनका ध्यान आकर्षित कर लिया। चुनाचे अपनी ध्यानावस्था से वे जग पडे। आश्रम-सबधी कुछ घरेलू बात थी। उनकी चर्चा छिडते ही गाधी जी उनमे इस प्रकार तन्मय हो गये कि उनके सामने महान् प्रश्नो का जैसे कुछ अस्तित्वही नही रहा। आश्रम की क्षुद्र बातो के प्रति उनका यह उत्साह क्रिप्स-प्रस्ताव के प्रति उनके निरुत्साह के साथ स्पष्टतया विरोध प्रदर्शित करने वाला था। किंतु क्या गाधी जी ने अनेक बार यह कहा नही है कि 'जो पिंड मे वही ब्रह्मांड में' ?

गाधी जी की दृष्टि मे महान सिद्धान्तो या सूत्रो की अपेक्षा छोटी बातो का, साध्य की अपेक्षा साधनो का, अधिक महत्व रहता है।

फलत लगभग दो घटे से भी अधिक समय तक बहुत ही एकाग्रता के साथ उक्त चर्चा चलती रही । जब चर्चा पूरी हुई तब गाधी जी थके हुए नजर आये। इतने मे युद्ध विषयक और अधिक अशुभ समाचार आ पहुचे । सुनकर गाधीजी ने एक गहरी आह भरी ।

और बोले, "ऐसे समय मे, जब कि एक विशाल साम्राज्य धराशायी होने जा रहा हैं, क्षुद्र विषयो की चर्चा मे हम उलझे रहे यह कैसी विचित्र बात है!"

"क्या आप इस बात से दुखी हैं ?"

"जरूर।"

"किंतु साम्राज्य के प्रति आपको इतना प्रेम है इसका मुझे तो बिल्कुल पता ही न था।"

"साम्राज्य के प्रति प्रेम मुझे कभी भी नही था । किंतु साथही वर्षों के परिश्रम से निर्मित सस्था का इस प्रकार अत हो जाय यह बात भी मुझे रुचती नही । मैं उसके भीतर की बुराइया मिटाना चाहता हू। मैं उसका नव-निर्माण करना चाहता हू । किंतु यहा तो प्रस्तुत साम्राज्य शायद अपनेसे भी बदतर साम्राज्य के भार के नीचे नष्ट होता दिखाई पडता है। मैं चीजो को नष्ट होने देने की अपेक्षा यथासभव उन्हे सुधार लेने के पक्ष में हू।"

सन् १९४२ भारत के इतिहास मे सस्मरणीय बन चुका है। इसी वर्ष जापान ने सारे पूर्वी एशिया में विजय प्राप्त की । क्रिप्स अपनी सुप्रसिद्ध योजनाओ को लेकर आये और निराश होकर, यहा तक कि भारत की आशाओ पर पानी फेर कर, चले गये । किन्तु राष्ट्र के जीवन मे एक घटनापूर्ण नये अध्याय का आरम्भ अभी होनेवाला था ।

क्रिप्स वार्तालाप की असफलता के बाद भारतभर में कटुता फैली ।

युद्ध के शुरू के दिनो मे इग्लैंड के प्रति भारत की वैरवृत्ति घटती जा रही थी। १९३७ ई० मे कई प्रातो म काग्रेस द्वारा पदग्रहण किया जाने के फलस्वरूप पिछली कटुता धीरे धीरे मिटती जा रही थी। यद्यपि काग्रेसी मन्त्रिमडल और गवर्नरो के बीच प्राय सदैव ही साधारण मतभेद एव सघर्ष हो जाया करता था, फिर भी सर्वोपरि देखा जाय तो काग्रेस द्वारा पदग्रहण किया जाने के बाद से राज्यतन्त्र स्थिर गति से चालू था ।

ता० ७ अगस्त के प्रात काल की बात है । काग्रेस की कार्यकारिणी ने सुप्रसिद्ध अगस्त-प्रस्ताव पास किया था और अब अ. भा. काग्रेस कमेटी द्वारा वह स्वीकृत किया जाना बाकी था। सारे वातावरण मे एक प्रकार की सयत उत्तेजना फैली हुई थी। लोगो का ऐसा ख्याल था कि अ. भा. काग्रेस कमेटी द्वारा उक्त प्रस्ताव स्वीकृत होते ही बहुत बडी घटनाये घटेगी । मेरा मन भी कुछ अस्वस्थ था । भावी परिणामो की आशका से मन मे भली बुरी बाते उठ रही थी ।

किंतु गाधी जी शात मुद्रा धारण किये हुए थे। उनके चेहरे से किसी भी प्रकार की अस्वाभाविकता या उत्तेजना का आभास न मिलता था।

सैर के समय मैंने उनसे पूछा, "अगला कदम क्या होगा ? क्या अ भा काग्रेस कमेटी द्वारा अगस्त प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद काग्रेस किसी बड़े आन्दोलन का श्रीगणेश करेगी ?"

"ना, कतई नही । हम कोई भी कदम उठाने मे जल्दबाजी करना नही चाहते । अभी वायसराय से मुझे मिलना है। वे मेरे मित्र हैं, और प्रस्ताव की व्याख्या करने मे वे जल्दबाजी से काम नही लेगे। बिना हार्दिक आत्मोत्साह के भारत विदेशी आक्रमण से अपनी रक्षा कर नही सकता। वह उत्साह केवल प्रस्तुत युद्ध को लोकयुद्ध मे परिवर्तित कर देने से ही निर्माण किया जा सकता है। और जब तक भारत स्वदेश का स्वामी बन नही जाता तब तक विदेशी आक्रमण का प्रतिकार करने के लिए आवश्यक उत्साह उसमे उत्पन्न हो ही नही सकता । इसलिए यदि जापानी आक्रमणका प्रतिकार करने के विषय में दोनो की भूमिका एकसमान रही तो कांग्रेस द्वारा उठाया गया यह कदम स्नेहपूर्ण माना जा सकता है। वायसराय को अपना यह दृष्टिकोण समझाने का मैं प्रयत्न करूगा।"

"लेकिन मान लीजिये कि अगर वे अपनी ही बात पर अड़े रहे और टस से मस न हुए तो फिर क्या करेंगे ?"

"तब तो फिर किसी न किसी प्रकार के सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का अवलब करना ही पड़ेगा। अब तक इस सबध में मैंने कोई विचार नही किया है। इसके लिए न तो मेरे पास कोई योजनाए है, न पहले से ऐसी योजनाए बनाकर

तैयार रखने की मेरी आदत ही है । मेरे लिए अगला कदम ही काफी है, और वह है वायसराय से भेंट करना । यदि उन्हे कायल करने मे मै असमर्थ रहा, तो हो सकता है कि नमक-सत्याग्रह की तरह का कोई आन्दोलन हम आरभ कर दें । मै आहिस्ता कदम चलना चाहता हू । सकट मे फसे हुए को और अधिक सकट मे ढकेलने मे कोई मजा नही ।"

सुनकर मैं दग रह गया । जब आन्दोलन छेडने की बात चल रही हो तब भी 'सकटापन्न' प्रतिपक्षी के लिए इतनी चिंता ? लेकिन यही तो गाधी जी की विशेषता है !

क्षणभर मैं चुप रहा । अवश्य ही मन मेरा शात हो नहीं रहा था । सोचता था, क्या वायसराय गाधी जी की इस मनोभूमिका की उचित कद्र कर सकेंगे ? अगस्त-प्रस्ताव का यह कर्ता-धर्ता वायसराय से मिलने, आहिस्ता कदम चलने एवं सकट में फसे हुए को अधिक सक० मे न ढकेलने की बाते कर रहा था, जब कि दिल्ली मे सरकार सभवत सारे नेताओ को बदिस्थ करने की शीघ्रता के साथ तैयारिया कर रही थी ।

अपनी मनोभूमिका के प्रति इस तरह गलत दृष्टिकोण रखा जा रहा है इसकी गाधी जी को कोई कल्पना नही थी ऐसा मेरा ख्याल है ।

"क्या आप अपने उद्दिष्टो से वायसराय को भली भाति अवगत न करावेगे ? अन्यथा वस्तुस्थिति से पूर्णतया परिचित न होने के कारण जल्दबाजी में सरकार गलत कदम भी उठा सकती है ।"

"ऐसी उम्मीद तो नही है । आखिर वे मुझे जानते ही हैं । मै भी उन्हे जानता हू । अत मुझसे मिले बिना वे कोई भी कदम नही उठावेंगे । हर हालत में बहुधा कल ही उन्हे लिखूगा । उसकी रूपरेखा बना लेने में ही मेरा मन उलझा हुआ है । अभी उचित शब्दप्रयोग की कमी है । प्रस्ताव पास हो जाने के बाद इसका विचार करने के लिए मुझे काफी वक्त मिल जायगा ।"

मुझे विश्वास तो हुआ, किंतु केवल तात्कालिक ।

प्रस्ताव स्वीकृत हुआ । पर मैं पूरी तौर से निश्चित हो न सका । बेचैनी के साथ मैं बिस्तर पर लेट गया । अर्धरात्रि तक सारे प्रमुख नेता गिरफ्तार कर लिये जायगे इस आशका से मैं अस्वस्थ हो गया । क्योकि इसके पूर्व कई बार, बल्कि हर बार, गाधी जी अर्ध रात्रि में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे ।

यदि गाधी जी गिरफ्तार कर लिये गये तो क्या होगा ? पहले भी कई बार वे जेल-यात्राय कर चुके है। कि तु उस समय उनकी उम्र तिहत्तर वर्ष की न थी। अब वे सर्वथा स्वस्थ होने पर भी पहले की तरह सशक्त नही रहे है। उनकी गिरफ्तारी के दुष्परिणाम भारत और इग्लैड दोनो को भोगने पडेंगे। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप दोनो के बीच और अधिक कटुता फैलेगी एव नई नई उलझने पैदा होगी। मै भगवान से प्रार्थना करने लगा कि गाधी-वायसराय मुलाकात का सुयोग लावे।

फिर भी मेरी आशका बनी रही। कोई दुर्घटना तो नही हुई है यह देखने के लिए ग्यारह बजे मै उठा। सर्वत्र शाति विराजमान थी। पुलिस भी नजर न आई। पुन तडके दो बजे मैंने अपनी खिडकी से झाक कर देखा। फिर भी वही शाति। चार बजे पुन उठा। किंतु कोई परिवर्तन नजर न आया। मैंने सतोष की सास ली। सोचने लगा कि जब चार बजे तक पुलिस नही आई तब इसका यही अर्थ होता है कि सकट टल गया है। अब दोनो की मुलाकात हो सकेगी और समस्या के निराकरण का कोई न कोई उपाय जरूर ही निकल आवेगा।

पूरी तौर से नि शक होकर मै पुन बिस्तर पर लेट गया। लेकिन एक झपकी भी ले न पाया था कि इतने में मुझे जगाया गया। बापू को गिरफ्तार कर लेने के लिए पुलिस आ धमकी थी। देखकर मै दग रह गया। यह बापू की गिरफ्तारी नही थी, यह गिरफ्तारी भारतवर्ष की आत्मा की थी। मैंने मन में सोचा, बाकी लोग तो कभी के गिरफ्तार किये जा चुके होगे। मैंने ब्रिटिश राष्ट्र की उसकी मूर्खता के लिए, वायसराय की उसकी उद्दडता के लिए एव भारतीय सलाहकारो की उनकी आलस्यपूर्ण उदासीनता के लिए तीव्र भर्त्सना की। विपण्ण चित्त से मै गाधी जी के कमरे में गया।

सरकार का यह कपटपूर्ण दाव गाधी जी के लिए सर्वथा अनपेक्षित था। अ भा काग्रेस कमेटी की बैठक में भाषण करते हुए उन्होने वायसराय के साथ के अपने स्नेहसबधो पर प्रकाश डाला था। और यह भी घोषित किया था कि वे वायसराय से मिलने की कोशिश करेगे। इस सपूर्ण पूर्वेतिहास को मद्देनजर रखने पर वायसराय द्वारा की गई सामूहिक गिरफ्तारियो का यही अर्थ लगाना पडता है कि सरकार समस्त प्रतिकार और आलोचनाओ को दबा देने पर तुली हुई थी।

काग्रेस द्वारा उठाया गया कदम सही है या गलत इसका सरकार के सामने कोई सवाल ही न था। वह तो युद्धकार्य में वाधा पहुचानेवाले एक वर्ग को अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी। और यही उसने किया भी।

गिरफ्तारी की खबर का गाधी जी ने धीरगभीर वृत्ति से स्वागत किया। "हमें कब चलना होगा ?" पुलिस कमिश्नर से, जो उन्हे गिरफ्तार करने आया था और इस कटु कर्तव्य का भार अपने ऊपर आ पडने के कारण चचल दिखाई दे रहा था, गाधी जी ने पूछा।

"छ बजे।"

"ओह तव तो काफी वक्त है।"

गाधी जी ने नित्य के नियमानुसार गर्म जल और शहद प्राशन किया, प्रार्थना की, अपना वास का पतला डडा व असबाव लिया, और महादेव भाई के साथ कमरे के वाहर निकल आये।

"आशा है मैं समय का पावद हू," मुस्कराते हुए गाधी जी बोले।

"अवश्य!" कमिश्नर ने कहा।

उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति का अभ्यतर सिहर उठा। सीढियो के पास बिडला-भवन की महिलाओ न उनके ललाट पर शुभसूचक कुकुम तिलक लगाया। गाधी जी बिदा हुए!

आगा खा महल की बात है। एक नाटा, अत्यत दुर्बल, क्षीण काय, साफ हजामत किया हुआ व्यक्ति गरम चद्दर ओढकर जैसे-तैसे विस्तर पर लेटा हुआ था। यह गाधी जी थे। उनके उपवास का आज उन्नीसवा दिन था। उपवास की समाप्ति के लिए अभी और दो दिन बाकी थे। किंतु अब किसी को भी उनके स्वास्थ्य के सबध में चिंता न थी।

उपवास के लगभग दसवे दिन ही उनकी हालत बहुत चिंताजनक बन गई। इससे सारे देश के वातावरण में विषण्णता छा गई। नैराश्य, उत्तेजना एव रोष ने इसका साथ दिया। प्रत्येक दल का नेता, और निर्दल नेता भी, दिल्ली दौड गया। सब की सभा हुई। गाधी जी की रिहाई की माग करते हुए भाषण दिये गये। किन्तु इस सबध में वायसराय से मिलने की किसी की भी इच्छा नही थी। सबने उसको हृदयहीन, कल्पनाशून्य और निर्बुद्ध व्यक्ति मान कर उसका

नाम तक लेना छोड दिया था। गाधी जी की रिहाई की माग अनसुनी कर दी गई। शासको को डिगाने मे यह माग असमर्थ रही।

शय्याग्रस्त गाधी जी को उनके निकटस्थ चन्द व्यक्ति घेरे बैठे थे। वे बहुत ही दुर्बल हो गये थे और केवल पास से ही उनकी आवाज सुनी जा सकती थी। किंतु सदा की भाति वे प्रसन्नचित्त और हसमुख थे। मैंने झुककर उनकी चरण-धूली ली। उन्होने आशीर्वाद दिये।

मैंने उनके स्वास्थ्य के सबध मे पूछताछ की। बोले, "अजी, बिल्कुल चगा हू।" किंतु उन्हें स्वत के स्वास्थ्य की अपेक्षा दूसरो के स्वास्थ्य की अधिक चिंता थी। मेरे परिवार के अमुक व्यक्ति का स्वास्थ्य कैसा है, कौन कहा है आदि सब कुछ उन्होने पूछ लिया। यह शिष्टाचार के तौर पर की गई साधारण पूछताछ न थी। वे सारी बाते विस्तार के साथ जानना चाहते थे। अपने अस्वास्थ्य की उन्हे कतई पर्वाह न थी। बहुत ही धीमी आवाज में बोल पाने पर भी राजनीति छोडकर शेष सब बातो मे वे खूब रुचि ले रहे थे।

सदैव की भाति उनका दृष्टिकोण विशाल था। सुदृढ नीव पर आधारित दीर्घकालीन योजनापर उनकी नजर लगी हुई थी। प्रति दिन की क्षुद्र घटनाए उनके लिए कोई महत्व न रखती थी। उनके मतानुसार सरल और दीर्घ मार्ग ही निकटतम मार्ग था।

"स्वत के विचारो और कार्यों द्वारा प्रत्येक मानव-हृदय में मैत्रीभाव प्रतिध्वनित करनेवाले आप जैसे अहिंसा के अग्रदूत के प्रति आपके विरोधियो के मन में भय, सदेह व विद्वेष का प्रादुर्भाव होना क्या विस्मयप्रद प्रतीत नही होता? क्या आपके सिद्धान्तो में कही त्रुटिया रह गई है, या उनका प्रयोगशास्त्र ही दोषपूर्ण है?" मैंने जिज्ञासा प्रकट की।

"मैं अविश्वसनीय बन गया हू यह क्या मैं जानता नहीं? किन्तु फिर भी मेरे सिद्धान्तों में कोई दोष नही है। वह निर्दोष है। और यह तो जरूरी है ही नहीं कि अहिंसा का फल तत्काल मिले। वह तो कालान्तर में ही मिलेगा। किंतु उसका मिलना सुनिश्चित है। इसके लिए आप व्यग्र न हों। वे सभी लोग, जो सप्रति मेरे शत्रु कहे जाते है, मेरी मृत्यु के पूर्व मेरे अभिन्न-हृदय मित्र बन जायगे। और यदि मेरे जीवनकाल में ऐसा सभव न हो सका तो कम से कम मेरी मृत्यु के बाद तो यह होकर ही रहेगा। किंतु स्मरण रहे कि, यदि मेरी मृत्यु के बाद

भी मेरे ये विरोधक मुझे अपना शत्रु समझते रहे तो, आप जान लेना कि सच्चे अर्थ में अहिंसक बनने में मै असमर्थ रहा। और यह भी समझ लेना कि मै किसी भ्रांतिपूर्ण सृष्टि में विचरता रहा। अहिंसा कभी असफल हो नही सकती। इसमें दोष सिद्धान्तों का नही, अपितु साधक का ही है। समय सब कुछ सिद्ध कर देगा। अत: हम अपने विरोधकों के प्रति भी मन में किसी प्रकार का दुर्भाव आने न दें।"

द्वेषी से द्वेष न किया जाय।

१९४५ ई० का वर्ष। गांधी जी पूना पधारे हुए थे।

सवा सौ साल तक जिंदा रहने की बात वे कर रहे थे। इसका यह अर्थ तो नही कि इतनी लंबी उम्र पाने के विषय में उन्हें पक्का विश्वास हो गया था।

"मै सवा सौ साल तक जिंदा रहना चाहता हू। किसी समय इस संबंध मे मैं उदासीन था। मौत कब आकर मेरा द्वार खटखटायगी इसकी बाबत आज भी मैं बिल्कुल बेफिक्र हूं। किंतु अब दीर्घजीवी बनने,—यदि संभव हो तो १२५ वर्ष तक जीवित रहने की दिशा मे मै सर्वथा प्रयत्नशील हूं। और मन:पूर्वक प्रयत्नशील हूं। आजकल मै शक्तिसंचय कर रहा हूं। नीद भी पूरी लेता हू। पहले की अपेक्षा अधिक नियमित भी हो गया हू। नियमपूर्वक मालिश कराता हू। काम भी कम कर दिया है। कृति की अपेक्षा विचार अधिक सामर्थ्यशील होते है। इसीलिए जब मै शांत रहता हूं, या बाह्यतः निष्क्रिय दिखाई पडता हूं, तब भी कर्ममय तो होता ही हूं। किंतु सवा सौ साल तक मै तभी जीवित रह सकता हूं जब कि मै अनासक्त हो जाऊं। अन्यथा नही। और यदि इसके पूर्व ही मेरी मृत्यु हुई तो यह मान लेना चाहिये कि संपूर्ण अनासक्ति की प्राप्ति में मै असमर्थ रहा।"

"किंतु क्या आप अपने में अनासक्ति की वृद्धि अनुभव करते हैं ?"

"जरूर ! शारीरिक और मानसिक दोनो दृष्टियों से मै इसे अनुभव करता हूं। जो भी हो, यदि मुझसे सवा सौ साल तक सेवा लेने की ईश्वर की इच्छा रही तो वह मुझे अवश्य ही आयुर्बल देगा।"

ईश्वर करे वे सवा सौ साल तक जीवित रहे। प्रभु जब तक उन्हे हमारे बीच रक्खेंगे तब तक उनकी जरूरत तो हमें है ही।

पिलानी,
३-२-१९४५

मेरे व्यक्तिगत संस्मरण

फेन्नर ब्राकवे

यह एक विचित्र बात है कि गाधी जी से मेरा प्रथम परिचय आर्थिक व्यवहार के कारण हुआ। भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की ब्रिटिश शाखा का १९२१ ई० में विसर्जन होने के पूर्व, उसके अतिम मत्री के नाते डा सैयद हुसेन के साथ मैं काम कर रहा था। हमें अपना वेतन मिलने में विलव होने के कारण मैंने इस सबध में गाधी जी को लिखा। लौटती डाक से मुझे उनकी ओर से एक चेक मिला। चेकपर उन्हीके हस्ताक्षर देखकर मैं चकित् हुआ। चेक विषयक व्यवहार मे—काग्रेस से सबधित चेक विषयक व्यवहार से भी—उन्हे कुछ काम पडता होगा इसकी मुझे रत्तिमात्र कल्पना नहीं थी।

की। मैंने उन्हें बतलाया कि दवा सेवन करने के बाद मुझे ऐसा लगता था कि मेरा शरीर मुझसे दूर भागा जा रहा है और मैं उसकी ओर देख रहा हूं। साथ ही बिस्तर पर छोड़ा हुआ मेरा शरीर बहुत ही विद्रोही बनकर ऐसी भावनाएं व इच्छाएं व्यक्त कर रहा था कि जो स्वयं मेरे लिए सर्वथा अगम्य थी। नींद खुलने पर मैंने देखा कि मैं एक अस्पताल में हूं जहां एक डाक्टर, एक नौकर और दो परिचारिकाएं मुझे पकडकर बिस्तर पर सुलाने की चेष्टा कर रहे हैं।

गाधी जी की बात पर से मुझे ऐसा जान पड़ा कि वे दवाओं के प्रयोग के विरुद्ध हैं और उनका ऐसा विश्वास है कि निद्रानाश तथा वेदनाओ पर विजय पाने के लिए मानसिक व आध्यात्मिक शक्तियो का प्रयोग पर्याप्त है। फिर भी इस विषयक मेरे अनुभव जानने के लिए वे उत्सुक थे। क्योंकि एक ही व्यक्ति के भीतर की परस्पर विरोधी वृत्तिया किस प्रकार एक दूसरे से अलग की जा सकती हैं यह बात वे मुझे दिखा देना चाहते थे।

इसके बाद गाधी जी से मेरी मुलाकात १९३१ ई० में, द्वितीय गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित होने के लिए उनके लंदन पधारने पर, डोवर में एक जहाज पर हुई। उनके उस समय के आगमन का दृश्य आज भी मेरे मनःचक्षुओं के सामने स्पष्ट रूप से झलक रहा है। सुंदर वस्त्रधारी यूरोपियनों एवं जहाज के चुस्त वर्दीधारी अधिकारियों द्वारा वे घिरे हुए थे। फिर भी घुटनो तक की धोती पहनकर ऊपर से शाल ओढा हुआ यह कृशकाय मानव उन सबसे बढकर प्रभावशाली प्रतीत हो रहा था। उनके होठों पर मुसकराहट थी, और उनके चेहरे से स्नेह व सद्भाव टपक रहा था। उस वातावरण में गाधी जी की आध्यात्मिक शक्ति का प्रभाव कोई भी अवश्य ही अनुभव कर सकता था।

हम मोटर से लंदन गये। 'फ्रेण्ड्स् हाउस' में एकत्रित बारह सौ लोगों ने उनका भव्य स्वागत किया। मानव-मानव के बीच न केवल स्नेहसबध की, अपितु सपूर्ण तादात्म्य की कितनी अधिक आवश्यकता है यह बात बहुत ही सरल शब्दों में उन्होंने कही। वे बोले कि तादात्म्य की इस भावना के निर्माण के साथ ही दूसरों को हानि पहुंचाने की हमारे भीतर की हिंसात्मक प्रवृत्ति का अंत हो जायगा। उनके भाषण में वक्तृता न होने पर भी उनके शब्द श्रोताओं को प्रभावित करने की प्रचुर शक्ति रखते थे।

इसी सभा के अवसर पर की एक अन्य घटना मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। मेरी छोटी लडकी ने कुछ फूल उन्हे भेटस्वरूप दिये। उन्होने उन फूलो में अपना मुह गड-सा दिया, उन्हे सधा और अपना हाथ उसके मस्तिष्क पर रखखा। तव जिस सहज भक्तिभाव से उनकी ओर देखकर वह मुसकराई उससे ऐसा लगा कि उसके भीतर अपने प्रति सपूर्ण आत्मीयता का भाव पैदा करने में गाधी जी कितने सफल हुए है! मैंने सोचा कि जो व्यक्ति इस प्रकार एक शिशु के हृदय में अनायास प्रवेश कर सकता है उसमे अवश्य ही ऐसी सज्जनता होगी जैसी कि वहुत कम लोगो में दिखाई पडती है।

गाधी जी के साथ मेरी आखिरी मुलाकात द्वितीय गोलमेज परिषद् के अवसर पर ही हुई। मैंने उनसे अपनी एक स्त्री मित्र क्लेअर विन्स्टन के लिए, उनकी तस्वीर उतारने की अनुमति ले ली थी। तस्वीर उतारने का उसका कैनवास का बोर्ड उधर कमरे के एक कोने में तैयार था, और इधर गाधी जी भी चर्खा चलाने के साथ साथ दर्शनार्थियो से बाते करने के लिए जमीन पर बैठ गये। दर्शनार्थियो में धुरधर राजनीतिज्ञ, लेखक और विचारक थे। लेकिन गाधी जी ने उन सबका समान हार्दिक रूप से स्वागत कर चर्खा चलाते हुए अपने सीधेसादे किंतु मौलिक ढग से उनसे वात की। वैसे मैंने उनके कई वार दर्शन किये, किंतु युद्ध निवारक अतर्राष्ट्रीय सघ के अध्यक्ष ग्नहेम ब्राउन के साथ मेरा उनके यहा जाना मुझे विशेष रूप से याद है। ससार के प्राय सभी देशो में शांति के जो समर्थक हो गये, उनमें से हजारो ने प्रथम महायुद्ध के समय हिंसक युद्ध में सम्मिलित होने की अपेक्षा कारावास का, इतना ही नही वल्कि मृत्यु का भी, किस प्रकार स्वागत किया यह जानने के लिए गाधी जी वहुत ही उत्सुक दिखाई पडे। बोले, "भारतीय स्वाधीनता सग्राम की जिम्मेदारियो से मुक्त होने पर ससार के अहिंसा-आदोलन में भाग लेने की मेरी हार्दिक अभिलाषा है।"

लदन,
१६-३-१९४८

शिमला का वार्तालाप

जार्ज कैटलिन

यहां महात्माजी के जिस जीवन-प्रसग को मैने चुना है वह मानव-मात्र के प्रति उनकी सदैव की आत्मीयता का कोई विशेष द्योतक तो नही माना जा सकता। फिर भी, उनके साथ की मेरी पाचवी और अतिम मुलाकात के मौके पर, बातचीत के लिए अधिक से अधिक वक्त मिले इस उद्देश्य से, अपने स्नान के समय भी उन्होने मेरा जो स्वागत किया उसकी मै कद्र करता हू। उनके उपदेश के सार-स्वरूप शिमला का वह वार्तालाप, जो हमारी चौथी मुलाकात के वक्त हुआ था, मेरी राय मे बहुत ही महत्वपूर्ण है। और निस्सदेह आश्रम के कागजातो में भी इसकी एक प्रतिलिपि होगी। वही 'महात्मा गाधी के मार्ग पर' नामक अपनी पुस्तक से मै यहा उद्धृत कर रहा हू।

१९४६ ई० मे शिमला के एक शिखर पर स्थित एक बगले की छत पर से, जो हिमालयाभिमुख था, मैंने महात्माजी को देखा। वहा और दिल्ली में मै उनके प्रार्थना-प्रवचनो मे भी उपस्थित रह चुका था। मैने उस श्वेत वस्त्रधारी राष्ट्रपिता से, जब कि मै, राजकुमारी अमृतकौर और एगाथा हैरिसन उनके साथ छतपर टहल रहे थे, कई प्रश्न पूछे।

"मानवमात्र के जीवन से सबधित विषयो पर उनके क्या विचार है? क्या प्रभावशाली राष्ट्र-सघ का सगठन सभव है ? क्या इसके लिए विश्व-पुलिस दल की आवश्यकता पडेगी ?" उस समय भारत विषयक वैधानिक प्रश्नो की चर्चा छेडकर मै उन्हे तग करना नही चाहता था। क्योकि ऐसे प्रश्नो पर मै पहले ही मौलाना आजाद, शरच्चन्द्र बोस एव जवाहरलाल नेहरू से चर्चा कर चुका था। अत मै गाधी जी से, बिना किसी आपत्ति के, केवल उन्ही प्रश्नोपर चर्चा कर सकता था, जो कि समस्त मानव-जाति के हित की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे, और तद्विषयक उनके कुछ विचार सुप्रसिद्ध होने पर भी जिनका पूर्णतया स्पष्टीकरण नही हो पाया था।

उनसे अविलब, निश्चित और नि शक उत्तर मिला, "हम सदैव अपने सिद्धातो पर दृढ रहें। अहिंसा का सिद्धात ही सत्य है। आक्रमण की व्याख्या

करनेवाले हम कौन होते है ?" यह विचार मेरे हृदय को बरबस छू गया। क्या ब्रिटेन और फ्रान्स द्वारा जर्मनी के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की जाने पर भी जर्मनी को आक्रमक राष्ट्र कहा जा सकता है ? अवश्य ही उसके द्वारा पोलेड पर चढाई की जाने पर उसे ऐसा कहा जा सकता था। क्या यह उकसाया हुआ युद्ध है ? सोवियट रूस आक्रमक है या नही ? 'आक्रमण' की व्याख्या किस आधार पर निर्धारित की जा सकती है ? क्या निष्पक्ष निर्णय को मानने से इन्कार करना आक्रमण नही है ?

बातचीत जारी रखते हुए मैंने पूछा, "यदि निष्पक्ष न्यायालय का हम निर्माण कर सके तो कैसा रहेगा ? जो कोई इस न्यायालय द्वारा किया जानेवाला फैसला मानने मे इन्कार करेगा उसे आक्रमक समझा जाय।"

उत्तर मिला, "लोगो को अहिसा की दीक्षा तभी दी जा सकेगी जब शक्ति का निष्पक्ष रीति से प्रयोग करने योग्य सस्कारिता उनमे आ जायगी।"

उनके इस कथन की सत्यता के सबध मे मेरे मन में सदेह पैदा हुआ। अधिकाश लोगो को वह लागू होता है। किंतु यदि मनुष्यजाति का इतना सुधार हम कर सके कि जिससे निष्पक्ष न्यायालय के लिए आवश्यक चन्द लोग उपलब्ध हो जाय, तो क्या इसका यह अर्थ थोड़े ही होता है कि समस्त मानवजाति को,—गुनहगार और आक्रमक वृत्ति के मनुष्यों को भी, अहिसा की दीक्षा हम दे सकेगे ? क्या यह सच है ?

तब अपनी बातचीत का ढग सहसा बदलते हुए, जिससे कि महात्मा जी के सपर्क मे आनेवाले पाश्चात्य राजनीतिज्ञ चिढ जाते हैं, वे बोले, "यदि वास्तव में हम ऐसे निष्पक्ष न्यायालय का निर्माण कर सके तो फिर विश्व-पुलिसदल का भी अवश्य ही स्वागत करेंगे।"

इससे पूर्व के मेरे एक पत्र के जवाब मे, जिसमें मैंने यह पूछा था कि पाश्चात्य व्यक्ति गाधी जी के मार्ग पर किस तरह चल सकता है, राजकुमारी ने निम्न पक्तिया लिखी थी। "उन्होने अपनी सदिच्छाए आप तक पहुचाने के लिए मुझे कहा है। उनका कहना है कि असत्य के विरुद्ध लडनेवाला सच्चा सिपाही अपने निकटस्थ असत्य का ही सामना करता है। इसकी शुरूआत कहा से की जाय यह सवाल उसके सामने कभी पैदा ही नही होता।"

गाधी जी के सहवास मे मैंने यह भी अनुभव किया कि ईसा मसीह के गिरि-प्रवचन और भगवद्गीता का समन्वय करने एव उसे अपने व्यावहारिक और राजनीतिक जीवन में उतारने के लिए वे प्रयत्नशील हे। सतो की सजीव और गतिशील करुणा एव अतिम मूल्यो के प्रति अपने कर्तव्यपालन के साथ ही लौकिक व्यवहार को निभानेवाले न्यायाधीश की न्यायबुद्धि इन दोनों का समन्वय करने के परपरागत कार्य को ही उन्होने भी उठा लिया था। इस कार्य को किस प्रकार सपन्न किया जाय यही वर्तमान काल की गहनतम समस्या है। इस समस्या के समाधान मे गाधीजी को जो सफलता मिली है उस पर उपरोक्त वार्तालाप से कुछ प्रकाश तो पड ही जायगा। १९४६ ई० और १९४७ ई० की मेरी भारत-यात्राओ का मुख्य उद्देश्य प्रस्तुत जानकारी प्राप्त करने का ही रहा। साथ ही, भारत की स्वाधीनता और स्वातन्त्र्यविषयक एशिया-घोषणापत्र के लिए जिनके सहयोग से कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था उनको भी मै अभिवादन करना चाहता था। स्मरण रहे कि स्वातन्त्र्यविषयक यह प्रेरणा उस महान् आत्मा के सिद्धातो द्वारा प्राप्त हुई है जिसने आत्मतेज से हिंदू और ईसाई धर्म में समान रूप से जागृति पैदा की है।

लदन,
१४-४-१९४८.

महात्मा गांधी के संस्मरण

सी. एम. डोक

मैंने जब पहलेपहल गाधी जी के दर्शन किये उस समय मै पद्रह वर्ष का लडका था। १९०८ ई० की यह बात है। तब लोग उन्हे मिस्टर गाधी ही सबोधा करते थे। उन दिनो, जब सविनय अवज्ञा-आदोलन पूरे जोश के साथ चल रहा था, वे प्राय जोहान्सबर्ग के स्मिट स्ट्रीट पर स्थित हमारे घर आया करते थे। तब का एक प्रसग मुझे भली भाति याद है। मै अभी अभी पाठशाला से घर लौटा था। मुझे समझाकर कहा गया, "आहिस्ता से भीतर आना, क्योकि शहर मे हुए हमले मे मि० गाधी को सख्त चोट आने से वे अपने घर लाये गये है।" दुतल्ले पर के बरामदे के बगलवाले मेरे छोटे से कमरे म बहुत ही अस्वस्थ अवस्था मे वे लेटे हुए थे। जब तक वे स्वस्थ नही हो जाते तब तक उनके लिए अपना कमरा खाली करने में मुझे बडा गर्व अनुभव हुआ। सप्ताह भर से भी अधिक दिनो तक उनके स्वास्थ्य की पूछताछ करनेवालो का—विशेष रूप से भारतीयो का—हमारे घर पर ताता लगा रहा। रसोईघर मे तो ट्रान्सवाल, नैटाल तथा लोरेंस मार्क्स के सभी स्थानो से उपहार-स्वरूप आये हुए उत्कृष्ट फलो का ढेर लग गया था। और इसके विपरीत हमारे पडोसियो ने, जो इतने दिनोतक हमारे साथ मैत्रीभाव से रहते थे, एक 'काले आदमी' को हमने अपने घर में आश्रय दिया है यह ज्ञात होते ही हमसे सबध विच्छेद कर लिया था। इस प्रकार बहुत ही गडबडी के दिन रहे वे।

गाधी जी की उस समय की हालत का दृश्य आज भी मेरी आखो के सामने स्पष्ट झलक रहा है। उनके अगल-बगल सहारे के लिए तकिये रखे हुए थे, घाव लगा हुआ उनका चेहरा पट्टियो से बधा था और बोला न जा सकने के कारण दर्शनार्थियो के प्रश्नो के उत्तर वे पास की स्लेट पर लिख रहे थे। किंतु उनसे बोला न जाने पर भी वे भली प्रकार सुन सकते हैं इस बात को न समझकर कई दर्शनार्थी अपने प्रश्न भी स्लेटपर ही लिखते थे। यह सारा दृश्य मूक अभिनय का स्मरण करा देनेवाला था।

एक रात को उन्हे बहुत ही क्षीणता मालूम होने लगी। तब हम सबने उनके शयनकक्ष के दरवाजे के बाहर कुछ सर्वप्रसिद्ध ईसाई भजन सामूहिक

रूप से गाये। 'Lead Kindly Light' उनमे से एक था और उनके अनुरोध से ही गाया गया था। वह सुनकर, मालूम पडता था, उन्हे बहुत ही सतोष हुआ।

उनके घाव भरने मे विलब लग रहा था, जिससे वे अधीर हो उठे। मेरे पिता जी से वे बोले कि यदि उनके चेहरे पर गीली मिट्टी की पट्टी रखी गई तो उससे निश्चित रूप से लाभ पहुचेगा। चुनाँचे उसी घडी कुदाली और डोल देकर किसी दूरके व ऊँचे स्थान की साफ मिट्टी लाने के लिए मुझे भेजा गया। जिस खुले स्थान से यह मिट्टी मैं ले आया था उस स्थान पर अब यहूदियो का प्रमुख धर्ममन्दिर बन गया है। हमने गीली मिट्टी की पट्टिया तैयार की और मेरी माने उनके घावो पर वे बाँधी। हमारे द्वारा किये गये इस उपचार को देखकर डाक्टर झुझला गया और उसने रोगी के प्रति अपनी जिम्मेदारी से हट जाने की हमें धमकी भी दी। किंतु इसके दो ही दिन बाद मि॰ गाधी बरामदे में रखी गई आरामकुर्सी पर बैठकर फल खाने लगे। उक्त कुर्सी आज भी हमारे घर में रखी हुई है, और उसे हम 'महात्मा गाधी की कुर्सी' कहते है।

दूसरा दृश्य, जो मुझे याद आता है, वह है हमारे इस सुहृद का पुलिस के साथ टीला चढकर फोर्ट (जोहान्सबर्ग का जेलखाना) की ओर जाते समय का। उन्हे हथकडियां नही लगाई गई थी—क्योकि पुलिस का उनमे इतना अधिक विश्वास था कि हथकडिया लगाकर उनको अपमानित करने की उसे जरूरत ही मालूम न हुई। मैं और मेरी बहन अस्पताल के पश्चिम से जानेवाले रास्ते की दूसरी बाजू से उन्ही के समानातर चल रहे थे। हमने बिना पुलिसवाले को मालूम कराये उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने की कोशिश की। किंतु वे नजर सीधी रखकर चल रहे थे। जेल के फाटकपर पहुंचने पर ही वे मुड़े और हमें देखकर उन्होंने हाथ हिलाया। और वे पुनः एक बार जेल के सीखचों में बद कर दिये गये। मन ही मन हमने उनकी पूजा की। हमारी दृष्टि मे वे परमोच्च आत्मत्याग के आदर्शस्वरूप थे।

इसके बाद मैंने उन्हे भीड से भरे बैप्टिस्ट चर्च में देखा। उस समय यह गिरजाघर जोहान्सबर्ग के प्लीन स्ट्रीट में था। १५ अगस्त १९१३ को रोडेसिया में स्वर्गवासी हुए मेरे पिता जी के लिए आयोजित स्मृति-प्रार्थना मे सम्मिलित

होने के हेतु वे डर्बन से विशेष रूप से पधारे थे। प्रवासी भारतीयो के आदोलन मे स्वर्गीय मित्र द्वारा प्रदत्त सहयोग की उन्होने उक्त प्रसग पर बहुत ही भावपूर्ण शब्दो में प्रशसा की। अपने मित्र के प्रति अर्पित उनकी इस श्रद्धाजलि से उपस्थित सभी लोगो को ऐसा लगा कि समान ध्येय से प्रेरित अत करण के भीतर से ही ये गौरवपूर्ण उद्गार निकले है। गाधी जी ने इतनाही कहा, "मि० डोक का जीवन सर्वस्व-समर्पण का था। उन्होने अपने निर्माता के चरणो में सर्वस्व अर्पित किया था। अपने इसी निर्माता की सेवा के लिए अधिक श्रेष्ठ और ऐश्वर्यसपन्न देहरूप मे उनका पुनरुत्थान होगा।" उस दिन की स्मृति-प्रार्थना का सार-सर्वस्व मि० गाधी की इस श्रद्धाजलि मे ही समाया हुआ था।

ता १३ दिसबर १९२१ को महात्मा गाधी ने भारत से जो एक पत्र मेरे नाम इग्लैंड भेजा था उसमे का एक वाक्य यहा विशेष रूप से उद्धृत करने योग्य है। महीनो व्याधिग्रस्त रहने के बाद मैंने उन्हे जो पत्र लिखा था उसके उत्तर में वह आया था। लिखा था, "मै तुमको विश्वास दिलाता हू कि सिवाय प्रार्थना के मै कुछ भी नही करता।" समस्त राजनीतिक उलझनो के बीच भी महात्मा गाधी जो श्रद्धामय प्रार्थना-जीवन बिताते है उसकी ओर लोगों का ध्यान प्राय जाता ही नही। धार्मिक मामलो में उनके विचार हमारे विचारो से कभी मेल न खाते थे। १९१३ ई० के अपने एक भाषण मे खुद उन्होंने ही यह बात स्वीकार की है। वे कहते है, "मै, एक हिंदू होने के नाते, ऐसा मानता हू कि हिंदू धर्म के प्रकाश में और उसी की सहायता से की गई मीमांसा के द्वारा ही ईसाई धर्म का पूर्ण आकलन हो सकता है। किंतु इससे मि० डोक का समाधान न होता था, और स्वय उन्होंने सत्य को जिस रूप में ग्रहण किया था उसी रूप में वह मेरे गले उतारने का एक भी मौका वे हाथ से जाने न देते थे। फिर भी इसी सत्यने उन्हे और उनके आत्मीयों को अपार शांति प्रदान की है।"

अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद, ता. २६ जुलाई १९४४ को, मेरे नाम भेजे गये एक अन्य पत्र में महात्मा गाधी लिखते है, "आपका स्नेहपूर्ण पत्र मुझे कैदी की हालत में मिला। पत्र तो मैंने किसी को भी लिखे नहीं। बा के शरीर का अग्निसंस्कार हो जाने पर भी वह सदा मेरे सन्निध है। हृदय और बुद्धि द्वारा यह सब समझ पाने पर भी अपने प्रति व्यक्त की गई चिरस्थायी संवेदना

"Lead Kindly Light" प्रार्थना-गीत तुम्हारे कठ से आज भी सुनना मुझे कितना अधिक भाता ! उक्त प्रसग का तुम्हे तो स्मरण न होगा, किंतु मुझे है। और वह इतना स्पष्ट है कि यदि में चित्रकार होता तो उसे अवश्य ही चित्रित कर देता।" पश्चात् वे अपने दो कनिष्ठ पुत्रो, अर्थात् रामदास एव देवदास को, कुछ सु दर ईसाई गीत गाना सीखने के लिए, सप्ताह मे दो वार मेरे पास भेजते रहे। मैंने इसे अपने ऊपर उनका वडा भारी अनुग्रह माना। सुख की कितनी ही घड़िया हमने साथ साथ विताई हैं।

पुलटिस ने अपना असर दिखाया, और जव डाक्टर को यह वतलाया गया तव उसका चेहरा देखने ही लायक बना! उसे स्वीकार करना पडा कि इस इलाज से घावो को ज़रा भी धक्का नही लगा है, वल्कि वे अच्छी तरह भर रहे हैं।

इस इलाज को मैं कभी भूली नही। यहा मध्य अफ्रीका मे, विशेषत घटी रोग में, मैंने इसके प्रयोग किये, जो कई लोगो की प्राणरक्षा करने में सफल रहे।

व्याधिमुक्त होने के वाद से तो मि० गाधी हम वालको के लिए देवता-स्वरूप वन गये। उनके सुकुमार व्यक्तित्व के प्रशात प्रभाव से हम सब आश्चर्य-चकित् थे।

इसके लगभग सालभर वाद गाधी जी का निमत्रण स्वीकार कर हमने *जोहन्सवर्ग के समीपस्थ उनके टालस्टाय फार्म की यात्रा की। यहा हमने* मि० गाधी को अपने 'विशाल कुटुव' के साथ स्वत के विचारानुसार आदर्श-पूर्ण सादा जीवन विताते देखा। आतिथ्यशील गाधी जी ने उस दिन हमारा चिरस्मरणीय *स्वागत-सत्कार किया।*

किंतु तत्कालीन आदोलन से सवधित एकमात्र महत्वपूर्ण व्यक्ति के नाते स्वतः के लिए आयोजित स्वागत-समारोहो और दावतो के अवसर पर दिये गये उनके भाषण मुझे सर्वाधिक चित्ताकर्षक प्रतीत हुए। उनके निरहकारी व्यक्तित्व के कारण उनकी सदैव की सीधी-सादी, स्पष्ट और सुसवद्ध वक्तृत्व-शैली श्रोताओं के हृदय को वरवस छू जाती है। निर्भयता और न्यायपरता से पूर्ण अपनी इसी वाणी द्वारा उन्होंने कई लोगों से मैत्री जोड़ ली है।

पार्क स्टेशन पर लोगो द्वारा किये गये मि. गाधी के भव्य स्वागत-सम्मान के ऐसे अनेक प्रसग, जब कि वे आन्दोलन के काम से वाहरगाव जाकर वापस

इस प्रकार की उनकी रहन-सहन एव उसके परिणामस्वरूप लोगो पर पड़नेवाले उनके उदार, शात और प्रेमपूर्ण स्वभाव के असीम व अक्षय प्रभाव को मैं, उस समय एक अल्पवयस्क लड़की होने पर भी, भली भाति समझती थी। "जो लोग प्रभु, प्रभु कहकर केवल मेरे नाम की रट लगाते है, उन्हे स्वर्ग के साम्राज्य मे प्रवेश मिल नही सकता, वहा प्रवेश तो उन लोगो को ही मिलेगा जो मेरे स्वर्गस्थ पिता के आदेशानुसार आचरण करते हैं।" श्रद्धा और कर्म परस्पर के साथी हैं।

दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह-सग्राम चरम सीमा को पहुच चुकने पर जब एक दिन जोहन्सवर्ग की सडक मे गाधी जी पीटे गये तब सेवाशुश्रूषा के लिए अपने घर उनका स्वागत करने का सौभाग्य हमे प्राप्त हुआ। उस सकटपूर्ण समय में यदि गाधी जी अस्पताल मे रखे गये होते तो अपने इस नेता से सपर्क स्थापित करना लोगो के लिए कठिन हो जाता। चुनॉचे हमे ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। उस दिन प्रातःकाल मेरे पिता उनको एक इक्के में अपने साथ किस प्रकार घर लाये यह बात मुझे बहुत ही अच्छी तरह याद है। शीघ्र ही एक डाक्टर ने आकर आवश्यकता के अनुसार टाके लगाये और उन्हे यथासभव आराम पहुचाया गया। उनका सारा सर मरहमपट्टियों से बँधा होने के कारण वे बोल न सकते थे। किंतु उनकी आखें जो बोल रही थी! और बातचीत का काम एक स्लेट से चलाया गया।

"Lead Kindly Light" प्रार्थना-गीत तुम्हारे कठ से आज भी सुनना मुझे कितना अधिक भाता ! उक्त प्रसग का तुम्हे तो स्मरण न होगा, किंतु मुझे है। और वह इतना स्पष्ट है कि यदि मै चित्रकार होता तो उसे अवश्य ही चित्रित कर देता।" पश्चात् वे अपने दो कनिष्ठ पुत्रो, अर्थात् रामदास एव देवदास को, कुछ सु दर ईसाई गीत गाना सीखने के लिए, सप्ताह मे दो वार मेरे पास भेजते रहे। मैने इसे अपने ऊपर उनका वडा भारी अनुग्रह माना। सुख की कितनी ही घडिया हमने साथ साथ विताई है।

पुलटिस ने अपना असर दिखाया, और जव डाक्टर को यह वतलाया गया तव उसका चेहरा देखने ही लायक वना ! उसे स्वीकार करना पडा कि इस इलाज से घावो को जरा भी धक्का नही लगा है, वल्कि वे अच्छी तरह भर रहे है।

इस इलाज को मैं कभी भूली नही। यहा मध्य अफ्रीका मे, विशेषत घटी रोग में, मैंने इसके प्रयोग किये, जो कई लोगो की प्राणरक्षा करने मे सफल रहे।

व्याधिमुक्त होने के वाद से तो मि० गाधी हम वालको के लिए देवता-स्वरूप वन गये। उनके सुकुमार व्यक्तित्व के प्रशात प्रभाव से हम सव आश्चर्य-चकित् थे।

इसके लगभग सालभर वाद गाधी जी का निमत्रण स्वीकार कर हमने जोहन्सवर्ग के समीपस्थ उनके टालस्टाय फार्म की यात्रा की। यहा हमने मि० गाधी को अपने 'विशाल कुटुब' के साथ स्वत के विचारानुसार आदर्श-पूर्ण सादा जीवन विताते देखा। आतिथ्यशील गाधी जी ने उस दिन हमारा चिरस्मरणीय स्वागत-सत्कार किया।

किंतु तत्कालीन आदोलन से सवधित एकमात्र महत्वपूर्ण व्यक्ति के नाते स्वत' के लिए आयोजित स्वागत-समारोहो और दावतो के अवसर पर दिये गये उनके भापण मुझे सर्वाधिक चित्ताकर्षक प्रतीत हुए। उनके निरहकारी व्यक्तित्व के कारण उनकी सदैव की सीधी-सादी, स्पष्ट और सुसवद्ध वक्तृत्व-शैली श्रोताओ के हृदय को वरवस छू जाती है। निर्भयता और न्यायपरता स पूर्ण अपनी उसी वाणी द्वारा उन्होने कई लोगो से मैत्री जोड ली है।

पार्क स्टेशन पर लोगो द्वारा किये गये मि. गाधी के भव्य स्वागत-सम्मान के ऐसे अनेक प्रसग, जव कि वे आन्दोलन के काम से वाहरगाव जाकर वापस

लौटे थे या विशिष्ट व्यक्तियो के स्वागतार्थ वहा उपस्थित हुए थे, मुझे स्पष्ट रूप से याद है। इस प्रकार के प्रसगो पर फूलमालाओ की विशेष रूप से भरमार रहती थी, दर्शनार्थियो की भीड लग जाती थी और सारा वातावरण खिल उठता था। ऐसे थे वे ऐतिहासिक दिन और उनका केद्रस्थान बने हुए विनम्र-मूर्ति मि० गाधी !

न केवल एक ऐतिहासिक पुरुष के नाते, अपितु एक सुहृद के नाते, उनसे मेरा जो परिचय हुआ उसे मैं अपना सौभाग्य और सम्मान समझती हू।

काफुलाफुटा (उत्तरी रोडेशिया),
　　१२-५-१९४६.

पुनश्च

इस तीसरे पहर मेरे मन की आखो के सामने पुन. पुनः वह दृश्य नाच रहा है जो कि मैंने विभिन्न प्रसगो पर गाधी जी के गले में हार डाले जाते समय देखा था। वाक्रस्ट की जेल से, जहा वे सविनय अवज्ञा-आदोलन के दिनो मे कानून तोड़ कर नैटाल की सीमा लाघने के अपराध मे सजा काट रहे थे, उनके छूट जाने पर जोहन्सबर्ग स्टेशन उनके स्वागतार्थ उपस्थित भारतीय और यूरोपियन देशभक्तो की अपार भीड से खचाखच भर गया था। ज्योही उनकी ट्रेन प्लेटफार्म पर आकर रुकी और वे अपने डिब्बे से उतरे त्योही लोगो ने उन्हे फूलमालाओ से इस कदर लद दिया कि उनके लिए हिलनाडुलना तक मुश्किल हुआ, और रेल्वे के अधिकारीगण एव पुलिस के आदमी स्वागत का यह दृश्य मुह पसारकर देखते रह गये! वस्तुत. स्वतः की यह प्रसिद्धि उन्हे कतई पसद न थी। फिर भी प्लेटफार्म से लेकर स्टेशन के प्रवेशद्वार पर अपने लिए तैयार रखी गई मोटर के पास पहुचने तक उन्होने बहुत ही विनम्रता और सज्जनता के साथ इस सारे स्वागत-सम्मान का स्वीकार किया। सविनय अवज्ञा-आदोलन में भाग लेने के फलस्वरूप सजा आदि भुगतकर जब जब वे छूट आये है तब हर बार उनके स्वागतार्थ पार्क स्टेशन अपूर्व रूप से सजाया जाते मैंने देखा है।

इसी प्रकार उनके सम्मान मे, या उनके सहयोगियो के सम्मान मे, उनके समय पर दी गयी दावते सर्वथा मेरे अनुभव अविस्मरणीय है। दावत मे परोसी जानेवाली हर चीज़ अव्वल दर्जे की होती थी, और सैकडो मेहमानो के

प्रवध मे किसी भी प्रकार की त्रुटि रह न जाती थी। कमरे के वीचोवीच रखी गई लवी मेजो के पास वैठे हुए हम लोगो की आखे दूसरे छोरपर फूलमालाये पहनकर विराजे हुए प्रमुख सम्माननीय अतिथियो पर गडी रहती थी। किंतु भाषण देने के लिए गाधी जी के उठते ही सर्वत्र शाति स्थापित होकर सब पर एकमात्र उन्ही के व्यक्तित्व का प्रभाव छा जाता था। और तव श्रोतागण उनकी *क्षीण काया और नाटे कद को बिल्कुल भूलकर उनके व्यक्तित्व से एकतान होते* थे। भारत के प्रति उन्हे क्या ही अगाध प्रेम था, और अपने न्यायसगत आदोलन मे सब को सम्मिलित करने के लिए कितने तो कष्ट उन्होंने उठाये! सदा सौम्य और विनम्र गाधी जी सामर्थ्यशील भी पूरे थे!

एक दिन उनसे निमत्रण पाकर हम सब उनका टालस्टाय फार्म देखने गये। वहा वे 'सादा जीवन' विताने के प्रयोग कर रहे थे। पाश्चात्य पद्धति की पोशाक का त्याग कर हाथ कते सूत के वस्त्र पहनना उन्होने शुरु कर दिया था। घर का सब कामकाज भी खुद करने लग गये थे। आश्रम के लिए आवश्यक शाक-सब्जिया भी वे और उनके सहयोगी फार्म पर ही पैदा कर लेते थे। इस दिशा मे कभी कभी निराश होने पर भी अपने प्रयोगो की अतिम सफलता के सबध मे वे आशापूर्ण थे। तब से सदैव इसी दिशा मे प्रयत्नशील रहकर जनता के साथ वे एकरूप हो गये ऐसी मेरी धारणा है।

मतभेद होते हुए भी—

वांडा डिनोवस्का (उमादेवी)

गांधी जी सबधी अपने अनुभव लिपिबद्ध करने का वचन श्री चद्रशकर शुक्ल को दे चुकने के कारण यह काम, चाहे वह कितना ही कठिन क्यो न हो, अब पूरा किये बिना छुटकारा नहीं। अधिक कठिन की बात तो यह है कि इस लेख मे मुझे अपने व्यक्तिगत कार्यों का अपरिहार्य रूप से उल्लेख करना पडेगा, जब कि मैं इसे बिलकुल नापसद करती हू। किंतु यदि मैं ऐसा न करू तो जो बात मैं प्रकाश मे लाना चाहती हू उसका सत्य स्वरूप किसी की समझ मे ही न आवेगा।

युद्ध का प्रथम वर्ष मैंने यूरोप मे बिताया। वहा [illegible] मैंने देखा। ऐसे उत्पातो का मैं सामना कर रही थी कि जो अन्य राष्ट्रो ने न तो कभी

देखे होंगे, न उन्हे इनकी कोई कल्पना ही होगी। अत मित्र राष्ट्रो ने (ब्रिटेन ने भारत मे, दूसरे राष्ट्रो ने अन्यत्र) चाहे कितने ही पापपूर्ण, क्रूर, दुष्कर्म क्यो न किये हो, फिर भी कुल मिलाकर देखा जाय तो नाजियों की तुलनामें उनका नैतिक धरातल कही अधिक उच्च होने के सबध मे मुझे जरा भी सदेह नही था। मानवता की अतिम पतितावस्था, जर्मन-शिविरो मे काम मे लाये जानेवाले अधम, अघोरी, अत्याचारी उपाय, यहूदी और पोलिश लोगों का नाज़ियो द्वारा किया जानेवाला उन्मादपूर्ण उत्पीडन आदि सब बाते किसी की भी कल्पना के इतनी परे थी कि उनकी तुलनामे मित्र-राष्ट्र कुलीनता एव साधुता के मानो आदर्श प्रतीत होते थे। और ऐसा लगता था कि उन्ही की विजय होने से उपरोक्त नर्क-लोक से मुक्ति मिल सकेगी।

इसके सालभर बाद एक ही उत्कठा से, एक ही ज्वलत प्रश्न लेकर, मै भारत आयी। भारत किसके पक्ष मे रहेगा ? क्या भारत, यह जानते हुए कि इन 'अच्छे' राष्ट्रोमे भी अपने ऊपर अत्याचार करनेवाला एक राष्ट्र है, अपनी शक्ति शीघ्रता, स्वेच्छा और स्वयस्फूर्ति के साथ उनके पक्षमे लगा देगा ?

मैंने इस सबध मे गाधी जी से चर्चा की। मै समझती हू कि उनके इस विषयक विचारो का पुनरुच्चार करने की कोई आवश्यकता नही, क्योंकि वे सुप्रसिद्ध है। अवश्य ही मेरा मतपरिवर्तन करने में वे असमर्थ रहे। मेरा सारा हृदय यूरोपीय राष्ट्रो की वेदनाओं से भरा हुआ था। मानो प्रत्यक्ष मानवजाति पर ही होनेवाले उन नृशसतापूर्ण अत्याचारो की स्मृतियों से मेरा चित्त व्याप्त था। मानवता का भवितव्य मुझे सकटापन्न प्रतीत हुआ।

मै गाधी जी के 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' आदोलन के विरुद्ध थी। क्योंकि इससे पहले से ही प्रस्तुत द्वेषभाव और अधिक बढ़ेगा ऐसी मेरी धारणा थी। ऐसे समय में, जब कि युद्ध उग्र रूप धारण कर चुका हो, 'प्रत्यक्ष कार्यवाही' के प्रयोग के भी मै विरुद्ध थी। क्योंकि मेरी राय मे समस्त मानवजाति की समस्या के अतर्गत ही भारत की समस्या भी आ जाती थी, जिससे इन दोनों को परस्पर से भिन्न मानने की बात मै सोच ही न सकती थी।

या गलत यह सर्वथा निरर्थक प्रश्न है। अवश्य ही सब कुछ मैंने खुले दिल से लिख दिया था। हा, उनके लिखते समय जैसी मेरी भावनाए उद्दीप्त हुई थी, वैसे ही भाषा भी। अपनी आदत के अनुसार मैंने उक्त पत्र बिल्कुल बेरुखेपन से लिखने के कारण उनमे अधिकाश कठोर भाषा का ही प्रयोग हुआ था। खैर। जवाब मे उनसे दो-एक पत्र मुझे प्राप्त हुए। मेरी आखिरी चिट्ठी गाधी जी को अगस्त १९४२ में उनकी गिरफ्तारी के कुछ ही दिन पूर्व मिली।

अब ज़रा इनकी प्रतिक्रियाओ पर गौर करे। अपनी चिट्ठियो के जवाब मे मुझे उनसे प्राप्त पत्र अप्रतीम थे। स्नेहभरे, सदय, गभीर,—"उमा, एक दूसरे से हमारा मतभेद हो जाने पर भी उसके कारण अपने पारस्परिक स्नेह-सबध मे आच न आने पावे।" (यह लिखते समय उनके मूल पत्र पास न होने से केवल अपनी स्मरणशक्ति के आधार पर उनके उक्त शब्द मैं उद्धृत कर रही हू।)

अपनी गिरफ्तारी के एक ही दिन पूर्व उन्होने मारिस फ्रिडमैन से, जो कि हम दोनो के समान रूप से मित्र है, बातचीत के सिलसिले मे मेरी चिट्ठियो का सखेद जिक्र किया था। विकट समस्याओ, कष्ट-क्लेश, व्याधि-उपाधियो,—जैसे अ भा काग्रेस कमेटी का अधिवेशन, ऐतिहासिक अगस्त-प्रस्ताव, देशभर मे मची हुई उथलपुथल आदि सबधी अविलब ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण कार्य का भार सरपर होते हुए भी, उन्होने मुझ जैसे एक दूरस्थ और साधारण व्यक्ति की भावनाओ पर, क्षणभर के लिए ही क्यो न हो, अपना ध्यान केंद्रित किया यह कितनी अद्भुत बात है! ऐसा दूसरा कौन है जो एक व्यक्ति के प्रति इतनी आस्था दिखाता? क्या कोई अन्य नेता स्वत से मतभेद रखनेवाले अपने किसी मित्र की बातो पर, उसके प्रति मन मे जरा भी दुर्भाव लाये बिना, गौर करने के लिये तैयार हो जाता?

वे जेल चले गये!

इस बीच घटनाचक्र बहुत कुछ बदला। जिस जहर के खिलाफ मित्र-राष्ट्र लड़ रहे थे उसके चक्कर मे वे खुद ही अधिकाधिक फसते गये। अब बापू की विचारप्रणाली मुझे जरा जरा जँचने लगी। पश्चात् वे जुहू पधारे।

मैं उनकी प्रार्थना-सभा मे गई। वह सोमवार, अर्थात् उनका मौन-दिन निकला। प्रार्थना समाप्त होने पर मैंने पास जाकर उन्हे प्रणाम किया।

ओह ! उनका स्मित तो मानो स्नेहार्द्र आलिंगनही था ! इसके पूर्व या बाद में भी कभी, मुझे इस प्रकार इतने स्पष्ट रूपसे उनके हार्दिक स्नेहालिंगन की अनुभूति नही हुई। मजाक के तौर पर उन्होने लिखकर पूछा, "उमा, क्या अब भी नाराज हो तुम मुझसे ?"

"नाराज तो कभी हुई ही नही," जवाब में मैंने कहा।

"तो फिर रोज़ यहा आया करो, सब बातो की चर्चा करेंगे।"

सो मैं आने लगी, और बड़ी देर तक हम दोनो की मजेदार बातचीत चलती रही। अपना दृष्टिकोण, अपने आचार-विचार की रूपरेखा, और अपनी भावनाए मुझे समझाने की उन्होंने चेष्टा की।

क्या कोई दूसरा यह सब करता ?

उन्होंने अपनी आशा के विपरीत मेरा आचरण होते हुए भी मेरे प्रति कभी जरा भी नाराजगी या निराशा प्रकट नही की। बल्कि मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि उनका स्नेहभाव अधिक गहरा हुआ है, उनकी सदय वृत्ति सूर्यप्रकाश के सदृश उज्ज्वल बनी है। जूहू में उन दिनो मुझे उनकी सदय आत्मीयता के जितने प्रमाण मिले उतने पहले कभी नही मिले थे।

एक बार जब मैं देशसेविकाओ की कतार के पीछे खड़ी थी तब उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ा, और मुझे भीतर की ओर खीचते हुए बोले, "आ, इधर आ जा, तुम तो हममे से ही एक हो जी !" स्मरण रहे कि उनकी आलोचना करने का साहस दिखानेवाले, उनके आदोलन के विरुद्ध विद्रोह पुकारनेवाले एक व्यक्ति पर यह स्नेहवर्षा हो रही थी।

आचरण व्यापक सहिष्णुता, दूसरे की भावनाओ के प्रति असीम आदर एव सच्ची महानुभावता का द्योतक नही है ?

मेरा दूसरा उल्लेखयोग्य अनुभव १९४५ ई० का है, जब कि पोलैण्ड द्वारा दुर्भाग्यपूर्ण प्रत्याक्रमण जारी था। रूसियो द्वारा उकसायी गई और वैमानिक सहायता सबधी मित्र-राष्ट्रो के अभिवचनो पर अवलबित पोलैण्ड की इस शूर राजधानी ने स्वदेश पर अधिकार जमानेवाले नाजियो के विरुद्ध भयानक स्वरूप का विद्रोह पुकारा, और रूस एव मित्र-राष्ट्रो द्वारा धोखा दिया जाने पर भी ६३ दिन तक निराशापूर्ण, अयशस्वी युद्ध जारी रखा। तब बापू बबई मे थे। मै अक्सर उनसे मिला करती थी। हृदयस्पर्शी उत्सुकता के साथ उन्होने ताजा खबरे पूछी। और सुनकर मुझे धीरज बँधाया। वार्सा की जनता द्वारा जारी सशस्त्र सग्राम के प्रति उन्होने कभी भी निषेध प्रकट नही किया। १९३९ ई० के पोलिश-प्रतिकार की तरह उन्ही के प्रस्तुत प्रत्याक्रमणात्मक युद्ध को भी वे 'अधिकाशत अहिंसक' सबोधते थे। तभी उन्होने रक्तरजित वार्सा के लिए अपना अद्भुत सदेश लिखा, जिसका 'All for Freedom' नामक पोलैण्ड के महान् सग्राम सबधी अपनी पुस्तक मे प्रस्तावना के रूप मे मैने अतर्भाव किया है। एक मौन-दिन पर खुद के हस्ताक्षर मे लिखा गया उनका उक्त सदेश इस प्रकार था — "वार्सा की व्यथा पोलैण्ड की भी व्यथा है, और पोलैण्ड की व्यथा तो सारे सत्रस्त ससार की व्यथा है।"

उनके कारण्य एव मेरे देश की यातनाओं के प्रति उनकी उक्त तीव्र सवेदना से उनके हृदय की विशालता व्यक्त हो रही थी। स्वदेश के कष्टक्लेशो के समान ही एक सुदूर देश के कष्टक्लेशो को अनुभव करनेवाला उनका हृदय समस्त विश्व का आश्रयस्थान बनने की क्षमता रखता था। अपनी दूरदृष्टि से उन्होने बहुत पहले यह भविष्यवाणी कर रखी थी कि मित्र राष्ट्र पोलैण्ड को पुन धोखा देकर दुष्ट शत्रु के हाथ उसे बेच डालेंगे। सालभर के भीतर ही यह भविष्यवाणी खरी होकर रही। किसी अचेतन वस्तु की तरह पोलैण्ड, वहा की जनता की इच्छा के विरुद्ध एव उसके प्रबल प्रतिकार के बावजूद, रूस को 'दे दिया' गया। सोवियट रूस द्वारा व्याप्त पोलैण्ड के भवितव्य के सबध मे गाधी जी के मन मे जरा भी सदेह नही था। क्योकि भारत एव अन्यान्य देशो के कम्यूनिस्टो के कारनामो से वे भली भाति परिचित थे। १९४५ ई० मे कुछ दस्तावेजो के साथ पजाब से मेरे लौट आने के बाद जब इस विषय पर हम दोनो की चर्चा

चली तव वे मुझसे वोले, "उनके विध्वसात्मक कार्यो से मै पूर्णतया परिचित हू। किंतु, उमा, स्मरण रहे कि उनके विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से लडझगड़कर हम यश के भागी वन नही सकते। हम यशस्वी हो सकते है विधायक कार्यो से, मानवमात्र के प्रति प्रेमादर की भावना वढाने से, सच्ची स्वाधीनता की दिशा मे सचेष्ट रहने से, प्रभु-सेवा से,—सक्षेप मे उनके द्वारा उपेक्षित इन सभी कार्यक्षेत्रो मे उतरने से ।"

वापू द्वारा दी गई यह नसीहत मै भली भाति समझ गई । क्या वे वुद्ध व ईसा के इन वचनो का ही, कि 'अमगल से अमगल पर विजय प्राप्त नही की जा सकती' 'द्वेप से द्वेप का शमन नही किया जा सकता,' पुनरुच्चार नही कर रहे थे ?

अपने उपदेशो के अनुसार ही आचरण करनेवाले गाधी जी न केवल भारत के अपितु समस्त पीडित मानवजाति के वन गये है ।

वंबई,
१५-१-१९८८

आप शोक न करें

चाहता था, किंतु ऐसा करने से मुझे रोका गया। परतु उपरोक्त पत्र प्राप्त होने के वाद से तो मेरी यही धारणा बन गई कि आल इडिया रेडियो की किस्मत मे अयश ही वदा है। उक्त पत्र ही मैं नीचे उद्धृत करता हू —

सेगाव, वर्धा, ३–१–१९३७.

प्रिय फिल्डेन,

आपने मेरे प्रति जो विश्वास प्रकट किया उसका मै स्वागत करता हू। आपके कष्टो मे मेरी सहानभूति आपके साथ है। किंतु यदि आप अपने वर्तमान पद पर वने रहना चाहते हैं, और देश का हित भी होता हो, तो यह सहानुभूति निरपेक्ष भाव से ही स्वीकार करे। आपके व्यक्तिगत चारित्र्य पर लगाया गया किसी भी प्रकार का अभियोग हीन है। किंतु प्रत्येक समाज मे निदको का एक वर्ग तो रहताही है। उनकी वाते आप हसकर उडा दे। अब आलोचको को ले। समुचित आलोचना की आप उनसे आशा न करे। सार्वजनिक हित की दृष्टि से लिखनेवाले वहुत कम होते हैं। अधिकाश लोग तो पैसे के लिए लिखते हैं। अलावा इनके एक तीसरी श्रेणी के लोग है। आप यह चाहते है कि वे आपके पास आये, किंतु वे तो नही चाहते। इच्छा होते हुए भी वे आपके पास नही फटकते। आपके द्वारा दी गई सुविधाओ से उनका लाभ उठाना आप पसद करते है यह तो वे जानते है, किंतु साथ ही वे यह भी जानते है कि इस प्रकार के सहयोगसे अभिलाषित हित की अपेक्षा अहित ही अधिक होगा। राजकुमारी की ही वात लीजिये। वह भी कुछ कदमोंसे आगे वढ न सकी। अत आप इसके लिए शोक न करे, वल्कि यह मानकर चले कि जिस प्रकार की परिस्थिति से हम धिरे हुए है उसमें अपरिहार्य रूप से ऐसा ही होगा।

आपका

मो० क० गाधी

लदन,
२७–१२–१९४५

देवदूत गांधीजी

वेल्थी होनसिंगर फिशर

अपने परिचित किसी भी अमेरिकन की अपेक्षा मेरे पति स्वर्गीय विशप फ्रेड बी. फिशर भारतवर्ष और वहा के निवासियो के प्रति अधिक आस्था एव उनके सबध मे अधिक जानकारी रखते थे। मि० गाधी से अपना साक्षात्कार होने से पद्रह वर्ष पूर्व ही उन्होने इस देश एव उसके साहित्य, दर्शनशास्त्र व निवासियो का अध्ययन आरभ कर दिया था। क्योकि बाईस वर्ष की युवावस्था मे 'अपनी पीढी मे ही ससार को ईसा के पक्ष मे वश कर लेने' की तीव्र लालसा से उपदेशक और प्रचारक के नाते वे आगरा जाकर बसे थे। १९०४ ई० की यह बात है, जब कि सारा ससार अत्यत दुर्जेय साम्राज्यवाद के पैरो तले दबा-दबाया पडा हुआ था।

फ्रेड की माता एक ऐसे जीवन-क्रम मे पली थी, जैसा कि गृहयुद्ध के समय फरार व्यक्ति बिताते है। उसकी मा भी 'उत्तरी' प्रदेश मे अपनी स्वाधीनता के लिए लडने वाले निग्रो की आश्रयदात्री रह चुकी थी। इसी परपरा मे फ्रेड फिशर भी पलने के कारण काले आदमियो के प्रति गोरो के प्रत्येक प्रकार के दुर्व्यवहार से उनका खून खौल उठता था, गोरोंके अन्यायपूर्ण बर्ताव को देखकर उनकी आत्मा जल उठती थी। १९२९ ई० मे, अपनी मृत्यु के चौबीस घटे पूर्व, एक विशाल जनसमुदाय के सम्मुख भाषण देते हुए उन्होने भारत के लिए आत्मनिर्णय की आवश्यकता एव एक स्वाधीन राष्ट्र के नाते उसके द्वारा ससार में सुव्यवस्था स्थापित होने मे मिलनेवाले योग का बहुत ही स्पष्टतापूर्ण विवेचन किया था।

सभाव्य भावी स्वाधीनता की प्रथम आशा-किरण के दर्शन करा रहा था, माटेग्यू-चेम्सफर्ड सुधारो के कारण भारत का राजनीतिक शैथिल्य भग हो रहा था, और फ्रेड की दृष्टि मे अतिम एव अत्यत तेजस्वी रजत-रेखा थी स्वय मोहनदास करमचद गाधी।

भारत एव ससार की नैतिक शक्तियो को गाधी जी द्वारा मिलनेवाले वल की अनुभूति से आकुलित भारत का वर्षो का यह मित्र और गाधी जी उस साल के शरत्काल मे एक ही ट्रेन से कलकत्ता पधारे।

फ्रेड की दृष्टि मे अब गाधी जी केवल एक राष्ट्रनेता ही रह न गये थे। ट्रेन, जिससे कि ये दोनो सफर कर रहे थे, खादीधारी लोगो की भीड से भर जाने के कारण स्टेशन-दर-स्टेशन मुकाम करती हुई चीटी की चाल से चल रही थी। विशालकाय लहरो की तरह उमडी हुई इस भीड से न सिर्फ ट्रेन के डिब्बे, वल्कि इजन तक व्याप्त हो रहा था। राजनीतिक पतितावस्था से स्वत का उद्धार करनेवाले अपने इस महान् अभिनव नेता का हर कोई दर्शन कर सके इस हेतु लोगो ने अपने शरीर की सीढिया वना डाली। इस सव के वावजूद उस समय भी गाधी जी राष्ट्रनेता की भूमिका से ऊपर उठ गये थे। चुनाचे इस तरुण अमेरिकन मिशनरी को,जो 'अपनी पीढी म ही ससार को ईसा के पक्ष मे वश कर लेना' सभव नही यह जान चुकने पर भी निराशा या निरुत्साह के वशीभूत नही हुआ था, गाधी जी मे एक नई रोशनी नजर आई। फ्रेड को विश्वास हो चुका कि गाधी जी के रूप मे उन्ह एक ऐसा सहयोगी मिला है कि जो उन्ही की तरह पृथ्वीपर ईश्वरीय शासनकी स्थापना के हेतु प्रयत्न व प्रार्थना कर रहा है।

गाधीजी ने अपनी अहिंसा का सर्वप्रथम महान् प्रयोग दक्षिण अफ्रीका म किया। फिर भी इस विश्वास के साथ, कि प्रथम विश्वयुद्ध ससार से युद्ध का नामोनिशान ही मिटा देगा, उन्होने सैन्यभरती द्वारा ब्रिटिशो की सहायता की और साम्राज्यातर्गत स्वातत्र्य-प्राप्ति की दिशा में कार्य करने के हेतु वे भारत लौट आये।

गाधी जी ईश्वर के अत्यत सन्निकट पहुच चुकने के कारण अब केवल देशभक्त विद्रोही के रूप मे रह न सकते थे। उनके चारित्र्य-वल की क्या कारण-मीमासा हो सकती थी ? एक वार गाधी जी ने मेरे पति से अपनी वैष्णव माता एव स्वत के जीवनपर पडे हुए उसके प्रभाव का उल्लेख किया था। इस विषय

मे गाधी जी की अपेक्षा मेरे पति अधिक दूरदर्शी थे, क्योकि उनकी खुद की मा कट्टर प्यूरिटन थी, और फ्रेड वडे होने पर,—यहा तक कि विशप बन जाने पर भी, अपनी इस मा से सलाह-मशविरा पाने के लिए लालायित रहते थे।

फरेड फिशर के विचारानुसार गाधी जी के कुशल कानूनदा या निष्णात राजनीतिज्ञ होने मे उनकी कोई महत्ता न थी। वह तो गैरो के प्रति आत्मीयता अनुभव करने और इस प्रकार साधारण व विस्मृत व्यक्तियो का प्रवक्ता बनने की उनकी असाधारण सामर्थ्य म भरी हुई थी। भारत की भूतकालीन धार्मिकता से ग्रहण किये गये अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धान्तो का वर्तमान काल के नैसर्गिक अस्त्रों के रूप मे गाधी जी द्वारा प्रयोग किया जाने के कारण फ्रेड फिशर भी अमेरिका के विशाल श्रोतृसमुदाय के सामने उक्त सिद्धातो की व्याख्या कर सके। उससे उन्हे यह आशा थी कि ससार भर के ईसाई युद्धरहित विश्व-निर्माण के लिए गाधी जी के साथ कटिबद्ध हो जायगे।

१९२५ ई० की कानपुर-काग्रेस तक गाधी जी से मैं मिल न सकी। तब विशप और मैं दक्षिण अफ्रीका निवासी भारतीयो की स्थिति का अध्ययन कर अभी अभी लौट आये थे। हाल ही मे श्रीमती विजयलक्ष्मी पडित द्वारा सयुक्त राष्ट्र-सघ के सामने प्रभावशाली ढग मे वर्णित स्थिति से वह बिल्कुल मिलती-जुलती थी। वहा, अफ्रीका मे, फिनिक्स स्थित टालस्टाय कालनी मे हम मणिलाल से मिले। उनके मातापिता द्वारा स्थापित उक्त कालनी मे सवर्ण और असवर्ण हिंदू, मुसलमान, सिक्ख, पारसी, ईसाई आदि सभी, भारतीय भाई-भाई के नाते एकसाथ रहते और काम करते थे।

कानपुर मे गाधी जी से हुई अपनी उक्त प्रथम भेट के समय उनके पास चुपचाप बैठे बैठे (वह सोमवार था) मैंने लोगो के प्रति उनकी सतग्रदृदय सुहृदयता स्वय अनुभव की। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह व्यक्ति, जिसने न केवल अपना धन, अपितु तन-मन भी समर्पित कर दिया है, सुसत मानवश्रेष्ठ है। और अब भी वे सत्य व प्रेम रूपी प्रभु से पथ-प्रदर्शन पाकर पृथ्वीपर ईश्वरीय साम्राज्य की स्थापना के लिए सचेष्ट थे।

श्रोतृसमुदाय के साथ रसास्वादन करते थे। १९३१ ई० मे, जब गाधी जी लदन में थे, फ्रेड फिशर ने मिनियापोलिस से फोन पर उनसे बात कर अमेरिका पधारने का अनुरोध किया। क्योकि कुछ ईसाई पादरियो की ऐसी धारण बन गई थी कि गाधी जी का सदेश सुनने के लिए अमेरिका अब प्रस्तुत है। किंतु जवाब मे गाधी जी बोले, "ना, अमेरिका का आमत्रण स्वीकारने का आदेश ईश्वर से अभी मुझे मिला नही है।" रिसीवर रखकर एटलाटिक पार फोन पर हुए इस वार्तालाप का व्यय मालूम कर लेने के बाद, तीन मिनट के उक्त वार्तालाप के लिए १५० डालर पानी मे फेकने जैसी फजूलखर्ची फ्रेड फिशर को कहा से सूझी यह गाधी जी ने जानना चाहा। उसी क्षण उन्होने लदन मे फ्रेड के नाम एक पत्र भेजा, जिसमे कुछ अन्य बातो के साथ लिखा था —

"सच्ची शाति और निरस्त्रीकरण का जब भी कभी वक्त आवेगा तब उनका श्रीगणेश अमेरिका जैसे शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा ही किया जायगा, फिर इस कार्य में उसे अन्य राष्ट्रा की सम्मति और सहयोग चाहे मिले या न मिले। यदि सघर्ष के बीच भी शाति प्राप्त करनी है और ईश्वर की प्रेमशक्ति एव सरक्षण-शक्ति पर निर्भर रहकर शस्त्र त्यागने है तो व्यक्ति या राष्ट्र की स्वत मे और साथ ही साथ ईश्वर की सरक्षण-शक्ति मे श्रद्धा होनी ही चाहिये। मेरे विचारानुसार जब तक बलशाली राष्ट्र अपने से कमजोर राष्ट्रा का शोषण करना पाप नही मानते तब तक ऐसी शाति स्थापित होना सर्वथा असभव है।"

शातिनिकेतन के अपने दो दिन के मुकाम मे हमे गाधीजी का दृढ सौहार्द प्राप्त करने का और एक सुअवसर मिला। वहा गाधीजी और सी एफ एंड्रयूज रविबाबू के अतिथि बनकर पधारे थे। निमत्रण तो मुझे भी मिला था। किंतु दुर्भाग्य से मेरे एक टखने में मोच आने के कारण मुझे कलकत्ते मे ही रुक जाना पडा। फिर भी शातिनिकेतन मे उपरोक्त महानुभावो के जो सभाषण हुए उनका वृत्तात मैंने आग्रहपूर्वक विस्तार से जानना चाहा।

इसकी शुरुआत करते हुए फ्रेड बोले, "हम सब अलग अलग वक्तपर वहा पहुचे। मेरी और गाधी जी की अपेक्षा चार्ली कुछ पहले पहुच गये थे। खैर, इस जलवायु मे मैं तो पूर्णतया भारतीय पोशाक के पक्ष म हू। स्वाभाविक रूप मे गाधी जी इस मामले मे हम सब की अपेक्षा अधिक आराम मे थे। उनके बाद चार्ली का नबर आता था, क्योकि वे बगाली फैशन का पतला रेशमी

कुरता, जिसका पिछला हिस्सा हवा मे उड़ रहा था, पहने हुए थे। गुरुदेव (कवि) ने सदा की भाति रोबदार लवा चोगा धारण किया था। मैं बिना वास्कट पहने गया था, और किसी कारणवश वहा पहुचते ही अपना कोट उतार न सका। अवश्य ही जूते उतार लिये थे। हम पाश्चात्य लोग कुछ रूढिग्रस्त है। गरमी के मौसिम के विपरीत वेशभूषा की यह बात मुझे बेहद अखरी।

"सूर्यास्त के समय हम सब अपनी अपनी छडिया लेकर देहात के बीच से होते हुए पश्चिम दिशा मे घूमने निकले। गाधी जी के हाथ की लकड़ी, जो कि किसी पेड की मामूली खुरदरी टहनी मात्र थी, उनकी ऊचाई से लगभग दूनी थी।

"अपने हाथ की छडियो और अपने कदमो को मिला कर हम लोगो ने एक अपूर्व भाति सूर्यास्त की दिशा मे डग भरना शुरू किया। यदि तेज चलने की होड़ लगाई जाती तो, मुझे विश्वास हैं कि, उसमे गाधीजी हम सब को हरा देते। तौल मे नव्वे पौड के इस वामन–मूर्ति महापुरुष की प्रत्येक मासपेशी सुगठित और सक्रिय थी। घूमने के वक्त बाते करना उन्हे पसद है और उनमे वे लवलीन भी हो जाते है। किंतु कवि को एकाकी भ्रमण पसद है। चुनाचे मैं गाधीजी के सग हो लिया। उन्होने तुम्हे अपना प्यार कहला भेजा है और वे आशा करते हैं कि तुम्हारा टखना शीघ्रही ठीक होकर तुम मेरे साथ कार्य करने लग जाओगी।"

यही तो गाधी जी की विशेषता है। वे अपने परिचितो को कभी भूलते नही। महान् राजनीतिक उलझनोंके बीच भी वे उन्हे याद करते रहते हैं, और प्यार के साथ याद करते रहते है।

इसके बाद तो फ्रेड ने सहज भाव से गाधीजी सबधी कई खास बाते मुझे बताई। बोले, "वे तो थोरो की 'सिविल डिसओबीडिअन्स' नामक किताब बतौर तकिये के उस्तेमाल करते है!" यह सुनकर गाधीजी भी हस दिये थे।

"रविबाबू द्वारा ग्रामीणो के लिए स्थापित कृषि-प्रयोगशाला की एक गाय के पास से हम गुजरे। गाय कोमल आखोवाली, हृष्ट-पुष्ट व नस्लदार थी, और हमारी ओर करुणायुक्त टकटकी बाधे हुए थी। गाधीजी ने उसे थोडी घास खोदकर खिलाई।

'क्या यह प्राणी मनुष्य का इस पृथ्वीपरका सर्वोत्तम मित्र नही है ?' उस गाय को पुचकारते हुए गाधीजीने पूछा । और फिर बोले, 'अवश्य ही गाय के प्रति मेरे मन मे आदर-भाव है, और वह इसी कारण से कि गाय हमारे हिंदुत्व के इस मूलभूत तत्व के, कि जीवमात्र म ईश्वराश है,' प्रतीक स्वरूप है ।'

अपनी बात जारी रखते हुए फ्रेड आगे बोले, "गाधीजी ने व मैने अहिंसा के दर्शनशास्त्र की, और साथ ही एक प्रभावशाली अस्त्र के रूप मे उक्त सिद्धात को भारत मे वे किस प्रकार लोकप्रिय बना सके इसकी भी, चर्चा की । और हम इस निर्णय पर पहुचे कि भारतीयो की विचार-प्रणाली की पृष्ठभूमि मे बौद्धमत का प्राबल्य होने के कारण ही यह सभव हुआ, यद्यपि अब बौद्धधर्म भारत से लुप्तप्राय हो चुका है ।

"हमारी इस लघु-यात्रा मे इतवार का दिन बडा ही महत्वपूर्ण रहा । अपनी प्रात कालीन मूक-प्रार्थना के बाद हम सयोगवश कवि के द्वार पर जा पहुचे ।

"वहा जब हमने मूर्तिपूजा की चर्चा छेडी तब पूर्व पक्ष के एकमात्र प्रतिनिधि गाधीजी ही बने । बात के सिलसिले में उन्होंने अपने को ऐसे शूद्र, ऐसे मेहतर के स्थान पर माना कि जिसके न तो पुरखे ही पढ-लिख सकते थे, और न जिसकी सतानो का भविष्य ही उससे रत्तीभर सुधरनेवाला है । और हमें लक्ष्य कर गाधीजी बोले, 'जब तक यहा पर उपस्थित हम चारो व्यक्ति इस विषय को लेकर लोगो मे तहलका न मचावेगे तब तक यह हालत सुधरनेवाली नही ।'

"भावुकता के साथ अपने पक्ष का समर्थन करते हुए गाधीजी ने आगे कहा, 'किसी भी असवर्ण हिंदू द्वारा पेडतले वेदी के रूप मे स्थापित सिंदूर-चर्चित वह छोटा सा पत्थर काफी महत्व रखता है। क्योकि आजतक हमारे अधभूखे भाई के लिए यदि ईश्वर का कोई स्पर्शनीय प्रतीक रहा हो तो वह यही एकमात्र रगीन पाषाण-खड है । उसके और ईश्वर के बीच की यह एकमात्र कडी हम कैसे छीन ले सकते हैं ?'

"किंतु महात्माजी अपनी बात पूरी भी न कर पाये थे कि रविबाबू ने बीच मे ही उन्हे टोका । कवि बोले, 'गाधीजी, आप और आपके पूर्वज पूजा-पाठ, कथा-कीर्तन आदि को दीर्घ काल से तिलाजलि दे बैठे हैं । हम सभी इतना भली भाति जानते है कि प्रभु केवल मदिर में ही नही विराजते । वह तो यहा हैं

जहा हलवाहा कठोर भूमि मे हल चला रहा है और जहा सडक वनानेवाला पत्थर तोड रहा है। वह उनके साथ धूप मे ह और वर्षा मे है, और उनके वस्त्र धूलि-धूसरित है। खुद विशप भी तो जानते है कि उनके प्रभु ईसामसीह इसी हेतु देहधारी मानव बने और वह निरतर हमारे सन्निध है। किंतु इसका यह अर्थ नही कि वह पाषाणरूप भी है।

'ना!' अपनी वात पूरी करते हुए गुरुदेव बोले, 'यदि मूर्ति एव मूर्तिपूजा की, जपमाला और सिंदूर-चर्चित पत्थर की हमारे लिए कोई आवश्यकता नहीं हो सकती, यदि ये चीजें हमारे लिए पुण्यप्रद नही हैं, तो फिर हमारे देश के किसी भी वर्ग के लोगो के लिए भी, चाहे वे कितनी ही निकृष्ट जाति के क्यो न हो, ये पुण्यप्रद हो नही सकती। मैं तो यही पसद करूगा कि देशभर के हर मदिर और हर मुहल्ले मे पायी जानेवाली समस्त प्रकार की मूर्तियो का, फिर वे पीतल, काठ, पत्थर या किसी अन्य पदार्थ की क्यो न बनी हो, बडा भारी ढेर लगाकर उन्हे समुद्र में बहाकर इस गदगी से देश को मुक्त किया जाय।'

"हम सब चुप थे। क्योकि प्रसग जरा नाटकीय था। कवि मदिर-शुद्धि करने चले थे! तब गाधीजी पुन हरिजनो का पक्ष लेकर बोलने लगे।

"शातिपूर्वक गाधी जी हमे बोले, 'जब तक आप लगडे को चलना नहीं सिखाते तब तक उसकी बैसाखी हटाने का आपको कोई अधिकार्ही नहीं। विशप साहब यही काम आपको करना है, चार्ली को करना है, और गुरुदेव आपको व मुझे भी करना है।"

अपने पति द्वारा इन दो भारतीयो की एक दूसरे से की गई प्रस्तुत तुलना मुझे बहुत ही दिलचस्प मालूम हुई।

इन दोनो महापुरुषो का ध्येय एकसमान ही होने पर भी वे परस्पर से काफी भिन्नता रखते हैं। टैगोर मौंट एवरेस्ट के तुल्य हैं, उत्तुग गौरव-गिरि हैं। कुछ दृष्टियो से वे हमारी पहुच के बहुत परे हैं। जिस सत्य की तलाश म वे हैं वह अव्यावहारिक सत्य है। विपरीत इसके गाधीजी का जीवन किसी पहाडी मे फूट निकलनेवाले उस झरने क समान हैं जो कि तलहटी के निर्जल नाले में, जहा लोग प्यासे हैं, जा कर मिलना चाहता हो।

१९३९ ई० म दुवारा अकेली भारत पधारने पर मैं तुरत वर्धा और वहा से सेवाग्राम, जो कि अभिनव भारत की मिट्टी की कुटियावाली छोटी-सी

राजधानी है, जा पहुची। यहा के सीमित समुदाय मे व्याप्त गाधीवादी प्रवृत्ति से प्रस्फुटित होनेवाली सच्चे सुधार की चिनगारिया इस देश के कोने कोने मे फैल रही थी।

दिल्ली मे मै प्रति दिन उनसे मिलती रही और उनकी साय-प्रार्थनाओ मे भी मैने भाग लिया। १९३९ ई० का वह 'गुड फ्राइडे', जिस दिन की गाधी जी ने नित्य की प्रार्थना के बाद वहा पर उपस्थित सी एफ ऐंड्रयूज, एगाथा हैरिसन एव मुफ जैसे चद ईसाइयो से अपना परमप्रिय भजन 'Lead Kindly Light' गाने के लिए कहा, मै इतनी जल्द भूल नही सक्ती।

अपने वर्तमान मनोविकारो से मुक्ति पाने के दीर्घ काल बाद दुनिया गाधीजी के निम्न उद्गार अवश्य याद करेगी —

गाधीजी कहते है, "अपने मनोविकारो को वश मे रखने का अर्थ ही सभ्यता है। इस प्रकार अपने शत्रुपर भी विना विद्वेष विजय प्राप्त की जा सकती है......क्योकि नैतिक वल नौ सैनिक वल की अपेक्षा श्रेष्ठ है।"

और आज, जव कि अविवेकशून्य दुनिया भारत के समस्त कष्टक्लेशो का दोप हिंदू-मुस्लिम दगो के माथे मढ रही है, देव-दूत गाधीजी प्रेम, मैत्री, सहयोग और समझदारी के पाठ को कार्यरूप देने के लिए दगे के क्षेत्र मे ही जाकर डटे हुए है। वर्तमान ससार मे मुझे यही एक सर्वाधिक दूरदर्शिता-पूर्ण एव धर्मप्रेरित प्रयोग दिखाई देता है। ईश्वरीय साम्राज्यकी दिशा में जानेवाले पथपर के वे व्यवहारकुशल नेता वन गये है। जव मै अपने स्वर्गीय पति का जीवन-चरित्र लिख रही थी उस समय गाधी जी ने मुझे एक पत्र भेजा, जो उक्त पुस्तक मे मैने जोड दिया है, और जीवन-पर्यंत जतन के साथ मै उसे रखूगी। उन्होने लिखा था—

"प्रिय वहन, स्वर्गीय विशप फिशर के निकट सपर्क मे आनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। वे उन इनेगिने ईसाइयो मे से एक थे जो देवभीरू होते है; और इसीलिए कभी किसी आदमी मे वे डरे नही।"

न्यूयार्क,
१९-२-१९४७.

रोगियों के आरोग्यदाता—बापू

एस. के. जार्ज

गांधी जी की एक अत्यत आश्चर्यप्रद विशेषता यह है कि वे अपने अति साधारण अनुयायी का भी खूब ख्याल रखते हैं। भारत के अव्वल दर्जे के राजनीतिज्ञ होने के कारण अनेक राष्ट्रीय प्रवृत्तियो और रचनात्मक कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहनेपर भी, यहा तक कि देशव्यापी तूफानी दौरो के बीच भी, वे अपने इन अनुयायियोंका कुशलक्षेम जानने, और खास तौरसे उनमें जो अपग या बीमार हो उनसे जाकर मिलने के लिए वक्त निकाल ही लेते है। निम्न घटना द्वारा गाधीजीके जीवन के इस पहलूपर प्रकाश पडने के साथ ही इस देश के सभी सप्रदायो और विभिन्न विचारो के हजारो लोग उन्हे वस्तुत 'बापू' क्यो मानने लगे हैं इसका भी भेद खुल जायगा।

मै और मेरी पत्नी दोनो १९३२ ई० मे गाधीजी के सपर्क मे आये। उसी वर्ष, जो कि घटनापूर्ण रहा, गाधीजी के प्रति अपनी निष्ठा के कारण कलकत्ता के बिशप–कालेज से मुझे पदत्याग करना पडा। पश्चात् मैं साबरमती आश्रम मे रहने आया। तब बापू जेल मे थे। किंतु उनसे मेरा पत्रव्यवहार होता रहा। मुझे आश्रम मे ही रख लेने की उनकी इच्छा थी। लेकिन मैं अपनी पत्नी के साथ त्रिवेंद्रम रहने चला आया और यहा हमने एक बालक-मन्दिर की स्थापना की। अपने इस कार्य से हमे पूरी तौर से सतोष मिल नही रहा था। तब हमारे स्नेही और गाधीजी के एक विश्वासपात्र कार्यकर्ता श्री जी. रामचद्रन् ने, जो उस समय त्रिवेंद्रम मे ही थे, यह सुझाव रक्खा कि हम सेवाग्राम जाकर वहा गाधीजी की देखरेख मे कार्य करे। सेवाग्राम मे मेरी पत्नी को निश्चित रूप से काम देने का वादा किया गया, और खुद गाधीजीने भी हम उभय पति-पत्नी को वहा आकर अपने साथ कार्य करने का निमत्रण दिया। किंतु त्रिवेंद्रम के कार्यसबधी अपनी जिम्मेवारियों एव अस्वास्थ्य के कारण हम उनका यह स्नेहभरा निमत्रण उस समय स्वीकार न कर सके।

उपरान्त प्रस्ताव के कुछ ही दिन बाद, १९३६ई०में, युगनिर्माणकारी त्रावणकोर मदिर-प्रवेश घोषणा के समारोह का सभापतित्व ग्रहण करने के

लिए गाधी जी त्रिवेंद्रम पधारे। उनके आगमन की खबर पाते ही मैं सुबह के वक्त उनसे मिलने गया, किंतु भेंट न हो सकी। तब महादेव भाई से मिलकर मैंने अपनी पत्नी के विषय मे, जो उस समय बीमार थी, बात की। श्री रामचद्रन् से भी इस का जिक्र करते हुए बापू से मिलने की अपनी असमर्थता के लिए मैंने खेद प्रकट किया। इस पर अपने गुरु के स्वभाव से परिचित रामचद्रन् बोले, "तब तो महमूद ही पर्वत के पास पहुच जायगा।" प्रत्युत्तर स्वरूप बाइबल का एक वचन उद्धृत करते हुए मैंने कहा, "हम इस योग्य कहा कि प्रभु हमारे घर पधारे।"

किंतु शिष्य की भविष्यवाणी ही सही साबित हुई। उस दिन सध्या समय आयोजित महति सभा के बाद जो जुलूस निकला उसमे शामिल न होकर वे सीधे अपने डेरे पर लौट आये। ब्यालू करते समय उन्होने मेरी पत्नी के स्वास्थ्य की पूछताछ कर हमारा ठिकाना भी मालूम कर लिया। सयोगवश स्टेट गेस्ट-हाउस, जहा कि वे ठहरे थे, हमारे घर के पास ही था, और उनकी एक परिचारिका हमारी पाठशाला मे अध्यापिका थी। उसने उन्हें हमारा घर दिखाना कबूल किया। चुनाचे भोजन के बाद तुरत, अपनी लाठी लेकर, वृद्ध गाधीजी अपनी बीमार बहन से मिलने के लिए निकल पडे।

रात के नौ बज चुके थे और हम जरा जल्दीही सोने चले गये थे। घर म घासलेट का एक छोटा-सा चिराग भर जल रहा था। अभी हम सोये नही थे। इतने मे महादेव भाई की आवाज़ मेरे कानो पर पडी। अपनी पत्नी से यह बात मैं कहने जा ही रहा था कि महादेव भाई को ऐसा कहते सुना—"उनका ख्याल है कि केवल महादेव है।" झाककर देखता हू तो गाधीजी तालाबद फाटक के बाहर अपने दलसमेत खडे! झट दौडकर मने फाटक का ताला खोला। "तो चोरोसे आप इतन डरते है?" मुस्कराते हुए गाधीजी बोले। तब मैंन श्री रामचद्रन् से अपना जो सवाद हुआ थ। उसका और साथ ही बाइबल के उक्त वचन का उल्लेख किया। सुनकर गाधीजी इतना ही बोले—"अच्छा!"

घर के भीतर आनपर मैंने गाधीजी को 'ड्राइगरूम' म ही रोक रखना चाहा। किंतु वे शिष्टाचार के तौरपर तो मिलने आये न थे। चुनाचे मुझ दुरुस्त करते हुए वे बोले, "मैं आपकी पत्नी से मिलने आया हू, न कि आपसे!" और

वे बेधड़क मेरी पत्नी के कमरे मे चले गये । उसकी खटिया के पास बैठकर उन्होंने अब उसका स्वास्थ्य कैसा है, क्या इलाज चल रहा है आदि पूछताछ की । इस बीच अपने छोटे बच्चे को जगाकर उसे बापू के पास उनके आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए मै ले आया । इन शात क्षणो से पूरा लाभ उठाकर अपनी विभिन्न समस्याओ के सबध में हमने उनकी बहुमूल्य सलाह प्राप्त की ।

मेरा यह स्वभावदोष है कि मै स्वत को किसी भी व्यक्ति मे पूर्ण रूपसे समर्पित कर नही सकता । यही कारण है कि मै अब तक गाधीजी मे अपने आपको अर्पित कर न सका । किंतु मेरी पत्नी बाद के इन वर्षो मे हमारे इस 'प्रभु' के अधिकाधिक निकट आती गयी, यहा तक कि अब बापू ने केरल के कार्य के लिए उसी को चुन लिया है । और वह भी उनकी सेवा करने मे अपने जीवन का साफल्य समझती है ।

त्रिचूर,
१५-६-१९८६

छोटी बातों में भी बड़े

रिचर्ड बी. ग्रेग

रुजवेल्ट भी खुद श्रम से सदा कोसो दूर रहे। किंतु बापू आचार और विचार दोनो दृष्टियों से मजदूरो के जीवन के साथ एकरूप होकर रहे। इसपर से ईसा मसीह के इन वचनो की कि—'विनम्र व्यक्ति उन्नत होकर ही रहेगा' और 'आप लोगो का जो सरदार हो वह आपका सेवक भी बने', मुझे बरबस याद आती है।

२ साबरमती मे एक दिन दोपहर के समय बापू स बात करने के हेतु मै उनकी कुटिया पर गया। ज्योही मैने कुटी के भीतर पैर रक्खा त्योही बरामदे मे एक तगडा पठान निद्रामग्न नजर आया। बापू बोले कि बेचारा बडी दूरी से उनसे मिलने आया है, और उनसे कुछ बात कर अपनी स्वाभाविक आदत के अनुसार बैठे बैठे सो गया है। वह कोई नेता न था। व्याज पर रुपया लगानेवाले मामूली पठानो की तरह ही वह भी देख पड रहा था। अस्तु, यह प्रसग मै किसी का भी स्वागत-सत्कार करने वाले बापू के स्वभाव की विशेषता का द्योतक मानता हू।

३ १९२५ ई० मे, बरसात के ठीक बाद, बापू का अल्प सहवास पाने की इच्छा से मै कलकत्ते चला आया। उस समय स्वर्गीय चित्तरजन दास के स्मरणार्थ बाधे जानेवाले अस्पताल के लिए वे चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। महादेव भाई भी बापू के साथ थे। हम तीनो एक ही कमरे मे सोया करते थे। आश्रम की भाति यहा भी हम हर रोज तडके चार बजे उठकर प्रार्थना करते थे। यह भी गाधीजी की एक विशेषता है कि वे चाहे कही रहे और चाहे जिस प्रकार क काम म व्यस्त हो, हर रोज सुबह सब से पहले प्रार्थना जरूर करेगे।

४ एक बार साबरमती मे गाधीजी को ज्वर हो आया। इससे वे कमजोर भी काफी हो गये। श्री अबालाल साराभाई और उनकी सुशील धर्मपत्नी न आकर उनसे आग्रह किया कि वे स्वास्थ्य-सुधार के लिए अहमदाबाद के अपन मकान पर चल कर विश्राम करे। वे मध्यान्होत्तर तीन बजे बाद, जब कि बापू दर्शनार्थियो से भेट करते है, आय थे। सयोगवश मै भी उस समय वहा उपस्थित था। बापू ने सौम्य शब्दो मे आश्रम छोडने से इन्कार किया। मै चुप बैठा हुआ था। सहसा श्री अबालाल जी जरा जोर से मुझसे बोले, "उन्ह आराम की जरूरत है। फिर इसके लिए उनको मनाने मे आप हमारी मदद क्यो नही करते?" चुनाचे कुछ मजाक के साथ मै भी आग्रह करने लगा। इस तरह

दवाव डाला जाने पर बहुत से लोग चिढते है, किंतु सो वात बापू की नही। अपनी बात पर वे नम्रता और सभ्यतापूर्वक दृढ रहे। यह है तो एक साधारणसी घटना, किंतु इससे उनके स्वभाव के एक अन्य पहलू पर प्रकाश पड़ता है।

१९३० ई० में, नमक-सत्याग्रह के दिनो मे, मै एक लवे अरसे तक सावर-मती-आश्रम मे सपत्निक ठहरा हुआ था। हमारे कमरे के बिल्कुल बगलवाले अतिथि-भवन में लाहौर के कट्टर साम्राज्यवादी पत्र 'सिविल एड मिलिटरी गजट' का अग्रेज सवाददाता रहता था। सत्याग्रह सवधी हलचलो का पता लगाने के लिए उसे भेजा गया था। शत्रु-शिविर मे बेधडक घुस जाने की अपनी करतूत पर उसे वडा गर्व था। अवश्य ही वापू ने उसे आश्रम में स्वच्छद घूमने-फिरने एव चाहे जिससे वातचीत करने की इजाजत दे दी, हर तरह से उसकी मदद करनेका काम एक आश्रमवासी को सौंपा, और खुद उसे एक दीर्घ मुलाकात भी दी। अपने प्रति दिखाई गयी इस सौजन्यता, आत्मीयता एव निष्क-पटता से उक्त युवक इस कदर आश्चर्यचकित हुआ कि देखकर हम सबको हसी आयी।

उसी सप्ताह मैने वापू को भारतीय नेताओं के एक समूह के साथ वार्तालाप करते देखा। ये नेतागण वापू से सदेश और सूचनायें ग्रहण करने के हेतु आये थे। उनकी वातचीत हिंदुस्तानी में और वह भी द्रुत गति से होने के कारण मैं कुछ भी समझ न सका। वह पूरी हो जाने पर जब मैं वापू के पास गया तब मुझे उनका सारा शरीर कापता हुआ और पसीने से तर-व्तर नजर आया। किसी भी मामले में एक वार हाथ डालने पर वापू उसमें इसी तरह अपनी सारी ताकत लगा देते हैं।

प्रिय ग्रेग,

आपका पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई, और साथ ही खेद भी। प्रसन्नता हुई आपकी श्रद्धा और आपका उत्साह देखकर। और खेद राधा की असाध्य बीमारी के समाचारो को पढकर। मै इतनी ही आशा करता हू कि आपके लिखे ये समाचार गलत साबित होगे। और आखिर आप और मै दोनो 'ईश्वरेच्छा वलीयसि' इतना ही तो कह सकते है। मेरा यह भी विश्वास है कि बाह्यत दुर्भाग्यपूर्ण दिखाई पडनेवाली कोई बात वास्तव मे सदैव वैसी ही नहीं होती। इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग मे भी इन विषयो सबधी हमारा ज्ञान कितना अल्प है!

आपकी पुस्तक का सशोधित सस्करण प्राप्त होने पर यदि मै उसे पढ न सका तो प्यारेलाल या दूसरे लोग पढकर मुझे बता दगे। आप दोनो को प्यार,—बापू।"

पटने (यू एस ए),
१५–१–१९४६.

कुछ संस्मरण

एगाथा हैरिसन

सन् १९२१ ई० मे मै कार्यवश चीन गई। तब हिंद ब्रिटेन के बीच की तनातनी उग्र रूप धारण करती जा रही थी, कई काग्रेसी नेता गिरफ्तार किये जा चुके थे। चीन के लोग भारत के, और विशेषतया गाधी जी के बारे म मुझसे जो सवाल करते थे उनके द्वारा भारत की घटनाओ के प्रति उन लोगो के अनुराग का मुझे पता चल गया था।

१९२१ ई० मे 'रायल कमिशन आन लेबर' के साथ भारत आने पर ही मैने पहले पहल गाधी जी का दर्शन किया। जब हम दिल्ली पहुचे तब वे भी वही पर थे। उनका भाषण होनेवाला है ऐसा सुनकर मै सभास्थान पर उपस्थित हुई। भारत की सार्वजनिक सभा सबधी मेरा यह पहला ही अनुभव था। कडी धूप मे भी हजारो की तादाद म लोग इकट्ठा हुए थे। सुदूर कोने म मच बना हुआ था, जहा बडी कठिनाई से मुझे पहुचाया गया। वहा पर, एक मिशनरी स्त्री को छोडकर, अपवाद स्वरूप उपस्थित एकमात्र ब्रिटिश व्यक्ति मै ही थी। हठात् एक छोटी सी आकृति भीड को चीर कर आगे बढती हुई नजर आई। उस

'आफत के पुतले' के बारे मे पहले से बहुत कुछ सुन रखने के कारण मैं सोचती थी कि वह ब्रिटिश सरकार पर आग उगलेगा। किन्तु ऐसा कुछ भी तो नहीं हुआ। बिना किसी प्रकार के उद्घोषों के, एक साधारण भाषण द्वारा उन्होंने उपस्थित लोगों से कठोर आदेशस्वरूप इतना ही कहा कि यदि वे स्वराज्य चाहते हैं तो उन्हें अनुशासनबद्ध होकर काम मे लग जाना चाहिये। पश्चात् वे किसी फड के लिए उन कीमती चीजो का, जो उन्हें भेंट के तौर पर मिली थीं, नीलाम पुकारने लगे। फिर वे वैसे ही झटपट लौट गये, जैसे कि आये थे। इस अद्भुत व्यक्ति का मेरे मन पर जो अमिट प्रभाव पडा उसके कारण मैं बार बार यही सोचती थी कि यदि उससे बातचीत करने का मौका मुझे मिलता तो कितना अच्छा होता! इसी इच्छा के साथ मैं भी अपने डेरे पर लौट आई।

अक्तूबर १९३१ ई० मे मैं महात्मा जी से मिली। उस समय मैं सी. एफ. ऐंड्रयूज के साथ, जो द्वितीय गोलमेज-परिषद के लिए लदन पधारनेवाले अपने इस मित्र के स्वागत की तैयारी मे लगे थे, काम कर रही थी। उनके आगमन के दूसरे ही दिन मैं किंग्सले हाल मे उनसे मिलने गई। मैंने उन्हें अपने छोटे से कमरे में कागजपत्रों के ढेर से घिरा पाया। वह उनका मौन-दिन था। मौनधारी के साथ किस तरह बातचीत की जाय यह मेरी समझ में आ नहीं रहा था। फिर भी, मुझे याद है कि, स्वत को उनके प्रवासी-साथियों मे से एक अनुभव करती हुई ही मैं वहा से लौट आई।

पायेंगे।" इसके जवाब मे गाधीजीने उसे इस आशय का पत्र भेजा कि "आप सनेत्र न होने पर भी आपके अन्तर्चक्षु खुले हुए है।" यह उत्तर उसे कितना अनमोल मालूम हुआ होगा! स्मरण रहे कि उन दिनो अत्यधिक कार्यव्यस्त होने पर भी उन्होने उक्त वुढिया के पत्र की ओर सर्वप्रथम ध्यान दिया। दीन-दुखियो की बाते सुनने के लिए उनके पास कभी भी वक्त की कमी नही रहती।

लदन से विदा होने के पूर्व गाधीजीने 'हमारे उभय देशो के बीच पारस्परिक सद्भाव निर्माण करने का कार्य' हममे से कुछ व्यक्तियो को सौपा। इस कार्य मे हम लोगो का पथ-प्रदर्शन करने के लिए जब मैने उनसे कहा, तब वे बोले, "प्रभु ही आपको रास्ता दिखावेगे।"

१९३८ ई० के शुरू मे 'देखने और सुनने' के हेतु मैने भारत-यात्रा की। मेरे वहा पहुचते ही मुझे गाधीजी का एक पत्र मिला, जिसमे उन्होने लिखा था कि वे राजेन्द्रबाबू के साथ विहार के भूकप-ग्रस्त भागो के दौरे पर जा रहे है, और क्या उनके सग मै भी चल सकूगी? साथ ही उन्होने यह भी सूचित किया था कि इस दौरे मे यूरोपियन ढग की सुख-सुविधाये वे मुझे कतई दे न सकगे। लेकिन इसके बावजूद आतिथ्यशील बापू ने हम लोगो के साथ के सामान म चाय का एक वडा सा पैकेट, जिसे वे 'जहर' कहते है, रख ही दिया था। हम ब्रिटेनवासियो की चायपान की आदत पर मुझे एक मजेदार व्याख्यान सुनाते हुए उन्होने कहा कि इसकी अति के कारण ही ब्रिटेन अग्निमाद्य का शिकार बना हुआ है। फिर भी इस दौरे मे मैने देखा कि उनकी पार्टी के कई लोग हर रोज तडके चार बजे उठकर मेरे इस 'जहर' मे हिस्सा बटाने के लिए लालायित रहते थे।

इसी दौरे मे मैने गाधीजी और राजेन्द्रबाबू को घरबार रहित लोगो के बीच घूमफिर कर उन्हे धैर्य प्रदान करते देखा। गाधीजी का तो सदैव की भाति यही एक सन्देश था —"इस सकट से आप क्या शिक्षा ग्रहण करते है? सरकार और काग्रेस, हिंदू और मुस्लिम, स्पृश्य और अस्पृश्य इनके बीच के भेदभावो का इस समय विचार न करना चाहिये। और सहायता-कोष से जो भी रकम आप ले, उतनी उपार्जित कर दिखावे।"

इसके बाद हमने हरिजन-कार्य के लिए उडीसा के कुछ भागो का भी दौरा किया। गाधी जी मे परिहास-वृत्ति प्रचुर मात्रा म है। क्योकि दो-तीन बार,

जव कि रात के वक्त हम अपने डेरे पर थके मादे लौट रहे थे, उन्हे दौड लगाने की सूझी। चुनाचे हम सवको उनके साथ दौडना ही पडा।

इसी दौरे में मैंने गाधीजी के साथ, उन्हीके आदेशानुसार 'उभय राष्ट्रा के वीच पारम्परिक सद्भाव निर्माण करने के कार्य मे जो रुकावटे थी उनकी, विस्तार स चर्चा की।

एक अन्य प्रसग अवश्य उल्लेखयोग्य है। गर्मी के दिन थे। दोपहर का समय। गाधी जी का मौन-दिन था और वे अपने नाम प्राप्त अनगिनत पत्रो को देख रहे थे। मैं भी अपनी डाक देखने म व्यस्त थी। उसम अमेरिका से निकलने वाले 'क्रिश्चन सच्युरी' के ता १४ मार्च १९३४ के अक की एक प्रति मिली। सहसा इसी अक म प्रकाशित निम्न सपादकीय टिप्पणी पर मेरी नजर पडी —

नोवेल शांति-पुरस्कार के लिए
हम गांधीजी का नाम प्रस्तावित करते हैं।

पुरस्कार के सस्थापक की प्रबल इच्छा थी । यद्यपि ये दोनो प्रकार की सेवायें बडी ही मूल्यवान हैं, फिर भी यदि इस पुरस्कार के द्वारा ससार के इतिहास पर कुछ विशेष प्रभाव डालना हो तो वह कूटनीतिज्ञो और राजनीतिज्ञो की अपेक्षा सृजनक्षम ध्येयवादियो को ही उनके पुरुषार्थी सद्गुणो की प्रशसास्वरूप प्रदान किया जाना चाहिये । गाधी जी के कटु आलोचको के कथनानुसार यदि यह भी मान लिया जाय कि उनकी सिद्धातनिष्ठा सर्वथा अव्यवहार्य है, तो भी वर्तमान ससार म अहिंसा-सिद्धात के वे ही सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि है यह तो सत्य ही है । इस पर भी यदि नोबेल-पुरस्कार के लिए वे अत्यत योग्य उम्मीदवार मालूम न होते हो तो इस पुरस्कार के कार्य और उद्देश्य सबधी सर्वसाधारण मे प्रचलित वर्तमान धारणा अवश्य ही बदल देनी पडेगी । "

मैने आख उठाकर उस आत्ममग्न महात्मा— 'अहिंसा सिद्धात क श्रेष्ठतम प्रतिनिधि' एव 'अपने युग की विचारधारा से जिसके विचार कही आगे बढे हुए है' ऐसे पुरुष—की ओर दृष्टिपात किया और उक्त पत्रिका उनके सामने की । उसे पढते समय उनके चेहरे पर उठनेवाले भाव मननयोग्य थे । फिर, रद्दी कागज का एक छोटा सा टुकड़ा उठाकर उन्होंने उस पर लिखा —

"*क्या आप किसी ऐसे स्वप्नदृष्टा को जानती है जो 'आकस्मिक सहायता'* द्वारा ससार का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सका हो ?"

खूब मुस्कराहट के साथ वह टुकडा मेरे हाथ मे रख कर वे पूर्ववत् अपने काम मे, जिसमे कि मेरे कारण बाधा पहुची थी, लग गये ।

नार्वे स्थित आतराष्ट्रीय महिला-परिषद् की ओर से मुझे इस आशय का सदेशा प्राप्त हुआ है कि इस वर्ष दिये जानेवाले नोबेल शाति-पुरस्कार के लिए परिषद् गाधी जी का नाम प्रस्तावित करने जा रही है । और ता १६ मार्च १९४७ के समाचार-पत्रो मे भी निम्न खबर निकली है —

"इस वर्ष के नोबेल शाति-पुरस्कार के लिए प्रस्तावित उम्मीदवारो मे प्रेसिडेट एडवर्ड बेनेस, महात्मा गाधी, मि हर्बर्ट लीमैन एव 'युनर्रा' के भूतपूर्व डाइरेक्टर सर जान बायड-ओर के नाम भी सम्मिलित है ।"

इसी दौरे के समय की और एक घटना, गाधीजी के भीतर की वैशिष्ट्य-पूर्ण न्यायपरता एव समदर्शिता के उदाहरणस्वरूप, मै यहा उद्धृत कर रही

है। हमारी पार्टी के साथ लगभग अठारह बरस की उम्र का एक हृष्टपुष्ट जर्मन युवक था। गांधी जी ने उसे अपने साथ चलने की इजाजत दे रखी थी, जैसी कि वे अपने जीवन-मार्ग के संबंध में जानकारी प्राप्त करने के हरेक इच्छुक को दे देते हैं। यह युवक स्वयंसेवक का काम करता था और प्रायः सब के लिए उपयोगी साबित हो रहा था। फुरसत के वक्त वह लंबे पत्र और लेख टाइप कर जर्मनी भेजा करता था।

हम सभी साथियों को गांधी जी का यह संकल्प, कि इस दौरे के दरमियान वे खुद या उनकी पार्टी का कोई भी व्यक्ति राजनीतिक भाषण न करे, मालूम हो चुका था। उड़ीसा में एक स्थान पर हम काफी दिनों तक ठहरे। इस मुकाम में उक्त जर्मन नवयुवक ने स्थानीय विद्यार्थियों की एक महती सभा में भाषण दिया। हममें से किसी को भी इसका पता न था। यदि वह अपने देश की घटनाओं के बारे में बोलता तो कुछ बखेड़ा ही खड़ा न होता। किंतु इसके विपरीत उसने भारत में प्रस्थापित ब्रिटिश शासन-प्रणाली के भीतर की बुराइयों एवं खुद की सुनी हुई दमन की कहानियों का वर्णन किया। अगले ही दिन उक्त युवक के नाम उस जिले के ब्रिटिश अधिकारी का एक पत्र आया जिसमें उसे यह चेतावनी दी गयी थी कि यदि आयन्दा इस तरह की किसी सभा में उसने भाग लिया तो उसे वह प्रांत छोड़कर जाना पड़ेगा। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के एक और प्रमाणस्वरूप प्राप्त इस पत्र से प्रसन्न होकर उक्त युवक ने यह पत्र

नही चाहते तो तुम्हे तुरत हमारी पार्टी से अलग हो जाना चाहिये। और खुद उन्होने ही प्रस्तुत घटना के अनुरूप एक पत्र तैयार कर उसे दिया। यह गाधी जी का अपने ढग का पत्र था, किंतु उस हठी जर्मन युवक ने उस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया। आखिर गाधी जी ने उसे उक्त पत्र के साथ मेरे पास भेज दिया। कई घटे बाद उसने गाधी जी द्वारा तैयार किये गये मसविदे को अपनी स्वीकृति प्रदान की। फिर वह पत्र उक्त ब्रिटिश अधिकारी के पास भेजा गया, और दिमाग झडा हुआ वह जर्मन नवयुवक हमारे साथ रहा। गाधी जी के उपरोक्त व्यवहार से वह अत्यत प्रभावित हुआ। आगे उसका क्या हुआ कुछ पता ही न चला।

१९३६ ई० के उत्तरार्ध मे मैं पुन भारत गई। तब गाधी जी सेवाग्राम की स्थापना मे व्यस्त थे। दिल्ली की तडकभडक से सेवाग्राम पहुँचने पर मैंने देखा कि शक्ति का वास्तविक केंद्र यही है,—और वह भी सरल व सुलभ। यहा मैंने चुबक की ओर आकर्षित होनेवाले लोहे की नाई गाधी जी की ओर न केवल भारत के, अपितु ससारभर के अनेकानेक लोगो को आकर्षित होते देखा।

भारत—सरकार के १९३५ ई० के विधान के अनुसार देशभर मे चुनावो की धूम मची हुई थी। उक्त विधान की आलोचना करते हुए गाधी जी ने कहा, "आपने घर तो हमारे सुपुर्द किया, लेकिन उसकी तालिया अपने पास ही रख छोडी है।"

१९३८ ई० का वर्ष म्यूनिक-काड एव युद्धविषयक अफवाहो के कारण बडा ही विचित्र और व्यग्रतापूर्ण रहा। उसी वर्ष के शरत्काल मे मैं भारत पधारी। प्रातीय सरकारो के अधिकार-ग्रहण को सालभर से भी अधिक समय बीत चुका था। कई देशी रियासतो मे गभीर रूप से अशाति छाई हुई थी। इस प्रकार मुझे प्रातो और रियासतो दोनो की घटनाओ के अध्ययन का सुअवसर मिला। क्योकि प्रातीय सरकारो और रियासतो के नेतागण सलाह-मशवरा पाने के लिए सेवाग्राम आते रहे। यूरोप से भी बहुत से लोग आते थे। मुझे याद है कि एक बार फिलस्तीन से भी एक प्रतिनिधि—मडल आया था और गाधी जी ने उसे भी सलाह दी थी। उन्होने विशेष रूप से यही कहा कि यहूदियो और अरबो को मिलजुल कर रहना सीखना ही पडेगा।

क्षितिज पर जब युद्ध के बादल मडराने लगे तब मैने उनसे कहा कि पश्चिम के कुछ शातिवादियो की यह तीव्र इच्छा है कि आप वहा आकर उनसे मिले, ताकि वे अहिसा के आचरण सबधी आपके दीर्घ अनुभवो से लाभ उठा सके। वे बोले, 'पहले मुझे अपना यह तत्र भारत मे ही सिद्ध कर दिखाना चाहिये; बगैर ऐसा किये दूसरे देशो को मै वह कैसे सिखा सकता हू ?' उनके इस दृष्टि-कोण की मैने मन ही मन प्रशसा की, किंतु मेरा समाधान नही हुआ। फिर भी यह तो स्वीकार ही करना पडेगा कि घटनायें इस कदर तेजी के साथ घटती जा रही थी कि अनेक लोगो की तीव्र इच्छानुसार हिटलर से खुद जाकर मिलना उनके लिए सभव ही नही हो सकता था।

१९३९ ई० से १९४५ ई० तक का काल घृणित स्वप्न की भाति रहा। भारत और ब्रिटेन के बीच 'पारस्परिक सद्भाव' निर्माण करने के हमारे कार्य मे अनेक दुस्तर कठिनाइया उपस्थित हो गई। डाक या तो देर से मिलती, या रास्ते मे ही गुम हो जाती थी। चुनाचे गाधी जी और अन्य नेताओ के वक्तव्यो से हम वचित रह जाते थे। समूचा राष्ट्र युद्धकार्य मे जोत दिया गया था। बहुसख्य लोगो की राय मे प्रस्तुत युद्ध प्रकारातर से धर्मयुद्ध ही था। अत इसके विरुद्ध जो कोई लिखित या मौखिक रूप मे शका प्रदर्शित करता था वह 'देशद्रोही', ब्रिटिश-विरोधी' आदि घोषित कर दिया जाता था।

१९४२ ई० का 'भारत छोडो' प्रस्ताव स्वीकृत होते ही तो गाधी-विरोधी भावना चरम सीमा पर पहुच गई। 'पीठ पीछे निंदा', 'ब्रिटिश विरोधी', 'युद्ध-प्रयत्नो मे बाधा' आदि शीर्षको से इसे प्रसिद्धि दी गई। उस समय के व्यगचित्रो मे भी यह प्रबल विरोधी भावना प्रतिबिबित हुई है। काग्रेस-प्रस्ताव का मसविदा दीर्घदृष्टि होने पर भी उसके अतिम वाक्य के कारण उसकी ओर बहुत ही कम ध्यान दिया गया। युद्धकाल मे सार्वत्रिक सत्याग्रह-आदोलन छेड़ने की धमकी दी गई है। इस हालत मे कोई भी सरकार इसके विरुद्ध वही उपाययोजना करती, जो कि की गई है, ऐसा तर्क किया जाने लगा। किंतु जब तक वायसराय से अपनी मुलाकात नही होती तब तक किसी भी प्रकार का आदोलन छेडा नही जायगा, इस अर्थ की गाधी जी द्वारा स्पष्ट रूप मे की गई घोषणा का हमे पता चलने के पूर्व ही, वे और अन्य नेतागण जेलो मे बद कर दिये गये।

इसके कुछ ही महीने बाद गाधी जी के उपवास की खबर आ पहुची। शातिकाल मे ही बहुत कम स्त्री-पुरुष इन उपवासो का उद्देश्य समझ पाये थे। युद्ध-काल मे तो उक्त उपवास को लक्ष्य कर ऐसा कहा जाने लगा कि ससार भर के लाखो स्त्री-पुरुष अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए आत्मबलिदान कर रहे हैं। "फिर बूढे के बलिदान की बात पर आप लोग इतनी चिल्ल-पों क्यो मचाते है ? क्या हमारे लोग भी वैसा ही बलिदान नही कर रहे हैं ?" "ऐसे समय मे, जब कि ब्रिटिश सरकार अनेक झझटो में फसी हुई है, उसे और अधिक आफ्त में फसाने के लिए ही यह आदमी उपवास कर रहा है।" "यह नैतिक हिंसा है; यहा उनकी अहिंसा आती ही कहा है ?" आदि आदि प्रश्न किये जाने लगे। किंतु इस सब के बावजूद, घालमेल के उन दिनो मे भी, उनके उपवास विषयक प्रतिदिन की खबरें समाचार-पत्रों के मुखपृष्ठ पर स्थान पाती ही रहीं।

उन भयकर वर्षों मे विपर्याय के ज्वार के विरुद्ध हम निरतर सघर्ष करते रहे। यह विपर्याय पूर्णतया नहीं तो मुख्यतया गाधी जी के ही विरुद्ध था। शाति और धैर्य के साथ हम गाधी जी के विचारो की व्याख्या करते रहे, और इस बीच हमने साहित्य भी काफ़ी प्रकाशित किया।

१९४५ ई० के अत में मैंने किसी प्रकार भारत-यात्रा के लिए टिकट प्राप्त किया। तब गाधी जी कलकत्ते मे थे। अखिल भारतीय महिला-परिषद् का अधिवेशन समाप्त होते ही मै उधर चली गई। मन मे सोच रही थी कि विगत वर्षो की घटनाओ का उनपर क्या परिणाम हुआ होगा ? किंतु उन्होने इतने उत्साह से मेरा स्वागत किया कि ये वर्ष क्षण-सदृश्य प्रतीत हुए। मै जब पहुची तब वे अपने पेटपर गीली मिट्टी का मोटासा पोलटिश रखकर आराम कर रहे थे। "निश्चय ही तुम मेरे साथ मद्रास चल रही हो," वे बोले। और अगले दिन हम सब 'गाधी-स्पेशल' से रवाना हुए। 'स्पेशल' से साधारणतया जो अर्थ लिया जाता है उस तरह की ट्रेन तो यह थी नही, एक इजन, गार्ड का एक डिब्बा और तीसरे दर्जे का एक डिब्बा, बस ऐसी ही थी यह स्पेशल! इस प्रकार के सफर में शातिपूर्वक बाते करना सभव ही नही, क्योकि रास्तेभर लोगो की भीड़ लगी रहती है। इस अवस्था मे भी उनके साथ चर्चा करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। विगत वर्षो की घटनाओ के सबध में हमने विशेष चर्चा नही की; क्योकि वर्तमान परिस्थिति ही उससे कही अधिक शोचनीय बन गई थी। इस दौरे मे मैंने देखा कि वे लोगो को शात कर रहे है, उन्हे नारे लगाने से रोक रहे है और आग्रह-पूर्वक यह समझा रहे है कि यदि वे स्वराज्य चाहते है तो कतई अनुशासन-भग न करे।

युद्ध-काल मे हम बराबर यही सुनते रहे कि—"मि. गाधी की शक्ति का न्हास हो चुका है।" किंतु मुझे तो वे शक्तिशून्य दिखाई नही पड़े, इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न विचारो के लोगो पर का उनका प्रभाव देखकर मैं दग रह गई। आजकल के दिनो मे, और वर्तमान युग मे, आध्यात्मिक शक्ति द्वारा उस प्रकार प्रभाव जमाने की यह बात अद्वितीय ही मानी जायगी।

त्रिप्स-मिशन के दिल्ली पहुच जाने पर होरेस एलेक्जेडर के साथ मैं भी वहा उपस्थित हो गई। त्रिमत्रियो से हम व्यक्तिगत रूप से परिचित थे; और भारतीय नेताओ का परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य भी हमे प्राप्त हो चुका था। चुनाचे हमने सोचा कि शायद 'पारस्परिक सद्भाव' निर्माण करने का मोका मिल जायगा। बहुत ही दिक्कत भरे दिन रहे वे। वायसराय-भवन मे थोडी ही दूरी पर हरिजन-कालनी स्थित गाधी जी की कुटिया समस्त हलचलो का सचालन-केंद्र बनी हुई थी, और देश एव ससार भर के लोग उसकी ओर आकर्षित हो रहे थे।

दिल्ली और शिमला में उनके सहवास मे बिताये हुए इन चद सप्ताहो की अवधि मे वर्तमान व भविष्य के सबध मे उनके साथ चर्चा करने का मुझे और एक अवसर मिला। दिल्ली से अपने हवाई-जहाज के छूटने के ठीक पहले में उनसे आज्ञा लेने गई। तब उन्होने लगभग वही शब्द दुहराये जो कि पद्रह वर्ष पूर्व कहे थे। अर्थात्—"भगवान् तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगे।"

छ हजार मील दूरी पर स्थित हम लोगो का ध्यान अहिंसा-शास्त्र विषयक उनके अतिम प्रयोग की ओर लगा हुआ है। "आध्यात्मिक जागति का एक ऐसा प्रयास जिसके समतुल्य उदाहरण इतिहास मे कमही मिलेगे।" इन शब्दो मे एक समाचार-पत्र ने इसका वर्णन किया है। श्रीरामपुर से मेरे नाम भेजे हुए अपने एक पत्र में वे लिखते है —

'यहा वगाल के एक दुर्गम भाग मे मै हू और अपने जीवनोद्देश्य के अत्यत कठिन अश को मैने उठाया है। यदि यहाँ के अपने कार्य में मै सफल रहा तो आगे के कार्य योग्य भी वन जाऊगा।"

वगाल और विहार मे उनकी उपस्थिति आवश्यक है यह तो सिद्ध ही हो चुका है। किंतु ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई इस घोषणा के बाद से, कि जून १९४८ मे भारत की शासन-व्यवस्था ब्रिटिशो के हाथ से भारतीयो के हाथ में चली जायगी, एक नई परिस्थिति पैदा हुई है। गाधी जी सदा यही सपना देखते आये है कि अहिंसक साधनो द्वारा स्वराज्य-प्राप्ति हो। इस दृष्टि से अपना 'भावी कार्यक्षेत्र' दिल्ली है यह बात क्या सभवत उनके ध्यान में आयगी?

लदन,
२०-३-१९४७

मो. क. गांधी

कार्ल हीथ

अनेक वर्षो से गाधी जी के उपदेशो से परिचित होते हुए एवं उनका अध्ययन कर चुकने पर भी १९३१ ई०, याने गोलमेज-परिषद् के लिए काग्रेस के प्रतिनिधि के नाते गाधी जी के लदन पधारने तक, मै व्यक्तिगत रूप से उनका परिचय प्राप्त कर न सका। अवश्य ही उस समय तक वे सार्वजनिक क्षेत्र के एक अत्यत महत्वपूर्ण व्यक्ति बन चुके थे। इस ख्यातनाम और कुछ अशो मे खतरनाक मेहमान की सतर्कता से रक्षा करने का भार लदन के दो चतुर जासूसो को सौपा गया था। यही दो जासूस इग्लैंड मे शाही मेहमान के तौर पर समय समय पर पधारे हुए विदेश के विभिन्न राजाओ और प्रमुख व्यक्तियो के 'रक्षक' रह चुके थे। इनमे से एक ने मुझे बताया कि इससे पहले मि. गाधी जैसी समस्या से उसका कभी भी पाला नही पडा था। क्योकि यह इडियन उन राजाओ या राजपुरुषो की अपेक्षा, जिनसे कि बहुधा उसे काम पड़ता था, सर्वथा भिन्न था। उनकी योग्यता का दूसरा कोई भी व्यक्ति वेस्ट विभाग के किसी साधन-सपन्न होटल को छोडकर ईस्ट-एड जैसी इग्लैंड की कगाल बस्ती मे खुद होकर ठहरना कदापि पसद न करता। प्रात. छ. बजे, जब कि परिषद् के लिए पधारे हुए उनके साथी-प्रतिनिधि, अर्थात् राजे-महाराजे एव राजनीतिज्ञ व्यक्ति, वेस्ट-एड स्थित होटलो मे निद्रामग्न होते थे, वे सैर करने निकल पड़ते थे। अलावा इसके उनके सभी प्रकार के कार्य-क्रमो पर नजर रखनी पड़ती थी। जैसे इग्लैंड के बादशाह एव अन्य प्रमुख ब्रिटिश व भारतीय व्यक्तियो से होनेवाली उनकी मुलाकाते, सभा-समितियो की बैठको मे उनकी उपस्थिति; आदि। इस नाटे से महापुरुष को लदन के इस या उस पार के उसके निर्दिष्ट स्थान पर ठीक वक़्त पर सुरक्षित रूप से पहुँचा देना पडता था। क्योकि, यदि सच कहा जाय तो, समय की पाबदी सबधी पाश्चात्यो की कल्पनाओं का उन्हे हर घड़ी ख्याल रहता ही हो ऐसी बात नही थी।

धनियो की अपेक्षा गरीबो के बीच आकर ठहरने के लिए म्यूरिएल लेस्टर द्वारा दिया गया निमत्रण गाधी जी ने स्वीकार किया है यह देखकर ईस्ट-एड निवासी बहुत ही प्रभावित हुए। लदन के उनके इस मुकाम में अन्य किसी भी बात की अपेक्षा इस बात का ही अधिक असर पडा ऐसा मेरा ख्याल है। विचार-शील लोग भी इस बात मे मन पूर्वक रस लेने लगे, और उनसे मिलने व बात-चीत करने के लिए बडे उत्सुक दिखाई पडे। चुनाचे ३१ अक्तूबर १९३१ को 'फरेण्ड्स हाउस' स्थित अपने कमरे पर (उस समय मै इटरनैशनल सर्विस के फरेण्डस कौन्सिल का मत्री था) सार्वजनिक क्षेत्र मे काम करनेवाले ऐसे तीस-चालीस व्यक्तियो से मिलने के लिए, जिनमे राजनीतिक व सामाजिक कार्य-कर्ता, पत्रकार, लेखक, प्रकाशक एव अन्य लोग सम्मिलित थे, मैने उन्हे निमत्रित किया। वे आये, और उन्हे उन प्रश्नो की टाइप की हुई एक सूची दी गई जो कि उपस्थित महानुभाव उनसे पूछना चाहते थे। उन प्रश्नो को ज़ोर से सिल-सिलेवार पढकर हृदयग्राही स्पष्टता के साथ उनका जवाब वे देते गये। अवश्य ही अनेक व्यक्ति उनके निर्णयो से असहमत हुए; किंतु सभी ने यह अनुभव किया कि भारतीयो के हृदयो में अग्रस्थान प्राप्त करनेवाले इस व्यक्ति के विचार जान लेने की दृष्टि से प्रस्तुत अवसर अपूर्व रहा। साथ ही यह सम्मेलन प्रत्यक्ष सपर्क की भावी सभावनाओ एव उनके परिणामस्वरूप स्थापित होनेवाले पारस्परिक सामजस्य का सूचक प्रतीत हुआ।

तदनुसार हमने 'इडिया कन्सीलियेशन ग्रूप' ('भारत स्नेहवर्धक मडल) की स्थापना की। और १९३१ ई० के उस स्थापना-दिवस से लेकर आज तक अनगिनत व्यक्तिगत एव आपसी चर्चाओ द्वारा भारत के प्रति स्नेहभाव बढाने का सौभाग्य इस मडल को प्राप्त हो चुका है। इस सबध मे जिन जिन लोगो ने मुलाकाते की गई उनमे समय समय पर लदन पधारे हुए ख्यातनाम भारतीय स्त्री-पुरुष, भारत मे दीर्घ काल तक सेवाकार्य कर या विशेष रूप से भारत-यात्रा कर लौटे हुए ब्रिटिश स्त्री-पुरुष, तथा भारत के प्रति अत्यत आस्था रखनेवाले विशिष्ट यूरोपियन और अमेरिकन व्यक्ति सम्मिलित थे। इन मडल ने गाधी जी की एव अन्यो की मार्फत भारत के कई लोगो से निकट सपर्क स्थापित करने के साथ ही साथ भारत-मत्री, वाइसराय, गवर्नरो, जजो आदि से, इतना ही नही बल्कि इडिया आफिस, भारत के हाई-कमिश्नर एव

पार्लमेंट के कई सदस्यो के साथ भी व्यक्तिगत रूप से सपर्क स्थापित किया है। मिस एगाथा हैरिसन प्रारभ से ही इस मडल की अवैतनिक मत्रिणी रही है, और मडल के कार्यो का अधिकाश श्रेय उन्ही की कार्यक्षमता एव व्यक्ति व व्यवहार विषयक उनकी अचूक परख को ही देना पड़ेगा। मडल के सदस्यो मे विभिन्न विचारो के ऐसे लोग रहे है, जिन्होने भारतीय परिस्थिति का ख्याल रखते हुए सभी दलो, वर्गो एव धर्मो के लोगो के सबध मे सहानुभूति के साथ सोचने का प्रयत्न किया है। बुद्धियुक्त स्नेहवर्धन द्वारा तरक्की हासिल करना इस मडल का एकमात्र ध्येय रहा है। परिणाम-स्वरूप काफी स्नेहभाव और सद्भाव पैदा किया गया। इसमे योग भी बहुत से लोगो ने दिया। फिर भी इसका उपक्रम तो मो. क. गाधी के चित्ताकर्षक व्यक्तित्व में आयोजित उक्त अपूर्व सम्मेलन मे ही हुआ, यह बात कभी भी भुलाई नही जा सकती।

गाधी जी ऐसे समय लदन पधारे जब कि भारत मे लकाशायर के माल का बहिष्कार-आदोलन चल रहा था। लकाशायर पधारने का निमत्रण स्वीकार कर बहिष्कार का परिणाम अपनी आखो देखना कुछ कम साहस का काम नही था। डार्वेन नामक एक वस्त्रोत्पादक केंद्र मे आयोजित सार्वजनिक सभा में स्थानीय मजदूरो ने उनके सामने अपना दुखडा रोया। बहुत ही ध्यानपूर्वक एव सहानुभूति के साथ उन्होने वह सुन लिया। फिर बिल्कुल ही सहजभाव से वे बोले, "आप लोगो ने अभी जो कुछ कहा वह सब अत्यत सहानुभूति-पूर्वक मैंने सुन लिया है। अवश्य ही आपको काफी कष्ट उठाने पड रहे है। किंतु मेरे देशवासी तो आपसे भी दस गुना अधिक गरीब है। सो मैं क्या करू?" सुनकर मजदूर उनकी ओर अवाक् देखते ही रह गये। सब मामला झट उनकी समझ मे आ गया।

इसी समय लिखी गई अपनी एक पुस्तिका से और एक घटना मैं यहा उद्धृत करता हू :—

"लदन स्थित फरेण्ड्स हाउस के बीचोबीच एक छोटासा सभा-गृह है। क्वेकर लोगो के अन्य स्थानो की भाति यह स्थान भी सीधासादा है, किंतु ऐसा होने पर भी वह सुदर है। आज का दिन कुछ विशेषता रखता है। सभा-स्थान की कुर्सिया पीछे की ओर खिसकाकर बना ली गई विस्तृत चौरस जगह में लबा-चौड़ा हिदुस्तानी गालिचा बिछाया गया है। और कुछ मदज्योति दीपक

छतो से लटका दिये गये हैं। भारत के लिए मूक-प्रार्थना करने के हेतु यह सभा हो रही है।

"भारतीय गोलमेज-परिषद् के दरमियान, हर सप्ताह होनेवाली इस प्रार्थना-सभा मे हिंदू, मुसलमान एव ईसाई महानुभाव अपनी अपनी सदिच्छाए ईश्वरार्पित करने के लिए आते रहे। सभा मे एक भी शब्द बोला न जाता था, क्योंकि भिन्न भिन्न भाषी एव विभिन्न धर्मी लोग निर्दोष और सार्थ शब्द शीघ्रता से कैसे ढूढ पाते ?

"भारतहितार्थ आयोजित इस छोटी सी प्रार्थना-सभा मे महात्मा गाधी और हिंदू महानुभाव आये। उधर से शौकतअली और मुसलमान भाई भी आये। भारतीय ईसाई, लार्ड चैन्सलर एव भारतहितैषी अन्य अनेक अग्रेज मित्र भी प्रार्थना करने के लिए पधारे।"

इन प्रार्थनाओ का यह दृश्य, उनकी फलप्राप्ति में अभी विलब होने पर भी, सूचक और उल्लेखयोग्य है।

१९३६–३७ ई० के दरमियान मैं भारत मे ही रहा। १९३६ के आखिर मे मैं दो बार वर्धा हो आया। पहली बार सी एफ. ऐंड्रयूज और एगाथा हैरिसन के साथ जमनालाल जी बजाज के अत्यत आतिथ्यशील वासस्थान पर मैं ठहरा था। तब, अपनी इस पहली ही मुलाकात के समय, स्वागतार्थ हमारी ओर बढनेवाले गाधी जी की हसमुख मूर्ति आज भी मेरी आखो के सामने स्पष्ट झलक रही है। हमारे प्रिय मित्र महादेव देसाई द्वारा पहले से नोट कर रक्खे गये विभिन्न विषयों पर बडी देर तक हमने बाते की। गाधी जी नीचे बिछायी हुई एक गद्दी पर बैठ गये। और एक अग्रेज़ होने के कारण मुझे बैठने के लिए कुर्सी दी गई। अवश्य ही वह अस्वीकार कर मैं अपने यजमान की ओर मुखातिब होकर जमीन पर ही बैठ गया। तत्कालीन समस्याये और उनके खुद के जीवन-सिद्धात, लगभग दस वर्ष पूर्व के हमारे इस वार्तालाप के विषय रहे। पूरे वार्तालाप के दरमियान मैंने उनमे ऐसी सजग प्रज्ञा के दर्शन किये कि जिसके कारण वे किसी भी प्रश्न का अविलब आकलन कर उसका अचूक उत्तर दे पाते थे। कभी खुले दिल से वे ऐसा भी कबूल करते थे कि फलाने सवाल का उनके पास कोई जवाब नहीं है, या उस विषयक उनकी पहले की धारणा गलत है। यह स्पष्टवादिता उनके सर्वोत्तम गुणा मे से एक है। उनका यह महान्

वचन, कि "मेरे विचार अतीत के साथ नही अपितु सत्य के साथ मेल खाते है," मैं प्राय. उद्धृत किया करता हू । यह वचन उनके गतिशील व्यक्तित्व का द्योतक है । उनमे मोहक विनोदप्रियता भी है । जब हम लोग जाने के लिए उठकर खडे हुए तब उन्होने मुझसे पूछा, "आपकी धर्मपत्नी कहा है ?" क्योकि लदन मे वह उनसे मिल चुकी थी । "इटारसी मे, जहा कि हम लोग ठहरे हुए है ।" मैंने जवाब दिया । "अच्छा," मुस्कराते हुए वे बोले, "उसे कह देना कि अगर वह बिना मुझसे मिले भारत से विदा हुई तो मैं उसे कभी भी माफ न करूगा ।"

चुनाचे इसके कुछ ही सप्ताह बाद, मध्यप्रात छोडकर कलकत्ता जाने के पूर्व, एक लबी और धूलभरी सडक द्वारा हम इटारसी से वर्धा गये।

मैंने उन्हे बताया कि इसी समय मेरे भारत पधारने का एक मुख्य कारण यह है कि अभी भी यहा के अनेक राजनीतिक व्यक्ति जेलो मे बद होने से 'सोसाइटी आफ फरेण्ड्स' को, जिसका कि मैं सदस्य हू, बड़ा आघात पहुचा है। दडनीय प्रश्नोंसबधी एक विस्तृत विवरण सोसाइटी के पास है, और उसीने इस मामले मे वायसराय से मिलने का काम मुझे सौपा है । इसके लिए वायसराय ने अपनी स्वीकृति भी प्रदान की थी, किंतु चूकि उसी समय वे भारत के विभिन्न शहरो के दौरे पर निकलने वाले थे इसलिए कई सप्ताह तक उनसे मिलना नामुमकिन था । तब मैंने गाधी जी से कहा कि पहले कलकत्ते जाकर सर जान एडरसन से मिलने का मेरा इरादा है । सर जान उस समय बगाल के गवर्नर थे और राजबदियो के प्रश्नपर मुझसे चर्चा करने के लिए तैयार थे।

की, जो आगे चलकर पेशावर मे उनके भाई डा. खानसाहब से मेरे मिलनेपर लाभप्रद सिद्ध हुई।

उसके बाद तो अनेकानेक घटनायें घटी है। शातिकाल में एव युद्धकाल में भी लदन स्थित हम लोगो का ध्यान बराबर गाधी जी की ओर लगा रहा और उनके जेल चले जाने पर उनके कतिपय कष्टक्लेशो म भी हम हृदय से सहभागी हुए हैं। इस बीच बदलती हुई राजनीतिक परिस्थिति सबधी असख्य तारो और पत्रो का भी आदान-प्रदान हुआ। यह सारा पत्रव्यवहार, उसमे से उनके व्यक्तित्व-निदर्शक दो एक वाक्य छोडकर, मै यहा उद्धृत कर नही सकता। उदाहरणार्थ, जॉइंट पार्लमेंटरी कमीटी के जिस रिपोर्ट के फल स्वरूप १९३५ ई० का भारतीय विधान बना उसके विरुद्ध तात्विक आक्षेप प्रकट करते हुए जनवरी १९३५ मे लिखा गया उनका लबा पत्रही लीजिये। जिन शब्दो मे उन्होने इसे समाप्त किया है वे शब्द उनकी महात्मता और विनम्रता के विशेष रूप से द्योतक है।

वे लिखते है, "अत मेरे विचार उग्र होने पर भी, जैसे कि वे उपरोक्त पत्र मे सार रूप मे व्यक्त हुए है, मै आपको यह विश्वास दिलाता हू कि, ईश्वर की कृपा बनी रही तो, मै जल्दबाजी मे या क्रोध के वशीभूत होकर कोई भी क़दम न उठाऊगा। चूकि मै यह कह रहा हू इसलिए आप इस पर पूर्ण रूप मे विश्वास करे यही आपसे मेरा कहना है।

"जिन कारणो से काग्रेस से मै अलग हुआ हू उनमे से एक यह है कि राज-नीतिक क्षेत्र की सरकारी कार्यवाहियो के सबध मे मै खुद होकर उतना मौन तो अवश्य ही धारण करू जितना कि किसी भी मनुष्य के लिए सभव है। स्वेच्छा से ग्रहण किये गये अपने इस विजनवास मे मै अहिंसा की सुप्त शक्ति की खोज करना चाहता हू। अपने प्रत्येक कार्य के पीछे, फिर वह जीवन के किसी भी क्षेत्र का क्यो न हो, मेरा यही हेतु रहता है। मेरी एकमात्र अभिलाषा यही है कि मै उस मौलिक सत्य को, जो हर चीज मे मौजूद होने पर भी जिसका केवल धुधला रूप ही अभी मेरे सामने है, प्रयत्नपूर्वक ठीक ठीक समझ लू। और कष्टसाध्य छानबीन के बाद मै इस निर्णयपर पहुचा हू कि यदि मुझे सत्य को उसके सपूर्ण रूप मे देखना हो तो काया-वाचा-मनसा अहिंसा का पालन करने से ही यह सभव हो सकता है।"

पाच वर्ष बाद, याने फरवरी १९४० मे, उनके नाम भेजा गया अपना एक पत्र मैंने इन शब्दो के साथ समाप्त किया है —"एक क्वेकर, और भारतीय स्वाधीनता-आदोलन के एक दीर्घकालीन हितू के नाते मेरा ऐसा दृढ विश्वास है कि यह आदोलन स्नेह और समता के साथ ही, इन दोनो शब्दो के सभी अर्थ गृहित धरकर, समाप्त होगा और होना ही चाहिये।"

इसके जवाब मे उनका खुद का लिखा हुआ जो पत्र आया उसमे मुझे यह सूचित करने के साथ, कि मेरा पत्र उन्होने 'अनेक बार' पढा है, वे लिखते है :—"हम दोनो मे अब कभी भी मतभिन्नता होनी ही न चाहिये। क्योकि साध्य और साधनो के विषय में हम दोनो में सपूर्ण हार्दिक मतैक्य है। अतः यदि कोई भिन्नता रह ही गई हो तो वह वस्तुस्थिति विषयक अधूरी जानकारी के कारण ही हो सक्ती है।"

इस पत्र का मेरी दृष्टि मे जो महत्व है वह बताने की तो कोई आवश्यकता ही नहीं।

और मैं समझता हू कि यदि १९४१ ई० मे लिखा गया उनका एक पत्र मैं नीचे उद्धृत करू तो इसमे किसी को भी कोई आपत्ति हो नही सकती।

वे लिखते है —"काग्रेस उतनी ही नाजी-विरोधी भी है जितनी कि साम्राज्य-विरोधी। यदि सरकार ने काग्रेस की युद्धविरोधी प्रवृत्तियो पर अविवेकपूर्ण अंकुश लगा न दिया होता और उसे नाजी-पक्षीय घोषित न कर दिया होता तो वह अवश्य ही सारा भारतवर्ष,—काग्रेस के दोनो दल, अर्थात् अहिसा सिद्धात का अनुसरण करनेवाला एव हिंसक साधनो में विश्वास

इसी समय के एक दूसरे छोटे-से पत्र मे वे लिखते हैं —"सप्रति मैं प्रवल झझावात में फसा हुआ हू, और मन ही मन गुनगुनाता रहता हू कि—

Rock of Ages cleft for me,
Let me hide myself in Thee!

(एक अग्रेजी भजन से ली गई यह पक्तिया शायद सी एफ ऐड्रूज ने उन्हे गाकर सुनाई होगी।)

गाधी जी द्वारा समय समय पर मेरे नाम भेजे गये पत्रो मे उल्लिखित राजनीतिक वातो मे से कोई भी बात मैंने यहा उद्धृत नही की है। ऐसा करने का मुझे अधिकार भी नही। उपरोक्त उद्धरण भी, एक व्यक्ति की आतरिक प्रवृत्तियो का दूसरे व्यक्ति पर जो प्रभाव पडा उसपर प्रकाश डालने की दृष्टि से ही दिये गये है। न्यू टेस्टामेंट मे ईसा मसीह ने एक निष्कपट व्यक्ति का वर्णन किया है। गाधी जी के सवध मे मेरी कल्पना भी ठीक वैसी ही है। वहुतसे लोग इससे असहमत होगे। एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ने मेरे सामने गाधीजीके वारेमे अपनी राय प्रकट करते हुए कहा था कि वे सत की अपेक्षा कही अधिक कुटिल राजनीतिज्ञ हैं। किंतु मैं इससे सहमत हो नही सकता। भारत को स्वाधीनता की ओर ले जानेवाला, एक ऐसी स्वाधीनता की ओर जो कि विदेशी शासन से मुक्ति दिलाने की अपेक्षा कही अधिक अर्थ रखती है, यह पुरुष भारत के राजनीतिक एव आर्थिक जीवन मे अपने निर्दोष आध्यात्मिक मनोधर्म के साथ पैठकर ही ऐसा कर रहा है। और इसी कारण वह दुर्लभ और महान् व्यक्ति वन गया है।

गिल्डफोर्ड,
१९–११–१९४५.

जब महात्माजी चंपारन पधारे—

एक याद

जे. जेड्. होज्ज

ऐसा लगता है कि मोतीहारी, जिला चपारन स्थित हमारे घर के बरामदे मे गाधी जी ने मानो कल ही पैर रक्खा हो; पर है यह सन् १९१७ की बात। उस दिन जो मैत्री हम दोनो मे वहा शुरू हुई थी वह आजतक वैसी ही बनी हुई है, हालाकि अब मीलो विस्तृत समुद्र ने हमें परस्पर से बिछुड़ रक्खा है। लगभग एक अनजान व्यक्ति के रूप मे हमारे बीच वे आये; किंतु दक्षिण अफ्रीका-निवासी भारतीयो के अधिकारो के हिमायती के नाते उनकी कीर्ति इसके पूर्व ही यहा आ पहुची थी। चुनाचे जनता ने उनका सहर्ष स्वागत किया। अवश्य ही अत्यत अनुदार दली लोगो को उनके आगमन के कारण किसी-न-किसी प्रकार के उपद्रव की आशका होने लगी थी। किंतु आज की तरह उस समय भी 'रुको और देखो' नीतिवाक्य बना हुआ था। चंपारन मे एक लबे अरसे से कृषि विषयक समस्या पर अशाति मची हुई थी। वहा के जमींदारो और किसानों के बीच इस कदर तनातनी चल रही थी कि उनके सबध किसी भी क्षण टूट सकते थे। इस हालत मे अपनी शिकायतो की जाच के लिए पीड़ित किसानो द्वारा गाधी जी को चपारन बुलाया जाना कुछ भी आश्चर्यप्रद नही था। सरकार भी इस परिस्थिति की गभीरता से पूर्णतया परिचित थी; किंतु इसे सुधार न सकने मे उसकी अनिच्छा की अपेक्षा असमर्थताही अधिक कारणभूत थी। अतः सर्वोपरि विचार कर घटनास्थल पर गाधी जी के आगमन को उसने अपना सौभाग्य ही समझा होगा ऐसा मेरा ख्याल है। अवश्य ही शुरू में गाधी जी के प्रति वह सशक थी, किंतु उनका उद्दिष्ट पूरी तौर से समझ में आते ही उसने तत्परता के साथ उन्हे अपना सहयोग प्रदान किया और उस जिले के अधिकारियो को भी यह आदेश दिया कि उन्हे सभी आवश्यक जानकारी दी जाय। चुनाचे सर्वप्रथम एक लोकमित्र और लोकहित के लिए सरकार से सहयोग करनेवाले व्यक्ति के रूप में ही गाधी जी मेरी स्मृति में जम गये।

गाधी जी के साथ चपारन जाते समय हमे दो बाते विशेष रूप से याद रखनी चाहिये। अर्थात् एक तो यह कि बिहार मे अफीम का उत्पादन बद कर दिया जाने के कारण चपारन के किसान की आर्थिक अवस्था बहुत बिगड गई थी। सरकार द्वारा उठाया गया यह ऐतिहासिक कदम अवश्य ही एक उच्च नैतिक घटना थी; किंतु इसकी कीमत चपारन और उसके आसपास के जिलो के किसानो को चुकानी पडी थी। क्योकि अफीम की खेती जीविका का एक लाभप्रद साधन था, और उसके बद होने से किसान को जबरदस्त धक्का पहुचा था। इससे किसानो मे भारी असतोष फैल गया। नील-बागान के मालिको को दी गई पक्षपातपूर्ण सहूलियते इस कृषि-क्षेत्र मे फैले हुए असतोष की दूसरी जड थी। इन बगीचेवालो मे से अधिकाश अग्रेज थे। वडे वडे बगीचे उनके अधिकार मे थे जिनमे कि वे खेती करवाते थे। सयोगवश बेतिया राज्य, जो कि चपारन की सब से बडी जमीदारी है, बहुत वर्ष पहले भारी आर्थिक सकट मे फसने पर इन बगीचेवालो से कर्जा लेकर छुडा ली गई थी और इसके एवज में उन्हे लम्बी मुद्दत के पट्टे लिख दिये गये थे। इन पट्टों द्वारा नील-बागान के मालिको को यह अधिकार मिल गया था कि वे अपने असामियो को उनकी ज़मीन का कुछ हिस्सा नील की खेती मे लगाने के लिए मजबूर कर सकेगे। 'तीन कठिया' (प्रति बीघा तीन कट्ठा) के नाम से मशहूर इस पद्धति का अर्थ तो किसानो पर खुले आम जबरदस्ती करना ही हुआ। इससे स्वाभाविक रूप से जनता अधिकाधिक भड़कती गई। इसी बीच कुशल जर्मन वैज्ञानिको ने कृत्रिम नील तैयार करने का तरीका खोज निकाला। परिणाम-स्वरूप पूजी लगाने योग्य व्यवसाय की दृष्टि से भारत की नील की खेती का मर्मान्तिक आघात पहुचा। इस भावी सकट से होनेवाली अपनी आर्थिक क्षति की पूर्ति के लिए बगीचेवालो ने अफीम पैदा करनेवाले अपने असामियो से एक अधिकार-पत्र द्वारा मुआवजे के तौर पर एकमुश्त रकम लेकर नील की भी खेती करने का उन पर जो बधन था वह रद किया। इस कष्टकर बधन से बचने के लिए बहुत से किसानो ने मुहमागा मुआवजा दे भी डाला। किंतु कुछ ने इससे इन्कार किया, और मुख्यतया इन लोगोकी ही ओर से गाधी जी चपारन पधारे थे। गाधी जी को निमत्रित करनेवालो मे से एक तरुण महाजन मेरे मित्र होने के कारण ही सभवतः चपारन पहुचने के शीघ्र ही बाद गाधी जी हमसे मिलने आये थे।

सब से पहला काम तहकीकात करने का था, और कतिपय सुयोग्य कार्य-कर्ताओ का सहयोग प्राप्त कर गाधी जी इसमे जी जान से जुट भी गये । काफी मुस्तैदी के साथ घूमफिर कर उन्होने प्रारभिक रिपोर्ट तैयार कर पेश की, जिसके फलस्वरूप सरकार ने एक जाच-समिति नियुक्त कर गाधी जी को उसका एक सदस्य बनाने की समझदारी दिखाई । यथासमय समिति ने अपनी रिपोर्ट पेश की । चपारन कृषि-कानून, जिससे कि 'तीन कठिया' पद्धति एकबारगी बद हुई, मुआवजे का कष्टकर सवाल मिट गया और असतोष के अन्यान्य कारण भी दूर कर दिये गये, उक्त रिपोर्ट का ही फल है । इस प्रकार चपारनके कृषिक्षेत्र की उपरोक्त अन्यायपूर्ण बाते दूर करने मे सहयोग प्रदान कर गाधी जी ने चपारन के किसानो की कृतज्ञता और प्रेम प्राप्त किया । महात्माजी के प्रति चपारन के किसानो से बढकर प्रेम और भक्ति-भाव भारतभर मे कही भी होगा या नही इसमे मुझे सदेह है । गाधी जी विषयक मेरी दूसरी स्मृति एक ऐसे व्यक्ति के रूप में है कि जिसका हृदय *मानवमात्र के प्रति असीम सहानुभूति से भरा हुआ है ।* अपने देशवासियों की सेवा उत्तम प्रकार मे कैसे की जाय यही निदिध्यास उन्हे लगा हुआ है, और यही बात स्वराज्य-प्राप्ति के राष्ट्रीय आंदोलन में उन्हे अपरिहार्य रूप से खीच ले आई ।

इसकी प्रतीति के लिए हमें चपारन कृषि-कमिशन के कार्यों पर पुनः एक नजर डालनी होगी । कमिशन के सदस्यों के सामने सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न यही था कि नील की पैदावार सबधी शर्त मे मुक्ति दिलाने के लिए अपने असामियो से मुआवजा लेने का बगीचेवालो को न्यायतः कहातक अधिकार है ? न्याय और नीति दोनो ही दृष्टियो से इस प्रकार मुआवजा पाने का बगीचेवालो का यह अधिकार गाधी जी को नामजूर था। चुनांचे इसी मौके पर गाधी जी ने अपने सर्वोत्तम गुण, अर्थात् जहा सिद्धात की मानमर्यादा का कोई प्रश्न उपस्थित होता न हो वहा समझौते के लिए तैयार रहने की वृत्ति का, परिचय दिया । अब सवाल यह था कि मुआवजे के तौर पर वसूल की गई रकम लौटा दी जानी चाहिये या नहीं । कानूनन तो वे शत-प्रतिशत रकम वापस पाने की मागपर अड़ जा सकते थे; किन्तु उतना पर्याप्त समझौते के हेतु मान्मोष्ट करने के लिए वे तैयार हो गये। कुछ

-ले दे कर पचास प्रतिशत पर सौदा तय पाया गया। अवश्य ही अब इस निर्णय पर वे दृढ़ दिखाई दिये । तब शायद यह सोच कर, कि अपनी बात से वे डिगेंगे नही, बगीचेवालो के प्रतिनिधि ने पचीस प्रतिशत रकम लौटा देना मजूर किया । तुरत इसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान कर गाधी जी ने उसे एकदम चकित किया, और इस प्रकार एक गत्यवरोध का अत कर डाला । रकम की वापसी का औचित्य एक बार सिद्ध कर चुकने के कारण अब उसकी वसूली केवल आपसी सवाल रह गया था । मुझे पूर्ण विश्वास है कि भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिज्ञो के सामने उपस्थित वर्तमान महान् गत्यवरोध पर भी गाधी जी के भीतर की समझौते की इस वृत्ति का, यानें उनकी 'सुमधुर समझदारी' का, सतोपप्रद एव निर्णयात्मक रूप से प्रभाव पड़ सकता है । इसी-लिए जब मेरे मित्र मुझसे पूछते है कि "ऐसे ना-समझदार आदमी को ले कर आप क्या कर सकते है," तब मैं चपारन की उपरोक्त घटना का प्रसन्नतापूर्वक स्मरण कर जवाब देता हू, "आप लोग गाधी जी को जानते ही नही ।"

मेरी स्मृति मे जमी हुई गाधी जी विषयक तीसरी बात एक ऐसे दृढ पुरुष के रूप मे है जो कि पर-हित का प्रश्न महत्वपूर्ण होने पर उसके लिए आत्महित का त्याग करने की पूरी क्षमता रखता है । वस्तुत बहुत से असामी मुआवजे की रकम चुकाने के लिए स्वेच्छापूर्वक तैयार भी हो गये थे । इस हालत मे चुकाई गई रकम का पचीस प्रतिशत वापस पाना आर्थिक दृष्टि से कुछ कम लाभप्रद नही था ।

यद्यपि इस राष्ट्र की स्वराज्य विषयक माग का समर्थन करने मे मुझे कभी हिचकिचाहट मालूम न हुई, फिर भी अपने मिशनरी पेशे के कारण सक्रिय राजनीति से मैं सर्वथा अलिप्त रहा। और असहयोग का कार्यक्रम, चाहे वह हिंसक या अहिंसक कैसा भी क्यो न रहा हो, मुझे अपनी ओर आकर्षित न कर सका। वस्तुतः सहयोग ही मेरे जीवन का ध्रुव-तारा बन गया था। बिहार का किसान जिन असुविधाओ और असमर्थता के बीच कठोर परिश्रम कर जिंदगी गुजार रहा था वह देखकर एक लबे अरसे से मैं परेशान था। चुनाने चपारन में स्थापित होनेवाली सहकारी साख-समितियो का मैंने बिल्कुल उसी प्रकार स्वागत किया, जिस प्रकार कि उत्तरी ध्रुव-प्रदेश के बर्फ मे फसा हुआ कोई मच्छीमार जहाज वसत ऋतु का करता है। अवश्य ही उत्कटतर राजनीतिक

भूमिका पर विचरनेवाले गाधी जी की नजर मे सहकार विषयक मेरे इस उत्साह का कोई विशेष मूल्य नही था। फिर भी उन्होने वडे प्रेम के साथ अपने एक सहयोगी एव सर्वेण्ट्स् आफ इडिया सोसाइटी के सदस्य स्वर्गीय डा० देव को ग्रामीण सहकारी साख–समितियो के सगठन-कार्य में मेरी मदद करने के लिए भेज दिया। डा देव वस्तुत एक देवता थे, और चपारन के अपढ किसानो की वहा के सर्वभक्षी साहूकारो से रक्षा करने के निमित्त हमने एक-साथ जो दिन व राते गुजारी उनके स्मरणमात्र से आज भी मुझे प्रसन्नता होती है। डा. देव की चर्चा पर से मुझे गाधी जी के भीतर के और एक सद्गुण की यहा याद आ रही है। कार्यक्षम एव श्रद्धावान् स्त्री-पुरुषो को अपने ध्येय की ओर आकृष्ट कर उन्हे राष्ट्रकार्य मे लगाने की उनमे गजब की प्रतिभा है। निस्सदेह उनके नेतृत्व की यही सच्ची निशानी है। चपारन के शुरू के उन दिनो मे वे ही राजेद्र बाबू को राष्ट्रकार्य के क्षेत्र मे खीच ले आये, जो कि आज देश के एक परखे हुए एव विश्वासपात्र नेता बन गये है। और महादेव देसाई के सबध मे तो, जो कि अत्यत सुयोग्य सेक्रेटरियो और निष्ठावान् मित्रो मे से एक थे, क्या कहा जाय? जिस दिन वे राष्ट्र की पुकार पर ध्यान देकर गाधी जी के सहयोगी बने वह भारत का भाग्यदिन था। चपारन मे हमने उनके पारस्परिक सबध का जो रूप देखा वह वास्तव मे नितात सुदर था। यह ऐसे दो हृदयो का मिलन था जो कि भारत की सेवा के लिए एकसाथ स्पदन कर रहे थे। और यह केवल भारत की ही सेवा नही हो रही थी; क्योकि अपने विचारानुसार वे भारत के रूप मे सारी मानवजाति की सेवा कर रहे थे। यहा चपारन की और एक घटना का मै उल्लेख करना चाहता हू। गाधी-परिवार मे मुझे नाममात्र के लिए भी जातीयता नजर नही आई। श्रीमती गाधी से हम भली भाति परिचित थे और अपने घर उनका आतिथ्य करने का सौभाग्य भी हमें प्राप्त हो चुका था। गाधी जी में हमे कठोर योगी की अपेक्षा एक प्रिय पड़ोसी और हर ऋतु मे साथ चलने के लिए तैयार स्नेही के दर्शन हुए। हमारे घर के बच्चे तो उन मे झट घुलमिल गये। अभी अभी बर्मा के मोर्चे से घर लौटे हुए हमारे छोटे लड़के ने हमे गाधी जी का वह पोस्टकार्ड दिखाया जो कि इग्लैंड मे विद्यार्थी दशा में रहते समय उसके नाम आया था, और जिसे उसने एक अमूल्य निधि की तरह बड़े जतन के साथ रख छोड़ा है। गाधी जी की विनोदी वृत्ति

के कारण हमारी पारस्परिक मुलाकाते बहुत ही सुखकर बन गई। एक-दूसरे के बगीचे मे पैदा हुई चीजो का भी हमने समानरूप से आस्वाद लिया। टमाटर उन्हे कितने प्रिय थे यह तो आज भी अच्छी तरह मुझे याद है। उत्कृष्ट सभाषण से युक्त भारतीय पद्धति का भोजन हमारी स्नेहयात्रा के मार्ग मे पडनेवाला दूसरा विश्राम-धाम था। किंतु इन सुनहरे क्षणो मे भी हमे 'मानवजाति का शात करुण सगीत' सुनाई देता रहा। उनके गृह-परिवार मे महादेव देसाई एक कुटुबी के नाते जीते व काम करते रहे। और जब वह चल बसे तब वहा एक ऐसा हृदय था, जो कि खिन्न था।

महादेव देसाई पहले बबई सरकार के सहकारी-विभाग मे काम करते थे। वहा से पदत्याग कर राष्ट्रकार्य मे वह जुट गये। सहकारिता-आदोलन विषयक उनका व्यावहारिक ज्ञान हमारे लिए बहुत ही उपयोगी साबित हुआ। प्रसन्नता-पूर्वक दी गई इस विषयक उनकी सलाह के कारण ही हम कई बार दिक्कतो का सामना करने से बचे। स्वर्गीय सर डेनियल हैमिल्टन द्वारा स्थापित सहकारी पद्धति की बस्ती के निरीक्षण हेतु कुछ वर्ष पूर्व महादेव भाई के साथ बगाल के गोसावा गाव की मैं ने जो यात्रा की वह भारतविषयक मेरे सुखद सस्मरणो मे से एक है। वहा जो कार्य चल रहे थे उनमे से कई उन्हे काफी दिलचस्प मालूम हुए। खास तौरसे बागबानी व खेती, कताई-बुनाई, बालको व प्रौढो की शिक्षा, सामुदायिक वैद्यकीय सेवा, धान कूटने की सामुदायिक चक्की, एव उच्च आदर्श पर की गई अन्यान्य व्यवस्था के द्वारा चारित्र्यबल को प्राधान्य देने-वाली सुसगठित ग्राम-सुधार योजना उन्हे पसद आई। वहा की शिक्षा के आदर्श ने उनका ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट किया ऐसा मेरा ख्याल है। यहा उन्होंने एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली देखी, जो कि गाव की आवश्यकताओ व सस्कारो को दृष्टिगत रखते हुए तैयार की गई थी, और जिसकी उपाधि-स्वरूप 'स्वतत्र जीवनक्रम के कोविद' का गोसावा-डिप्लोमा प्रदान किया जाता था।

जहा कहीं भी आलोचनाओ के अवसर आये वहा सहृदयता के साथ ही उन्होने वह की, और तब उसी भाव से उनसे सलाह ली गई। सयोगवश, हैमिल्टन के और गाधी जी के विचारो में बहुत कुछ समानता थी। अवश्य ही राजनीतिक कार्यपद्धति के सबध में उनमें मतभेद रहा। किंतु दोनों ही रस्किन-टालस्टाय के अनुयायी थे, और मानवी व्यक्तित्व की मौलिक प्रतिष्ठा पर दोनों

की ही समान रूप से श्रद्धा थी। हैमिल्टन-परिवार का प्राचीन चरखा गोसाबा के सग्रहालय की चित्ताकर्षक चीजो मे से एक है। स्काटलैंड की ऊन इसी चरखे पर काती जाकर उससे यही की पाठशाला मे तैयार हुई शाल महात्माजी को अर्पित की जाने के कारण, वह देखते ही महादेव भाई भावविभोर हो गये। उक्त चरखे के द्वारा पूर्व व पश्चिम का जो सम्मिलन हुआ वह देखकर सर डेनियल बहुत ही प्रसन्न थे। इसीलिए उनके देहावसान पर गाधी जी का यह लिखना, कि "भले मानस सर डेनियल का वियोग हम सब को अखरता रहेगा," सर्वथा सयुक्तिक था। स्वय गाधी जी कभी गोसाबा जा न सके, किंतु वे और सर डेनियल हैमिल्टन नागपुर मे परस्पर से मिले, और उन्होंने ऐसे सुख का आस्वाद लिया जो कि केवल उदारचेता व्यक्तियो के लिए ही सभव है। यदि १९१६ ई० मे गाधी जी चपारन न पधारते तो इस सस्मरणीय मुलाकात का सुअवसर ही उपस्थित न होता।

सुदूरस्थ चपारन की तत्कालीन ऐसी कई एक घटनाये है कि जिनके बारे मे मैं लिख सकता हू। किंतु घडी की ओर ध्यान देना बहुत जरूरी है। राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय राजनीतिक क्षेत्र मे गाधी जी को जो सफलता मिली है, उसकी तुलना में स्थानीय क्षेत्र के लिए लागू चपारन कृषि-कानून विषयक उनका कार्य बहुत तुच्छ दिखाई देगा। किंतु जिन कतिपय घटनाओंने उन्हे अखड राष्ट्रसेवा का व्रत लेने के लिए बाध्य किया उनमे से एक यह भी है इसमे कुछ सदेह नहीं। कोई भी आश्रम या सस्था उन्हे बाध रखने मे असमर्थ थी। चपारन के कार्य का अनुभव उनके सार्वजनिक जीवन के अतर्हृदय में पैठ गया था। अपनी प्रशसा वे पसद नही करते यह तो मै जानता हू: फिर भी दो विभिन्न

चंपारन कृषि-कानून ने चंपारन की बस्ती अभी स्वर्गतुल्य तो नही बनाई है। अवश्य ही उसने वहा आत्मसम्मानप्रद एक नई व्यवस्था का श्रीगणेश करा दिया है, और यदि आज वहा का किसान सर उठाकर एव अपने पुरखो की अपेक्षा अधिक आत्मविश्वास के साथ चलता है तो केवल इसी कारण से कि लगभग ३० वर्ष पूर्व महात्मा गाधी उस मार्ग से होकर गुजरे थे।

एडिनबरो,
१९-६-१९४६

वह झिलमिल मुस्कान

जे. एफ. होरैबिन

गांधी जी के साथ मेरी पहली मुलाकात १९३१ ई० के ग्रीष्म के आखिरमे डोवर मे एक जहाज पर हुई। इस जहाज से चैनल पार कर गोलमेज-परिषद के लिए वे लदन आ रहे थे। उन्हे लदन लाने के हेतु अपने भारतीय और अग्रेज मित्रो के साथ वहा तक मै गया था। हम जहाज पर चढे और एक-एक की कतार में बना हमारा छोटा सा जुलूस उनकी कैबिन तक पहुच गया। मै कैंटरबरी के डीन के ठीक पीछे खडा था। चुनाचे इस भव्य-काय, राजसी वेषधारी अग्रेज पादरी, एव अपनी झिलमिल मुस्कान से उस समारोह के वातावरण मे व्याप्त कृत्रिमता नष्ट कर हम सब का स्वागत करनेवाली उस श्वेत वस्त्रधारी क्षीणकाय मूर्ति के बीच जो अतर मुझे दिखाई पड़ा, वह आज भी अच्छी तरह याद है।

इसके बाद की हमारी सारी भेट-मुलाकातो पर इसी झिलमिल मुस्कान का सर्वाधिक प्रभाव रहा और उनकी यही बात मुझे खास तौर से याद रह गई है। गाधी जी को देखकर मुझे सदा ऐडवर्ड कार्पेटर की याद आ जाती थी। इन दोनो ही महानुभावो के व्यक्तित्व के द्वारा उनकी आतरिक शक्ति और सत्कारिता का प्रत्यय मिल जाता था। ये गुण उनमें इतने गहरे पैठ गये थे कि उनके सरल और स्नेहपूर्ण व्यवहार से वे व्यक्त होते थे और उनके सामने अपने-पराये का कुछ भेद ही रह न जाता था। चुनाचे उनसे कोई भी व्यक्ति नाटकीय ढग से पेश आ न सकता था। वे जिस वातावरण की सृष्टि करते थे उसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता टिक ही नही सकती थी।

गाधी जी ने हाउस आफ कामन्स के सदस्यो की एक सम्मिलित सभा म जो भापण दिया वह मुझे याद है। सभा में टोरी दल के एक अहमन्य सदस्य ने वडे ही आक्षेपपूर्ण ढग से उनसे कोई सवाल किया, जिससे वक्ता के प्रति तीव्र अनादर प्रकट करने का उसका उद्देश्य साफ नज़र आ रहा था। तव हममें से जिन सज्जनो ने इस सभा का आयोजन किया था वे कुछ क्षण के लिए वेचैन हो गये। वस्तुत. वेचैन होने की कोई आवश्यकता ही नही थी। क्योकि तत्क्षण पूर्वोक्त झिलमिल मुस्कान ने सभास्थान मे प्रवेश किया,—और कुछ ही *क्षणो के भीतर कमरेभर मे एकमात्र आक्षेपपूर्ण प्रश्नकर्ता-महाशय* ही हड़-वडाये हुए नजर आये।

मुझे याद है कि एक अन्य प्रसग पर भी मै कुछ वेचैन हो गया था। व्यग-चित्रकार डेविडलो से मैने इस वात का वादा किया था कि गाधी जी से उनकी मलाकात करा दूगा। उस समय मै कामन्स सभा का सदस्य था और ऐसे सदस्यो को भेट-मुलाकातो आदि का आयोजन करने के लिए मौके मिलते रहते है। लोने गाधी जी से सवधित कई व्यगचित्र वनाये थे। अवश्य ही वे सदा हमारी राष्ट्रीयता एव उसके महान् पुरस्कर्ता के प्रति सहानुभूति से भरे हुए होते थे ऐसी वात नही। तव क्या गाधी जी उससे क्रोधित होगे? वास्तव में मुझे ही यह अधिक अच्छी तरह मालूम होना चाहिये था। उनके झिलमिल हास्य ने तुरत यह सावित कर दिया कि इन व्यगचित्रो के विरुद्ध उनके मनमें ज़रा भी राग-द्वेष नहीं है, वल्कि उनका अवलोकन करने मे उन्हे कुछ आनद ही आया है। लो की मुस्कराहट भी वड़ी मीठी होती है। चुनाचे चद मिनट के लिए ये वामन-मूर्ति उभय महापुरुप एक दूसरे के सामने झिल-मिलाते हुए, हसीखुशी की वातचीत म मगन हो गये।

सतर्क महादेव भाई ने बीच में दखल देकर अन्य कार्यक्रम की ओर अपने स्वामी का ध्यान आकृष्ट न किया होता तो निश्चय ही और भी दो घटे तक यह सभा चलती रहती।

आखिरी वार गाधी जी की जो झलक मुझे दिखाई पडी वह बहुत ही वैशिष्टपूर्ण है। मजदूर दल के आगामी वार्षिक अधिवेशन के समय सार्वजनिक सभा में भाषण करना उनके लिए कहा तक सभव होगा इसकी चर्चा के हेतु मैं उनसे मिलने गया था। तब सेंट जेम्स महल मे गोलमेज्-परिषद की बैठक हो रही थी। पास ही के एक कमरे में हमने चंद मिनट बात कर ली। इतने में घडी पर नजर पडते ही उस दिन के अन्य कार्यक्रम का उन्हे स्मरण हो आया। तब खेद प्रगट कर शीघ्रता के साथ वे वहा से चलते बने। महल के एक लबे बारामदे के रास्ते धीरे धीरे अदृश्य होते जानेवाले गाधी जी की ओर मै एकटक देखता रह गया। द्रुत गति से चलने के कारण उनके वस्त्र उलझ रहे थे, और उनके जूते चमक रहे थे। देखकर मेरे स्मृतिपट पर जो चित्र अंकित हुआ उसका वर्णन क्या मैं कर सकता हू? यदि करू तो, मुझे विश्वास है कि, उनके किसी भी मित्र के मन मे मेरे विषय मे गलतफहमी पैदा न होगी। मुझे चेप्लिन के किसी चित्रपट का वह अतिम दृश्य याद हो आया, जिसमे कि क्षितिज की ओर द्रुत गति से बढनेवाली एक नन्हीसी आकृति सुदूर स्थान पर पहुच कर शनैः शनै. अतर्धान हो जाती है। लौकिक विदाई की अपेक्षा इस प्रकार की अतिम झलक का दृश्य ही मानवी मन में दीर्घकाल तक स्मृति-रूप से शेष रहता है। क्योंकि वह एक मानव की स्मृति है, और एक ऐसे मानव की कि जिसकी महानता की जड़े मानवता रूपी भूमि में खूब गहराई तक जम गई हो।

लदन,
२५-२-१९४७.

अक्तूबर १९३१

जान एस. हाइलैण्ड

अक्तूबर १९३१ के एक सप्ताहान्त मे महात्मा गाधी बर्मिगहैम के निकटस्थ हमारी वुडब्रुक बस्ती मे आकर ठहरे थे। उस समय की उनके सबध की छोटी से छोटी बात भी हममे से जो लोग वहा उपस्थित थे उन सबको याद है। दूसरी गोलमेज-परिषद् के उत्तेजनापूर्ण दिनो की यह घटना है। एक शनिवार की शाम को हमारे कालेज के होरेस एलेक्जेंडर के साथ नाटिंगहैम से वे पधारे, और बहुत ही थकेमादे होने पर भी हमारी साध्यकालीन प्रार्थना मे सम्मिलित हुए। उनके सग मीराबाई, महादेव देसाई और प्यारेलाल भी थे। उन लोगो ने कुछ हिन्दी और गुजराती भजन गाकर हमे सुनाये। पश्चात् महात्मा जी ने कोई ईसाई भजन गाया जाने का प्रस्ताव रखा। हमने कहा कि आप ही चुन ले, चुनाचे उन्होने दो भजनो के नाम सुझाये,--एक ता 'Lead Kindly Light,' और दूसरा, 'When I Survey the Wonderous Cross.'

दूसरे दिन तडके मे महात्माजी को लेकर सैर करने निकला। दो या तीन तगडे जासूस भी हमारे सग चल पड़ने के कारण मैं किचित् अस्वस्थ हो गया। अस्तु; मैंने बेकारी के बारे में, जो कि उन दिनो हमारे लिए सबसे विकट समस्या बन गई थी, उनसे राय मागी। वह आर्थिक मन्दी का काल था, बेकारा की मदद के लिए स्विस आतर्राष्ट्रवादी पियेर सिरेजोल द्वारा सगठित वर्क म्पसे में हाल ही में लौट आया था। उपरोक्त समस्या पर अपनी राय देते

उक्त वचन उसने पूरा किया। यदि हम महात्माजी की सलाह मानते हुए बेकारी की समस्या पर गभीरतापूर्वक विचार कर, जिस प्रकार स्वीडेन की सरकार ने अपने यहा के बेकारो को काम देने के लिए बहुत बडे पैमाने पर उद्योग-व्यवसाय के केंद्र खोल रक्खे है उस प्रकार की कुछ व्यवस्था करते, तो क्याही अच्छा होता!

इसी सिलसिले मे महात्मा जी ने आगे कहा कि बेकारो को दान-स्वरूप मिलनेवाली मदद मानवता के लिए अपमानास्पद है। (मुझे उनका कहना सही लगा, क्योकि सिरेज्रोल दल के साथ काम करते समय दक्षिणी वेल्स के ब्रिनमार गाव के बेकार कुटुब मे कुछ दिन रह चुकने के कारण बेकारो की इस विषयक भावनाओं से मैं भली भाति परिचित था।) गाधी जी पुन. बोले, "आप अपने बेकार दोस्तों से कहे कि वे अपमानजनक दान लेने से इन्कार कर अपने बालबच्चो समेत आम सडकपर जाकर भूख-हडताल शुरू कर दे। यदि उनमे इतना साहस रहा तो सरकार हफ्तेभर के भीतर ही झुक कर उचित कदम उठाने के लिए बाध्य होगी।" यह बडी ही विकट सलाह होने से इसे बेकारो के कानो तक पहुचाने का साहस मै कर न सका। किंतु बदूको, तोपों या बम-वर्षक हवाई-जहाजो की अपेक्षा स्वेच्छापूर्वक आत्मक्लेश सहन कर बुराई हटाने मे किस प्रकार सफलता प्राप्त की जा सकती है यह बात गाधीजी ने स्वत: के उदाहरण से पहले ही सिद्ध कर दी थी, और आगे भी समय समय पर इसे वे सिद्ध करनेवाले थे।

उन्होने आग्रहपूर्वक मुझसे यह भी कहा कि मै अपने पास जो भी जायदाद हो उसे बेचकर एक जमीन खरीद लू, और वहा दस-बारह बेकार कुटुबो और उतने ही मध्य वर्गीय कुटुबों के साथ सामूहिक रूप से खेती करू। इस पर धीरे से आपत्ति प्रकट करते हुए मैंने पूछा, "किंतु अपने बालबच्चो का क्या करू?" जवाब मे वे बोले, "उन्हे भी अपने साथ ले लो। किसी भी वजह से उन्हे अलग छोड न आवे। इस नई बस्ती के एक कार्यक्षेत्र-स्वरूप एक पाठशाला खोल कर वहा इन बच्चो की शिक्षा-दीक्षा, उन्हे बस्तीका ही एक अग मान कर, सपन्न की जाय। मै खुद इन दोनो मार्गोपर चल चुका हू, और जानता हू कि कौनसा सही है। सहायक-उद्योग के तौर पर बारिश के दिनो मे, या फुरसत के वक्त कताई-बुनाई वगैरह काम किये जाय।"

अनन्तर मैंने उनसे उन दो भजनों के चुनाव का, जो कि पिछली शाम को उन्होंने गाने के लिए कहे थे, कारण पूछा। उन्होंने बतलाया कि सायेम के

गुरू के एक अधिवेशन के अध्यक्षीय भाषण में 'Lead Kindly Light' का उल्लेख सुनकर वे स्वय, जो कि उस समय एक युवक थे, बहुत ही प्रभावित हुए थे। दूसरा गीत दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने सुना था, और उसमें उल्लिखित त्याग के गौरवपूर्ण वर्णन पर वे तभी से मुग्ध थे। फिर, उक्त गीत सुनने से कई वर्ष पूर्व एक रात को, आजीवन किसी भी वस्तु पर अपना अधिकार न जताकर सब कुछ समाज की सपत्ति के रूपमे ही ग्रहण करने के निश्चय पर वे स्वय किस तरह पहुचे, यह भी उन्होंने बतलाया। अपने पास के विपुल साधनो, एव स्वतः के अनुयायी अपनी इच्छानुसार चाहे जो काम करने के लिए किस तरह तैयार रहते हैं इसका भी उन्होंने उल्लेख किया। और बोले, "फिर भी अपना कहने लायक मेरे पास कुछ भी तो नहो है। किंतु उक्त रात्रि के निश्चय के कारण मुझे चार बातो की अनुभूति हुई; अर्थात् जीवन, सामर्थ्य, स्वाधीनता और आनद। मित्र, यदि आप भी इनकी इच्छा रखते हो तो आपको इसी राह का पथिक बनना होगा।"

हमारे दैनदिन सुखमय जीवनमूल्यो को निठुरता के साथ ललकारने वाले उन शब्दो का महात्मा जी ने ठीक उसी घडी उच्चारण किया जब कि पौ फट रही थी। मेरी सारी जिन्दगी मे शायद यही सबसे दारुण क्षण रहा होगा। तब, "तुम्हारे पास जो कुछ है वह बेचकर गरीबो मे बाट दो, और अपना त्रास उठाकर मेरे पीछे आओ" यह ईसा मसीह का वचन सुनते ही किसी युवक की जो स्थिति हुई थी उसकी, मैं कुछ कुछ कल्पना कर सका।

होगा इसकी फिक्र न करो।" "किसी भी बात के लिए अधीर न हो जाना।" "प्रति दिन के काम की चिंता ही मनुष्य के लिए काफी है।" न्यू टेस्टामेंट की ये सूक्तिया जिस स्वाभाविक ढग से उन्होने उद्धत की उससे ज्ञात होता था कि वे अपने जीवन मे इन्हे उतार चुके है। और पूर्ण निष्ठा के साथ इनका पालन करने के कारण कैसीही विकट समस्याओ मे उलझे रहने पर, या कितने ही उग्र स्वरूप के लडाई-झगडो और द्वेष-मत्सरो से घिरे होते हुए भी, वे क्षणभर में शात चित्तसे सो जाते है।

एक इतवार को, दोपहर के समय, हमारी सस्था को उद्देश्य कर भारत की आवश्यकताओ और आकाक्षाओ के सबध मे उन्होने एक सस्मरणीय भाषण दिया। इसके बाद चर्चा चलने पर किसी ने उनसे पूछा कि अमुक विषय मे एक ब्राम्हण के नाते आपक्या विचार रखते है। तब 'ब्राम्हण' के रूप में अपना उल्लेख सुनकर महात्मा जी को इतनी जोर की हसी छटी कि जो कभी भुलाई नही जा सकती।

अपनी बिदाई के दिन हमारे रसोईघर के कर्मचारियो से विशेष रूप से मिलने आकर उन लोगो को उन्होने बहुत ही सतोष प्रदान किया। वे बिदा हो गये, किंतु जाने के पूर्व अपने आदर्श, एव रहन सहन विषयक अपने तरीका द्वारा उन्होने हम सब पर एक ऐसी अमिट छाप लगाई कि उक्त दिशा म विचार करने के लिए हम बाध्य हुए। पूर्वोक्त सप्ताहात की इन घटनाओ का अब चौदह वर्ष बीतने आये है। किंतु अब भी उनकी ओर हम इस तरह निहारते है, जैसा कि धूलभरे मैदान म खडा कोई यात्री पीछे मुडकर हिमालय की सुदूरस्थ चोटी की ओर ताकता है।

बर्मिंगहैम,
२७-१०-१९४५.

जब प्रभुने उनकी परीक्षा ली

जयरामदास दौलतराम

लगभग सात साल पहले की यानी दिसंबर १९३९ की यह बात है। बापू के जीवन से संबंधित ऐसी कोई भी घटना आजतक मेरे देखने में नहीं आई जो कि इसकी तरह मेरे स्मृतिपट पर अपनी अमिट छाप छोड़ गई हो। इसका कोई न कोई कारण तो होगा ही। पर उसका पता लगाने में मैं अभी तक असमर्थ रहा हूं। उन दिनों परिस्थिति से बाध्य होकर मैं सेवाग्राम आश्रम में एक बीमार की हालत में भरती हुआ था। खुद बापू ही मेरी देखभाल करते थे। अपनी ही गलतियों का फल मैं भोग रहा था। फिर भी लाचारी की दशा में प्राप्त बापू के इस सहवास से मेरा बड़ा फायदा हुआ। इसमें सबसे बढ़कर फायदे की बात तो वह घटना है जो कि मुझे अपनी आंखों देखने मिली, और जिस पर मैं अभी प्रकाश डालने जा रहा हूं।

बोले कि उसकी बीमारी से अवगत होने के कारण ही उसको आश्रम के अहाते में रख लेना, जहा कि स्त्रिया, बच्चे, बीमार आदि कई लोग निवास कर रहे है, कहातक उचित होगा इस सोच मे वे पडे हुए है। यह आगतुक और कोई नही, बल्कि १९२२ ई० के यरवदा-जेल के गाधी जी के साथी परचुरे शास्त्री थे। दुर्भाग्य से उन्हे बडी बुरी तरह कोढ हो गया था, और जेलमक्त होने के बाद से इस रोग के उचित उपचार के हेतु कई अस्तालो की खाक छानकर आखिर उन्होने उत्तरी भारत के सुप्रसिद्ध तीर्थस्थान हरद्वार पहुच कर शरण ली थी। बापू की कठिनाई अनुभव कर वह बोले, "आपके दर्शन तो मैं कर चुका। किसी दिन स्वय आकर आपकी भेट करने के हेतु हरद्वार में अपने हाथो काता हुआ सूत इस गठरी मे है। बस, काम मेरा हो गया। अब सामने के पेडतले रात बिता कर सवेरा होते ही वापस हरद्वार लौट जाऊगा।" बापू ने उनका भोजन हुआ है या नही इसकी पूछताछ की, और दोपहर के भोजन के बाद उन्होने कुछ भी लिया नहीं है ऐसा मालूम होने पर उनके खानेपीने का प्रबंध करने के लिए कनू गाधी से कहा। कनू ने आगतुक के आतिथ्य का भार सभाला और तब गाधी जी शाम की सैर के लिए चल पड़े। गाधी जी शाम के वक्त के इन सैर–सपाटो का मुख्यतया पूर्ण विश्राति के रूप मे ही उपयोग कर लेते थे। सैर के समय या तो वे बच्चो के साथ खेलते और हसी-मजाक करते, या अपने सहयोगियो के साथ ऐसे विषयो पर बातचीत करते जिनका कि गभीर चर्चाओ से कोई सबध न होता था। और इस प्रकार दिनभर गहन समस्याओ पर विचार करने के कारण आई हुई थकावट दूर कर लेते थ। किंतु उस दिन शाम को मुझे वे जितने चिंतित और विचार-द्वद्व मे उलझे हुए दिखाई पड़े उतने शायद ही कभी दिखाई पडे हो। रास्तेभर हम सभी लगभग चुप ही रहे। सैर कर आश्रम मे हमारे लौट आते ही शाम की प्रार्थना शुरू हुई। पश्चात् उनकी मालिश होकर वे सो गये।

शरीर सो गया। दिमाग भी लगभग सो ही गया। किंतु महात्मा के अतर्हृदय मे महान् सघर्ष चल रहा था। अतर्मुख गाधी जी जागृतावस्था के अपने ही मनोव्यापारो के साथ सघर्ष कर मार्ग ढूढ रहे थे। यह मूक और अदृश्य अतर्द्वद्व घटो उग्र रूप से चलता रहा। आखिर उन महान् आत्मा की ही विजय रही। तड़के दो बजे उनकी नींद टूटी और वे अपने सजग मन को इस बात के लिए तैयार करने लगे कि वह उनकी अनागम

की पुकार पर कान दे। और उन्हें तभी शांति मिली जब कि यह पुकार सुनी गई। तब उन्हें प्रकाश दिखाई दिया और अपना अगला कदम क्या होगा यह बात भी उनकी समझ में आ गई। सुबह की प्रार्थना के बाद, उपस्थित आश्रमवासियों को उद्देश्य कर उन्होंने एक भाषण दिया, पिछली शाम को इस समस्या के जितने पहलू अपनी समझ में आये थे वे सब उनके सामने रक्खे, और किस प्रकार परचुरे शास्त्री के रूप में प्रभु ही अपनी निष्कपटता की परीक्षा लेने आये हैं यह भी बताया। उनकी राय में, केवल कोढ़ी होने के कारण परचुरे जी का वापस लौटा देना स्वतः को और ईश्वर को भी प्रवेश देने से इन्कार करने जैसा था, किंतु साथ ही आश्रमवासियों के स्वास्थ्य के प्रति अपना उत्तरदायित्व भी वे समझते थे और सोचते थे कि ईश्वर ने ही उनकी देखभाल का काम अपने को सौंपा है। अतः परचुरे शास्त्री को आश्रम में प्रवेश देकर धोखा उठाने के लिए जब तक सभी आश्रमवासी खुद होकर तैयार हो नहीं जाते तब तक गांधी जी इस दिशा में कैसे कदम बढ़ाते? आश्रमवासी भी कसौटी पर पूरे उतरे, सभी ने स्पष्ट रूप से कह दिया कि वे परचुरे जी को अपने बीच रख लेने के लिए तैयार हैं। बापू के सिर से एक बोझ उतरा। सत्य का और एक प्रयोग, एवं प्रेम के साथ सभी को—क्षुद्र से क्षुद्र, यहां तक कि जिसे अछूत भी न छूएगा ऐसे व्यक्ति को भी,—छाती से लगा लेनेवाली अहिंसा की अभिव्यक्ति,—यही इस घटना का अर्थ था।

सवेरा होते ही परचुरे जी आश्रमवासी बन गये। बापू की कुटिया के पास ही एक साफ-सुथरी कुटी फुरती से तैयार कर ली गई। कुटी की छत सफेद खद्दर से छाई गई थी, ताकि नये रोगी के उपचार में सूर्यप्रकाश का भी उपयोग हो सके। उस दिन से कोई भी आश्रमवासी परचुरे शास्त्री के समान बापू का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर न सका। यह ऐसा समय था जब कि देश के सामने विकट समस्यायें उपस्थित थीं। युद्ध के प्रश्न पर ब्रिटिश सरकार से हमारी खटपट हो चुकी थी। मंत्रीपद की शोभा बढ़ानेवाले व्यक्ति जेल-जीवन बिताने के लिए तैयार हो रहे थे। कब और किस रूप में सविनय अवज्ञा-आंदोलन आरंभ किया जाय इस विषय पर कांग्रेसी क्षेत्रों में जोरदार चर्चा चल रही थी। अधिकारत्याग पर बलिदान के बल द्वारा घटना-चक्र का रुख बदल देने की तैयारी में देश लगा हुआ था। किंतु इस सब के बीच भी परचुरे शास्त्री के कोढ़ के घाव ही उस महान् आत्मा के हृदय

ने स्नेहयुक्त मुस्कराहट के साथ रोगी की बातें सुन ली। किंतु उनके प्रत्युत्तर स्वरूप वे सदैव की भाँति प्रेमपूर्ण पूछताछ या मनो-विनोद करते भी तो कैसे ? फिर भी रुग्ण परचुरे जी गांधी जी का वह स्नेह, जिसके कि वे आदी हो गये थे, शब्दरूप से नहीं तो किसी अन्य रूप से ही सही, पा गये। सो कैसे ? अपनी अहिंसाजन्य आश्चर्यप्रद दूरदर्शिता के साथ बापू उस दिन एक ताजा संतरा ले आये थे। और मुंह से उत्साहवर्धक शब्द निकालना संभवनीय न होने के कारण अपने प्रेम के प्रतीक स्वरूप उक्त संतरा ही उन्होंने बड़े प्यार के साथ परचुरे जी को दिया। प्रेम की इस आकस्मिक बाढ़ से रोगी की आंखें कैसी चमक उठी होंगी और उसका चेहरा खुशी से कैसा फूला होगा इसकी आप ही कल्पना कर सकते हैं! इस मूक कृति की भाषा उसकी समझ में आ गई थी।

ऐसे हैं बापू! घटना जितनी ही छोटी, उतनी ही वह अर्थपूर्ण और शिक्षाप्रद अधिक। कितनी ही बातें हम गांधी जी से सीख सकते हैं, और फिर भी वास्तव में कितनी कम हमने सीखी हैं!

अकोला,

२५-१०-१९४६

छोटे-बड़े नदी-नाले महान् गंगाजी की भांति अपनी अपनी जलराशि समुद्र में अर्पित करते हैं, ठीक वैसे ही ससार के सभी धर्म, यहा तक कि जिनके माननेवाले बहुत कम हैं वे धर्म भी, सत्य, जीवन व प्रेम अल्पअधिक मात्रा मे मानवजाति में समर्पित करते रहते है, और इसी कारण वे हमारे सम्मानभाजन हैं। बिदा होते समय मैंने उनसे पूछा, "क्या इतनी यातनाओं और कठिनाइयो का सामना कर चुकने के बाद भी इस कष्टमय ससार मे प्रेममार्ग सफल हो सकेगा ऐसा आप विश्वास करते है ?" उठकर वे खडे हुए, और अपनी उगलिया अपनी छाती के अगल-बगल फेरते हुए बोले, "वह सत्य तो मेरे रोम-रोम मे व्याप्त है, और ससार में ऐसी कोई ताकत नही जो कि अब उसको मुझसे निकाल बाहर कर सके।"

हैवरफोर्ड (यू. एस. ए.),
२०-११-१९४५.

कुम्हारः कलश की दृष्टि में

बी. डी. कालेलकर

"Oh, Thou, who Man of baser Earth didst make."

—उमर खय्याम

जब भी कभी मै अपने स्मृति-पट को इस चेष्टा के साथ खोलता हू कि उस पर अकित चित्रो की एक ताजा झलक पा सकू तब मेरी हालत उस बच्चे जैसी हो जाती है जिसे कि ताजा सेवो की डलिया भेट मे मिली हो। कौन-सा चित्र चुन लू यह मै समझ नही पाता। इनमे से कई चित्रो के रग अब भी चमकीले हैं, जब कि शेष कई धुधले पड गये है या अस्पष्ट हुए है। और फिर भी उनमे से हरेक इतना मधुर है,—प्रसगवशात् कटु-मधुर भी—कि उनका निश्चित रूप से चुनाव करना लगभग असभव ही है। बापू जी सबधी मेरे सस्मरणो को, जो कि बीस बरस से भी अधिक समय घेरे हुए हैं, उपरोक्त बात विशेष रूप से लागू है। ऐतिहासिक दृष्टि से सही होने के हेतु ही 'बीस बरस' शब्द-प्रयोग मै कर रहा हू। अन्यथा, यदि अपनी स्मृति के आधारपर ही

इसका उल्लेख करना हो तो मैं कह सकता हू कि जब से मेरी याददास्त बनी हुई है तब से लेकर आज दिन तक मै बापू जी की देखभाल मे ही पला हू । अत अपने कमीज के बटन लगाने-खोलने जैसा बहुत ही हस्तलाघवपूर्ण यात्रिक प्रयोग सीख जाने के दिन से ही मै बापू के अनुशासन में हू ऐसा कहना अधिक सयुक्तिक होगा ।

मेरे बचपनमे दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो के नेताके नाते बापूका बोलबाला होने पर भी उस समयतक उन्हे अतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त न हुई थी । कुछ कहने की अपेक्षा खुद करके दिखाकर ही नसीहत करने के ढग पर अटल विश्वास होने के कारण, और साथ ही सार्वजनिक कामो की कमी की वजह से उन दिनो बापू का अधिकाश समय आश्रमसबधी कार्यों के प्रबध मे ही बीतता था । मुझ जैसे शरारती लडको को रास्ते पर लाना उन्ही में से एक काम था । हमारी शिक्षा दीक्षा की ओर वे कितना सूक्ष्म ध्यान देते थे यह बात पाठक आसानी से समझ सके इस हेतु यदि मैं इतनाही कह दू तो काफी होगा कि एक दिन दोपहर के भोजन के समय उन्होने अच्छी तरह सेकी हुई रोटी पीसकर उससे एक प्रकार का 'पूडिंग' कैसे तैयार किया जा सकता है यह बडे ही ढग से मुझे बताया । कार्यव्यस्त बापू की दृष्टि मे कोई भी काम क्षुद्र न होता था । उन दिनो साबरमती आश्रम एक जगली जगह पर था । अवश्य ही वह बीच जगल मे था ऐसा तो नही कहा जा सकता; किंतु जगल से वह विशेष दूर भी नही था । आश्रम के अहाते मे कधेबराबर ऊची घास उगी हुई थी,—कम से कम मेरी नन्ही आखो को ऐसा ही दिखाई पड़ता था,—और वहा साप-सपोले तथा अन्य जीवजतुओं की खासी भरमार थी । रावटियो, झोपड़ियो और अन्य अस्थायी घरो का यहा की छोटी-सी बस्ती को जो सहारा था वह भी विशेष सुख-सुविधाजनक माना नही जा सकता था । वस्तुतः बापू इस सारी अव्यवस्था के भीतर से सुव्यवस्था की सृष्टि करने की क्रियात्मक शिक्षा ही आश्रमवासियों को दे रहे थे । खुली जगह की प्रार्थना के लिए जमीन साफ करने से लेकर शौचकूपो के लिए खाइया खोदने तक एक भी काम ऐसा न होता था जो कि बापू की नजर से गुजरा न हो, या जिसम खुद उन्होंने हाथ बटाया न हो । व्यक्तिगत और सार्वजनिक सफाई सबधी उनकी विशेष सतर्कता, एव हर कोई आरोग्यशास्त्र के नियम सीख कर तदनुसार आचरण करे इसके लिए उनके आग्रह का मेरे मन पर अथाह और अमिट प्रभाव पड़ा ।

उन शुरू के दिनो के वापू अपने सहयोगियो द्वारा काम लेने और अनुशासन का पालन कराने मे आज के वापू की अपेक्षा अधिक कठोर थे। किंतु उस समय भी उनकी तीव्र विनोद–वुद्धि एव उनका स्वर्गतुल्य शिशुप्रेम किसी भी अश मे कम न था। भोजन के समय जव वे धीरे से मेरी थाली मे गुड का एक बडासा टुकडा डालकर 'हरेक को हरेक की आवश्यकतानुसार' वाले समाजवादी सिद्धात का पालन करते थे तव मुझे जो वेहद खुशी होती थी वह मै कैसे भूल सकता हू ? उन दिनो मै था भी नामी चटोरा !

युवावस्था मे मैने वापू के हृदय में अपने लिए एक विशेष स्थान वना लिया था, जो देख कर वडे-वूढे आश्रमवासी कहा करते थे कि वापू कान्ति (गाधी जी के पोते) का और मेरा आवश्यकता से अधिक लाडप्यार कर हमें विल्कुल विगाड रहे है। वडे भय्या यह कहकर मुझे चिढाते रहते थे कि हमने वापू के अशक्यप्राय अनुशासन के पालन द्वारा उनसे रिआयतें ऐठकर उन्हे वेवकूफ वनाने की कला हासिल कर ली है। वस्तुत मैं और काति ही आश्रम के ऐसे प्रथम दो लडके थे कि जिन्होने गीता के सात सौ श्लोक कठस्थ कर लिये थे, सूत-कताई का,—चौवीस घटे की अखड सूत-कताई का रिकार्ड भी हमने तोड दिया था, और ऐसी ही कई अन्यान्य वाते थी। यह सव देखकर वापू जी वडे खुश थे, और मै स्पष्ट ही स्वीकार करूगा कि हम 'वापू जी के लाडले' वन गये है यह वात खुद हमे भी भली भाति मालूम थी। चुनाचे वापू सोचते थे कि वे हमारे भीतर से आदर्श आश्रम-युवक तैयार कर रहे हैं। वे थोडे ही यह जानते थे कि ये दोनो युवक, जिनसे कि सभी प्रकार के भौतिक सुखो के त्याग की अपेक्षा रखी जा रही है, एक दिन दूर भाग निकल कर उनमें से एक इजिनियरिंग और दूसरा डाक्टरी का आश्रय लेगा। फिर भी वे हमें त्यागमय जीवन की दीक्षा देने के साथ ही साथ हमारे मन म यह वात जमाने का सतत यत्न कर रहे थे कि हम अभी छोटी चिडियो की तरह है, जो अपने पख जम जाते ही प्रभुनिर्मित विमुक्त वातावरण मे स्वच्छद विचरना स्वभावतया पसद करेगे। अपने अनुयायियो की स्वतत्र मनोवृत्ति को हेतुपुरस्सर प्रोत्साहन देने के इस गुणविशेष के कारण ही गाधी जी, मूर्तिपूजा से द्वेष रखनेवाले आजकल के युवको के आराध्य-देवता वन गये हैं !

कहना न होगा कि अपने प्रति वापू के इस लाडप्यार से काति ने और मैंने पूरा फायदा उठाया। तव हमने अभी अभी फोटोग्राफी सीखना शुरू किय

था। इसके लिए उनसे विशेष खर्चे की मजूरी लेने, के निमित्त बहुत ही विचार-पूर्वक तैयार किया हुआ अपना 'केस' एक सध्या समय हमने उनके सामने किस तरह पेश किया वह मुझे खूब याद है। हमने अपने सतोषभर उन्हे यह जता दिया कि बिना फोटोग्राफी की कला हस्तगत किये स्वराज्य मिल ही नही सकता। और तब हमारे लिए आनदप्रद, किंतु कुछ पुराणपथी आश्रमवासियो के लिए खेदजनक बात यह हुई कि उसी महीने से हम में से हरेक को मासिक पाच रुपया भत्ता देना स्वीकार किया गया। आह, क्याही शानदार विजय रही हमारी! एक अन्य अवसर पर मैंने ही उनको मात कर उन्ही का एक हुक्म रद करवा लिया था। बात यू हुई कि आश्रमवासियो को अपने कपड़े धोने के लिए मिलनेवाली साबुन की मात्रा, उन्होने यह कहकर, कि गरीब गाववाले जिससे वचित रहते हैं ऐसी सुख-सामग्री के हम अधिकारी नही, बेहद घटा दी थी। हम नवयुवक, जो कि अपने अपने कपडे धोकर बरफ़ की नाई सफेद रखने एव सदा निर्मल वस्त्र पहनने की आपस मे होड लगाते रहते थे, इस नये हुक्म से बड़े ही नाराज़ हुए। मैंने यह मामला अपने हाथ में लेकर वादविवाद द्वारा उसका निपटारा करने के हेतु उनकी एक खास मुलाकात भी ली। वे बोले, "साबुन क्या चीज होती है यह बात गरीब गाववाले जानते ही नहीं। और अगर वे 'खार' (नदी-किनारे जमनेवाले पीले-सफेद क्षार) से साबुन की कमी पूरी कर सकते हैं, तो फिर हम लोग भी ऐसा ही क्यो न करे?" मैं ने झट जवाब दिया, "गाववालो की गदी आदते हम भी अपनावे ऐसा कहना सरासर ग़लत होगा; अलावा इसके कपडे 'खार' से उतने साफ भी नही होते जितने कि साबुन से।" अब की पैंतरा बदल कर उन्होने मुझसे पूछा, "जो हुक्म दूसरे सभी लडको ने बिना चू-चिपड किये मान लिया उसके खिलाफ आवाज़ उठाने की तुम्हे ही इतनी क्या सूझी?" जवाब मे मैंने कहा, "शेष सभी लड़के इस बारे में मेरी तरह ही राय रखते है, लेकिन वे सब चुपकी साधे हुए है इतना ही।" उन्होंने मुझे चुनौती दी कि ७० प्रतिशत लडको के हस्ताक्षर प्राप्त कर अपना उक्त कथन में सिद्ध कर दू। मैंने तुरत यह स्वीकार कर लिया; किंतु दूसरे ही क्षण मुझे इसमे कहीं विजय की सभावना नही दिखी। चुनाचे मैंने उनकी इस मागपर नाराजगी का स्वाग भरा। और उनसे साफ-साफ कह दिया, "आपके साथ बहस कर मैं ऊब उठा हू; क्योंकि जो भी जब अपने जी में आता है उसी पर आप अड़े रहते हैं। अत. ७० प्रतिशत लड़को के हस्ताक्षर ले आनेपर

मेरी बात मजूर करने के लिए यदि आप तैयार हो तो ही मै आपकी चुनौती स्वीकार कर सकता हू; *अन्यथा*, केवल *अपना कहना सही प्रमाणित करने की* मेरी इच्छा नही।" मै यह भली भाति जानता था कि प्रजातत्रवादी बापू मेरी उपरोक्त बात कदापि नामजूर न करेगे। चुनाचे चद दिनो के भीतर मैने ९० प्रतिशत लडको के हस्ताक्षर प्राप्त किये, और उक्त आज्ञा रद्द कर दी गई। क्या ही विजय रही हमारी! हम दुधमुहे बच्चो ने अपनी बात इतने बडे महात्मा के गले उतार कर आखिर वह उससे मजूर भी करा ली। अपने इस विवेकशून्य बरताव से हमने उनका कौन-सा वक्त बरबाद किया होगा ऐसा आपका ख्याल है? यह उस वक्त की बात है जब कि साइमन-कमिशन ने देशभर मे *हलचली मचा दी थी, विभिन्न* विचारो के राजनीतिज्ञ *बापूजी से सलाह लेने* के लिए आ रहे थे, और भारत के भावी विधान विषयक 'नेहरू रिपोर्ट' का अध्ययन करने मे वे व्यस्त थे। किंतु फिर भी अपने सपर्क मे रहनेवाले हरेक व्यक्ति से वे किस तरह पेश आते है इस बात का इससे पता चलता है। अत्यत अबोध व्यक्ति के प्रति भी सहनशील बनना वे सीख गये है, और इसी से देश की अचूक नाडीपरीक्षा करने की अद्भुत शक्ति उन्हे प्राप्त हुई है।

नमक-कानून तोडने के लिए हम ८० स्वयसेवको का एक जत्था दाडी ले जाने से पहले, उस की पूर्वतैयारी मे जो चद सप्ताह लगे उस अवधि मे, प्रति दिन की साय-प्रार्थना के बाद स्वत से खुले आम चाहे जो सवाल पूछने की इजाजत बापू ने हम सब को दे रक्खी थी। सो एक दिन उनसे एक वादग्रस्त —और इसी से सभवत अनावश्यक—प्रश्न मै पूछ बैठा "भारत की मिल में बने और इग्लैड के हथकते–हथबुने कपडे मे से कौन सा आप ज्यादा पसद करेगे?" इस प्रकार के वादग्रस्त प्रश्नपर अपना समय नष्ट करने की अनिच्छा के कारण उन्होने उसकी ओर ध्यान न देकर मुझे इतना ही कहा कि ऐसे बेकार सवाल कभी खडे ही न किये जाय। उस समय यह बात मुझे बेहद चुभी, किंतु इसके *लगभग चार साल* बाद एक दूसरे ही रूप मे उक्त प्रश्न का उत्तर मै *पा ही गया*। पूना की '*पर्णकुटी*' मे जारी उनके २१ दिन के उपवास के *समय* की यह बात है। उक्त उपवास-काल मे आठो पहर उनकी सेवा करने का अभिमानास्पद सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। एक दिन जब उन्होने देखा कि अपनी वैसलिन की बोतल, जिसकी कि एनिमा लेते वक्त गरज पडती थी, खत्म हो

ऐसी ही वातो में तो उनकी आतरिक महानता और सामर्थ्य का रहस्य छिपा रहता है। वापू के सवध मे 'फैशनेबुल' अतर्राष्ट्रवादी जो भी विचार व्यक्त करे, किंतु वापू वस्तुत अभिजात अतर्राष्ट्रवादी है। यदि आजतक 'वसुधैव कुटुबकम्' वृत्ति का कोई व्यक्ति हो गया हो, तो वह एकमात्र गाधी जी ही है।

विज्ञान का विद्यार्थी और एक उदयोन्मुख स्थापत्य-विशारद के नाते मैं इसके लिए भरसक सचेष्ट रहता हू कि ग्रामीण जनता चमत्कारो एव आधि-दैविक वातो पर विश्वास करना छोड दे, क्योकि, मेरी राय मे, इन्ही वातो ने भारतीय सस्कृति और सभ्यता की रीढपर आघात कर भारत का विनाश कर डाला है। अस्पृश्यता विषयक हमारे पापके दैवी दड-स्वरूप ही १९३४ ई० में विहार मे भूकप हुआ यह गाधीजी का कथन क्षणभर के लिए भी मै स्वीकार कर नही सकता। किंतु अपनी आखो देखी एक घटना का, जिसे कोई भी साधारण व्यक्ति सिवाय चमत्कार के और कुछ समझ नही सकता, यदि यहा मे उल्लेख न करू, तो वह आत्मप्रतारणाही होगी।

१९३८ ई० की यह वात है जव कि राजकोट-आदोलन के सिलसिले में गाधी जी ने पुन एक वार उपवास शुरू कर दिया था। सौभाग्य से इस बार भी, उपवास की समाप्ति के वाद, गाधी जी के एक परिचारक के नाते काम करने का मौका मुझे मिला। तव हाल ही मे अमेरिका से लौटी हुई मेरी भावी भौजाई कुमारी चदुवेन पारेख भी गाधी जी के परिचारको मे शामिल रही। सारे वातावरण मे, देशी रियासतो की कीर्ति के अनुरूप, गदगी और सनसनी फैली हुई थी। यहा का आदोलन वहुत पहले देशव्यापी महत्व प्राप्त कर चुका था, जिससे राज्य के उच्च अधिकारीगण एव जमीदार वहुत ही भडक उठे। चुनाचे जनता द्वारा उक्त आदोलन को मिलनेवाले वलपरही आघात करने के हेतु उन्होने वापू की प्रार्थना-सभाओ मे उपस्थित रहनेवाले अपार जनसमूह मे घवराहट पैदा करने की सोची। उन्होने भाडे के वदमाशो की एक टोली को, लाठियो और डडो से लैस कर, प्रार्थना-स्थान की भीडपर प्रार्थना के वाद टूट पडने का काम सौपा। काग्रेस स्वयसेवको द्वारा सदैव की भाति अहिंसात्मक तरीके से उनको रोकने के लिए की गई सारी कोशिशो के वावजूद ये गुडे भीड़ को चीरते हुए सीधे गाधी जी की तरफ वढने लगे। प्रार्थना समाप्त होने पर गाधी जी सदा की भाति, लाठीधारी स्वयसेवको द्वारा अपने लिए

सुरक्षित रक्खे गये रास्ते से, मोटर की ओर जा रहे थे। किंतु उस दिन मोटर तक उनके पहुचने से पहले ही भाड़े के बदमाशो ने स्वयसेवको की कतार तोडकर उन्हे चारो ओर से घेर लिया। मैने देखा कि परिस्थिति बड़ी ही सगीन बन गई है। धक्का-मुक्की और ठेलाठेली के कारण भीड के भीतर से क्रोध उफनने लगा और ऐसा मालूम हो रहा था कि घमसान मचने मे अब चद मिनटो की ही देर है। बापू के प्राण खतरे से खाली नही है यह देखते हुए भी अहिसक बना रहना मेरे लिए कहा तक सभव होता कहा नही जा सकता। हठात् उस हुल्लड़ मे मै घुस पड़ा और ठेलठाल कर, उत्तेजित भीड को चीरता हुआ, बापू के पास जा पहुचा। अब तक भीड कई टोलियो मे बटकर हाथापाई पर आ गई थी। मै यह सब झगडा कि-कर्तव्य-विमूढ-सा देख ही रहा था, कि सहसा बापू का सारा शरीर थरथर कापता हुआ मुझे नजर आया। अवश्य ही इस कपकपी का कारण भयग्रस्त होना तो था नही, वे कैसे भयमुक्त है यह बात उनके चेहरे से ही साफ झलक रही थी। उनकी उक्त शारीरिक प्रतिक्रिया हिंसा के तिरस्करणीय वातावरणका परिणाममात्र थी। बापू की सुरक्षा के लिए मै अत्यत चिंतित हो उठा। उस समय उनका स्वास्थ्य भी ठीक नही था। अतः मुझे ऐसा लगा कि वे किसी भी क्षण जमीन पर गिर पड़ सकते है। अकस्मात् उन्होने अपनी आखे मूद ली और वे प्रार्थना करने लगे। मैने उन्हें अद्वितीय भक्तिभाव से 'रामनाम' का जप करते सुना। मै भी उनकी इस प्रार्थना मे सम्मिलित हुआ और नामस्मरण मे लय उत्पन्न करने के लिए उनकी पीठ पर आहिस्ता आहिस्ता थपकिया लगाने लगा। कुछ तो बालकोचित श्रद्धा और कुछ निरी अहता के कारण मुझे ऐसा लगा कि इस तरह मै उन्हें धीरज बधा रहा हू और उनकी निष्ठा बनाये रखने मे बल प्रदान कर रहा हू। उनके प्रति मेरा यह व्यवहार सभवत. क्षम्य हो सकता है; क्योकि घर में आग लग जानेपर नन्हा नाती भी तो अपनी छोटीसी लुटिया में पानी लाकर अपने दादा की मदद कर आता है। आश्चर्य यो, और इससे भी बढ़कर सतोष की बात यह हुई कि प्रार्थना ने अपना असर दिखाया। बापू जी ने जब आखे खोली तब प्रार्थना-स्थान पर जादू की नाई नई शक्ति पैदा हो गई थी। बहुत ही दृढ़तापूर्वक उन्होने सारे स्वयसेवको और साथ ही हम आश्रमवासियो मे भी प्रार्थना-स्थान से अविलब चले जाने, एव अपने को सर्वथा गुडो की दयापर ही छोड़ देने के लिए कहा। उन्होने और यह भी कहा कि वे रोज की तरह मोटर से न आकर पैदल

चलकर ही घर पहुच जायगे। पश्चात् उन्होने गुडो के मुखिया को, जो कि भीड के साथ उलझा हुआ था, बुलाकर कहा कि यदि उसकी इच्छा हो तो उससे बहस करने के लिए वे तैयार हे, अन्यथा, आगे और क्या करने की उस की मशा हे यह बात वही बता दे । कितने आश्चर्य की बात है कि इस अहिसक स्नेहार्द्रता के सामने उक्त गुडे की हिसा बरफ की भाति गलकर पानी पानी हो गई। वह हाथ बाधकर बापू जी के आगे खडा हुआ, और क्षमायाचना कर सविनय बोला कि वे अपना एक हाथ सहारे के लिए उसके कधे पर रखदे, और जहा भी चलने के लिए फर्मावे वहा तक उनको सुरक्षित रूप से पहुचाने के लिए वह तैयार है । उस दिन शाम को बापू अपना एक हाथ गुडो की टोली के उस नायक के कधे पर रखकर, जो कि प्रार्थना-सभा भग कर जनता में घबराहट पैदा करने के हेतु उपस्थित हुआ था, डेरे पर लौट आये ।

उक्त सस्मरणीय सध्या, जिसने कि प्रार्थना की प्रभुता के प्रति मेरे मन म जीवनभर के लिए श्रद्धा पैदा कर दी, मे कदापि भूल नही सकता । किंतु मै इसे चमत्कार तो न कहूगा । क्योकि श्रेष्ठ गणीतज्ञ और इजीनियर कई गहन व उलझी हुई समस्याये महज सहजज्ञान से हल कर चुके हे, कित् इन्हे चमत्कार तो शायद ही कभी माना गया हो । सहजज्ञान एक ऐसी आतरिक क्रिया है जो कि मन की एक खास कश-मकश की हालत मे मस्तिष्क को प्रकाशित कर दती है । मानो मनुष्य के पूर्वानुभव ही उसके भीतर से बोल उठते हे । उपरोक्त उदाहरण से केवल इतना ही सिद्ध होता है कि उच्च ध्येय से प्रेरित होकर उत्कट जीवन वितानेवाला कोई भी व्यक्ति प्रार्थना द्वारा प्राप्त शक्तिपर निर्भर रह सकता है, क्योकि यह शक्ति उसे अपने विगत सघर्षो के कष्टो से मुक्ति दिलाने क साथ ही सत्पथ पर अग्रसर होने के लिए उसमें आत्मविश्वास पैदा करती है ।

हम आश्रमवासी बालक बापू के कल्पनातीत ऋणी हे । क्योकि विगत तीस वर्षों से बापू का सदय किंतु साथ ही कठोर हाथ हम आश्रमवासी बालको को कर्तव्यरत और सेवापरायण बहुमूल्य युवको के रूप मे ढालने के लिए सचेष्ट रहा है। इस आदर्श गढैया के सामने सदा यही उद्देश्य रहा है कि वह अपनी अतरात्मा के आदेशानुसार ही हम सब को गढे । किंतु हममे से हरेक का आकार-प्रकार उस मिट्टी के गुणधर्मानुसार ही बना जिससे कि हम पैदा हुए है । हमारे निर्माण मे जो त्रुटिया रह गई हे उनके लिए इस श्रेष्ठ

शिल्पी को कतई दोषी माना नही जा सकता, दोष उन द्रव्यो का है जिनसे कि हमारा निर्माण हुआ है।

पाच साल तक स्थापत्य-शास्त्र की उच्च शिक्षा, एव इससे भी अधिक जीवन-विषयक उच्च अनुभव प्राप्त कर जब हाल ही में मैं अमेरिका से लौट आया तब बापू अपना किस तरह स्वागत करेगे इस दुविधामे मैं पड़ा हुआ था। किंतु यह कितनी बेवकूफी थी ! क्योकि १९४५ ई० की दीपावली के दिन जहाज से बबई उतर कर जब मै पूना स्थित प्राकृतिक-चिकित्सालय मे पहुचा तब मुझे पूर्ववत् वही सघन स्नेह और अनुराग अपनी प्रतीक्षा करता हुआ दिखाई पड़ा। हिंदू-नववर्षारंभ के दिन मैंने पुन: एक बार उनके आशीर्वाद प्राप्त किये। मेरे लिए वह वास्तव मे नव-वर्षारंभ दिन ही रहा।

ओकारा (पजाब),
१६-३-१९४६.

महात्मा गांधी से मेरा संपर्क

एन्. सी. केळकर

श्री शुक्लजी की इस पुस्तक के लिए लेख लिखने से पूर्व एक बात मैं बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहता हू। महापुरुषो से स्वतः के परिचय या स्नेह विषयक बाते कहने-लिखने मे ही बड़प्पन माननेवाले लोगो की भाति मिथ्या महत्व प्राप्त करने की लालसा से प्रवृत्त होकर गाधी जी से अपने सपर्क सबधी प्रस्तुत संस्मरण मैं लिपिबद्ध नही कर रहा हू। मै कतई विभूतिपूजक नहीं हू; और न ऐसा ही व्यक्ति हू जो कि इस विशाल विश्व का कौन सा कोना अपना है यह बात जानता न हो। मै तो केवल श्री शुक्लजी के इस आग्रह के कारण ही, कि महात्मा जी सबधी साक्षात् रूप से कुछ लिख सकनेवाले महानुभावो मे मेरा भी अवश्यमेव आविर्भाव होना चाहिये, यह लेख लिखने के लिए उद्यत हो रहा हू।

महानता के निदर्शक सच्चे गुणो की मै प्रशसा कर सकता हू । अवश्यही उनके भीतर के दोप भी मुझे यथार्थ रूप मे दिखाई नही पडते ऐसा तो मै ईमानदारी के साथ कह नही सकता । महानता की महिमा उतनी ही परिणामकारक होती है, जितनी कि स्वय महिमा की महानता । निस्सन्देह इस देश मे एकमात्र गाधी जी ही ऐसे व्यक्ति है जिन्होने भारत के प्रचड जनवल को सगठित और केंद्रित कर शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध राजनीतिक दृष्टि से उसका प्रभाव डालने मे अन्य किसी की भी अपेक्षा अधिक योगदान किया है। मानो विधाता की ही यह योजना थी कि यह महापुरुष ठीक ऐसे समय म प्रकट हो जव कि पराधीनता से भारत की मुक्ति की वेला मर्यादा की कक्षा के भीतर आ गई हो ।

यदि मुझे अपनी स्मरणशक्ति ने धोखा दिया न हो तो मै कह सकता हू कि मैने सर्वप्रथम नववर १८९६ म, भारत की राजनीतिक शिक्षा के जनक स्वर्गीय न्यायमूर्ति रानडे के मलवार हिल (ववई) स्थित वासस्थान पर, महात्माजी का दर्शन किया। उस समय गाधी जी पतलून, लवा कोट और काले रग की गुच्छेदार रेशमी टोपी, जैसी कि पचास वर्ष पहले बगाल मे प्रचलित थी, पहने हुए थे । दक्षिण अफ्रीका के जिस राजनीतिक आदोलन में भाग लेने का उन्होने निश्चय किया था उसके सवध में रानडेजी से सलाह लेनेके हेतु वे आये थे, ऐसा मेरा ख्याल है ।

इसके वाद १९१२-१३ ई० मे गाधी जी के साथ मेरा पत्रव्यवहार 'केसरी' 'मराठा' पत्रो के सपादक के नाते उस फड के निमित्त हुआ, जो कि स्वर्गीय गोखले जी की प्रेरणा से गाधी जी के उपरोक्त आदोलन में उनकी मदद करने के लिए इकट्ठा किया जा रहा था एव जिसमे मैने महाराष्ट्र की ओर से पाच हजार रुपये प्राप्त कर भेज दिये थे ।

गाधी जी से मै दुवारा १९१६ ई० मे वेलगाव मे मिला । वहा आयोजित तिलक जी की होमरूल लीग की वैठक मे वे उपस्थित हुए थे। यहा मैं ने उन्हे और उनके सुपुत्र को (शायद देवदास होगे) वेलगाव के अपने मेजवान के डेरे पर खुद के हाथो चावल पकाकर शाम के लगभग ६ बजे भोजन से निवृत्त होते देख लिया । फीरोजशाह मेहता से लेकर हमारे छोटे से छोटे राजनीतिक नेताओ

की रहन-सहन देख चुकने के कारण, गाधी जी की उपरोक्त बेहद सादगी का मुझ पर बडा ही असर पडा'।

किंतु भारत के राजनीतिक नेताओ मे गाधी जी की गिनती होना अभी शेष था। क्योकि उसी वर्ष, यानें १९१६ ई० मे, लखनऊ मे आयोजित काग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर काग्रेसी क्षेत्र मे गाधी जी का जो स्थान रहा वह मैने देख लिया था। यहा के तिलक-कैंप मे मैने दो या तीन बार गाधी जी को देखा। राजनीतिक सुधारो सबधी काग्रेस-लीग की प्रस्तावित योजना के महत्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा करने के हेतु वे या तो खुद होकर, या तिलक जी के बुलावे से आया करते थे। लखनऊ मे तिलक जी ही देश के सर्वमान्य नेता बन गये, जिसके दो कारण थे। एक तो वे हाल ही मे माडले की जेल से छूट आये थे, और दूसरे, काग्रेस पर पुन अधिकार जमाने के हेतु झुक जाने के अपने नीतिकौशल मे भी वे सफल रहे।

राजनीतिक आंदोलन के अस्त्र के रूप में वैधानिक सत्याग्रही प्रतिकार का समर्थन करने के कारण गाधी जी लखनऊ-काग्रेस में उपस्थित बबई के नरम दली नेताओ मे अशत अप्रिय हो गये हैं यह बात किसी के भी ध्यान मे आ सकती थी। बबई प्रेसिडेंसी एसोसिएशन के कार्यालय मे मैं कई बार गाधी जी से मिला। यहीं श्री एन एम समर्थने, जिनका कि मेहता-पक्षीय युवको के एक गुट्ट पर प्रभाव था, सत्याग्रही प्रतिरोध के विरुद्ध अपनी नापसदगी जाहिर की थी। लखनऊ-काग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति के सदस्यो के चुनाव म, बबई प्रात के लिए निर्धारित सदस्य-स्थानों में से एक पर, तिलक जी द्वारा अपने अनुयायियों को दिये गये आदेश के कारण ही, गाधी जी चुने गये हैं यह बात मैं जानता था। अवश्य ही इसका यह अर्थ नहीं कि स्वय गाधीजी ही उस पद पाने के लिए लालायित थे। बल्कि वे तो सदा ही यथासभव खुद हटकर दूसरो को मौका देने के लिए तैयार रहते हैं। सच बात यह थी कि तिलकजी के

भूमिका पर, कि वह अवैधानिक है, पूर्णतया विरोध किया । मैने राजनीतिक क्षेत्र मे अवैधानिक साधनो के प्रयोग का प्रतिपादन करने के साथ ही इस बात पर ज्यादा जोर दिया कि यदि नि शस्त्र प्रतिकार को सफल बनाना हो तो उसके उद्दिष्ट का स्वरूप आत्यतिक न रहे । नि शस्त्र प्रतिकार का उद्दिष्ट सीमित, सुनिश्चित एव सुपरिचित हो, ताकि नि शस्त्र प्रतिकार के तौर पर किये जानेवाले कार्यों की दृश्य फलप्राप्ति का अवसर उपस्थित हो सके ।

मैं समझता हू कि इस प्रकार एक अनपेक्षित क्षेत्र से अपने मत का पोषण होता देखकर गाधी जी को स्वाभाविक रूप से प्रसन्नता हुई, हालाकि तिलक-पथी राजनीतिज्ञो की अपेक्षा बबई-पूना के नरस दलियो से उनका व्यक्तिगत सबध अधिक घनिष्ट था ।

दिसबर १९१९ मे अमृतसर मे मैं गाधी जी से मिला । यहा वे नेहरू-परिवार से घिरे हुए थे । इस परिवार के प्रति गाधी जी का अनुराग आज भी पूर्ववत् बना हुआ है । और यह तो सुप्रसिद्ध ही है कि गाधीजी ने जवाहरलाल जी को अपना राजनीतिक उत्तराधिकारी घोषित किया है। प. मोतीलाल नेहरू के भीतर की नवाबी को फकीरी मे तब्दील करनेवाले व्यक्ति भी गाधी जी ही थे ।

ऐसा ख्याल पडता है कि इसके बाद लोकमान्य तिलक की आखरी बीमारी के पहले गाधी जी से मेरी मुलाकात हो न सकी । १९२० ई० के जुलाई के आखरी दिन आधी रात के समय तिलक की मृत्युशय्या के पास उनके उपस्थित होने पर हम सब कैसे प्रभावित रहे यह बात मुझे खूब याद है । वे अपने दो-तीन स्नेहियो या सहयोगियो को साथ लेकर आये, अभी अभी दिवगत हुए तिलक के पास सविनय एव सादर बैठ गये, और फिर उन्हे श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर इस प्रकार शातिपूर्वक चले गये कि किसी को उनके पैरो की आहट भी सुनाई न पडी ।

तिलक की मृत्यु के बाद हम सब की दृष्टि गाधी जी के कार्यों पर बराबर बनी रहने लगी । क्योंकि, अमृतसर-काग्रेस के समय एक नरम-दली की तरह पार्ट अदा करने भर से सतुष्ट होनेवाले गाधीजी ने अब काग्रेसी नेताओ पर अपनी छाप जमा दी थी, साथ ही यह भी सुनने में आ रहा था कि भारत के राजनीतिक आदोलन में वे असहयोग के अभिनव अस्त्र का प्रयोग करने जा रहे

हूं। तिलक जी ने अपने दल को गाधीवादी अहिसात्मक असहयोग के मार्ग के प्रति पहले ही सचेत कर रक्खा था। किंतु भारतीय जनता, जिसमे राजनीतिक जागृति पैदा हो चुकी थी, स्वराज्य-आदोलन की गतिविधि की दिशा वदल दी जाने के लिए बहुत ही उत्सुक हुई थी। कई दिनो से इस तूफान की तैयारिया हो रही थी। आखिर सितबर १९२० मे कलकत्ता-काग्रेस के विशेष अधिवेशन म वह फट ही पडा। गुजरात एव हिदी भापाभापी प्रातो ने जी-तोड कोशिश कर गाधी जी के पक्ष मे बहुमत प्राप्त करा दिया। तभी से अपने लहरी स्वभाव और असगतिपूर्ण आचरण के बावजूद वे हमारे राजनीतिक आदोलन के सरताज बने हुए है और उनका प्रभाव भी अडिग रहा है।

एक वार, १९२० ई० मे, गाधी जी का आतिथ्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। उन दिनो पूना मे कोई भी उनका अनुयायी न था। मेरे मित्र श्री हरिभाऊ फाटक ने गाधी जी के लिए कही से वकरी का दूध पैदा किया, और पश्चात् एक दिन वे ही गाधी जी को सिंहगढ-वास कराने ले गये।

१९२१ ई० और १९२२ ई० में में, काग्रेस-कार्यकारिणी का सदस्य होने के कारण, गाधी जी से अवसर मिलता रहा।

गाधी जी के सुप्रसिद्ध उपवासो के दरमियान मैं कई वार उनसे मिला हू। अपनी आवभगत के निमित्त मैंने उन्हे कभी एक शब्दोच्चारण करने का भी कष्ट नहीं दिया; बल्कि मैं तो दूरसे ही उनकी ओर ताकता रहता था, और सो केवल इसी हेतु कि मैं उनकी कितनी कद्र करता हू यह बात उनके ध्यान म आ सके। उपवास, जिसने कि उन्हे ससार-प्रसिद्ध बना दिया, उनके असाधारण व्यक्तित्व के अनेक अगो म से एक है। क्योंकि राजनीतिक जागृति के साधन के तौर पर उपवास का प्रयोग करने की कल्पना ससार मे क्या अन्य किसी को सूझती ? अनेक बार उन्होने आमरण अनशन ठान लिया। किंतु

दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट कर, मच की दिशा मे बढनेवाले गाधी जी को देखकर मै जितना चकित् हुआ उतना पहले कभी भी नही हुआ था। स्मरण रहे कि वह गुजरात के कडाके के जाडेवाली सुवह थी, और फिर भी गाधीजी ने विना कुछ ओढे काग्रेस-पडाल मे पधारकर वहा घटा वैठने की हिम्मत दिखाई थी।

१८ मार्च १९२२ के सुप्रसिद्ध गाधी-मुकदमे की, अपनी आखो देखी कार्यवाही का शब्दचित्र मै नीचे उपस्थित कर रहा हू। क्योकि जो दृश्य अपने जीवन के अति प्रिय प्रसगो मे से एक के रूपमे मेरे सग रहनेवाला है उसका मुझे सदा स्मरण कराने मे इससे मदद मिलती है। इस दृश्य मे काव्यात्मता और वास्तवता का जो मर्मस्पर्शी मिलन हुआ है वह अभूतपूर्व है।

काग्रेस-कार्यकारिणी के सदस्य के नाते उस दिन न्यायालय मे मुझे एक 'रिजर्व' जगह बैठने के लिए मिल गई। वस्तुत 'न्यायालय' शब्दप्रयोग ही उक्त प्रसग पर की अनेक असगतिपूर्ण वातो मे से एक था। 'स्टेट ट्रायल' से क्या अभिप्राय होता है यह स्वय पाठक ही भली भाति सोच सकते हैं। किंतु यहा तो हर वात विल्कुल उलटी ही हो रही थी।यह स्टेट ट्रायल जितनी की स्टेट के द्वारा होने जा रही थी उससे कही अधिक वह खुद स्टेट की ही ट्रायल थी। शेप सभी वाते स्वाभाविक रूप से इसके अनुरूप ही थी।

मेरी राय मे उक्त सस्मरणीय मुकदमे मे सर्वाधिक करुणाजनक सूरत जज की ही थी। क्योकि इस प्रकार के कटु कर्तव्य से पहले कभी उसका पाला पडा न था। अभियुक्त भी अदालत से वढकर श्रेष्ठ हो सकता है यह वात उस दिन की तरह उसने कभी अनुभव की न होगी। मि० ब्रूमफील्ड के चेहरे पर हवाइया उड रही थी। उसका मुह फक पड गया था। अपने शुद्ध आचरण या पद-प्रतिष्ठा के द्वारा भी वह इस घवराहट को रोक न सका। क्योकि सिविलियन सेशन जज के नाते गुजारी गई अपनी जिन्दगी मे आज पहली ही वार उसने, अदालत के सामने विचाराधीन कैदी के रूप मे उपस्थित एक देशी आदमी के प्रति आदरभाव व्यक्त करने के हेतु, कुर्सी पर विराजने से पहले अपना सर किंचित् हिलाया। और उस के फैसले मे भी अभियुक्त के प्रति निम्न व्यक्तिगत सम्मानसूचक शब्द एकवारगी निकल ही गये—"आपको

छ. साल के लिए जेल भेज देने की अपेक्षा आपके चरणो के पास बैठकर आपके औदार्य का अशत भागी बनना ही क्या मेरे लिए अधिक शोभाप्रद न होता ?"

इस मुकदमे की कार्यवाही में भाग लेनेवाले सरकारी वकील की भी विचित्र हालत हुई। मानो उसके पैरोतले की जमीन ही खिसक गई हो! यहा ऐसा कोई षड्यत्र तो था नही कि जिसके एक-एक भेद पर वह अपने कानूनी दिमाग से प्रकाश डालता। गवाहो आदि की उपस्थिति भी उसे विडबनापूर्ण ही प्रतीत हुई, क्योकि स्वय अपराधी सारे अभियोग स्वीकार कर चुका था। निर्भयतापूर्वक की गई सरकार की कटु आलोचना उसके आक्षिप्त लेखो के शब्द-शब्द से ही स्पष्ट झलक रही थी। सरकारी वकील ये लेख अदालत के सामने इस ढग से सुना रहा था कि मानो उनके पढते समय उसकी जीभ लड़खडा रही है। उसने जानबूझ कर ही तिरस्कार वृत्ति धारण की थी, जो कि उसके पेशे के अनुरूप ही थी। सदा की भाति आज उसे ऐसे विरोध का सामना करने का सुअवसर नही मिला कि जिससे कानूनी छाटकर और अपनी बुद्धिमानी का प्रदर्शन कर वह सतुष्ट हो जाता। शायद आज पहलीही बार सरकारी वकील ने ऐसा अनुभव किया कि इस मुकदमे के मिससे अपनी जेब मे चली जाने वाली बडी भारी फीस बिल्कुल मुफ्त की ही है।

और स्वय अभियुक्त के बारे मे मैं क्या कहू ? स्वतत्र चेता किंतु साथ ही सर्वोदय की कामना करनेवाले महात्मा गाधी ने खादी की लुगी, जो कि लगोटी का ही परिवर्धित सस्करण था, धारण कर रक्खी थी। यह अद्वितीय अभियुक्त न केवल धीरोदात्त, अपितु उल्हसित व आनदित भी नजर आया। पता नहीं यह उसके विरुद्ध चलाये जानेवाले मुकदमे की कार्यवाही थी, या उसके विवाहोत्सव की तैयारिया हो रही थी। किंतु उसे अपनी खुशी पर दूल्हे की अपेक्षा अधिक अभिमान था। उसकी वकालत करने के लिए कोई भी

क्या उन्होने अपने विरुद्ध लगाया गया अभियोग स्वीकार किया ? हा, अवश्य । वल्कि वे तो यह महान् सवाल स्वत से कब पूछा जायगा इसकी उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे । क्योकि वे इसका जवाव वडे तपाक स देना जो चाहते थे । इतनी आसानी से अभियोग सिद्ध किया जा सकता है यह वात सरकारी वकील ने अपनी जिंदगी मे शायद आज पहली ही वार अनुभव की । और फैसला सुनानेवाले जज को ऐसा लगा कि छ साल की सौम्य सजा सुनाकर अभियुक्त के प्रति दिखाई गई सहिष्णुता के लिए वह धन्यवाद का पात्र है ।

इस प्रकार महात्मा गाधी ने प्रस्तुत महान् 'स्टेट ट्रायल' की मुख्य और उससे सीधी तौर से सवधित चद वातो को ही उठा कर उनकी, और उनके साथ उक्त मुकदमे की शेष सभी हुक्मी व गुप्त नाटकीय वातो की धज्जिया उडा दी । और रेल की पटरियो को वदलनेवाले होशियार 'पाइट्समैन' की तरह वे इस मुकदमे की गाडी क्षुद्र भय की पटरीपर से सुसस्कृत उदात्तता की पटरी पर ले आये । यदि इस समूची कार्यवाही के दरमियान परिहास को सहज ही म पराभूत करनेवाले सुस्पष्ट सद्गुणो की अभिव्यक्ति न होती तो न्यायाधीश और सरकारी वकील दोनो ही आकस्मिक विस्मय और तदनुवर्ती दैन्यभाव के वशीभूत होकर इस भव्य काव्य का प्रहसन ही कर छोडते ।

प्रस्तुत मुकदमे की कार्यवाही भावनावशता से परे रहे इस हेतु गाधी जी द्वारा की गई सारी कोशिशो के वावजूद, जव जज महोदय ने सजा सुनाते वक्त उसकी भीषणता की पूर्वकाल के एक मुकदमे से तुलना करने के निमित्त तिलक जी के नाम का निर्देश किया तव उसे अपरिहार्य रूप स भावना का स्पर्श हो ही गया । और तव महात्मा जी भी यह कहकर, कि उक्त तुलना म वे आत्मगौरव ही अनुभव करते है, सहानुभूति की तार छेडे विना रह न सके । तत्क्षण सभी उपस्थित महानुभावो को चौदह वर्ष पहले के एक अन्य वडे सरकारी मुकदमे की वाते याद हो आयी । इस प्रकार शब्दमात्र से निष्प्राण अतीत को सजीव वर्तमान मे वदल देनेवाले जज-महोदय एक जादूगर ही सावित हुए । निश्चय ही छ साल की सजा म कुछ अद्भुत गुण होगे। अन्यथा, सरकार उक्त सजारूपी गुणकारी तावीज भारत के इन उभय उद्धारका के गले म क्या वाधन लगती, और क्यो वे भी इसे उसके यथार्थ रूप मे मन पूर्वक स्वीकार ही करते ?

अवश्य ही इनकी योग्यता के व्यक्तियों द्वारा छः साल की सजा का किया जानेवाला यह स्वागत भारत को उसकी वर्तमान व्याधियों से मुक्ति दिलाने मे सहायक सिद्ध होगा।

मैं समझता हूं कि अदालत छोडते वक्त मि. ब्रूमफील्डका अंतर्हृदय आत्मग्लानि से अवश्यही भरा रहा होगा। और जज के पद पर अपनी बढती न होने की बात से सरकारी वकील को भी प्रसन्नता ही हुई होगी, क्योंकि वह अभियुक्त से सचमुच में हाथ मिला सका, और इस प्रकार उसने महात्मा जी एव उनके साथी-अपराधियों के प्रति अत्यंत शिष्ट व सौजन्यपूर्ण व्यवहार के बाद भी अपने खाते की रही-सही भूलचूक पूरी कर दी। अदालत मे तैनात पुलिस-अधिकारियों की भी बडी मिट्टी पलीद हुई। अपराधियों की निगरानी करने के उनके हर-हमेश के आडंबरपूर्ण उद्योग ने आज मुंह काला किया था। अपराधियों को अदालत से ले जाने की आज उन्हें जल्दबाजी नही थी, और न वे जरूरत पड़ने पर भी आज के दिन ऐसा करते। अदालत के कमरे से जज-महोदय और सरकारी वकील के विदा होते ही वहा पर उपस्थित शेष जनसमुदाय को स्नेहसम्मेलन का स्वरूप प्राप्त हुआ। किसी को पुलिस का ख्याल ही न रहा।

और तब एक ऐसे दृश्य की पुनरावृत्ति हुई जिससे कि गत कुछ वर्ष से मैं सुपरिचित था। दत्तचित्त से स्वतः से बातचीत करनेवाले स्त्री-पुरुषों एव बच्चों के बीचोंबीच महात्मा जी बैठे हुए थे। सब का सहर्ष स्वागत कर, मीठी चुटकियां लेते हुए, हास-परिहास के साथ हरेक के सवाल का जवाब वे देते जा रहे थे। मैंने उन्हें पांच साल की उम्र के एक छैलछबीले को, जिसने कि विलायती कपड़े का सूट पहन कर ऊपर से फैशनेबल टाइ बांध रक्खी थी, प्यार से फटकारते देखा। इसी प्रकार उन्होंने उपाधियों के पीछे पागल एक वृद्ध महाशय को धीरे से छेड़ कर यह सलाह दी कि कम से कम अब बुढ़ापे में इस लत से अपना पिंड वे छुड़ा ले। उन्होंने जहां एक ओर अपने किसी प्रिय अनुयायी को, उसकी आंखोंमें आंसू छलछला आने से पहले ही उन्हें रोक कर, मुस्कराहट से धैर्य प्रदान किया, वहां दूसरी ओर अपेक्षाकृत अधिक कठोर-हृदय एवं व्यवहारकुशल कार्यकर्ता को उसके जिम्मे के कार्यसंबंधी उपयुक्त सुझाव दे कर उत्साहित किया।

आध घटे के भीतर यह भव्य राज-सभा विसर्जित हुई । एक-एक करके सब लोग चल दिये । यहा तक कि पुलिस भी महात्मा जी को जेल की अशुभ मोटर की ओर ले गई । फिर भी हम सभी को ऐसा अनुभव हुआ कि इस असाधारण रूप से निष्ठावान और आत्मत्यागी व्यक्ति का मुकदमा अभी शेष ही है । और सरकार की ओर से उसके विरुद्ध की गई अदालती कार्यवाही, या उसकी खुद की छः साल की दीर्घ अनुपस्थिति से भी वह नि शेष हो नही सकता ।

प्रस्तुत घटना के चार साल पहले जब मैंने महात्मा गाधी द्वारा स्थापित सत्याग्रह-आश्रम की नियमावली पढ़ी थी, तब गोपाल कृष्ण गोखले के इस शिष्य ने आश्रमवासियो के लिए निर्भयता के प्रतिज्ञा-पालन की जो शर्त उक्त नियमावली मे रक्खी थी उसी की ओर मेरा ध्यान सर्वाधिक आकृष्ट हुआ था । और उस समय मैं ने कहा भी था कि यही प्रतिज्ञा आश्रम के राजनीतिक ढाचे को वास्तवपूर्ण एव वैशिष्ट्यपूर्ण स्वरूप प्रदान करेगी, जब कि शेष कठोर नीति-नियम उसके लिए दिखावटी कलावत्तू का ही काम देंगे । अदालत के अहाते से बाहर निकलते समय मैंने मन ही मन कहा, "वस्तुतः वह प्रतिज्ञा पूरी की गई है ।" उस दिन महात्मा जी ने अपने व्यक्तिगत उदाहरण से जो निरी निर्भयता प्रकट की उसे न तो अनत काल, और न ही अनित्य स्मृति नामशेष कर सकती हैं ।

पूना,
१५–६–१९४६.

जैसा कि मैं उन्हें जानता हूं

पी. कोदंड राव

महात्मा का आलोचक

अपनी याददाश्त के सहारे मैं लिख रहा हू, और वह तो बड़ी दगाबाज़ होती है । क्योकि यही देखिये न कि महात्मा जी से मेरी भेंट-मुलाकात कब, कहा और कैसे हुई यह बात वह मुझे बताती ही नही । अवश्य ही हर कोई उन्हे वर्षों से जानता था । मेरा ख्याल है कि उनसे अपनी मुलाकात हो जाने से पहले ही वे खुद मुझे जानने लग गये थे । १९२१ ई० में, याने जिस वर्ष महात्मा जी ने अहिंसात्मक असहयोग-आदोलन का श्रीगणेश किया उसी

वर्ष, मैं सर्वेंट्स आफ इडिया सोसाइटी का सदस्य बना। सोसाइटी की नीति आदोलन-विरोधी थी। शायद ही कोई दिन ऐसा गुजरा होगा जब कि महात्माजी ने अपने आदोलन के पक्ष मे व्याख्यान दिया न हो, या वक्तव्य निकाला न हो। साथ ही शायद ही कोई सप्ताह ऐसा गुजरा होगा जब कि सोसाइटी के अग्रेजी साप्ताहिक मुखपत्र 'सर्वेंट्स आफ इडिया' में उन वक्तव्यो या व्याख्यानो का तीव्र प्रतिवाद निकला न हो। उस समय मैं अपेक्षाकृत युवा था, और प्रसगवश कलम-कुठार चलाने में मुझे बड़ा ही मजा आता था। ऐसे ही एक प्रसग पर लिखी गई 'अहिंसा की हिंसा' शीर्षक मेरी टिप्पणी महात्मा जी के कई प्रशसको को बहुत ही चुभी। लेकिन खुद उन्होने, जहा तक मैं जानता हू, उक्त टिप्पणी क्षमाशील विषाद के साथ पढ डाली; वे कतई क्रोधित न हुए। उनकी समजसता असाधारण थी।

"दिखावटी देहात"

किंतु एक बार मैंने एक अशक्यप्राय बात कर डाली; अर्थात् महात्मा जी को क्रोधित कर दिया। मेरे बुजुर्ग, माननीय श्रीनिवास शास्त्री ने मुझे दिल्ली मे पत्र द्वारा सूचित किया कि उन्हे पहली ही बार महात्मा जी चिढ़े हुए नजर आये। गाधी-इर्विन समझौते के समय की यह बात है। श्री शास्त्री जी मध्यस्थता कर रहे थे। तत्कालीन सरकार के विरुद्ध ऐसा कहा जा रहा था कि उसके अत्याचारो से बचने के लिए गुजरात के कई ग्रामीण अपना गाव छोड़ छोड कर बड़ोदा जैसी देशी रियासतो के आश्रय मे रहने चले गये हैं। मैं उक्त क्षेत्र का दौरा कर आया था। किसी ने महात्मा जी को सूचित किया कि मैंने उजाड गावो की कहानियों की ओर ध्यान न देकर केवल जो गाव मुझे दिखाये गये हैं उन्हे 'दिखावटी देहात' सबोधा है। उन्होंने श्री शास्त्री जी की मार्फत इस विषयक मेरे स्पष्टीकरण की माग की। मैंने स्पष्टीकरण दिया, और उससे वे सतुष्ट भी हुए।

जेल से हरिजन-आंदोलन

१९३२ ई० के आखिर में महात्मा जी ने यरवदा जेल मे हरिजन-आदोलन चलाने का निश्चय किया। उन्होंने संदेशा भेज कर मुझे मिलने के लिए जेल बुलाया। और मुझसे एक वक्तव्य लिखवा कर समाचार-पत्रो एव अन्य माध्यमों द्वारा उसे अधिक से अधिक प्रसिद्धि देने के लिए कहा। उनके प्रकाशन-मंत्री

के नाते कई सप्ताह तक प्रायः प्रति दिन ही में उनसे मिलता रहा। फिर तो धीरे धीरे आवश्यकतानुसार स्टेनो-टाइपिस्टो आदि की नियुक्तिया होकर जेल के भीतर ही बकायदे एक दफ्तर लग गया। इसके बाद मेरी सेवाओ की जरूरत न रहने पर भी महात्माजी ने मुझे जेल मे या जेल के बाहर कभी भी उनसे मिलने के लिए आने का विशेष अधिकार दे रक्खा। मैं प्रायः उनसे मिलने जाया करता था, किंतु वहा गभीर विषय पर की किसी चर्चा मे मैंने शायद ही कभी भाग लिया हो। जेल मे उन्होंने हरिजनो से सबधित सवालो तक ही चर्चा की सीमा बाध दी थी; और यदि कोई किसी प्रसग पर यह सीमा लाघने का दु साहस करने लगता तो, वह कितना ही बडा आदमी होने पर भी, वे उसे सविनय किंतु साथ ही दृढतापूर्वक टोक देते थे।

दो युवतियां

महात्मा जी से मिलने, हरिजनो से सबधित सवालो पर उनसे चर्चा करने, या केवल उनका अल्प सहवास पाने के हेतु पूना मे देश-विदेश के लोगो का ताता बधा ही रहता था। उनमे से अधिकाश व्यक्ति कभी तो महात्मा जी के कहने से और कभी अन्य कारणो से सर्वेट्स आफ इडिया सोसाइटी के भवन मे ठहरा करते थे। सोसाइटी के मत्री के नाते उनके आतिथ्य एव जेल मे महात्मा जी से उनकी मुलाकात करा देने का भार मुझ पर ही आ पडता था। ये आगतुक होते थे भी कई किस्म के।

ऐसे ही आगतुको में दो विदेशी महिलाये थी। अपना काम चलाने के लिए हम उन्हे 'न' और 'स' सबोधा करेगे। दोनो ही जवान थी, किंतु 'न' सुदरी थी, और 'स' दृढ निश्चयी। महात्मा जी से मिलने मे 'स' पहली रही। उसने महात्मा जी की शिष्या बनने का निश्चय किया, और अपना सामान आदि लाने के लिए वह स्वदेश लौट गई। इसी बीच 'न' ने एक-ब-एक अपने रोमाचक जीवन का त्याग कर बगलोर के बाजार में हरिजन-कार्य शुरू कर दिया। और यरवदा-जेल स्थित महात्मा जी से वह पत्र-व्यवहार करने लगी। वह पूना आकर सर्वेट्स आफ इडिया सोसाइटी के भवन मे ठहरनेवाली थी, और महात्मा जी से उसकी मुलाकात का प्रबध करना था। किंतु उसके पूना पहुचने से पहले खुद मुझे ही बगलोर जाना पडा। वहा मेरे विश्वसनीय और

स्त्री-दाक्षिण्ययुक्त दोस्तों ने, जो कि भारत के बाहर की दुनिया देख चुके थे, 'न' के विरुद्ध कुछ ऐसी बाते कही जो कि उसके लिए कलक-स्वरूप थी। पूना लौट आने पर सद्हेतुपूर्वक मैंने महादेव देसाई से इशारे के तौर पर धीरे से इतना ही कह दिया कि 'न' की बाबत महात्मा जी ज़रा सतर्क रहे तो बेहतर होगा। कुछ ही दिन बाद मुझे बुलावा आया। महादेव भाई ने 'न' के नाम महात्मा जी द्वारा भेजे गये पत्र की प्रतिलिपि मुझे दिखाई। उन्होने यही लिखा था कि एक हितैषी मित्र ने तुम से सावधान रहने की स्वत: को सूचना दे रक्खी है। महात्मा जी से मिलकर इस प्रकरण की जाच-पड़ताल करने के लिए वह सीधे पूना तो पहुच न जायगी? सोचकर मैंने आत्मग्लानि अनुभव की। एक महिला के प्रति,—और खासकर एक विदेशीय महिला के प्रति अपने अनुदार आचरण के लिए मन मेरा भारी हुआ। ऐसा लगा कि यदि महात्मा जी के सामने वह निर्दोष साबित हुई तो अपने ऊपर घड़ो पानी पड जायगा। जो भी हो, गलती तो हो चुकी थी; पत्र डाक मे छोडा जा चुका था। सतोष की बात इतनी ही थी कि उक्त पत्र में भेदिये के तौर पर मेरे नाम का कतई उल्लेख किया न गया था।

किंतु यह सतोष भी क्षणिक ही रहा। क्योंकि शीघ्र ही मुझे दुबारा यह संदेसा मिला कि 'न' पूना पहुच गई है, जिससे मैं मिल लू। चुनाचे महात्मा जी की उपस्थिति मे जेल मे ही मैं उससे मिला। पश्चात् जब महात्मा जी ने सारा भेद खोलनेवाले व्यक्ति के रूप मे 'न' से मेरा जिक्र किया तब मैं बहुत ही लज्जित और अस्वस्थ चित्त हो गया। फिर उन्होंने मुझे उसकी सारी बातो की तहकीकात कर रिपोर्ट पेश करने के लिए कहा। मैंने इसमें आपत्ति प्रकट की। उसकी व्यक्तिगत बातों मे हस्तक्षेप करने का मुझे अधिकार ही न था। इस प्रकार मेरा दखल देना अक्षम्य अपराध माना जाता। किंतु वे इस से मत नहीं हुए। वे सत्य की तह तक पहुचना जो चाहते थे। अत: उनके आदेश से, और उन्हीं के लिए, यह अप्रिय कार्य मैंने स्वीकार कर लिया। उनका यह भी कहना रहा कि मुझे इसका दोष न लगेगा। 'न' को मेरी दशा पर दया आई और वह मेरी मदद के लिए आगे बढ़ी। उसने खुद ही सारी बातों का स्पष्टीकरण करते हुए अपने विरुद्ध लगाये गये अभियोगों का खडन किया। बताया, कि भारत मे उसका चाल-चलन उसी ढग का रहा जैसा कि उसके

अपने देश में वह होता, और जहा वह कदापि शिष्टाचार विरोधी माना न जाता। अवश्य ही भारत की भिन्न समाज-रचना का ख्याल रखते हुए तदनुसार अपने आचरण में हेर-फेर करने का उसे भान ही न रहा। मैंने महात्माजी से कहा कि इस सबध में बगैर ज्यादा तहकीकात किये मैं अपनी राय कायम कर नही सकता। उन्होने यह स्वीकार किया कि किसी को भी परखना अत्यत कठिन है। किंतु 'न' के सबध मे पूरी तौर से छानबीन करने के बाद वे खुद इसी निर्णयपर पहुचे कि वह निर्दोप है, और केवल चुगलखोरो के प्रचार की शिकार हो गई है। मेरा दर्प चूर चूर हो गया। अपने आप को मैंने खूब धिक्कारा। 'न' मे मैंने माफी माग ली और चुपके से कान पकड लिया कि आइन्दा ऐसा न करेगे। महात्मा जी का मार्ग जितना अद्भुत उतना ही अगम्य था।

परतु इतने से ही पिड छूटा नही। कुछ सप्ताह बाद मुझे पुन बुलाया गया। महात्माजी ने मुझसे कहा कि अधिक जाच-पडताल के परिणाम-स्वरूप उन्हें इस बात का विश्वास हो गया है कि सभी अभियोग सही है, और तत्सबधी मेरी सर्वप्रथम सूचना के लिए वे आभारी हैं। इसके शीघ्र ही बाद उन्होने और एक उपवास शुरू कर दिया। हरिजन-कार्य सबधी अपन सभी साधन 'शुद्ध' न होना इस बार के उनके उपवास का कारण रहा।

इस बीच 'स' स्वदेश से लौट आई थी। 'स' और 'न' दोनो ही महात्मा जी के आदेश से अब सर्वेंट्स आफ इडिया सोसाइटी के पूना स्थित भवन म रहने लग गई थी। जब उपवास की खबर मिली तब 'न' और 'स' दोनो ही स्वाभाविक रूप से बेहद बेचैन हो गईं। 'न' ने स्वत को ही महात्मा जी के उपवास के लिए दोषी ठहराया, और उनसे अनुरोध किया कि वे अपनी कीमती जान उसके कारण खतरे में न डाले। बोली, कि उनका आदेश पाकर हर तरह का दिव्य करने के लिए वह तैयार है, और उपवास-काल म वे उसे अपने पास ठहरने दें। लेकिन महात्माजी ने उसे फौरन् पूना छोडकर चले जाने के लिए फरमाया, और सो वह चल भी दी।

जो रक्षायोग्य ही नही थी उसके लिए उपवास करने के कारण अब 'स' महात्माजी पर भडक पडी। यदि महात्मा जी ने अपना उपवास अविलब भग न किया तो वह उनके विरुद्ध उपवास करनेवाली थी, और उसने मुझे

सर्वेट्स आफ इडिया सोसाइटी के भवन मे इसका प्रबंध करने के लिए कहा। जवाब में मैं बोला कि सोसाइटी का भवन महात्माजी के मेहमानों को ठहरने के लिए तो खुला है, किन्तु महात्माजी के लिए, या उनके विरुद्ध भी, वहा उपवास किया नही जा सकता। चुनाचे भवन छोडकर वह चली गई, और कुछ दिन बाद उसने उपवास भी भग किया। इससे महात्मा जी के सिर से भी एक बोझ उतर गया।

विचित्र सुझाव

पुनः एक बार महात्माजी उसी यरवदा-जेल पहुच गये। पहले की भांति अबकी दफा भी उन्होने जेल से हरिजन-कार्य करने के लिए सरकार के पास इजाजत मागी। सरकार ने इससे इन्कार किया। उनसे साफ कह दिया गया कि आप कितने ही बडे आदमी होने पर भी आखिर हैं तो एक कैदी ही। फलतः महात्माजी ने अनिश्चित काल के लिए उपवास शुरू कर दिया। उनका स्वास्थ्य तेजी से गिरने लगा। जेल-अधिकारी यह न चाहते थे कि अपने हाथो उनकी मौत हो। चुनाचे एक सरकारी अफसर ने मेरे सामने यह सुझाव रखा कि महात्मा जी को जेल से सर्वेट्स आफ इडिया सोसाइटी के भवन मे हटाया जाय, जहा वे जेल की अपेक्षा अधिक आराम से रह सकेगे। यह प्रस्ताव मै कहा तक स्वीकार करूगा इसमें उन्हे सदेह था। अवश्य ही मैने इसका सहर्ष स्वागत किया। और कौन न करता? खासकर महात्मा जी तो कई सालो से अपने आपको सोसाइटी का अनधिकृत सदस्य घोषित कर चुके थे.

गांधी और थोरो

सत्याग्रह-आदोलन का आविष्कार और आरभ महात्मा गाधीने दक्षिण अफ्रीका मे किया। साधारणतया सर्वत्र, और खास तौर से अमरीका मे ऐसा समझा जाता है कि सविनय अवज्ञा-आदोलन विषयक अपनी कल्पना के लिए महात्माजी प्रसिद्ध अमरीकी दर्शनशास्त्री एव ग्रथकार हेन्री डी. थोरो के 'सिविल डिसओबीडिअस' शीर्षक निवध के ऋणी है। अमरीका के अपने निवासकाल मे, और येल विश्वविद्यालय मे, लोग मुझसे प्राय इसकी चर्चा करते थे। अत स्वय महात्माजी से ही वास्तविक बात जान लेना मैंने उत्तम समझा। ता. १० सितवर १९३५ को वर्धा से मेरे नाम भेजे गये अपने पत्र में इस सवध मे वे लिखते है —

"यह कथन, कि सविनय अवज्ञा-आदोलन विषयक विचार मैंने थोरो के लेखो से ग्रहण किये है, गलत है। थोरो का 'सिविल डिसओबीडिअस' निवध मेरी नजर से गुजरने के पहले ही दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह काफी आगे वढ चुका था। किंतु उस समय उक्त आदोलन 'पैसिव रेजिस्टस' के नाम से मशहूर था। यह शब्दप्रयोग अर्थपूर्ण न होने के कारण गुजराती पाठको के लिए मैंने 'सत्याग्रह' शब्द गढा। पश्चात् थोरो के सुविख्यात निवध के शीर्षक पर नजर पडते ही, अग्रेजी जाननेवाले पाठको को अपने आदोलन स अवगत कराने के हेतु, मैं उसी का प्रयोग करने लगा। किंतु मैंने ऐसा देखा कि 'सिविल डिसओबीडिअस' शब्दप्रयोग भी हमारे आदोलन को उसके सपूर्ण रूप मे व्यक्त कर नही पाता। चुनाचे मैं 'सिविल रेजिस्टस' शब्दप्रयोग काम मे लाने लगा। अवश्य ही अहिसा सदैव हमारे आदोलन के अविकल अगस्वरूप रही है।"

केपटाउन करार

१९२६-२७ ई० मे भारत-सरकार एव दक्षिण अफ्रीका के बीच आयोजित गोलमेज-परिषद् के लिए भेजे गये भारतीय प्रतिनिधि-मडल के एक सदस्य श्री श्रीनिवास शास्त्री भी थे। इसी परिषद् के परिणामस्वरूप 'केपटाउन सुलहनामा' वना। यह सुलहनामा एक प्रकार से आपसी समझौता था। १९१४ ई० मे दक्षिण अफ्रीका से विदा होने से पहले महात्मा गाधी ने वहा

के प्रवासी भारतीयो के ऐच्छिक स्वदेश प्रत्यागमन को सिद्धातत अपनी सम्मति प्रदान की थी। 'केपटाउन सुलहनामे' के अनुसार भारत-सरकार ने भी इसके लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की, किंतु इसी हद तक कि जिससे भारतीयो की भावनाओ पर आघात हो न जाय। दूसरी ओर दक्षिण अफ्रीका की सरकार भी इस सुलहनामे में शामिल हुई, और अपनी पूर्वनिश्चित नीति के सर्वथा विपरीत उसने अपने यहा स्थायी रूप से बस हुए भारतीयो को दूसरी जातियो की बराबरी के हक देने का इरादा जाहिर किया। इसका अर्थ तो यही होता था कि उन्हे गोरो की बराबरी के हक मिल जायगे। गरज कि 'केपटाउन सुलहनामा' उसके दोनो अशो को देखते हुए, भारत के लिए एक राजनीतिक विजय थी।

किंतु क्या भारतीय जनता इस दृष्टिकोण से सहमत होगी? इस समय असहयोग-आदोलन अपनी चरम सीमापर था, जिससे कोई भी 'देशभक्त' भारतीय, 'शैतानी' भारत सरकार की किसी भी कार्यवाही का खुले आम तो समर्थन कर ही न सकता था। दूसरी बात यह कि 'केपटाउन सुलहनामा' वस्तुत भारत व दक्षिण अफ्रीका की सरकारो के बीच हुआ एक समझौता था, जब कि भारतीय जनमत इनमें से किसी के भी पक्ष में न था। अत यह आशका होने लगी थी कि कहीं यह सुलहनामा, उसके गुणावगुणो का विचार न कर, एकदम से ठुकरा न दिया जाय। हा, यदि महात्माजी इसके पक्ष में अपनी राय देते तो, केवल भारतीय जनमत पर के उनके प्रभाव के कारण ही नहीं बल्कि दक्षिण अफ्रीका के प्रवासी भारतीयो की समस्या के वे विशेषज्ञ माने जाने से, भारत के द्वारा उसके स्वीकृत होने की कुछ सभावना थी। इसीलिए श्री शास्त्रीजी ने इस बात पर जोर दिया कि उक्त सुलहनामा प्रकाशित

मे दुमत तो है ही नही; मामला उभय पक्षीय है, और महात्मा जी भी साधारण नागरिक या विद्रोही माने नही जा सकते । चुनाचे तत्कालीन वायसराय लार्ड इर्विन ने अपनी पद-प्रतिष्ठा का ख्याल छोड कर महात्मा जी को मनाने का काम खुद शास्त्रीजी को ही सौपा । उस समय महात्मा जी मध्य-प्रात के तूफानी दौरेपर होने के कारण दिल्ली से उनकी मुलाकात का प्रबध करना सभव न था । अत. शास्त्रीजी और मै दोनो नागपुर पहुच गये । महात्माजी से प्राप्त एक सँदेसे पर से हमे उनके दौरे का कार्यक्रम तफसीलवार मालूम हुआ । निदान, एक छोटे से स्टेशन पर इन दोनो की भेट हुई, और वे बातचीत करने के हेतु लोकल ट्रेन के पहले दर्जे के एक खाली डिब्बे मे सवार हो गये । गाडी स्टेशन-दर-स्टेशन मुकाम करती हुई आगे बढ रही थी । हर दो स्टेशनो के बीच चलती गाड़ी मे शास्त्री जी सुलहनामे की कहानी महात्मा जी से निवेदन करते थे । अवश्य ही किसी भी स्टेशनपर गाडी के रुकते ही महात्मा जी के दर्शनार्थ उमड पडनेवाली भारी भीड के कारण शास्त्री जी के निवेदन मे बाधा पहुचती थी । महात्मा जी वर्धा पहुच कर उनके शाम के भोजन का वक्त होने तक यह निवेदन जारी रहा। और शास्त्री जी से जुदा होने से पहले गाधी जी ने उन्हे यह विश्वास दिलाया कि उक्त सुलहनामा आशातीत अच्छा होने की वजह मे वे उसकी खुले आम ताईद कर उसके प्रकाशन के बहुत पहले तत्सबधी अपनी सम्मति भी समाचार-समितियो के पास भेज देगे । यथासमय दोनो ही दस्तावेज एकसाथ प्रकाशित हुए । अवश्य ही जनता का ध्यान महात्मा जी की सम्मति की ओर सर्वप्रथम आकृष्ट हुआ । उनका निर्णय मान लिया गया, और इस प्रकार सुलहनामे को जीवदान मिला । मौका पड़ने पर सुलहनामे को बचाने के लिए अपनी ओर से तैयार रहने के हेतु सरकार ने शास्त्री जी को केंद्रीय धारासभा का सदस्य नामजद कर रखा था । लेकिन इसकी जरूरतही नही पड़ी ।

नागपुर,
१८-२-१९४८.

प्रथम दर्शन

जे॰ बी॰ कृपलानी

फरवरी १९१५ की बात है। गाधी जी शातिनिकेतन पधारे हुए थे। दक्षिण अफ्रीका स्थित उनके 'फिनिक्स' आश्रम के सहयोगी उनसे पहले ही वहा पहुच गये थे। खुद गाधी जी दक्षिण अफ्रीका से सीधे इग्लैंड जाकर फिर भारत लौटे थे, और अब शातिनिकेतन में अपने प्रियजनो के बीच थे। फिनिक्स-दल शातिनिकेतन कैसे पहुचा इसका, खुद गाधी जी ने ही, अपनी आत्मकथा में वर्णन किया है। गुरुदेव की इस सस्था से मेरा भी थोड़ा सबंध था। मैंने अपने भतीजे श्री गिरधारी कृपलानी को वहा पढने के लिए रखा था। मैं स्वय मुजफ्फरपुर (बिहार) के एक आर्ट्स कालेज में प्रोफेसर था। बिहार, एक अलग प्रात होकर भी, उन दिनो उच्च शिक्षा के मामले में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के अधिकार-क्षेत्र में था।

१९१४ ई० मे भारत के राजनीतिक जीवन मे शिथिलता आ गई थी। १९०७ की सूरत-काग्रेस के अवसर पर जो फूट पडी उसके कारण अत्यत उत्साही और क्रातिकारी मनोवृत्ति का युवकवर्ग काग्रेससे अलग हो गया, और इससे काग्रेस की शक्ति क्षीण हुई। इसके बाद जनता मे जागृति या उत्साह पैदा करने में वह असमर्थ रही। उसका निष्प्राण कलेवर मात्र रह गया था। उग्र क्रातिकारियो को सरकार बुरी तरह कुचल चुकी थी। तिलक लबी सजा काटकर कुछ ही मास पूर्व माडले से लौट आये थे। विपिनचद्र पाल में अब पहले की भाति प्रेरक प्रतिभा रही न थी। लाला लजपतराय अमेरिका में थे। और श्री अरविद घोष दीर्घ काल से राजनीतिक जीवन से निवृत्त होकर पाडिचरी मे शातिलाभ कर रहे थे। साराश, देश मे प्रभावशाली नेतृत्व का अभाव सा हो गया था। ऐसे समय मे कही से भी दिखाई पड़नेवाली आशा-किरण का स्वागतही किया जाता। इसीलिए शातिनिकेतन मे गाधी जी आनेवाले है ऐसी खबर पाते ही मैंने उनसे मिलने का निश्चय किया। मैंने काका कालेलकर को लिखा कि मै शातिनिकेतन आ रहा हू, और वे गाधी जी को इसकी सूचना देकर उनका कुछ समय मेरे लिए सुरक्षित रक्खे।

मै शातिनिकेतन मे शाम के वक्त कुछ देर से पहुचा। शाम होने से पहले ही भोजन से निवटनेवाले गाधी जी उस वक्त भोजन कर रहे थे। एक छोटे व किंचित् ऊची चौकीपर वे बैठे थे, और उनके नगे पैर जमीन से लटक रहे थे। गाढे का कमीज और एक धोती, बस यही उनकी पोशाक थी। उनसे मेरा परिचय कराया गया। हम भारतीयो की पुरानी परिपाटी के अनुसार मैंने उन्हे हाथ जोडकर नमस्कार किया। प्रति-नमस्कार स्वरूप वे स्वागतपूर्ण भाव से हस दिये। फिर मुझे अपनी बगल में बैठने के लिए कह कर उन्होने सीधे बातचीत शुरू कर दी। यह बातचीत उभय पक्षी व्यक्तिगत स्वरूप की ही रही। हमारी इस पहली मुलाकात के समय राजनीति का कोई जिक्र ही किया न गया। लेकिन बीच बीच में वे मेरी ओर जिस तरह ताक रहे थे उसमें मालूम होता था कि वे मेरी थाह लेने की चेष्टा कर रहे हैं। खुद मैं भी उनकी बाबत ऐसा ही कर रहा था। गाधी जी को निहार कर उनकी थाह लेने की चेष्टा की यह बात आज के किसी युवक के लिए धृष्टतापूर्ण हो सकती है। किंतु स्मरण रहे कि उन दिनो गाधी जी आज की नाई महात्मा न थे। भारत

के सार्वजनिक जीवन मे उनकी कोई हस्ती ही नही थी। निस्सदेह दक्षिण अफ्रीका निवासी हमारे भाइयों के आत्मसम्मान की रक्षा के लिए वे खूब लड़ चुके थे। राजनीतिक आदोलन का एक अभिनव तत्र भी उन्होने खोज निकाला था। लेकिन भारत मे उनके खुद के, और उनके इस नये तंत्र के सफल होने की कहा तक आशा है यह देखना अभी बाकी था। उन दिनो वे केवल श्री गाधी थे, और थे विलायत से लौटे हुए शिक्षित भारतीय का एक निराला नमूना। उनकी हरेक बात अति विलक्षण और अतिक्रमपूर्ण दिखाई देती थी। जो आहार वे ले रहे थे उसकी ओर मैने लक्ष्य किया। ताज़ा फल और मेवा, बस यही उनका आहार था। लेकिन मुझे इसकी मात्रा बहुत ज्यादा मालूम हुई। एक सिंधी होने के नाते मै यह जानता था कि किसी हद तक ताज़ा फलो का सेवन हानिकर हो नही सकता। किंतु एक मध्य वर्गीय भारतीय को इतनी अधिक मात्रा मे सूखे फल, और खास तौर से बादाम व पिश्ता जैसे स्निग्ध फल सेवन करते मैने इससे पहले कभी देखा न था। खैर, उन फलो को अच्छी तरह चबाने में जो काफी वक्त वे लगा रहे थे उससे साफ़ मालूम हो रहा था कि वे अपना आहार स्वादपूर्वक एव सतोष के साथ ले रहे हैं। उन्होने मुझसे आग्रह किया कि चूकि उस वक्त मैं खास तौर से उनसे मिलने आया हू, इसलिए बजाय गुरुदेव के उन्हीं का ही मेहमान बनू। मैं तुरत राजी हो गया। कई प्रातो का जलवायु चख चुकने के कारण आहार विषयक प्रातीयता मैने कतई तज दी थी। चुनाचे शातिनिकेतन स्थित गाधीजी के डेरे पर जो सादा, बगैर मिर्च-मसालो का, बे-मौसमी खाना पकता था उससे मुझे बिलकुल घबराहट मालूम न हुई। याद रहे कि फिनिक्स-दल ने बोलपुर में अपनी रहन-सहन के तौरतरीक़े शातिनिकेतन की पद्धति से अलग रखे थे। उनके लिए अलग आवास का प्रबध किया गया था। अपना खाना वे खुद पकाते थे, और अपने दूसरे दैनिक कार्यक्रम भी उसी तरह पूरे करते थे, जैसे कि दक्षिण अफ्रीका मे।

गाधी जी के साथ मेरी यह पहली ही मुलाक़ात थी। इसके बाद लगभग हफ्ते भर, याने उनके कलकत्ता विदा होने के दिन तक मैं हर रोज़ उनसे मिलता रहा। आह, क्या ही मज़ाह रहा वह! अगर सिर्फ़ सियासी बातों में ही वह गुजरता तो उन दिनो वह कोई ज्यादा भी मालूम न होता। किंतु इस एक

सप्ताह में मुझे उनके भीतर के सस्कारक्षम कार्योत्साह का अवलोकन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसा ज्ञात होता था कि विलास-भू के रूप में विख्यात शातिनिकेतन का दर्शन कर गाधी जी को जबरदस्त धक्का लगा है। गुरुदेव के असाधारण व्यक्तित्व, अध्यापको और अध्येताओ के उत्साह, एव लुभावने व मुक्त वातावरण के बावजूद गाधी जी ने देखा कि शातिनिकेतन मे कई निहायत जरूरी बातो की कतई उपेक्षा की गई है। अबतक यहा के अधिकाश अध्यापको से उनकी खासी जान-पहचान हो गई थी। कम उम्र के विद्यार्थियो से भी वे हिलमिल गये थे। उन दिनो शातिनिकेतन के सभी विद्यार्थी वस्तुत कम उम्र के ही होते थे। तब वहा केवल हाईस्कूल की श्रेणीतक की ही शिक्षा दी जाती थी। कालेज-कक्षाये बहुत बाद मे खुली। शातिनिकेतन का विश्व-भारती विभाग बहुत दिन बाद खुला। उन दिनो शातिनिकेतन आज की तरह, हाईस्कूल के रूप में भी, कलकत्ता-विश्वविद्यालय से सबद्ध हो न पाया था। तब वहा के विद्यार्थी शातिनिकेतन से सबधित अन्यान्य शिक्षासस्थाओ की मार्फत मैट्रिक की परीक्षा देते थे।

शीघ्र ही गाधी जी का ध्यान आश्रम के रसोई-घर, उसके प्रबध, वहा पकनेवाले भोजन और वहा की साफ-सफाई की ओर आकृष्ट हुआ। यहा के ब्राम्हण रसोइये रसोई-घर के प्रबध में किसी को भी हस्तक्षेप करने न देते थे। और जब तब काम छोड़ने की धमकी देते रहते थे। चुनाचे समाजसुधारक एव आहार शास्त्र के प्रयोग करनेवाले गाधी जी इस मौक़े से कैसे चूकते? उन्होने यह प्रस्ताव रक्खा कि शिक्षकगण रसोई-घर के सपूर्ण प्रबध में स्वावलबी बनें। कुछेक ने तो बड़ी बुद्धिमानी से अपना सर हिलाकर इसकी सफलता मे सदेह प्रकट किया, किंतु अधिकाश इसका प्रयोग करने के लिए तैयार हो गये। जब विद्यार्थियो के सामने यह योजना रक्खी गई तब उन्होंने भी उसका बाल-कोचित उत्साह से स्वागत किया। जबतक पूरी योजना तैयार नही हुई तब-तक उसके सबध मे गुरुदेव से परामर्श किया न गया। बाद में इस सबधमें उनसे मिलने पर उन्होंने उसे अपने आशीर्वाद प्रदान कर कहा कि स्वराज्य-प्राप्ति का यही राजमार्ग है। अवश्य ही स्वयं गाधी जी अपने प्रयोग के सबध में कहा तक आशावादी हैं इसमें मुझे सदेह था। हर रोज सैर के समय वे रसोई-घर के सामने से गुजर कर साफ-सफ़ाई करने और खाना पकाने में मगन शिक्षकों व विद्यार्थियों को देख जाते थे।

उक्त दृश्य देखकर सदा यह सदेह बना रहता था कि कहीं यह उत्साह क्षणिक ही साबित न हो। स्वय गुरुदेव भी तो अपने लोगो को गाधी जी से ज्यादा जानते थे।

कुछ दिन के अनुभव के बाद यह प्रयोग बद कर दिया गया। वह अव्यवहार्य सिद्ध हो चुका था। विद्यार्थियो के अभिभावको ने भी इस में आपत्ति प्रकट की। अपने दृष्टिकोण के अनुसार उनका यह कहना, कि उन्होंने अपने बच्चो को इस सस्था में एक स्वतत्र और कलात्मक वातावरण में पलकर पुस्तकी विद्या प्राप्त करने के लिए रक्खा है, न कि सहकारी पद्धति से शारीरिक काम करना, खाना पकाना, बर्तन माजना, फर्श धोना वगैरह सीखने के लिए, बिल्कुल दुरस्त था। उक्त प्रयोग के विरुद्ध कट्टर पथियो ने भी कमर कस ली थी। उनका कहना रहा कि इस सामुहिक रसोई-घर मे परोसा जानेवाला खाना केवल उच्च वर्णीय हिंदुओ, याने ब्राम्हणो द्वारा ही बनना चाहिये। अन्यथा, वह सब जातियो के विद्यार्थियो के लिए ग्राहच हो नही सकता। अलावा इसके सनातनी अभिभावको ने अपने बच्चों को आश्रम के रसोई-घर मे अन्यान्य जातियों के विद्यार्थियों के सग बैठकर भोजन करने की अनुमति प्रदान कर पहले ही बडी उदारता दिखाई थी। अत उनसे यह आशा करना कि वे अपने बच्चों को गैर-ब्राम्हणो के हाथ की रसोई खाने की भी इजाजत दे, सरासर ज्यादती ही होती। इस प्रकार शातिनिकेतन के स्वावलबन के इस प्रयोग का अत हो गया। किंतु यदि इस अवसर को भी गुरुदेव की सस्था काव्यरूप न देती तो फिर उसकी विशेषता ही क्या रहती ? सो एक वार्षिक दिन क रूप म इसकी स्मृति कायम रक्खी गई है। शातिनिकेतन में हर बरस 'गाधी-दिन' मनाया जाता है। इस दिन यहा के सभी शिक्षक और विद्यार्थी आश्रम के रसोइयों एव अन्य नौकर-चाकरो को छुट्टी देकर सारा कामकाज खुद ही करते हैं।

गाधी जी विषयक अपने सर्वप्रथम अनुभव यहा उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। आज भी मुझे वे स्पष्ट रूप से याद हैं। उनका दृढ़ चरित्र-बल देखकर मैं बहुत ही दग रह गया। वे एक ऐसे व्यक्ति नजर आये जो कि अपने अंगीकृत मार्ग के औचित्य के संबंध में निश्चय हो चुकने पर उसमें, जरूरत पड़ने पर अकेले ही, बढ़ने की क्षमता रखते थे। स्नेहियों के कृपाकटाक्ष से

या विरोधियों की त्यौरियो मे बल पड़ने से भी वे कर्तव्य-विमुख नही हो सकते। दृढ़ निश्चयी और अपने व्रत के पक्के होने पर भी वे छिद्रान्वेषी न थे। स्वेच्छा से उन्होंने कई चीज़े त्याग दी थी। किंतु उनकी अहिसा निषेधात्मक नहीं थी। गरीबो और पददलितो के प्रति उनके प्रेमभाव से ही यह प्रकट हो रहा था। उनका यह प्यार बौद्धिक या कल्पित न था, और न ही आराम-कुरसी तोडते हुए वह किया जा रहा था। वह तो अथाह व अचल था, और अपने वास्तविक रूप में एव यथोचित ढग से ही उसकी अभिव्यक्ति हो रही थी। गरीबो का केवल उपकार ही न कर उन्ही की तरह जिंदगी बिताने एव उनसे एकरूप होने के लिए वे कैसे प्रयत्नशील है यह बात कोई भी देख सकता था।

अवश्य ही उनके सभी राजनीतिक विचार मुझे गलत लगे। उन दिनो उन पर नरम दलियो का प्रभाव था। अपने परम प्रिय मित्र गोखले के व्यक्तित्व से वे बहुत अधिक प्रभावित थे। गोखले ने दक्षिण अफ्रीका के कार्य में उनकी बड़ी मदद की थी। गाधी जी उन्हे अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। गाधी जी के पास अन्याय के प्रतिकारार्थ अभिनव राजनीतिक आदोलन का अस्त्र होने पर भी उन दिनो ब्रिटिश सरकार के प्रति उनकी वृत्ति ठीक नरम दलियों जैसी ही थी। भारत मे अग्रेजी राज विधि के वरदान स्वरूप है ऐसा तो वे नही कहते थे, किंतु कुल बातो का ख्याल करते हुए यही दीखता था कि ब्रिटिशो के यहा के कार्यों मे भारत का भला ही है ऐसी उनकी धारणा थी। विगत इतिहास की या तत्कालीन घटनाओ के प्रकाश में उनके उक्त विचारो की ओर देखने पर मुझे वे न्यायसगत नज़र नही आये। किंतु उस समय मैं एक नवयुवक होने पर भी गाधी जी के इस गलत दृष्टिकोण के उधेड़बुन में नहीं पडा। मैं तो किसी भी व्यक्ति के चारित्र्य पर ही विशेष रूप से ध्यान देता था। और उनके विषय में मैंने देख लिया कि वे एक ऐसे कार्यशील व्यक्ति है जो कि एक बार अपना मार्ग चुन लेने पर स्थिर चित्त से उससे बढ़ते रहेगे, चाहे इसके लिए जो भी क़ीमत चुकानी पड़े। साथ ही जो कुछ दूसरो से करने के लिए कहा जाय उस मे स्वतः का आचरण नुसगत हो इस बात का भी वे सदा ध्यान रखते थे। चुनाचे, उनसे विदा होने के पूर्व, राजनीति विषयक उनके दृष्टिकोण या कल्पनाओ का विशेष विचार न कर, मैं ने बिना हिचकिचाहट के उन्हें कह दिया कि यदि वे भारतहितार्थ कोई कार्य उठावें और उसके लिए मेरी सेवाओ का कुछ भी उपयोग समझें

तो मुझे अवश्य याद करे। साथ ही मैने उन्हे यह भी कह दिया कि मै स्वतत्र विचारो का व्यक्ति हू, और मुझ पर आर्थिक या अन्य किसी भी प्रकार का बोझ नही है।

छ मास बाद उन्होने आश्रम की नियमावली मेरे पास भेज दी। इसके साथ उनका लिखा हुआ एक पत्र था, जिस मे मुझ से नियमावली के सबध मे सम्मति और सुझाव मागा गया था। स्पष्ट ही है कि वे मुझे भले नही थे। अवश्य ही इस बीच एक बार बबई मे उन से मेरी भेंट हुई, किंतु वह आकस्मिक और अल्प रही।

उक्त आश्रम-नियमावली पढने के बाद गाधी जी विपयक अपनी धारणा मुझे बदल देनी पडी। मै सोचता था कि प्राचीन धर्मसुधारको की भांति उन्हे भी सर्वसाधारण स्त्री-पुरुषो के जीवन की अपेक्षा कुछ अपवादात्मक आत्माओ के उद्धार की ही अधिक चिंता होगी। ईसा मसीह की तरह उनका राज्य भी इह लोक में न हो कर किसी अन्य लोक में होगा। उनकी नियमावली मे उल्लिखित कतिपय व्रत-नियमो का उस समय मुझे आकलन ही नहीं हुआ। यदि विवाहित स्त्री-पुरुष के लिए भाई-बहन के नाते ही रहना लाजिमी हो तो फिर इस दुखदायी झमेले मे वे फसे ही क्यो? और उसमे एक बार फस चुकने के बाद फिर उपरोक्त बधन से प्रयोजन ही क्या? यदि अनावश्यक वस्तु पास रखना ही चोरी समझी जाने लगी तो फिर उद्धार की आशा कर ही कौन सकता है? मै ने बहुत ही ध्यानपूर्वक उक्त नियमावली पढी, किंतु उसमें कही भी प्रकाश की रेखा मुझे नजर न आई। ऊब कर मै ने मेज पर वह पटक दी। सोचा, जो आदमी सर्वथा वस्तुस्थिति की विरुद्ध दिशा मे और गलत रास्ते से जा रहा हो उसके सामने सुझाव रखने मे लाभ ही क्या? उसके लिए तो यही बेहतर होगा कि वह अहमदाबाद की अपेक्षा हिमालय में जाकर अपना आश्रम स्थापित करे। चुनाचे मै ने अपने दिमाग से गाधी जी विपयक विचार बिल्कुल निकाल डाले। किंतु बाद की घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि वे ऐसे व्यक्ति नही है कि जिनसे इस प्रकार सहज ही में पिंड छुडा लिया जा सके। क्योकि उपरोक्त घटना के कुछ ही दिन बाद, जब कि मैं बिहार म था, उन्होंने मुझे ढूढ निकाला। और तभी से मैं उनका और दास बन गया हू। किंतु इस सबध में फिर कभी लिखूगा।

इलाहाबाद,
१-५-१९४६.

महान् प्रयोगी

भारतन् कुमारप्पा

गांधी जी से सर्वप्रथम १९२९ ई० मे मेरा सबध आया । तब मैं लदन में पढ़ रहा था, और मेरे भाई जे. सी. कुमारप्पा अहमदावाद के गुजरात विद्यापीठ मे, गाधी जी के सपर्क मे रह कर, कार्य कर रहे थे। गाधी जी विद्यापीठ से दो-एक मील दूरी पर स्थित साबरमती-आश्रम मे रहते थे । मेरे भाई ने खादी का व्रत ले रक्खा था, किंतु खुद मुझे सूत-कताई आदि में कुछ भी दम मालूम न हुआ । मेरा अपना विश्वास था कि इस देश की उन्नति उत्पादनों के उन अमोघ उपायो से सभव है, जो कि ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, जापान और रूस ने काम मे लाये हैं; अप्रचलित चर्खे के बल पर यह कदापि साध्य नही हो सकता। चुनाचे मैं ने भाई को रोषभरे पत्र भेजे, जिनमे यही लिखा था कि गाधी जी चर्खे के पुनः प्रचार द्वारा इस देश का दारिद्र्य दूर न कर उलटे उसे कायम रखने मे ही योग दे रहे हैं। भाई ने मेरे ये पत्र गाधी जी को दिखाये। गाधी जी का जवाब वैशिष्ट्यपूर्ण रहा । लिखा था, "विलायत से आप के लौट - आने पर आप से मिलने म मुझे प्रसन्नता होगी । यहा लौटते ही आप अपने तरीको से भारत के अभ्युदय के लिए उद्योग आरभ कर दें, और यदि इस में आप सफल रहे, तो सर्वप्रथम मैं आप का अनुयायी बनूंगा ।" अवश्य ही उन्होने यह सब चुनौती के तौर पर न लिख कर एक सत्य-शोधक के नाते विशुद्ध भाव से ही लिखा था । क्योंकि तब से उनके साथ मेरा जो दीर्घ संपर्क बना हुआ है उसके कारण मैं जान गया हूं कि उनका प्रयोग-मग्न मन सदा यही सोचता है : "मेरी कार्यप्रणाली सिद्धान्ततः सही हो न हो, किंतु वह व्यवहार्य है, और जब तक इससे अधिक अच्छी प्रणाली उपलब्ध नहीं हो जाती तब तक मैं इसे छोड़ नहीं सकता ।" स्वभावतः वे एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति हैं, जो केवल कोरे सिद्धान्तो से पथभ्रष्ट नहीं हो सकते । किसी भी श्रुति-मनोहर कल्पना को अपनाने से पहले वे उसके परिणामों को अवश्य ही देख लेना चाहेंगे । बलावा इसके उनका यह स्वभाव है कि वे अपने सामने सुदर योजनाएं प्रस्तुत करनेवालो से ही उन योजनाओं को कार्यान्वित कर दिखाने के लिए कहते हैं ।

क्योकि आखिरकार अपनी योजनाओ से वे ही अधिक अच्छी तरह अवगत होने के कारण, तत्सबधी प्रारभिक कठिनाइयो पर विजय पाने के लिए पर्याप्त उत्साह उन्ही मे हो सकता है। दूसरी बात यह कि कोई भी योजना कार्यान्वित की जाने पर ही उसके गुणदोष समझ मे आ सकते हैं। ऐसा भी सोचा जा सकता है कि अमुक विषय मे क्या किया जाय, या क्या न किया जाय, इस आशय के जो उपदेशात्मक लबे अनाहूत पत्र प्रायः प्रत्येक डाक से अपने पास आते रहते हैं उनसे जी उकता जाने के कारण ही शायद गाधी जी ने सब के लिए यह सरल जवाब तैयार रक्खा है कि--"अपनी राह मैं जा रहा हू। यदि आप अपना मार्ग अनोखा समझते हो तो उसी पर डटे रहे। मुझे दिक क्यो करते है?" किंतु उनके बारे मे ऐसा सोचना उनके प्रति अन्याय करना है। क्योकि मैं जानता हू कि वे अपने सामने पेश की जानेवाली किसी भी योजना मे तथ्यांश दिखाई पडने पर उसपर जरूर ग़ौर करेगे। इतना ही नही बल्कि किसी योजना सबधी आत्मनिर्णय से सतुष्ट न होने पर, आखिरी फैसला करने से पहले, वे ऐसी योजना अपने उन सहयोगियो या स्नेहियो के पास भेज कर, जो कि उसके जानकार हो, जरूर राय लेगे। उनके जैसा व्यक्ति निकटतम मार्ग की कभी चाह नही करता। यदि वे कठिनाइयो से मुह मोड़ते तो आज की अवस्था को कदापि पहुच ही न पाते।

मगनवाड़ी, वर्धा, मे गाधी जी के साथ ठहरने पर मुझे उनके प्रयोगमग्न मन का दर्शन करने का मौका मिला। तब मै उनके पास नया नया ही गया था। अत. भोजन के समय वे मुझे अपने पास ही बिठा लेते थे। वे आहार के तौरपर कई पदार्थों का प्रयोग कर रहे थे। ताजा नीम-पत्तो की चटनी उन्ही मे से एक थी, जो कि कुनैन जैसी कड़ुई थी। वे स्वय प्रतिदिन बड़ी मात्रा मे इसका सेवन कर कुछ मुझे भी परोसा करते थे। वह खाते वक्त मुह जहर होने पर भी अपने हिस्से की सभी चटनी वगैरह चुपचाप में चट कर जाता था। इसी तरह सोयाबीन भी परोसी जाती थी। उन दिनो भारतभर में हर कोई इसके गुण गाता था। गाधी जी ने मगनवाड़ी मे इसे लगा रक्खा था, और हर रोज भोजन के समय सब को यह परोसी जाती थी। यह उबाल कर कुचली जाती थी, और उसमें बगैर नमक-मिर्च मिलाये ही यह खानी पड़ती थी। बड़ी मुश्किल की बात तो यह थी कि मुझे अपने हिस्से के पदार्थ खाने के अलावा गाधी जी जो चीजें अपने

लिए ज्यादा समझ कर उदारतापूर्वक उठाकर मेरी थाली मे रख देते थे वे भी अपने पेट मे ढकेलनी पडती थी। अलावा इसके 'सालन' के तौर पर आश्रम के आसपास उगनेवाली ऐसी हरी पत्तिया भी हमे परोसी जाती थी जो कि शरीर के लिए किसी भी प्रकार हानिकर न हो। नमक मिलाकर ये खाई जाती थी। मगनवाडी मे हमने नारगियो के भी बहुत से पेड लगा रक्खे थे। हठात्, गाधी जी के मन मे यह विचार आया कि नारगियो के जो छिलके फेंके जाते है उनसे क्यो न एक प्रकारका मुरब्बा बना लिया जाय। चुनाचे एक दिन हमे नारगियो के छिलको का बना मुरब्बा भी चखना पडा। दक्षिण भारत मे इमली का बना 'रसम्' बहुत प्रचलित है। इमली की पौष्टिकता और उसके औषधी गुणो के बारे मे गाधी जी ने पहले ही सुन रक्खा था। किंतु कोई भी आश्रमवासी,इसके बनाने का तरीका जानता न था। तब खुद गाधी जी ने ही इमली मे गुड मिलाकर खासा शर्बत तैयार किया। उनकी जीत रही, और हम भी इसके सेवन मे बडा आनद आया। किंतु दुबारा जब बिना गुड का सिर्फ नमक मिलाया हुआ 'रसम्' हमे परोसा गया तब सारा मज़ा किरकिरा हो गया। इसे नाम तो 'रसम्' दिया गया था, किंतु हम दक्षिणी लोगो ने अपनी इतनी प्रसिद्ध चीज़ की इस तरह हसी होते देखकर स्वाभाविक रूप से अपमान महसूस किया। रग उसका कीचड की तरह था, और स्वाद भी कुछ कुछ उसके अनुरूप ही रहा। दूसरी बार, उसकी बदसूरती मिटाने के लिए, उसम थोडी मूगफलिया डाली गई। खली का भी एक प्रयोग किया गया। हम मगनवाडी म बैल की घानी से तेल निकाला करते थे। तल निकाल लेने के बाद बचनेवाली खली बहुत ही पौष्टिक होती है ऐसा कहा जाता है। चुनाचे गाधी जी ने सोचा कि खली से जायकेदार चीज़े बनाकर क्यो न वे आश्रमवासियो को चखायी जाय? सो दही मे बनाई गई खली की चटनी एक दिन हम सब को परोसी गई। इसी प्रकार जब गाधी जी ने सुना कि कच्चा लहसून रक्तदोष से बचानेवाली नामी दवा है तब वे खुद बडी मात्रा म इसका सेवन करने लगे, और जिस किसी ने भी यह खाना चाहा उसको भी दिया। नतीजा यह हुआ कि उन सबके बदन मे लहसून की बदबू आने लगी। थोडे दिन पहले अखबार मे छपा था कि मामूली घास मे भी काफी मात्रा मे विटमिन होते है, और खाद्यान्न के तौर पर लोग बेखटके उसका उपयोग कर सकते है। खुशकिस्मती से यह खबर उस वक्त हुई जब कि गाधी जी मगनवाड़ी में हमारे साथ नहीं थे। अन्यथा,

वे चूल्हा-चौका हटाकर हम सब को मैदान मे जा कर घास चरने का अवश्य ही आदेश देते। प्रति दूसरे सप्ताह हम सब को तौला जाकर गाधी जी को इसकी रिपोर्ट दी जाती थी। मेरा ख्याल है कि आहार-शास्त्र सबधी अपने प्रयोग कहा तक लाभप्रद सिद्ध हो रहे हैं यह जानने के लिए ही वे ऐसा करते थे।

स्वास्थ्य-सुधार के लिए मुख्यतया आहार-चिकित्सा पर ही वे निर्भर करते थे। व्याधिया उनके लिए विशाल प्रयोग-क्षेत्र उपलब्ध कर देती थी। अपने रोगियो का उपचार करने मे उन्हे बडा आनद आता था। बीमारो की सारी शिकायते ध्यानपूर्वक सुन कर और उनकी खुराक के बारे में तफसील से पूछताछ कर, उसी तरह पथ्य-परहेज वे समझा देते थे। इनमे से हरेक के पथ्य मे बदल करने से पहले वे उसके स्वास्थ्य की पूरी रिपोर्ट मगा लेते थे। अपने रोगियो को दिया जानेवाला खाना अक्सर उनकी नजर से गुजरता था, और अपनी आखो वे यह देख लेते थे कि वह उचित प्रकार का एव मर्यादित मात्रा में है या नही। अपने रोगियो के प्रति उन्हे इतना अधिक आकर्षण था कि वे सुबह-शाम उनसे मिलने जाया करते थे, और इसके सामने वायसराय से राजनीतिक विषयपर चर्चा करने जैसा महत्वपूर्ण काम भी हेय समझते थे। रोगी की शय्या के पास वे इस तत्परता से पहुच जाते थे कि मानो रोगी एक बालक है, और उसकी देखभाल करनेवाला सिवा उनके अन्य कोई है ही नहीं।

लडकियो के प्रति यह सरासर अन्याय है । क्योकि अपने जीवन मे सभवतः पहली ही बार गाधी जी का दर्शन करनेवाली वे लडकिया यदि उनकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उसे आजीवन भूलेगी नही । वैसा ही सुझाव मैं ने उन्हे दिया, तब तुरत उन्होने उपरोक्त आश्रम-कन्याओ को हटा कर उनका काम दूसरी लड़कियो को सौंपा । उस दिन से मैं बरावर देखता आया हू कि अपनी सेवा के लिए वे स्थानीय लडकियो को ही तरजीह देते रहे है । गरज यह कि अदना से अदना आदमी की भी दी हुई सलाह मान लेने में वे कभी कमीपन महसूस नही करते, बशर्ते वह उन्हे पसद हो ।

ऐसे भी अवसर आये हैं जब कि गाधी जी ने अपने मन के विरुद्ध जाकर कई बातें की हैं । मुझे एक ऐसे विद्यार्थी की बात याद है जिसे कि गाधी जी ने मगनवाडी मे हमारे पास कागज बनाना सीखने के लिए भेजा था । अखिल भारतीय ग्रामोद्योग सघ के नियमानुसार मैं ने उससे फीस मागी । गाधी जी सोचते थे कि उक्त विद्यार्थी से फीस नही ली जायगी । लेकिन मैं ने उन्हे फीस लेने का कारण बताया, और यह फीस अनावश्यक एव बहुत अधिक मालूम होने पर भी आखिर वह अदा करने के लिए वे तैयार हो गये, और उन्होने पूरी फीस देकर ही अपने विद्यार्थी को हमारे पास भेजा । ऐसे मामलो में उनका सिद्धात यही रहता है कि किसी सस्था का काम एक बार जिस कार्यकर्ता को सौपा गया हो उसके निर्णय का कभी भी उल्लघन न किया जाय । वस्तुतः वे हमारी सस्था के अनधिकृत अध्यक्ष, और उसके सस्थापक एव सलाहगार थे, और अपनी इच्छाओ का पालन करने के लिए मुझे बाध्य कर सकते थे । किंतु उन्होने ऐसा नहीं किया । क्योकि अवैधानिक बातें वे कदापि कर ही न सकते थे । उनका यह विश्वास था कि किसी आदमी को कोई काम सौप देने के बाद, जब तक खास जरूरत पैदा नही होती तब तक, उसके रोजमर्रा के कामो मे दखल नही देना चाहिए । ऊपरी तौर पर देखने से ऐसा मालूम होगा कि काम करने के इस ढग से गाधी जी ने अपने आपको पराजित कर लिया है । किंतु बात ऐसी नहीं है, वास्तव म उन्ही की विजय हुई है । फीस अदा करने सबधी मेरा निर्णय मान कर उन्होने सघ के हिताहित की दृष्टि से उसके प्रति अपनी जिम्मेवारियो का मुझे अधिक भान करा दिया । फीस के रूप में उनकी जेब से चद रुपये जरूर चले गये, किंतु एक कार्यकर्ता से जो अनन्य निष्ठा उन्हें प्राप्त हुई वह उन रुपयो से कहीं अधिक कीमती है । इस प्रसग के कारण

उनका यह कथन, कि दृढ व्यक्ति की अहिंसा कभी पराजित होना जानती ही नहीं, सत्य सिद्ध हुआ।

गाधी जी की अहिसा का एक अन्य उत्तम दृष्टात मुझे तब मिला जब कि वे एक कार्यविशेष के लिए मेरी नियक्ति करना चाहते थे। मैंने कहा कि सोच कर बता दूगा। सो शीघ्र ही उनके प्रस्ताव-विरोधी अपने निर्णय की मैं ने उन्हे सूचना दी। उन्हे बात पसद न आयी। किंतु उन्होने मुझे इससे विमुख करने की कोशिश नहीं की। बल्कि बोले कि यद्यपि मेरी मदद पा कर उन्हे प्रसन्नता होगी फिर भी यदि अपने ही तरीके से चलना मुझे अधिक भाता हो तो वे मेरी राह मे रुकावट पैदा न करेंगे। उन्होने और यह भी कहा कि मैं स्वतन्त्रतापूर्वक और अपनी अंत प्रवृत्ति के अनुसार ही चलू। लगभग यही उनके शब्द थे। और उन्होने मुझे पूरी आजादी दे डालने पर भी उसका एकमात्र परिणाम यही हुआ कि मै उनसे घनिष्ठ रूप से बध गया।

यदि कभी कोई करने योग्य बात नजर आती तो गाधी जी उसके लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा मे वक्त न गवाते थे। एक बार ग्रामसुधारको को उन्होने यह सलाह दी कि वे गावो की साफ-सफाई के हेतु मेहतर का काम उठावे। इस पर उन कार्यकर्ताओ ने जवाब दिया कि यदि मेहतर का काम उन्होने उठाया तो गाव म अपनी जो प्रतिष्ठा, या गाववालो पर अपना जो प्रभाव है उसे वे खो बैठेगे, और फिर कोई अन्य काम करना उनके लिए असभव हो जायगा। किंतु गाधी जी ने उनकी एक न सुनी। बोले, पहला काम पहले। जहा भी कही कूडा-कर्कट हो वहा से वह तुरत हटा ही देना चाहिये। गदगी दूर करने के लिए कभी वक्त ढूढा नहीं जाता। अपने इस उपदेश के अनुसार वे खुद, या उनके सहयोगी, हर रोज सुबह सैर के लिए मगनवाडी से निकलते वक्त एक बाल्टी और फावडा साथ लेते थे, और सडक-किनारे कही भी नजर आनेवाला कूडा या मल उठाकर उसका खाद बनाने के लिए वह आश्रम मे ले आते थे।

साबुन के दाढी कैसे बनेगी ? बोले, "साबुन की जरूरत ही क्या है, पानी मलने-भर से ही काम चल जाता है।" सुनकर ऐसा लगा कि वे अति कर रहे है, क्योंकि बिना साबुन के दाढी ठीक तरह से बन ही नही सकती। किंतु इसके बाद जब मैं जेल गया तब दाढी बनाने का अपना साबुन खत्म होने और बाहर से भी उसका मगाना मुश्किल होने पर मुझे उपरोक्त घटना का स्मरण हो आया, और मैंने बिना साबुन व ब्रुश के ही अपनी दाढी बनाने की चेष्टा की। दोस्त बोले कि इस तरह दाढी बन ही नही सकती, इससे चेहरे मे जलन होने लगेगी, उस्तरा लग जाने का डर है, आदि आदि। किंतु अनुभव लेने पर इनमे से एक भी बात सही साबित नहीं हुई। उस दिन से मैं बिना साबुन व ब्रुश के ही अपनी दाढी बनाने लगा। दरअसल मैं दाढी बनाने के लिए साबुन की अपेक्षा पानी ही ज्यादा पसद करता हू, क्योंकि उसमे साबुन की तरह झाग न होने से वह भद्दा नही लगता। आधुनिक सभ्यता व्यावसायिक लाभ के हेतु मानवसमाज के लिए बनावटी जरूरते पैदा कर उन्ही से पोषण पा रही है। अतः हमारा यह कर्तव्य है कि जो बाते करने के लिए हमसे कहा जाता है उनकी वास्तव मे जरूरत है या नही इसकी समय समय पर हम जाच करे। इसमे शायद अपनी अधिकाश आवश्यकतायें कैसी निरर्थक और भार-स्वरूप हैं इसका हमे पता चल जायगा।

गाधी जी के साथ का सफर एक अनोखे अनुभव की बात है। १९४५-४६ ई. के शीतकाल मे बगाल, आसाम और मद्रास के उनके दौरे के समय मैं उनके साथ रहा। हर जगह जनता ने बेहद उत्साह से उनका स्वागत किया। कई जगह तो भीड बेकाबू हो गई, और लोगो ने रात बे-रात का ख्याल न कर गाधी जी के दर्शनार्थ उनकी गाडी रोक ली और दर्शन करने के बाद ही उसे आगे बढने दिया। जिस रात हम वर्धा से कलकत्ता जा रहे थे, उस रात लोगो के दिनभर के शोरगुल से ऊब जाने के कारण वे अपने कानो मे उगलिया डाल कर थके-मादे से बैठ गये। बडा ही करुण दृश्य था। रात के ९॥ बजे, शोरगुल सुनाई न पडे इस हेतु, अपने दोनो कानो मे सूती ऊनी चीथड़े ठूसकर वे सो गये। बगाल से आसाम तक की यात्रा का अनुभव तो सब से बुरा रहा। लोग बार बार खतर की जजीर खीच कर गाड़ी रोकते रहे। गाधी जी की झाकी पाने के लिए वे उनके चेहरे पर अपने टार्च से रोशनी डालते थे, और कभी तो सोये हुए गाधी जी उठकर अपने को दर्शन दे इस हेतु वे उनके डिब्बे

की खिडकिया तक खटखटाते रहते थे। साराश, हम सब सर्वथा लोगो की दया पर निर्भर थे। भीड द्वारा जगह जगह रोक ली गई डाक-गाडी को ६॥ घटे का फासला तै करने मे १३॥ घटे लगे। इस कटु अनुभव के बाद बगाल सरकारने उन्हे मामूली गाडी से सफर करने की इजाज़त देने से इन्कार किया। इस पर गाधी जी ने यह कह कर, कि एक लोक-सेवक होने के कारण अपने लिए विशेष सुविधाओ की कोई आवश्यकता नही, आपत्ति प्रकट की। उनका अपना विश्वास था कि जनता के खर्च से सफर करनेवालो के लिए सुख-सुविधाओ के साधन जुटाने मे सार्वजनिक धन का अपव्यय न किया जाना चाहिये। किन्तु सरकार अपनी बात पर अडी रही। आखिर जब गाधी जी से यह कहा गया कि साधारण पैसेजर-गाडिया रास्ते मे घटो रुकी रहने से रेलवे-कपनी और मुसाफिरो को भारी दिक्कत उठानी पडती है, तब उन्होने झुक कर अपने लिए खास गाडी का इतजाम करने की इजाज़त दी। और तब से हम बराबर खास गाडी मे ही सफर करते रहे।

कारण वह अपनी जगह से बहुत ही कम आगे बढ पायी, और बडी ही परेशान सी नजर आयी। इसी बीच गाधी जी डिब्बे की दूसरी तरफ की खिडकी पर चले गये, क्योकि उस ओर की भीड उनके दर्शन की माग कर रही थी। फिर भी उक्त महिला इस विचार से, कि शायद वे जल्द ही वापस मुडेगे, अपनी तरफ की खिडकी के पास पहुचने के लिए बराबर चेष्टा करती ही रही। देख कर मैं ने गाधी जी को इसकी खबर दी, और उन्हे उसकी तरफ की खिडकी पर ले आया। किंतु भीड को ठेलठाल कर आगे बढने की उसकी कोशिश ज़ारी ही थी कि इतने मे गाडी ने सीटी दी और वह चल पडी। उसने आखिरी बार पुन चेष्टा की, किंतु पुलिस ने बेरहमी के साथ उसे पीछे की ओर ठेल दिया। निराश-सी, रोती-कलपती हुई, प्लेटफार्म पर खडी उस औरत के हाथ मे अब भी सोने की वे चूडिया दिखाई पड रही थी। हम मे से अधिकाश लोग अपनी चीजवस्तु दूसरे को दे डालने मे कभी खुशी तो महसूस नही करते, विपरीत इसके यह औरत, और उसकी भाति हजारो गरीब लोग, गाधी जी को कुछ, याने बहुधा अपना सर्वस्व, दे न पाने की बात से अकथनीय आत्मवचना अनुभव करते है।

अनेकानेक युवा और वृद्ध, अमीर और गरीब, गाधी जी के सामने इस तरह हाथ जोड कर खड़े हो जाते थे, मानो किसी देवता के सामने पूजा-अर्चा के लिए उपस्थित हो। बगाल की नहरो म हमने नाव पर यात्रा की। मार्ग मे हमे दोनो किनारो पर लगातार कतार में खडे, नाव के सग किनारे-किनारे दौडनेवाले, और कभी कभी तो सर्दी होने पर भी कमर या छाती तक पानी में डूबे हुए ऐसे लोग दिखाई पडे, जो कि गाधी जी का दर्शन एव उन्हे भक्तिभाव से प्रणाम मात्र करना चाहते थे। हमे बताया गया कि इनमे से कई लोग दूर दूर के देहातो से, अपने बच्चो को गोद मे लिये, दो-दो तीन-तीन दिन तक पैदल चल कर, राह में पेडतले राते बिताने एव अनेक कष्ट झेलने के बाद यहा तक आये है,—और यह सब केवल इस लिए कि गाधी जी का पावन व पुण्यप्रद दर्शन हो सके। धर्मनिष्ठा और धार्मिक अनुष्ठान, जो कि हमारे देश की दो विशेषताये है, आजकल साधारणतया लज्जास्पद एव जीर्णशीर्ण बाते मानी जाने लगी है। पर जब मैंने इन लोगो के चेहरे पर एक ऐसे व्यक्ति के दर्शनमात्र से निमित्त धार्मिक तेज देखा, जो कि सामाजिक सुखो का परित्याग कर गया

और साधना द्वारा परमाथ प्राप्ति मे लवलीन था, तब मन मे मेरे विचार आया कि यदि यही हमारी विशेपता हो तो वह गर्व की वात है। क्योकि ससार को जाहिरी तौर पर और थोडी देर के लिए अपनी ओर आर्कपित करनेवाली प्रभुता, धन-दौलत एव उपरी तडक-भडक की लालसा का नाम तो सस्कृति है ही नही, सच्ची सस्कृति तो अतत सव के सम्मान-भाजन वननेवाले एक-मात्र आध्यात्मिक मल्यो की मान-मर्यादा की रक्षा पर ही निर्भर है। चुनाचे इस फकीर के प्रति जनता द्वारा समर्पित भक्तिभाव मे मुझे हमारी उस सुविकसित सस्कृति का दर्शन हुआ जिसने कि इस देश के निवासियो को क्षुद्र व दिखावटी सासारिक वातोमे अपना मन हटाकर अदृष्ट किंतु अक्षय वातो की ओर आदर से देखने की दृष्टि प्रदान की है।

वशीभूत नही हुए हैं। सच्ची अतर्राष्ट्रीयता, यानें ससारभर के मानव-समुदाय मे शाति और सद्भाव का प्रादुर्भाव करने मे योग देने की हार्दिक अभिलाषा ही, उनकी राष्ट्रीयता का मूल आधार है।

बबई,
८-४-१९४७.

उनके जीवन की शिक्षाएँ

जे. सी. कुमारप्पा

१. हमारी भेंट

राजस्व का अध्ययन कर, एव अपनी कर-निर्धारण नीति द्वारा भारत का शोषण करनेवाले ब्रिटिशो के कारनामो पर एक प्रबध के रूप मे प्रकाश डालने के बाद, १९२९ ई० मे, मै अमेरिका से लौट आया। मुझे यह सुझाव दिया गया कि मैं अपना उक्त प्रबध प्रकाशित करू। इस सबध मे भारत के कतिपय प्रकाशको से मेरी बातचीत चल ही रही थी कि इसी बीच मुझ से कहा गया कि गाधी जी को इस विषय मे काफी दिलचस्पी हो सकती है, अत सब से पहले उन्ही को मैं अपनी पाडुलिपि दिखाऊ। उस समय मैंने गाधी जी का नाम ही नाम सुन रक्खा था। किसी सुनिश्चित विचारधारा से तब तक वह जुडा न था। किंतु जिन सज्जनो ने उपरोक्त सलाह मुझे दी थी उनका यह आग्रह रहा कि मैं गाधी जी से ज़रूर मिल लू। उस साल के अप्रैल के अंत में, दक्षिण-भारत के दौरे से लौटते वक्त, गाधी जी बबई होकर जानेवाले थे। तब मै बबई मे हिसाब-निरीक्षक का काम करता था। मालूम हुआ कि गाम-देवी स्थित 'मणि भवन'मे, जहा कि बबई के अपने मुकाम में उन दिनो गाधी जी प्रायः ठहरा करते थे, उनसे भेट हो सकेगी। यूरोपियन पद्धति की पोशाक मे मैं भवन की सीढिया चढकर ऊपर गया। द्वार पर ही धोती व कमीज पहने हुए एक शख्स ने, जिसे मैं नौकर समझ बैठा था, मुझसे बातचीत कर ली। मै ने पूछा, "क्या गाधी जी से मेरी मुलाकात हो सकेगी?" जवाब मिला कि गाधी जी काग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक मे व्यस्त होने के कारण अभी मिल न सकेंगे

अपन प्रबध की पाडुलिपि मे साथ ले आया था, और यह देख कर कि स्वत से बातचीत करनवाला शख्स अग्रजी बोलन का माद्दा रखता है और अपना संदेसा पहुचा सकता है, मन प्रबध की पाडुलिपि गाधी जी को देन के लिए उसी के सुपुर्द की। बाद म मालम हुआ कि उक्त सज्जन गाधी जी के सेक्रटरी श्री प्यारेलाल थ। प्यारेलाल न यथासमय मेरे आफिस क ठिकान फोन पर मुझ सूचित किया कि गाधी जी मेरा प्रबध पढन के बाद अहमदाबाद म मुझ से मिलना चाहते ह, अत ता ९ मई १९२९ को दोपहर के ढाई बज, साबरमती में मै उनसे मिल लू। तदनुसार उस दिन सुबह क वक्त म साबरमती-आश्रम जा पहुचा। साज-सामान से शन्य आश्रम का अतिथि भवन देख कर म सिहर उठा। नाम-मात्र के इस अतिथि भवन म एक चारपाई छोड कर किसी भी तरह का फर्निचर नही था। स्नान-सामग्री का अभाव देख कर तो वहा स जल्द स जल्द भागन का जी हुआ। इन व्यक्तिगत असुविधाओ, और अपनी मुलाकात दोपहर बाद होना त रहन क कारण इतना वक्त कैस कटगा इसकी म फिक्र करन लगा। गाधी जी का वासस्थान मुझ दूर से दिखला कर बताया गया कि नियत समय पर वहा मै उपस्थित हो जाऊ। चुनाचे एक हाथ म छडी और दूसरे म पाडुलिपि लिय दोपहर क लगभग दो बज म साबरमती क किनार टहलन निकला और नदी-तट क सौंदर्य का रसपान कर वैस ही नदी क किनार किनार गाधी जी की कुटी की तरफ निकल गया।

राह चलत चलत एक पडतल, गोबर स लीप हुए साफ-सुथरे आगन म एक वृद्ध महाशय चर्खा चलात हुए मुझ नजर आय। इसस पहल कभी चर्खा न दखन क कारण, और अपनी मुलाक़ात का वक्त होन म अभी दस मिनट की दरी होन की वजह स, म अपनी छडी पर झुककर उनकी ओर ताकन लगा। कुछ पाचेक मिनट बाद उक्त वृद्ध न अपना पोपला मुह खोल कर मुस्कराते हुए मुझ स पूछा, "क्या आप ही कुमारप्पा ह?" सहसा मुझ एसा लगा कि य प्रश्नकर्ता महाशय महात्मा गाधी क अलावा और कोई हो ही नहीं सकत। अत मन प्रतिप्रश्न किया, 'क्या आप ही गाधी जी ह?' जवाब म उनक सिर हिला कर 'हा' कहन पर म झट, इस्तरी की हुई अपनी स्वामी पतलून का ख्याल न कर, गोबर स लीपीपोती जमीन पर ही बैठ गया। तब यह देख कर कि म पल्थी नहीं मारी ह, बल्कि कुछ सिकुडा हुआ सा बैठा हू, एक व्यक्ति घर क भीतर स फटाफट कुर्सी ल आया, और गाधी जी न मुझ उठ कर उस पर

आराम से बैठने के लिए कहा। जवाब में मैं बोला कि उनके जमीन पर बैठते हुए मैं कुरसी पर विराज नहीं सकता।

फिर गाधी जी ने बताया कि मेरा प्रबध उन्हे पसद है, और अपने 'यग इडिया' पत्र मे उसे सिलसिलेवार प्रकाशित करने का वे इरादा रखते हैं। पश्चात, उन्होने अर्थशास्त्र विषयक अपने और मेरे दृष्टिकोण मे बहुत कुछ साम्य दिखाई पडने एव इस प्रकार के दृष्टिसाम्य का अपने सपर्क मे आनेवाला मैं पहला ही विद्यार्थी होने के कारण मुझ से पूछा कि क्या मैं उनके लिए गुजरात के ग्रामीण क्षेत्रो की आर्थिक जाच करने का काम हाथ मे ले सकता हू ? मैंने भाषा की कठिनाई का प्रश्न उपस्थित किया। तब उन्होने यह कह कर, कि इस कार्य मे मेरी मदद करने के लिए वे गुजरात विद्यापीठ के अर्थशास्त्र के अध्यापको को उनके समस्त छात्रो सहित भेज देंगे, उसे हल किया, और सुझाया कि मैं गुजरात विद्यापीठ के उप कुलपति श्री काका कालेलकर से जाकर मिलू। गाधी जी से ही मालूम हुआ कि थोडी देर पहले जो सज्जन दौड कर मेरे लिए कुरसी ले आये थे वे ही काका कालेलकर हैं।

तीसरे पहर काका कालेलकर से मिलने मैं गुजरात विद्यापीठ गया। पाश्चात्य ढग की बहुत ही फैशनेबुल पोशाक मे सज्ज एक युवक के रूप मे मुझे देख कर उन्हे इस बात का विश्वास ही न हुआ कि जो काम गाधी जी मुझ से लेना चाहते हैं उसके योग्य मैं हू। और उन्होने यह कह-कर, कि गुजराती न जानने के कारण मेरे काम मे बडी रुकावट पडेगी, मुझे हतोत्साह किया। इससे चिढ कर मैं, बिना गाधी जी से भी मिले, सीधे बबई लौट आया, और वहा से मै ने पत्र द्वारा उन्हे यह सूचित करने के साथ, कि काकासाहब मेरा कुछ भी प्रयोजन नही समझते, लिखा कि यदि मैं उनके किसी भी कार्य मे मदद दे सका तो उससे मुझे खुशी ही होगी। लौटती डाक से मुझे काकासाहब का एक पत्र मिला जिसमे उन्होने लिखा था कि यदि मैं वापस लौट कर गाधी जी का इच्छित कार्य सभाल सका तो इससे खुद उन्हे बेहद खुशी होगी। (वर्षों बाद गाधी जी ने, मनुष्य-स्वभाव की परख सबधी बातचीत के सिलसिले मे, उपरोक्त घटना का उल्लेख करते हुए मुझसे कहा, "आप को याद ही होगा कि जब पहलेपहल आप काकासाहब से मिले तब वे आपको परख न सके। विपरीत इसके आपको देखते ही मैं फौरन ताड गया कि आप जैसे नौजवान को हाथ से जाने न देना चाहिये।" और इसमे वे सफल भी रहे, जैसा कि बाद की घटनाओ

ने सिद्ध कर दिया।) इस के बाद ग्रामीण क्षेत्रो की आर्थिक जाच का मेरा काम चल ही रहा था कि गाधी जी ने नमक-सत्याग्रह के श्रीगणेश स्वरूप दाडी की ओर कूच किया। उनकी गिरफ्तारी के बाद नवजीवन-ट्रस्ट ने, गाधी जी और महादेव देसाई की गैरहाजिरी मे, 'यग इडिया' चलाने के लिए मुझे बुलाया। 'यग इडिया' मे प्रकाशित अपने लेखो के कारण आखिर मुझे भी जेल की हवा खानी पडी। अनतर बबई लौट कर हिसाब-निरीक्षक का अपना पहला काम फिर से शुरू करना मेरे लिए असभव हो गया। क्योकि मेरे गाहको मे अधिकाश यूरोपियन और पारसी कपनिया थी, जो कि गाधी जी के प्रति सहानुभूति दिखानेवाले व्यक्ति से सपर्क रखना कदापि पसद न करती। चुनाचे इसी घटना के बाद मैं ने अपना भाग्य गाधी जी के हवाले कर दिया।

२. एक युक्तियुक्त अनुरोध

दाडी की ओर गाधी जी का कूच अभी जारी ही था कि इस बीच 'राजस्व और हमारी गरीबी' शीर्षक मेरी लेख-माला प्रकाशित हुई। इन लेखो को सग्रहित कर उन्हे एक पुस्तिका का रूप देने की गाधी जी की इच्छा रही, और मै इस पुस्तिका के लिए उन्ही से प्राक्कथन लिखवाना चाहता था। इसकी चर्चा के हेतु गाधी जी ने मुझे कराडी म, जहा कि उस वक्त उनका मुकाम था, मिलने के लिए बुलाया। काम 'निवटाने' के खुद के तरीके के अनुसार मैंने गाधी जी के लिए एक प्राक्कथन तैयार कर उसकी टाइप की हुई प्रति हस्ताक्षर के लिए उनके सामने रखी। देख कर गाधी जी मुस्कराये, और बोले, "मेरा प्राक्कथन अपना ही लिखा हुआ होगा, न कि कुमारप्पा का!"

इसके बाद उन्होंने कहा, "प्राक्कथन के प्रश्न की चर्चा के निमित्त आप को बुलाया नहीं है, बल्कि यह जानने के लिए बुलाया है कि क्या आप मेरी गिरफ्तारी के बाद 'यग इडिया' के लिए नियमित रूप से लिखा करेंगे?" उन्होंने यह भी सूचित किया कि अपनी गिरफ्तारी के बाद पत्र का प्रबध महादेव देसाई के हाथ म चला जायगा, और अपनी यह इच्छा है कि मै इस काम मे महादेव भाई की मदद करू। जवाब मे मैने कहा, "गाधी-दर्शनशास्त्र से मै सर्वथा अनभिज्ञ हू; आप भी इसमे पढे है 'यग इडिया' का क्या स्वरूप रहा है और सपादक-पद कैसे सुशोभित किया जाता है यह भी मै नहीं जानता। हा, फुरसती सामग्रियो जाचने का काम अलबत्ता इससे अधिक अच्छी तरह कर

सकता हूँ, और अगर इस किस्म का कोई काम निकल आवे तो वह करने में मुझे खुशी मालूम होगी। लेकिन लेखन-कार्य से मुझे बरी किया जाय।" प्रत्युत्तर स्वरूप गाधी जी बोले, "लेखन विषयक आपकी योग्यता के सबध मे निर्णय करना, पत्र के सपादक के नाते, मेरा काम है, न कि आपका; और इसी से हमारे पत्र मे लिखने के लिए मै आपको बुला रहा हूँ। प्रत्येक लेख के अंत में उसके लेखक का नाम प्रकाशित करने की हमारी प्रथा रही है। अब यदि आपका लेख रद्दी रहा तो पाठक कहेगे कि महात्मा गाधी के पत्र मे कूडा-कर्कट भरा रहता है। किंतु यदि आपने प्रशसायोग्य कोई चीज दी तो उसका सारा श्रेय गाधी जी के पत्र मे लिखनेवाले इस कुमारप्पा को ही मिलेगा।" यह युक्तियुक्त अनुरोध अब किसी भी प्रकार टाला नही जा सकता था। अत. मैने गाधी जी से यह वादा किया कि उनकी गिरफ्तारी की खबर मिलने के बाद मे उनके पत्र के लिए कुछ लेख भेज दूँगा। (यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि महादेव भाई गाधी जी से पहले ही गिरफ्तार हुए, और बाद मे जब गाधी जी भी गिरफ्तार कर लिये गये तब मुझे 'यग इडिया' के लिए न सिर्फ़ लेख देने का अपितु उसके सपादन का भी भार उठाना पडा।) अस्तु; यह घटना किसी को भी कायल करने की गाधी जी की निपुणता की निशानी है।

३. बर्तन-सफ़ाई

गाधी जी की परिहास-वृत्ति उनके निकटवर्तियो को उत्तेजित होने से बहुधा बचा लेती है। सकट का आभास पाते ही वे हसी-मजाक की बात छेड़कर भावी सकट एव उसके कारण पैदा होनेवाले सघर्ष को भी सफाई से टाल देते है।

अखिल भारत ग्राम-उद्योग सघ स्थापित होने पर उसका मार्गदर्शन करने के हेतु गाधी जी मगनवाड़ी आकर हमारे साथ ठहरे। उस समय हमारा एक नियम यह था कि हममे से हरेक प्रति दिन के कार्य में भाग ले। रसोई-घर के पालिश लगे हुए और मैले बडे बड़े बर्तन माँजना इसी मे शुमार था। सो एक दिन यह काम गाधी जी के हिस्से आया। मै उनका साझीदार था। हम दोनो कुएँ के पास बैठकर राख और गीली मिट्टी का मिश्रण नारियल की जटाओ से बर्तनो पर रगड़कर उन पर लगी हुई पालिश छुड़ाने लगे।

हठात्, कस्तूरबा गाधी वहा आ पहुँची। वे यह दृश्य, अर्थात् इतना बडा महात्मा अपने हाथ कोहनियो तक कीचड मे भर कर बर्तन रगडे, सह न सकी। कुछ मिनट तो वे यह सब चुपचाप देखती रही, और फिर अपनी बोली में एकदम से बरस पडी। गाधी जी से वे कहने लगी कि इस किस्म का काम उनकी जैसी योग्यता के पुरुष को शोभा नही देता, उन्हे तो इससे अधिक अच्छे काम मे लग जाना चाहिये। गुस्से मे उन्होने गाधी जी को फरमाया कि वे वहा से उठकर चले जाय, और अपना यह काम दूसरो के लिए छोड दे। और बडे तपाक के साथ उनके हाथ से डेगची छीनकर उन्होने अपने शब्दो को कृति का रूप दे डाला। यह सारा काम जिस फुरती से उन्होने पूरा किया वह देखकर गाधी जी दग रह गये। एक हाथ मे नारियल की जटाये लिये और दूसरे मे मिट्टी लगी हुई हालत मे वे मेरी ओर मुँह फाड कर देखने लगे। फिर हँस कर बोले, "कुमारप्पा, तुम सुखी जीव हो। तुम्हारी धर्मपत्नी नही है जो कि तुम्हे अपने हुक्म का ताबेदार बना दे। किंतु मुझे तो घर में शाति बनाये रखने के लिए अपनी पत्नी का कहा मानना ही पडेगा। सो अगर मैं बर्तन माजने के काम मे इन्ही को तुम्हारा साझी बनाकर चला जाऊ तो मुझे माफ करना।"

४. विनयशीलता और अनुशासन

मनुष्य की महानता दूसरो के जीवन को आत्मवश करने की शक्ति पर निर्भर नही है, हालाँकि अपनी महानता के परिणाम-स्वरूप ही ऐसी शक्ति उसे प्राप्त हो सकती है। किंतु स्वेच्छा से धारण की हुई विनयशीलता और आत्मानुशासन वास्तविक महत्ता का उगमस्थान है। अतत यही महत्ता मनुष्य को ऐसी शक्ति देती है कि जिसके बल पर वह लोगो को अपने वशवर्ती कर सकता है। गाधी जी का सारा जीवन ऐसी घटनाओ से भरा पडा है कि जिनसे स्वेच्छापूर्वक धारण की हुई उनकी महान् विनम्रता और कठोर आत्म-निग्रह व्यक्त होता है।

१९३४ ई० के बिहार-भूकप के बाद, जब वहाँ सहायता-कार्य प्रारभ किया गया तब, 'बिहार सेट्रल रिलीफ कमेटी' के आर्थिक सलाहकार के नाते मैं काम करता रहा। उपरात बिहार का दौरा करने के हेतु गाधी जी भी पटना पहुँच गये। अपव्यय की प्रवृत्ति पर प्रतिबध लगाने एव स्वयसेवक-दल पर

अधिक खर्च न होने देने के उद्देश्य से मैंने यह नियम बना रक्खा था कि प्रति दिन प्रति स्वयसेवक तीन आने से अधिक भोजन-व्यय न होना चाहिये। खुद मैं इसी नियम के अनुसार स्वयसेवको के शिविर मे भोजन करता था। किंतु जब गाधी जी अपने दलबल सहित पधारे तब जरा दिक्कत मालूम हुई। क्योकि गाधी जी के लिए दूध, फल आदि आहार और उनके साथियो के लिए खजूर, सूखा मेवा आदि चीज़ो का, जो कि साधारणतया सुख-सामग्री मे शुमार होती है, प्रवध करना, स्वयसेवको के दैनिक भोजन-व्यय का जो प्रवध किया गया था उसके हिसाब से, बहुत अधिक महगा पडता। अत मैंने महादेव भाई से कह दिया कि गाधी जी तथा उनके साथियो को खिलाने के लिए मै तैयार नही। ऐसी ही बात मोटर के उपयोग के सबध मे थी। रिलीफ कमेटी के काम से मोटर का उपयोग करनेवालो के लिए मैंने एक रजिस्टर बना रक्खा था, जिसमे मोटर द्वारा किसने, किस समय, कितने मील की और किसकी पूर्वस्वीकृति से यात्रा की, ये बाते दर्ज रहती थी। इसके कारण स्वाभाविक रूप से लोगो मे असतोष फैल गया। गाधी जी के पटना पधारते ही मैंने महादेव भाई से सलाह के तौर पर कह दिया कि वे अपने लिए पेट्रोल का पवध खुद ही करे, और मैंने उनके भोजन और सफर-खर्च का बिल मजूर करने से इन्कार किया। गाधी जी को यह बात मालूम होते ही वे झुझला गये। मुझे बुलाकर बोले, "सहायता-कार्य मे योग देने के लिए ही मैंने पटना तक की यात्रा की है। पटना आने मे मेरा एकमात्र उद्देश्य यही रहा है। अत मेरा मार्गव्यय आप रिलीफ कमेटी के खाते क्यो नही डालते यह बात समझ मे नही आती।" मैंने उन्हे अपनी नाज़ुक परिस्थिति से अवगत कराते हुए कहा कि हजारो स्वयसेवको के खर्च पर मुझे नियत्रण रखना पड रहा है। क्योकि प्रति दिन एक आना भी अधिक खर्च होने से कमेटी को अपने कार्यकाल मे ही लाखो रुपयो का घाटा उठाना पडेगा। और इसी लिए मैंने गाधी जी को सुझाया कि वे अपना खर्च आप बर्दाश्त करे, ताकि उन्हे स्वयसेवको की भाति कठोर जीवन बिताना न पडे और मोटर के इस्तेमाल पर भी इससे रोक लग सकेगी। गाधी जी मेरी बात से सहमत हो गये, और उन्होने महादेव भाई से यह रक्खा कि अपने खर्च के लिए एक पाई भी 'विहार रिलीफ फड'से न ली जाय। रिलीफ कमेटी के कार्य-सचालनार्थ बनाये गये नियमो का पालन

करने के लिए वे खुशी खुशी तैयार हुए, हालाकि अगर चाहते तो कमेटी के काम निमित्त स्वत द्वारा व्यय हुई रकम वसूल करने का उन्हे पूरा हक था। नियमपालन की यह वृत्ति उसी व्यक्ति में सभव है जो कि समझदारी के साथ परिस्थिति एव सबधित क्षेत्र के कार्यकर्ताओ की कठिनाइयो का ख्याल कर अति विनम्र बन सके।

इसी भाति १९४७ ई० मे काग्रेस-कार्यकारिणी की सदस्यता स्वीकार करने के लिए तत्कालीन राष्ट्रपति द्वारा मैं निमत्रित किया जाने पर गाधी जी ने इस आशय का पत्र भेज कर, कि नये उत्तरदायित्व मे मुझे सलग्न देख कर स्वत को प्रसन्नता ही होगी, एक प्रकार से उक्त सदस्यत्व स्वीकार करने के लिए अपनी सम्मति प्रदान की। अखबारो मे प्रकाशित इस विषयक खबर के आधार पर ही यह पत्र उन्होने लिखा था। इसके जवाब मे मैंने उन्हे तुरत सूचित किया कि अ० भा० ग्राम-उद्योग सघ ने, जिसका कि म मत्री हू, एक नियम यह बना रक्खा है कि कोई भी सघ-सदस्य राजनीति मे भाग न ले सकेगा, और अगर लेना चाहे तो सघ से स्तीफा दे। मैंने उन्हे यह भी लिखा कि अपने जीवन का प्रधान कार्य ग्रामोद्योग-सघ के साथ जुडा हुआ है, किंतु काग्रेस-कार्यकारिणी मे शामिल होने पर सघ से सबध-विच्छेद कर लेना पडेगा। सघ के नियम की ओर अपना ध्यान आकर्षित करने के उपलक्ष्य मे मुझे धन्यवाद देते हुए गाधी जी ने लिखा कि वे स्वय सघ के सभापति रह चुकने पर भी नियम की यह बात बिल्कुल भूल गये थे। उनका यह भी कहना रहा कि उक्त नियम सर्वथा उचित है, और हर हालत मे उसका पालन किया जाय। अत इस अतिरिक्त काम से मुझे भारभूत न करने की राष्ट्रपति को सलाह देने का खुद उन्होने ही जिम्मा लिया।

यहा पुन. हमें उनकी महानता के दर्शन होते हैं। बोले कि निश्चय ही उक्त प्रस्ताव विलोभनीय था, किंतु अन्यान्य क्षेत्रो मे अपनी आवश्यकता होने पर भी उसका लोभ सवरण कर राष्ट्र की अभ्युन्नति के हेतु अगीकृत कार्य में ही हमे मगन रहना चाहिये।

५. सहयोग और सत्याग्रही

१९३८ ई० मे तत्कालीन राष्ट्रपति नेताजी सुभाषचद्र बोस द्वारा प० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में नेशनल प्लैनिग कमेटी बनाई जाने-

पर उसका सदस्य बनने के लिए मुझसे कहा गया। बवई मे आयोजित कमेटी की बैठक मे भाग लेने के लिए पं० नेहरू ने मुझे निमन्त्रित किया। किन्तु कमेटी के सदस्यो की नामावली देखने के बाद उसके कार्य के सुपरिणामो के सबध मे मुझे सदेह हुआ। क्योकि हर श्रेणी के किंतु बेमेल लोगो का वह गुट था। बडे बडे उद्योगपति, विज्ञ अर्थशास्त्री, वैज्ञानिक, ससार-प्रसिद्ध महानुभाव, पूजीपति आदि सभी तो उसमे शामिल थे। विभिन्न विचारधारा के लोगो के इस गुट से कार्यसिद्धि की कोई आशा दिखाई न देने के कारण उसमे सम्मिलित होकर निरर्थक और अतहीन वादविवाद मे अपना समय नष्ट करना मुझे उचित नही लगा। इस पर पडित जी ने तार द्वारा गाधी जी से अनुरोध किया कि वे अपने प्रभाव का उपयोग कर मुझे बवई भेज दें। इस सबध मे परामर्श करने के लिए गाधी जी ने मुझे बुला भेजा। स्वत से भिन्न हितमबध रखनेवाले लोगो से माथापच्ची करने मे अपना वक्त वर्बाद होगा ऐसा मुझे क्यो लगता है इसका मैंने खुलासा किया। गाधी जी ने कहा कि इस प्रकार अपने साथियो के सबध मे पहले से कोई धारणा बना लेना सत्याग्रह के सिद्धातो के सर्वथा विपरीत है। बोले, "पूरी की पूरी कमेटी को ही आप अपनी नीति के कायल न बना सकेंगे ऐसा क्यो सोचते है ? इस से आप म आत्मविश्वास की कमी प्रकट होती है। और मालूम होता है कि अपने साथियो के प्रति भी आपको इतना विश्वास नही है कि वे खुले दिल से आपकी बात सुन लेंगे।" मैंने जवाब दिया, "आपका कहना बिल्कूल दुरुस्त हो सकता है, किंतु कबूतर की भांति हम भोलेभाले होने पर भी हमें साप की नाई चालाक बनना ही पडेगा। और दीवाल से सर टकराने से लाभ ही क्या ? कमेटी के सदस्यो की नामावली देखते ही मै ताड गया कि उसमे शरीक होने से बेकार की मगजपच्ची के सिवा कुछ भी हाथ न लगेगा।" प्रत्युत्तर मे गाधी जी ने कहा, "एक सत्याग्रही के लिए ऐसा दष्टिकोण शोभा नही देता। अपने विरोधी को आप पूरा अवसर दे, और कमेटी पर अपना बना रहना व्यर्थ है ऐसा महसूस होने लगते ही उससे कभी भी त्याग-पत्र देने के लिए आप स्वतत्र है। सचाई के साथ अपना काम अदा करने के बाद आप कर्तव्य मुक्त होते है, और सिर्फ तभी अपना वक्त वर्बाद न कर कमेटी से स्तीफा देकर अलग होना आप का फर्ज हो जाता है। इस बीच जो वक्त आप अपने को और अपने सहयोगियो को सतुष्ट करने मे लगायेंगे वह जाया न जायगा। इससे आपका विकास होगा, आपका दृष्टिकोण विशाल बनेगा।

अतः आपसे मेरी यही सलाह है कि उक्त कमेटी की बैठकों में आप तब तक भाग लेते रहे जब तक कि ऐसा करना आपको बेकार नही लगता। इसके बाद शुद्ध चित्त से त्यागपत्र देकर आप चले आये।" इसी सलाह के कारण नैशनल प्लैनिंग कमेटी मे शामिल होकर लगभग तीन महीने मे उसमे काम करता रहा। आखिर जब देखा कि कमेटी के सदस्य ऐसी बहस मे बहक रहे है, जिससे कि देश का कोई लाभ नही हो सकता, तब मैं उससे त्यागपत्र देकर चला आया।

इससे यही प्रकट होता है कि सत्याग्रही किसी को भी अपना सहयोग प्रदान करने के सबध मे सीमा न बाध रखे, और सत्याग्रही-जीवन बिताने की इच्छा हो तो किसी के सबध मे पहले से ही कोई धारणा भी न बना ले।

६. चिकित्सक

गाधी जी की विविध प्रवृत्तियो के अतर्गत प्राय सभी समाजोपयोगी कार्य आ जाते है, और इनमे से प्रत्येक कार्यक्षेत्र मे उन्होने बहुमूल्य योग प्रदान किया है। जहा तक डाक्टरी का सवाल है वे अपने आपको कु-चिकित्सक ही मानते है, हालाकि पेशावर डाक्टर कु-चिकित्सक है या गाधी जी, इसका निर्णय होना अभी बाकी है। अपने सामने आनेवाले किसी भी रोगी के बारे मे वे अपनी सूक्ष्म और विवेकशील बुद्धि से काम लेकर वैज्ञानिक चिकित्सा-प्रणाली काम मे लानेवालो को अक्सर आश्चर्य में डाल देते है।

स्वय मुझे ही रक्तचाप की शिकायत होने का जब कुछ वर्ष पूर्व पता चला तब उसका निदान कराना जरूरी हो गया। तज्ञ डाक्टरो से स्वास्थ्य-परीक्षा कराने के निमित्त मैं बबई लाया गया। भली भाति परीक्षा की गई, यहा तक कि तीन-चार दिन मैं सर्वथा डाक्टरो का ही दया-पात्र बना रहा। आखिर उन्होने अपनी राय देते हुए कहा कि मेरी शारीरिक प्रक्रिया मे कोई गड़बडी नही है, अतः रक्तचाप की शिकायत का कारण केवल कमजोरी ही हो सकता है।

यह रिपोर्ट लेकर मै गाधी जी के पास लौट आया। वे अविलंब मेरी कमजोरी का कारण खोजने मे लग गये। बोले, "हमें इस कमजोरी का कारण खोजना ही पड़ेगा। अन्यथा, न तो हम इसका उचित इलाज कर सकेंगे, और न इसे जड़ से दूर ही कर पायेंगे।" उनके विचार से शारीरिक क्षीणता या

मानसिक थकान ही मेरी उक्त शिकायत का कारण हो सकती थी। अत उन्होने मेरी शारीरिक और मानसिक हलचलो द्वारा ही इसका पता लगाने का निश्चय किया।

उस वक्त लाहौर के किनैर्ड कालेज की एक अध्यापिका कतिपय समस्याओ पर चर्चा करने के हेतु वहा पधारी हुई थी। उनमे से कुछ प्रश्नो पर मेरे साथ चर्चा करने के लिए गाधी जी न उन्हे भेज दिया, और डा० सुशीला नय्यर से कह रक्खा कि चर्चा के पहले एव बाद, मेरे खून के दौरे की जाच करे। चर्चा के लिए पद्रह मिनट का समय निर्धारित किया गया। जाच का फल देखने से ज्ञात हुआ कि चर्चा के बाद मेरा रक्तचाप १५ डिगरी बढ गया था।

दूसरे दिन गाधी जी ने आश्रम की उद्योगशाला के प्रबधक को बुलाकर लकडी के तख्ते पर उनसे एक लकीर खिंचवाई, और बोले कि वह ठीक उस लकीर पर ही मुझसे आरी चलावे। साथ ही आरी चलाने से पहले, और बाद मे भी, मेरे रक्तचाप की जाच कराने का उन्होने आदेश दिया। फलस्वरूप मेरे खून का दबाव २० डिगरी बढा हुआ नजर आया।

तीसरे दिन एक व्यायाम-शिक्षक को मेरे साथ फर्लांगभर दौड लगाने के लिए उन्होने कहा। अबकी बार रक्त-चाप के साथ ही नाडी-परीक्षा की भी व्यवस्था की गई थी। मालूम हुआ कि दौड के बाद खून का दबाव १५ डिगरी उतर गया था, और नाड भी प्राय साधारण गति से ही चलती रही।

उक्त तीनो परीक्षाओ के आधार पर गाधी जी को इस बात का निश्चय हो चुका कि लगातार मानसिक परिश्रम करने के कारण ही मुझे रक्तचाप की शिकायत हो गई है, शारीरिक क्षीणता का उससे कतई सबध नहो। साथ ही उन्हे उसके उपचार का भी उपाय सूझा। मुझसे वे बोले, "आयदा कभी भी खून का दबाव बढने पर आप घूमने चले जाय। और मस्तिष्क पर ज्यादा तनाव न पडे इस हेतु लगातार बडी देर तक काम करने की आदत छोड कर काम के बीच थोडा आराम कर लिया कर। सुबह के समय ११ या १२ बजे तक ही काम करना, और दोपहर बाद पुन काम मे जुट जाने से पहले दो घटे आराम मे बितावे। इसी अनुसार भोजन का समय भी बदल देना चाहिये, ताकि पचन-क्रिया और मस्तिष्क का कार्य एक ही साथ शुरू न हो। इस तरीके से आप रक्तचाप की अपनी शिकायत पर बहुत कुछ काबू पा सकते है।"

रोग का निदान, और उसके निवारण-स्वरूप बताई गई गाधी जी की उपरोक्त विधि शास्त्रोक्त मालूम होने के कारण मैने उसी का अवलब किया। गत सात वर्षो से बडी सावधानी के साथ मै इसका पालन कर रहा हू, और आकस्मिक अडचनो की वजह से उसमे कभी कभार खड पडने पर भी परिणाम सतोषप्रद रहा है।

इसी भाति दूसरी कई बीमारियो को दूर करने के लिए गाधी जी जो उपचार बताते है वे सरल और गुणकारी है। उनकी राय मे प्रकृति के नियम तोडनेवाला व्यक्ति ही बीमारी का शिकार बनता है, और इसी लिए वे बीमार के अव्यवस्थित जीवन को प्रकृति के नियम-मार्ग पर लौटा लाने की चेष्टा करते है। हरेक चिकित्सक का यही उद्देश्य होना चाहिये।

७ कृपासिंधु

चद साल पहले जब गाधी जी मगनवाडी आकर ठहरे थे तब एक दिन १७ या १८ वर्ष की उम्र का एक युवक उनके पास आया। वह कप-रोग से पीडित था, याने अपने हाथ-पाव कापने लगने पर उस कपकपी को रोकना उसके वश के बाहर की बात हो जाती थी। उसने गाधी जी से कहा कि अपनी जिदगी उसके लिए भाररूप हो रही है, और वह किसी के भी काम नही आ सकता; और विनय की कि वे उसे अपने साथ रहने दे। उत्तर मे गाधी जी बोले कि वे हर अपाहिज को आश्रय देने की स्थिति मे नही है, अत उसे अन्यत्र आसरा खोजना चाहिये। किंतु युवक अपनी बात पर अडा रहा और किसी भी हालत मे वहा से हटने का नाम न लेता था। सुबह से शाम तक वह पास के मकान की सीढियो पर बैठा रहा। शाम के वक्त गाधी जी को उनके किसी अनुचर ने इसकी खबर दी, और सुझाया कि उसे निकाल बाहर किया जाय। इतना सुनना था कि गाधी जी बोल उठे, "यदि मै उसे निकाल बाहर करू तो आखिर वह किसके पास जायगा? रहने दो बेचारे को, मै सोचकर उसके उपयुक्त कोई काम बता दूगा।"

फलतः उक्त युवक आश्रम मे ही रह गया, और गाधी जी ने उसे ऐसा काम सौंपा कि जो करने मे उसके कप-पीड़ित हाथपाव के कारण किसी भी प्रकार बाधा पहुँच न सकती थी। धुनाई-कताई करना उसके लिए सभव ही

न था; अतः सब्जिया आदि धोकर रसोईघर के कार्यकर्ताओ की यथासभव सहायता करने का काम उसे सौंपा गया। इच्छाशक्ति के कारण यह युवक अपने अपग अवयवो को कुछ अशोतक आत्मवश करने में समर्थ हुआ। वास्तव मे साग-सब्जिया धोने का काम भी शुरू मे उसके लिए भारी था, किंतु कुछ ही दिन के भीतर वह हाथ मे चाकू पकड़कर सब्जिया काटने लगा। धीरे धीरे थोड़े ही महीनो मे वह लगभग स्वस्थ हो कर शास्त्राध्ययन के लिए अमेरिका चला गया।

अपने सर्वव्यापी प्रेम के बल पर गाधी जी किसी भी व्यक्ति के भीतर के गुणो को प्रकाश मे लाकर उनका अधिकतम उपयोग कर लेते हैं। उक्त नवयुवक में अपनी नसो को वश मे रखने की इच्छाशक्ति पैदा करने मे वे इसी तरह समर्थ हुए। और स्मरण रहे कि सहानुभति एव सौजन्यपूर्ण व्यवहार द्वारा ही यह सब सपन्न किया गया।

८. जैसा कि मैं हूँ

अपने पास आने वाले किसी भी व्यक्ति को स्वत के विचारानुसार ढालने की कोशिश न कर, उसके स्वाभाविक रूप मे ही ग्रहण करने की गाधी जी की वृत्ति उन्हे महान् बनानेवाले गुणो में से एक है। उनका अपना विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही ढग से विकसित होने का अवसर प्रदान किया जाना चाहिये। इसी कारण विभिन्न वृत्तियो के भिन्न भिन्न स्त्री-पुरुष इस महात्मा के इर्दगिर्द इकट्ठा हुए हे। उनके आसपास आप राजेंद्र बाबूओं और सरदारो, सरोजिनियो और मीराओ, बिडलाओ और विनोबाओ, तथा राजाजीयो और भनसालियो को देख सकेंगे। "जो हमारे विरुद्ध नहीं हैं वह हमारे साथ ही है" इस सिद्धात के अनुसार वे हरेक के भीतर के उत्तम गुणो का अधिक से अधिक उपयोग कर लेते हैं। 'यग इडिया' के अपने सपादन-काल में एक ऐसे अति उत्साही व्यक्ति ने, जो कि काया-वाचा-मनसा शीघ्रातिशीघ्र अहिसा की प्राप्ति करना चाहता था, आलोच्य विषयो की मेरी भाषा बडी ही तीखी होने की शिकायत करते हुए गाधी जी के सामने यह सुझाव रक्खा कि वे इसे ज़रा सौम्य बना दे। इस पर गाधी जी ने हँसकर जवाब दिया, "भाई कुमारप्पा दक्षिणी हैं। अतः यदि उनके स्वभाव में लाल मिर्च मिली रहे तो वह आपको बर्दास्त करनी ही चाहिये।"

९. अध्यवसायशील प्रयोगी

कोई भी वैज्ञानिक गाधी जी से बढकर ज्ञानपिपासु हो नही सकता। अपने पास उपकरणो से सजी-सजाई प्रयोगशाला न होने पर भी वे नित नये नये प्रयोग करते ही रहते है। नई बातो की खोज की इच्छा से ही वे अपने आहार मे समय समय पर हेरफेर करते है। मगनवाडी मे नीम के पेडो की कोई कमी तो है ही नही। सो स्वास्थ्य पर इसके प्रभाव को अजमाने के हेतु वे प्रति दिन १० तोला नीम की पिसी हुई पत्तिया सेवन करने लगे। एक दिन दोपहर के भोजन के समय गाधी जी की दाई ओर मै, और बाई ओर सरदार वल्लभभाई विराज गये। सदा की भाति गाधी जी नीम की चटनी चट करने जा ही रहे थे कि उन्होने उसमे से चम्मचभर मेरी थाली मे परोस दी। बापू का यह वात्सल्य-प्रेम सरदारजी देख रहे थे। वे मेरी ओर ताककर आख मिचकाते हुए बोले, "देखिये कुमारप्पा, बापू ने शुरूआत तो बकरी के दूध-सेवन से की, और अब उसी के आहार पर नौबत आ पहुँची है।"

कलकत्ता,
२४-१२-१९४७

गांधीजी : १९२६-३९ ई.

म्यूरीयल लेस्टर

प्रथम विश्वयुद्ध के शीघ्र ही बाद रोमा रोला की लिखी हुई एक पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद मेरे हाथ लगा। उक्त पुस्तक में रोला ने अपनी अद्वितीय भाषाशैली द्वारा एम. के गाधी नामक एक भारतीय के चरित्र, सिद्धात और कार्यो का वर्णन किया था। उस वक्त तक सर्वसाधारण अग्रेज के लिए उनकी हस्ती लगभग अज्ञातसी ही थी। मेरे लिए तो यह पुस्तक युगातरकारी ही सिद्ध हुई। इजील के किसी भी प्रेमी पाठक के लिए उनके जीवन-सिद्धात सुपरिचित मालूम होते; किंतु यहा तो एक ऐसा व्यक्ति अवतरित हुआ था जो कि इन महान् सिद्धातो को स्वत के दैनदिन जीवन में उतारने के साथ ही अपने देशवासियो को भी उनकी राष्ट्रीय आकाक्षाओं के आधार-

स्वरूप इन सनातन सत्यो को ग्रहण करने के लिए पुकार पुकार कर कह रहा था। मानव के प्रति ईश्वर की कृपा, मानव के लिए ईश्वरी आधार, भगवत्भजन, अपार क्षमाशीलता, मनोधैर्य, शरीरश्रम, स्वार्थत्याग, एव ईश्वरी साक्षात्कार के लिए अनुष्ठान की आवश्यकता ये ही वे सनातन सत्य है।

कुछ वर्ष वाद, याने १९२६ ई० म, भारत पहुचते ही अपनी प्रतीक्षा करता हुआ उनका एक पत्र मुझे मिला। लिखा था कि मै उसी दिन शाम को रेल द्वारा ववई से अहमदाबाद, और दूसरे दिन सुबह वहा से मोटर द्वारा सावरमती पहुच जाऊ। वैसे भारत की हर चीज मुझे अनोखी दिखाई दी। किंतु दूधसी सफेद धोतिया पहने हुए लोगो की भीड से भरी सडके और गलिया किसी विशेप अवसर की सूचना दे रही थी। ये बहुत सारे लोग मेरी ही दिशा में बढ रहे थे। वहा पहुचने पर मालूम हुआ कि आज गाधी जी की सत्तावनवी वरसगाठ है। दो सौ चर्खे गाधी जी के चर्खे के साथ एकतान होकर घूम रहे थे। सैकडो दर्शक उपस्थित थे। घटो व्याख्यान और वार्तालाप का कार्यक्रम चलता रहा। एक नाटक का कुछ अश भी खेला गया। यहा मैंने पलथी मारकर वैठने का खासा अभ्यास किया। हम लोग जमीनपर विछाई हुई लवी चटाइयो पर वैठे, और अपनी कमर पर खजूर, काजू, और किसमिस वगैरह सूखे मेवा से भरी टोकरिया ली हुई लावण्ययुक्त देवियो नें हम लोगो की कतारो में घूम घूम कर ये चीजे नाश्ते के लिए हमे परोसा।

लोगो के चले जाने के वाद आश्रमवासियो ने सम्मिलित प्रार्थना की। पश्चात् अपना चौबीस घटे का मौनव्रत प्रारभ करने से पहले गाधी जी ने दिन भर के कार्यों की विवेचना की। किसी ने मेरे लिए इसका अग्रेज़ी मे अनुवाद किया। गाधी जी ने साररूप मे यही कहा . "मच आदि वनाने के लिए मित्रो से मगनी लाया हुआ सामान अपना काम हो जाने के वाद समय पर लौटाने की वात जव लोग भूल जाते है तव वे सामाजिक अपराध के भागी होते है।... मनोरजन का कार्यक्रम मजे का रहा, किन्तु चर्खा-प्रतियोगिता विशेष रूप से अच्छी रही। यह विधायक प्रवृत्ति थी। भारत की गरीवी का कभी भी विस्मरण होने न देना चाहिये। और न ही अपने अहिसात्मक युद्ध को, जो आज भी जारी है, हम इतनी जल्द भूल जाय।...इस दृष्टि से मनोविनोद का कार्यक्रम कुछ असगतसा लगता है।"

इसके कुछ दिन बाद जब वे ईसा के 'गिरि-प्रवचन' की साप्ताहिक विवेचना के लिए गुजरात-विद्यापीठ जा रहे थे-तब मैं भी उनके सग हो ली। रास्ते में उन्होने अपने उन अग्रेज सन्मित्रो का उल्लेख किया जिनके सहवास मे रहने का सौभाग्य उन्हे अपनी प्रथम विदेश-यात्रा के समय प्राप्त हुआ था। इन्ही मित्रो ने अपने को ईसाई धर्म से परिचित कराते हुए, ईसाइयत ग्रहण करनेवाले हर व्यक्ति को देववाणी, स्वप्न या ईश्वर-साक्षात्कार मे से एक न एक बात का अवश्य ही अनुभव होता है यह किस तरह बताया इसका भी उन्होने उल्लेख किया। और बोले कि इनमे से एक भी बात इससे पहले वे जानते न थे।

एक लबे अरसे तक मै उन्हे समझ ही न पायी। गाधी जी विषयक मेरा यह अज्ञान जमनालाल जी बजाज के पधारने, एव अनसूया साराभाई और शकरलाल बैंकर के सहवास मे रहने का अवसर मुझे प्राप्त होनेपर ही दूर हुआ। शकरलाल जी बोले, "भारत की स्वाधीनता प्राप्ति की आकाक्षा से जिनकी भावनाये जल उठी थी, किंतु जो सिवाय हिसात्मक तरीको के इसे हासिल करने का दूसरा रास्ता जानते ही न थे ऐसे हम नवयुवको की नजर मे गाधी जी का जो मूल्य है वह क्या आप जानती है? हममे से कुछतो गुप्त दलो मे भी भर्ती हो गये थे। मौके बे-मौके उन्हे बम का प्रयोग भी करना पडता था। स्वदेश की रक्षा के प्रयत्न मे वे अपनी आत्मा का हनन कर रहे थे। उनका हृदय अतर्द्वद्वसे व्याप्त था। सकट के बादल उनके सरपर सदा मडराते रहते थे, और वे भी छल, कपट एव धोखाधडी के अभ्यास द्वारा इन सकटो का सामना करने के लिए हर घड़ी तैयार रहते थे। इस अवस्था मे हमे सचाई और स्पष्टता, सविनय सेवा, दरिद्र-नारायण की भक्ति, विधायक कार्य, और पारस्परिक क्षमावृत्ति के द्वारा स्वाधीनता के पथ पर अग्रसर करानेवाले गाधी जी के हम आजीवन कितने ऋणी रहेगे इसकी आपही कल्पना कीजिये।"

एक अग्रेज मैजिस्ट्रेट ने, यह देखकर कि मैं हाल ही मे भारत आयी हूँ, एक रात को आयोजित दावत के अवसर पर मुझसे कहा, "क्या आप गाधी जी ने भारत के लिए जो कुछ किया है वह जानना चाहती है? तो सुनिये। आज से दस बरस पहले अगर अपनी सवारी के घोड़े को कोई राह चलता कुली सड़क लाघ कर चमका देता तो मैं उस पर झिडकियो की बौछार कर उसे

फटकारते हुए कहता, 'अबे, हट यहा से !' और इतना सुनते ही बेचारा दुबक कर आख से ओझल हो जाता था। किंतु अब मैं पहले की भांति कुली को डाट नही सकता। और अगर डाटू भी, तो वह मुझसे दबेगा नही। बल्कि निर्भयता के साथ मेरी आख से आख मिला कर खडा हो जायगा, और शिष्ट भाव से पूछेगा, "क्यो हटू, श्रीमान् जी ?"

उसी वर्ष, याने १९२६ ई० मे, गौहाटी मे काग्रेस का अधिवेशन हुआ। उक्त अधिवेशन-काल मे मुझे अ-राजनीतिक, अ-हिंदू, और सर्वसाधारण लोगो की गाधी जी के प्रति जो भावना थी उसका अवलोकन करने का अवसर मिला। ये किसान-श्रेणी के लोग थे, और इनमे से कई रात की रात तीस मील का फासला तै कर यहा तक आये थे। कार्यवश अपने डेरे के बाहर-भीतर गुजरनेवाले गाधी जी का दर्शन करने के हेतु वे सब के सब उसको घेर कर खड़े हो गये। कोई मनो-विनोद नही, कोई बातचीत नही। और फिर भी ये लोग उनके दर्शनार्थ आदरयुक्त मुद्रा मे खडे ही रहे।

पाच वर्ष बाद जब गोलमेज-परिषद् के अवसर पर लदन के बो मुहल्ले स्थित किग्सली हॉल में दस सप्ताह तक उनका आतिथ्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ तब परिस्थिति बहुत कुछ बदल गई थी। अवश्य ही उनको अपने यहा ठहराने के लिए दूसरे कई लोग तैयार थे। परिषद् के प्रतिनिधियो को ठहराने के लिए सम्राट द्वारा की गई व्यवस्था हमारी व्यवस्था के सर्वथा विपरीत थी। जहा ये लोग टिकाये गये थे वहा से हाइड पार्क का दृश्य दिखाई पडता था, दर्जनो नौकर-चाकर उनकी खिदमत में उपस्थित रहते थे, और आरामदेह फर्निचर एव सुस्वादु भोजन का भी प्रबध था। किंतु गाधी जी ने भारत से ही पत्र द्वारा यह सूचना दे रक्खी थी : "मै तो बो मुहल्ले में ही ठहरना अधिक पसद करूगा, क्योंकि लदन के इस ईस्ट एड विभाग में मुझे ऐसे लोगो का सान्निध्य प्राप्त होगा जिन के लिए कि मैंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है।"

क्याही शानदार स्वागत रहा उनका ! उनके आगमन पर किग्सली हॉल के बाहर और भीतर मिलकर हज़ार के करीब लोग उपस्थित थे। इस हॉल की खुली छत पर, जहा कि हम लोग सोया करते थे और जिसका आधा हिस्सा हमने उनके, एव महादेव, मीरा, प्यारेलाल और देवदास के लिए

सुरक्षित रक्खा था, जब वे पथरीली सीढियो से होकर जाने लगे तब पास की सडक पर के लोगो ने उनके दर्शनार्थ एक-दूसरे को पुकार कर बडा शोर मचा दिया।.. उनके अनुशासनबद्ध जीवन की दिखाई पडनेवाली छोटी से छोटी बात पर भी इन लोगो की दृष्टि गडी रहती थी। और वे देखते थे कि सेट जेम्स महल मे, या अन्य स्थानो के प्रतिनिधियो के साथ कार्यवश रात के २॥ बजे तक का वक्त गुजार कर लौटने के बाद भी प्रात कालीन ४ बजे की प्रार्थना के निमित्त उनके कमरे मे रोशनी की गई है। किंग्सली हॉल के अडोस-पडोस के घरो मे जाकर वहा के बच्चो के साथ वे बातचीत कर आये, पास ही के एक अस्पताल का उन्होने निरीक्षण किया, और हमारी दावतो मे भी वे शामिल हुए। वेस्ट एड मे रहने का आग्रह करनेवाले अपने किसी मित्र से एक बार वे बोले, "वो मुहल्ला छोडकर लदन के किसी दूसरे हिस्से मे मै एक रात भी गुजार नही सकता। यहा इग्लैड के लोगो के बारे मे जानकारी हासिल कर असली गोलमेज-परिषद् का कार्य मै पूरा कर रहा हू।"

१९३४ ई० में अस्पृश्यता-निवारणार्थ जो देशव्यापी दौरा उन्होंने निकाला उसमें मैं भी उनके साथ रहने के कारण मुझे उनके जीवन का और एक पहलू देखने मिला। महीनो हम एक स्थान से दूसरे स्थान का दौरा करते रहे। एक ही दिन मे सात-सात सामूहिक प्रार्थनाये होती थी। लबे व्याख्यानो के बाद चदा इकट्ठा किया जाता था। लोग उन्हे भेंट देने के हेतु अक्सर अपने गहने उतार कर लबी कतारो मे खडे रहते थे, फिर गाधी जी इनका नीलाम पुकारते थे, बडी सावधानी के साथ वे यह कार्य पूरा करते थे। प्राय रात के समय की जानेवाली हमारी रेल-यात्रा बहुत ही थका देनेवाली होती थी। हरेक स्टेशन के प्लेटफार्म पर गाधी जी के दर्शनार्थ उपस्थित सफेद धोतीधारी और गेहू वर्णी मुखाकृतियो का समुद्र-सा नजर आता था। इनमें से कई लोग गाडी की खिड-कियो पर चढकर गाडी के छूट जाने के बाद भी मीलो वैसे ही लटके रहते थे। फिर भू-डोल के बाद बिहार और उत्कल की यात्रा प्रारभ हुई। अब तक की यात्रा के कारण हममे से अधिकाश थक कर चूर हो गये थे, किंतु ऐसी बात गाधी जी की नही। उन का मानसिक सतुलन, अक्षय आधिदैविक शक्तियो से उनका सपर्क, किसी भी क्षण निद्राधीन होने की उनकी क्षमता आदि बातें पूर्ववत् बनी हुई थीं। तब मुझे गाधी जी के निम्न शब्द, जो उन्होने स्विट्जरलैंड

में रोमा रोला के यहा अतिथि रूप मे रहते समय पिअरे सेरेज़ोल से कहे थे, याद हो आये ।

" किसी भी नेता का स्वत पर पूर्ण अधिकार होना चाहिये । सत्ता, सम्मान या सौख्य इनमे से किसी भी बात की खुद के लिए वह कभी आकाक्षा न करे । उसे सदा ईश्वर-स्मरण बना रहे । जरा मुझे ही देखिये । मेरे पास प्रभु द्वारा प्रदत्त बातो के अलावा किसी भी प्रकार की ताकत नही है । दस-पद्रह साल का कोई भी लडका एक ही मुक्के मे मुझे मार गिरा सकता है । वैसे मुझम कुछ भी दम नही है । किंतु भय और वासनाओ से मुक्त होने के कारण मुझे ईश्वरीय सामर्थ्य का अल्प ज्ञान हो पाया है । और मै स्पष्ट ही कह देता हूँ कि यदि सारे ससार ने ईश्वर का अस्तित्व मानने से इन्कार किया तो भी मै अकेला ही इसकी साक्षी दूगा, क्योकि मै इसे एक अखड चमत्कार ही मानता हूँ । "

इसके बाद जब मैने उनका पुन दर्शन किया तब परिस्थिति कुछ और ही थी । १९३६ ई० की यह बात है, जब कि वे जीवन और मरण के बीच झूल रहे थे । किंतु उस समय भी परिस्थिति पर पूरी तौर से उन्हीका अधिकार रहा । और मुझे याद है कि मौत का आभास पाने पर उन्होंने महादेव को सात्वना प्रदान की थी ।

पश्चात् १९३८ और ३९ ई० के शीतकाल मे सीमाप्रात म खान अब्दुल गफ्फार खा के सहवास मे रहने, एव दक्षिण अफ्रीका के अपने पुराने साथी हरमैन केलेनबेक के आगमन के कारण उनम नया जोश सचारित हुआ । ये उभय मित्र सब कामकाज साथ-साथ करते थे, जो देखकर मुझे स्कूली बच्चो के एक जोडे की याद आ जाती थी ।

युद्ध-काल म मुझे यह आशका होने लगी थी कि अज्ञान, घमड और लालच के विरुद्ध सतत सघर्ष करने के कारण कहीं वे गल न जाय । किंतु दूसरे ही दिन लदन में हमारे पास यह खबर पहुँची कि गाधी जी शतायु हानकी कामना करत है । हमम से बहुता को यह शुभ शकुन ही प्रतीत हुआ । इसम इस दुखी ससार के भवितव्य के प्रति हमारा विश्वास दृढ बना ।

एक बार मैने बापू जी को ऐसा कहते सुना · "केवल एक शुभ विचार स प्रेरित होकर ही नहीं अपितु ईश्वर की इस इच्छा से, कि हर राष्ट्र स्वाधीन

बने, अवगत होने के कारण ही मैं भारत की आजादी के लिए लड़ रहा हू। अन्यथा, ये राष्ट्र ससार को सुखी बनाने के लिए अधिकतम योग प्रदान करने मे असमर्थ रहेगे।"

१९३१ ई० मे गांधी जी के स्विटजरलैंड पधारने पर उनके और पिअरे सेरेज़ोल के बीच निम्न वार्तालाप हुआ था :—

सेरेजोल—"गाधी जी, आप यूरोप के बारे में क्या सोचते हैं ?"

गाधी जी—"यूरोप मे मुझे महान् नेतृत्व के आसार नज़र नही आते।"

"ईश्वर के आप क्या माने करते हैं ?"

"सत्य ही ईश्वर है, और अहिसा उसकी साधना का सोपान। हिमालय की ढालवा चट्टानें उन ऋषि-मुनियो और सतो की श्वेत अस्थियो से आलोकित हो रही है जिन्होने कि ईश्वर के रहस्य की प्राप्ति के लिए वहा सदियो तक तपश्चर्या की है। उन सब की तपाराधना का सार यही है कि—'सत्य ही ईश्वर है, और अहिसा उसकी साधना का सोपान।'"

एक अन्य प्रसग पर वे बोले· "ईसा ने पूर्व में परमात्मा से ग्रहण की हुई एक सास विश्व भर मे फैला दी। किंतु पाश्चात्यो ने उसको स्वीकार कर उसे जो रूप दे डाला वह मेरी राय मे विकृत है। और इसी वजह से मै अपने आप को ईसाई नही मानता।"

एक बार स्टैनले हाई गाधी जी के आश्रम मे पधारे, और बडी देर तक उनसे वार्तालाप करते रहे। चूकि बा मुझे और बापू को खाना परोसने जा रही थी इस लिए मैं बाहर के बरामदे मे खड़ी होकर उनकी प्रतीक्षा करने लगी। स्टैनले हाई १९२६ ई० की चीन की उस विपम स्थिति के विपय में, जब कि शाघाय स्थित ब्रिटिश प्रजा के रक्षार्थ अतिरिक्त सेना का सगठन करना पड़ा था, गाधी जी से राय माग रहे थे। आध घटे तक पूछे गये प्रश्नो के अतिम उत्तर स्वरूप गाधी जी द्वारा उच्चारित निम्न शब्द मुझे सुनाई पड़े। सदय और शिष्ट वाणी मे वे बोले, "किंतु यदि आप, ईसाई होकर, वहा सैन्य भेजते हैं तो इस से स्वधर्म भग के भागी जो बनते हैं !"

लदन,

११–१–१९४६.

आक्सफर्ड में गांधी जी

लार्ड लिंडसे आफ बर्कर

मेरे मित्र श्री. एस. के. दत्त १९३१ ई० मे आयोजित आल-इडियन कान्फरेस के एक सदस्य थे। उन्होने मुझे बताया कि लदन और अन्य स्थानो के विभिन्न व्यक्तियो और संस्थाओ से भेट-मुलाकाते करने मे गाधी जी इतने अधिक व्यस्त है कि अपने मुख्य कार्य से सवधित समस्याओ पर विचार करने के लिए उन्हे अवकाश ही नही मिलेगा ऐसी आशका होने लगी है। उन्होने मुझसे यह भी पूछा कि क्या मैं श्री गाधी को किसी ऐसे दो सप्ताहात मे, जब कि उन पर काम का अधिक भार न हो, आक्सफर्ड पधारने का निमत्रण दे सकूगा? इसमें हेतु यही था कि वे शाति-लाभ कर सके, और इसी लिए उनके इस आगमन की खबर यथासभव अप्रसिद्ध रखना ही तै हुआ था। अवश्य ही इस आयोजन से यह आशा की जाती थी कि भारत के प्रति आस्था रखनेवाले दो-तीन अग्रेज राजनीतिज्ञो और गाधी जी के बीच द्वितीय सप्ताहात मे एक औपचारिक बैठक का प्रबध सभवत हम कर सकेंगे, किंतु इसमे मुख्य उद्देश्य तो उन्हे शाति और आराम पहुँचाने का ही रहा। फलत सी. एफ एड्रयूज, कुमारी स्लेड, अपने सुपुत्र, एव कुछ अन्य मित्र आदि लगभग एक दर्जन व्यक्तियों के साथ वे पधारे। गाधी जी अपने सुपुत्र, सेक्रेटरी और कुमारी स्लेड के साथ हमारे घर ठहर गये। गाधी जी को कोई सता न सके इस हेतु सरकार द्वारा भेजे गये दो भीमकाय पुलिसवालो के लिए भी हमे कमरे का प्रबध करना पडा।

उक्त दोनो सप्ताहात अलग अलग ढग से बिताये गये। प्रथम सप्ताहात गाधी जी ने आक्सफर्ड की विभिन्न सभा-सस्थाओ का निरीक्षण करने मे बिताया। यही मुझे पहली ही बार हाजिर-जवाबी गाधी जी का दर्शन हुआ। चतुर युवको द्वारा पूछे गये अनुपयुक्त प्रश्नो का अविलब उत्तर देने की उनकी क्षमता देखकर मै प्रभावित रह गया।

द्वितीय सप्ताहात का कार्यक्रम पहले की अपेक्षा सर्वथा भिन्न रहा। भेंट-मुलाकातें खतम हो जाने के कारण गाधी जी अब आराम कर सकते थे। इस

वक्त तक हम मे पारस्परिक विश्वास पैदा हो गया था, और इससे हमे श्री गाधी के जीवन का दूसरा पहलू देखने मिला। उस समय के उनके जो मतव्य मुझे याद है वे मैं बहुत ही सरल ढग से निवेदन करूगा। एक शनिवार को सुबह के वक्त वे हमारे यहा आये। उक्त शनिवार की पिछली रात को यूनिवर्सिटी कालेज के तत्कालीन प्रधान सर माइकेल सैडलर ने मुझे तथा मेरे दर्शनशास्त्री-साथियो से कहा कि गाधी जी के साथ ठहरे हुए प० मालवीय से हम मिल ले। पडित जी ने दर्शनशास्त्र पर थोडी देर बातचीत करने के बाद अपनी एक योजना हमे बताई। इसमे वे खुद गहरी रुचि तो रखते ही थे, साथ ही हमसे भी इसके लिए सहयोग की आशा करते थे। पूछने लगे कि क्या ससार भर के चुनिंदा दार्शनिको और वैज्ञानिको की एक परिषद् आयोजित करने मे हम अपना सहयोग दे सकेगे? फिर बोले, "इन महारथियो के एकत्रित होने पर हम उनसे दो सरल किंतु गूढ प्रश्नो के अधिकार पूर्ण उत्तर प्राप्त कर सकेगे। इनमे से पहला प्रश्न होगा—'क्या ईश्वर का अस्तित्व है ?' और दूसरा—'उसकी क्या इच्छा है ?' इन दो प्रश्नो के अधिकार पूर्ण उत्तर मिल जाने पर हम अपने तमाम भेदभावो, द्वेप-मत्सरो और सदेहो को तिलाजली दे कर समान भूमिकापर ईश्वर की इच्छानुसार कार्य करने मे जुट जायगे।" बहुत ही मर्मस्पर्शी ढग से पडित जी बाले। उनकी योजना सबधी अपनी शकाये यथासमय मुझे प्रदर्शित करनी थी। दूसरे दिन सुबह मैंने गाधी जी से यह सारा किस्सा सुनाया, और उनसे इसका जवाब जानना चाहा। गाधी जी का उत्तर उनकी सत-सदृश्य और व्यावहारिक वृत्ति के सर्वथा अनुरूप ही रहा। वे बोले, "मेरी राय मे अव्वल तो ऐसी परिपद् किसी निर्णय पर पहुँचेगी ही नही, और दूसरी बात यह कि अगर किसी निर्णय पर पहुँच भी गई तो मैं खुद उसका कुछ महत्व न मानूगा, क्योकि मेरा अपना विश्वास है कि ईश्वर की इच्छा सर्वसाधारण अशिक्षित मनुष्य के आकलन के परे की बात हो ही नही सकती।"

इसके बाद पुन उनसे मिलने आने पर मैंने देखा कि मेरे पुत्र द्वारा पूछे गये प्रश्नो के उत्तर देने में वे व्यस्त हैं। उस वक्त वेल्स परगने के एक शिक्षण-वर्ग में पढानेवाले अपने इस पुत्र को वहा की खानो मे काम करनेवाले मजदूरो ने गाधी जी से कई सवाल पूछने के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया था। गाधी जी के कमरे मे मैंने पैर रखते ही उसे उनसे ऐसा पूछते सुना—"वे यह

भी जानने के लिए बडे उत्सुक है कि आप कहा तक ईसाई हैं ?" गाधी जी ने अविलव उत्तर दिया, "देखो, तुम्हारे पिता जी आ गये हैं, क्या वे तुम्हे यह बता सकेगे कि वे स्वय कहा तक ईसाई है ? ना, न तो वे यह बात बता सकते हैं, और न मैं ही।"

अव गाधी जी विषयक कुछ सर्वसाधारण बातें निवेदन करूगा । इन्ही दिनो अपने एक घनिष्ठ मित्र ने मुझसे कहा कि हम गाधी जी को राजनीतिज्ञ बनने की चेष्टा करनेवाले सत के रूप में देखने की अपेक्षा, सत बनने के लिए सचेष्ट राजनीतिज्ञ के रूप मे ही देखे । फिर भी हम उभय पति-पत्नी ने उन लोगो से यही कहा कि गाधी जी का अपने घर अतिथि के रूप मे स्वागत कर हम सत-समागम अनुभव कर रहे हैं। महान् और सरल व्यक्ति की तरह उन्होने सबके साथ एकसा सौजन्ययुक्त और सम्मानपूर्ण व्यवहार किया, चाहे वह व्यक्ति कोई प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ हो, चाहे एक अपरिचित विद्यार्थी । जिसने भी उनसे किसी विषय मे जिज्ञासा प्रकट की वह उसका उचित उत्तर पा गया। एस. के दत्त ने गाधी जी के बारे मे बोलते हुए मुझसे कहा कि गाधी जी एक राजनीतिज्ञ के नाते भारत को सदा देहात के रूप मे ही देखते हैं, क्योकि देहात ही उनकी असली जानी-पहचानी जगह है । मेरी राय में उनका यह दृष्टिकोण अधिकाश सही है। और शायद इसी लिए उनके कुछ विचार, और शायद कुछ गलतिया भी, उस ग्रामीण समाज के साथ के अपने सपर्क के कारण उत्पन्न हुई हैं, जिस मे कि लोग परस्पर से परिचित रहने के साथ ही आपस म विशुद्ध मानवी नाता बनाये रखते हैं । मेरे ख्याल से इसी रुख में ही उनकी शक्ति असल निहित थी, जिसकी वजह से मानवी हितसबध और वस्तुस्थिति विषयक उनकी जानकारी हमेशा बिल्कुल अचूक रही । ऐसे समयमे, जब कि अन्यान्य राजनीतिज्ञ युक्ति-प्रयुक्तिया, जन-मत, देश की स्थिति सबधी आकिक विवरण आदि बातो में मशगूल थे, गाधी जी ने उपरोक्त सरल मार्ग का अवलब कर मूलभूत बातो से अधिक निकट सपर्क स्थापित किया। वे स्पष्ट ही स्वीकार करते थे कि आज की अपेक्षा स्वराज्य में देश अधिक अच्छी तरह शासित होगा इस मिथ्या कल्पना पर भारतीय स्वाधीनता सबधी अपना दावा कतई आधारित नही है । बल्कि वे तो बोले, "हमे अभी बहुत कुछ सीखना है, और राजकाज की बात रात की रात मे सीखी नही जा सकती । किंतु यदि आप अंग्रेज लोग ही

हमे गलतिया करने एव उनके फल भोगने से रोकते रहे तो हम कभी कुछ सीख ही न पायेगे।" सुनकर मुझे ऐसा लगा कि भारत विषयक उनके विचार किसी भी ब्रिटिश या भारतीय राजनीतिज्ञ की अपेक्षा अधिक वास्तविक है।

शाति-स्थापना सबधी उनके मतो की हमने काफी चर्चा की। तब उनके बारे मे मेरी जो राय बनी, और जो आगे चलकर दृढ हुई, वह यही है कि शाति के प्रति उनकी श्रद्धा मौलिक है,—भारत विषयक आशा-आकाक्षाओ की अपेक्षा भी अधिक मौलिक है। किंतु इस विषय म मै उनसे सहमत न हो सका। तब गाधी जी बोले, "इसमे दोप आपका नही, अग्रेज जाति का ही यह स्वभाव-दोष है कि वह अपने विरोधियो को सर-आखो पर उठा लेती है।" खैर, इन वादविवादो के बावजूद उनका सहवास हमारे लिए अद्भुत रूप से अनुभवपूर्ण रहा। और अपने बीच उनकी उपस्थिति से हमे जो परमानद मिला वह तो हम कभी भूल ही नही सकते।

आक्सफर्ड,
अप्रैल, १९४८

संतति-नियमन संबंधी दो संभाषण

एन्. आर. मलकानी

साबरमती मे, १९२६ ई०, मे गाधी जी के साथ मेरे जो दो सभाषण हुए उनका विवरण नीचे दिया जा रहा है। मेरे द्वारा तैयार किया गया यह विवरण खुद गाधी जी ने यथास्थान सुधारा है। इतने वर्ष तक यह मेरे पास ही पड़ा रहा, और आज पहली ही बार यहा प्रकाशित किया जा रहा है।

हैदराबाद (सिध), एन. आर. मलकानी
१०–१०–१९४६.

गुरुवार, २ जुलाई, १९२६

गाधी जी—सो आप ठीक नौ बजे (प्रात) आ गये।

मै—जी, और आप अपने कमरे मे नही है यह देखकर कुछ चुरा भी लाया हू।

गा०—सो क्या ?

मैं—आपकी मेज पर का फूल,—शायद आप के कमरे के भीतर की चुराने योग्य एकमात्र चीज।

गा०—खैर, अब मतलब की बात करे।

मैं—पिछली दफा आपने दो वक्तव्य दिये थे। एक तो यह कि 'सतति-नियमन के साधनो का समर्थन करनेवाले लोग ऐसा सोचते है कि लिग-सबध एक शरीर-धर्म है।' और दूसरा यह कि 'सतति-नियमन के साधनो से दूर रह कर किया जानेवाला लिग-सबध उतना अनर्थकर नही है, जितना कि उन साधनो के प्रयोग के बाद होनेवाला सबध।'

गा०—बिल्कुल दुरुस्त।

मैं—अब मै इस विषयक अपने विचार आपके सामने रखता हू। गर्भ-निरोधी साधनो का उपयोग एक प्रकार से बल-प्रयोग ही है, और ऐसा बल-प्रयोग कदापि नैतिक नही माना जा सकता, हालाकि उसके पीछे रहनेवाला उद्दिष्ट ही उसे नैतिक या अनैतिक बना देता है। लिग-सबध की इच्छा ऐसा ही एक उद्दिष्ट हो सकता है। किंतु इसम सदा एकमात्र यही उद्दिष्ट रहता है ऐसी बात नही। इससे भी भिन्न, एक या एक से अधिक समिश्र कारण इसके पीछे हो सकते है। जैसे आर्थिक, स्वास्थ्यविषयक, कौटुबिक आदि। वस्तुत गर्भ-निरोधक साधन ऐसे शिक्षित और उच्च वर्गीय लोगो द्वारा ग्रहण किये गये है कि जिनके सबध म हम यह नही कह सकते कि इसमें लैंगिक तृप्ति ही उनका एकमात्र या प्रधान उद्देश्य है।

गा०—यदि विषयाराधन इसका एकमात्र हेतु नही, तो फिर अन्यान्य कारणो की आवश्यकता ही कहा रहती है? और आर्थिक कारण से आपका क्या तात्पर्य है?

मैं—यही कि स्त्री और पुरुष के लिए एक निर्धारित जीवन स्तर के अनसार मय बाल-बच्चो के अपना निर्वाह करना कठिन मालूम होता है।

गा०—याने वे अपने आर्थिक लाभ के लिए सयम से रहने की अपेक्षा स्वैराचारी होना ज्यादा पसद करते हैं। 'स्वैराचार' के बदले चाहे तो आप 'विषयासक्त' शब्द का प्रयोग करे, किंतु अर्थ तो एक ही है, और वह यही

कि ये स्त्री-पुरुष आर्थिक, शिक्षात्मक या अन्य कारणो से सयम से रहने की अपेक्षा स्वैराचारी बनना बेहतर समझते है।

मैं—जी, उनका यह आचरण सापेक्षता अल्प अनिष्ट होने के कारण उचित ही है।

गा०—आप पहले मेरी बात समझ लीजिये। यदि केवल आर्थिक कारण से ही विवश होकर वे इस मार्ग का अवलब करते हो तो फिर अन्य किसी भी बात का विचार न कर क्या एकमात्र इसी उद्देश्य से उन्हे अपना सारा व्यवहार निबटाना न चाहिये था ? और वस्तुत आत्म-सयम करने के लिए आर्थिक कारण ही पर्याप्त है। किंतु सो तो होता नही, इससे स्पष्ट ही है कि ये स्त्री-पुरुष विषयाराधन को एक आवश्यक शरीर-धर्म मानते है।

मै—आपका कहना है तो तर्कसगत। किंतु मेरा खुद का ही उदाहरण लीजिये। अभी मेरे बहुत कम बच्चे है, पर मान ले कि और हो जाय। तब तो राष्ट्रीय या अन्य किसी सार्वजनिक कार्य में भाग लना मेरे लिए दूभर हो जायगा। इस हालत में अपना कुनबा बढाते जाने की अपेक्षा सतति-प्रतिबधक साधनो का प्रयोग कर जनसेवा को अपनाना क्या मेरे लिए अधिक श्रेयस्कर न होगा ? आपके उपदेशानुसार चलना तो असभव है। आपका तो यही कहना है कि उभय पति-पत्नी अपनी सारी जिंदगी मे दो या तीन बार ही सभोग कर दो-तीन बच्चे ही जनें, और फिर इससे बिल्कुल मुह मोड ले। यह कथन तर्कसगत हो सकता है, किंतु है वह नितात असभव।

गा०—निस्सदेह मैं तो इसे असभव नही मानता। जरा उन लोगो का विचार कीजिये जिन्हे कि हम 'जगली' कहते है। उनके सयम पर आप गौर करे। ये लोग अपने भीतर के इस गुण से भी अनभिज्ञ होते है। नये जमाने के लाग-लगाव से इनमे से कतिपय लोगो का भले ही पतन हुआ हो। लेकिन असली जगली आदमी विषयासक्त न होकर केवल सतानोत्पत्ति की इच्छा से ही स्त्री-प्रसग करता है। सभव है कि पशुओ की भाति इनकी स्त्रियो को भी एक ही बार के सहवास से गर्भ-धारणा होती हो। किंतु गर्भधारणा हो जाने के बाद ये लोग सयम से रहते है। अब बदली हुई जीवन-पद्धति के कारण हम भी इस प्रकार के सयम-पालन को बडा भारी सद्गुण समझने लगे है। जगली लोग

अनजान मे ही इस सद्गुण के भागी बनते है। क्या वैलेस ने कहा भी नही है कि यदि जगली और सभ्य मनष्य मे कोई वास्तविक अनर ढढा जाय तो वह जगली के अनुकूल ही रहेगा। सतति-निरोधक दुर्गुण को सद्गुण बना देते है। इस प्रकार स्वैराचार जब सद्गुण मान लिया जायगा तब वह मनुष्य का विनाश ही कर डालेगा।

मै—आपका कहना तर्कसगत है, और सपूर्ण सयम का आदर्श है भी बहुत उच्च। किंतु आखिर वह है तो कोरा आदर्श ही। मनुष्य-स्वभाव को देखते हुए ऐसे कितने आदमी मिलेगे जो कि इस आदर्श की आकाक्षा करते हो, या इस आदर्श तक पहुच सकते हो? और आखिर यह बात मेरी समझ मे नही आती कि सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रयोगो के परिणाम प्रचलित स्वैराचार के परिणामो की अपेक्षा कैसे भयकर हो सकते है। भ्रूण-हत्या, गर्भपात, माताओ की दुर्दशा, पतिदेवताओ की निर्दयता आदि से, जो कि किस्मत के भरोसे छोडी हुई परिवर्द्धनशील लोकसख्या का परिणाम-मात्र है, आप अवगत ही है। अत सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रयोगो के परिणाम इनकी अपेक्षा अधिक भयकर होगे ऐसा मै तो नही समझता।

गा०—यहा आप धोखा खा रहे है। कृत्रिम साधना की भयानकता आपकी कल्पना से भी परे है। अज्ञानवश किये जानेवाले गलत कामो की अपेक्षा गलत विचार अक्सर अधिक अपायकारक होते है। कृष्ण अपनी स्तभन-शक्ति के कारण सैकडो गोपियो के साथ रतिक्रिडा कर सकते थे, और प्रत्येक स्त्री-प्रसग के बाद भी उनकी नैतिक नैष्ठिकता बनी रहती थी ऐसा सुझानेवाले लोगो की भी कोई कमी नही है।

मै—जी, बापू, युरोप मे भी 'कैरेज्जा' नामक एक ऐसा सामाजिक सघ है कि जहा अत्यत आत्मसयमी लोग बिना वीर्यपात किये सभोग कर सकते है।

गा०—ठीक है, ठीक है, ऐसे कृष्ण की करतूत से मेरी तो नाक ही फट जायगी। अवश्य ही ऐसे खतरनाक आदमी स मै घृणापूर्वक अपना पिंड छुड़ा लूगा।

मै—किंतु क्या हम जैसे कमजोर लोगो के लिए अपने जीवन मे किसी न किसी प्रकार के आधार की आवश्यकता नही है? मै अपनी दुर्बलता स्वीकार

करता हू, मैं यह भी स्वीकार करता हू कि विषयाराधन जीवन के लिए जरूरी तो है ही नहीं। किंतु कमजोर को ताकतवर बनाने में मदद तो दी जानी ही चाहिये। पर आप तो मानो ऐसे व्यक्तिविशेष का ही विचार करते हैं जो कि आप के आदर्श की आकाक्षासे प्रेरित होकर उसे प्राप्त कर सके। लेकिन उन लाखो साधारण लोगो की, जो कि इस आदर्श पर चलना तो दर-किनार उस पर सोच भी नही सकते, आप क्यो उपेक्षा करते है? आपका चरखा-आदोलन भी जन-साधारण की उन्नति के उद्देश्य से ही चलाया जा रहा है, न कि व्यक्ति या वर्गविशेष के लिए।

गा०—चरखा एक स्वयसिद्ध आदर्श है। उसमे जोड-तोड के लिए कोई गुजाइश ही नही है। लेकिन अगर आत्मसयम का आदर्श आचरण मे उतरने मे लाखो वर्ष लगे तो भी मैं सब्र करूगा। मुझ मे अपार धैर्य है। दुनिया को बदलने की मुझे कोई जल्दी नही है। किंतु अधर्म का धर्म के रूप मे किया जानेवाला प्रचार असह्य है। कुछ लोग मुझसे कहते है कि मेरा आदर्श सुसाध्य होनेपर ससार निर्जन बन जायगा। यह तो और ही अधिक अच्छा है। तब लोग इससे अधिक अच्छे विश्व मे विचरेगे। निर्जनता की आशकासे मै आकुलित हो नही सकता। अच्छा, अब आप जो कुछ मुझे पढा सकते है पढावे।

मैं—लेकिन बापू, पढ़ाते तो आप है। पहले आपने ही सतति-नियमन की चर्चा छेडी। और इस सबध मे कुछ मतप्रदर्शन भी किया, जो कि आपको सिद्ध कर देना चाहिये।

गा०—तब इसकी शुरूआत कैसे की जाय?

मैं—मेरी राय मे सतति-नियमन की आवश्यकता पर हम चर्चा न करे।

गा०—ठीक।

मैं—और न तो राजनीतिक या सामाजिक दृष्टिकोण से ही इसका महत्व-मापन करे।

गा०—बिल्कुल ठीक।

मैं—बापू, आप कहते है कि सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रयोग से स्वैराचार की वृत्ति बढ जायगी। मुझे तो इसकी कोई सभावना दिखाई नही देती।

गा०—तब तो मैं आप से कहूँगा कि अपने अपने दापत्य-जीवन के बारे में सलाह पूछते हुए लिखे गये सैकडो ही युवको क पत्र मेरे पास नित्य आ रहे हैं। इनमे से अधिकाश युवक विषयभोग की अति के कारण उसके दुष्परिणामो के शिकार बन गये हैं, और अब किसी न किसी प्रकार क सयम का पालन करने के लिए उत्सुक है। अब आप कहते है कि परिणामो की चिता किये बिना मनुष्य विषयासक्त हो सकता है, और विषयभोग प्राकृतिक एव आवश्यक भी है। इस स्थिति मे आप उन लोगो के नैतिक पुनरुद्धार की, जिनका कि स्वैराचार के कारण पतन हो गया, कैसे आशा कर सकते है ?

मैं—बापू, ऐसे बहुत ही कम युवक मिलेगे जो कि अति विषयभोग के पापाचार से बचे हो। किंतु विवाह के बाद कुछ काल तक, शायद शुरू के कुछ वर्षो मे, विषयासक्ति बनी रहती है। उपरात यह प्रवृत्ति नियमित होकर, फिर तो विषयवासना की कालावधि मे अतर पडता जाता है। जो लोग दीर्घ काल तक इस वृत्ति के वशीभूत होकर रहते है वे इसक कु-परिमाणो को तब तक भोगते जाते है जब तक कि सयम से रहना सीखते नही। किंतु सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रति मेरी आशका सर्वथा भिन्न है। और वह यही कि इन साधनो के बलपर लोग विवाह-बधन तोडकर भी अनियमित आचरण कर सकते है। पहले इस प्रकार के आचरण के परिणाम भयानक और हतोत्साहित करने वाले होते थे। हो सकता है कि अब ऐसी सभावना न रही हो। किंतु सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रयोग से अनैतिक विषयाचार की प्रवृत्ति को कैसे प्रोत्साहन मिलेगा यह बात मेरी समझ मे नही आती। विषयी व्यक्ति को सयम-पालन की सलाह के साथ ही सतति-प्रतिबधक साधना का प्रयोग करने का सुझाव भी तो दिया जा सकता है।

गा०—अच्छा, अब मैं यही बात दूसरे रूप मे उपस्थित करूगा। महाभारत मे आपने व्यासजी की कथा तो पढी ही होगी।

मैं—जी, पढी तो है।

गा०—यही आदर्श हम अपने सामने रखे। अर्थात् केवल सतानोत्पत्ति की इच्छा से ही स्त्री-सग कर। यह कथा सत्य हो सकती है, या असत्य भी; किंतु उसके पीछे जो हेतु रहा है वह पूर्णतया सत्य है। यह पूछा जा सकता है

कि क्या किसी पुरुष का किसी स्त्री के साथ बिना विषयभोग की इच्छा के सबध रखना सभव है ? किंतु व्यासजी की कथा हमारे सामने इस बात का आदर्श उपस्थित करती है कि सदा अपत्य प्राप्ति की भावना से ही स्त्री-प्रसग किया जाय, उस मे विषयानद की लालसा का लवलेश न रहे। क्योकि अन्य प्रत्येक प्रकार का विषयाराधन अनैतिक है। अव जो लोग इसके लिए कृत्रिम साधनो के पक्ष मे अपनी राय देते हैं वे सभोग का भी तो, उसे प्राकृतिक मानकर, समर्थन कर सकते है। यह प्रवृत्ति सयम-पालन की भावना को कमजोर बनाकर कामुकता को बढावा देगी। कृपया एक बात ध्यान मे रक्खे कि ऊपर जो उदाहरण मैंने दिया है उसमे उल्लिखित नियोग को नैतिक ठहराने का तो मेरा उद्देश्य है ही नही। नियोग मुझे नापसद है। वैषयिक वासना से सर्वथा अलिप्त आचरण के रूप मे ही मैंने व्यासजी की कथा का उल्लेख किया है।

मैं—केवल सुयोग्य माता-पिता बनने के विचार से ही कुछ लोग सतति-प्रतिबधक साधनो की तरफदारी करते है। उनका ऐसा विश्वास है कि स्वैराचारी वृत्ति सुयोग्य मातापिता बनने मे बाधक होती हैं। वस्तुतः अति विषयभोग करनेवाले भली भाति जानते हैं कि यह हानिकर है, और इसके लिए भारी दड भोगना पड़ेगा। पर सतति-प्रतिबधक साधनो के प्रयोग से वैषयिक प्रवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से प्रोत्साहन मिलता है ऐसा तो नही कहा जा सकता।

गा०—मनुष्य के सारे कार्यों पर अपने मानसिक विचारो का प्रभाव पड़ता है यह बात क्या आप जानते नही ? एक व्यक्ति ऐसा होता है जो कि विषय-वासना के परिणाम भोगने पडेगे यह जानते हुए भी उसका दास बन जाता है; जब कि दूसरा इस प्रकार की आशकाओं से मुक्त रह कर विषयरत होता है। अवश्य ही इस दूसरे व्यक्ति का आचरण दुस्साहसपूर्ण माना जायगा। इसी भाति एक व्यक्ति विषयभोग को निंद्य मान सकता है, जब कि दूसरा कोई इसमें जरा भी हानि न समझकर सभवतः इसे सद्गुण के रूप मे ही ग्रहण कर बैठे। मेरा खुद का ही उदाहरण लीजिये। यदि मैंने अधिक सयम से काम लिया होता तो आज कम कष्ट पाता। अपनी कमजोरियो और कुकर्मों का मेरे शरीर पर बहुत बुरा असर हुआ है। यह सही है कि मैंने पुनः शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ कर लिया, किंतु यह बाद के सयम-पालन का परिणाम है। आप जानते ही हैं कि अपनी पिछली गलतियों के कुपरिणामो से बचने के लिए मैं जल-चिकित्सा

और उसी तरह के दूसरे इलाज करता रहता हू । मैं जानता हू कि यह भी एक कमज़ोरी ही है, किंतु जीवित जो रहना चाहता हू । यदि शुरू से ही मैं सयमी होता तो आज अपने मे समाज-सेवा के लिए कही अधिक सामर्थ्य अनुभव करता ।

मैं—किंतु वापू, हम ऐसे दो साधारण व्यक्तियो की तुलना कर रहे है कि जिनमे से एक विषयभोग के परिणामो से डरता है, जब कि दूसरा उनसे मुक्त है । आप तो आदर्श व्यक्ति की बात सोचते हैं। आपका खुद का उदाहरण भी अपवाद-स्वरूप ही है ।

गा०—जी नही, मेरी बात भी तो साधारण व्यक्ति की तरह ही है । जो कुछ मैंने किया है वही दूसरा कोई भी व्यक्ति सयम-पालन द्वारा कर सकता है ।

मैं—आप भले ही ऐसा कहे, किंतु इसमे विश्वास कौन करेगा ? सर्व-साधारण व्यक्ति इस प्रकार सयम-पालन करने मे असमर्थ है ।

गा०—ठीक है, दूसरे दो साधारण व्यक्तियो की बात ले । एक अपनी करतूत के परिणामो से भय खाता है, जब कि दूसरा निर्भय है । परतु भय भी तो सदा अनिष्ट ही हुआ नही करता । उदाहरणार्थ, धर्मभीरुता उचित ही है । धर्मभीरु व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक अपना आचरण सुधारता है । चौरीचोरा-काड की ही बात लीजिये । हिंसक कार्यों के परिणाम के विचार से मैं भयभीत हो उठा । मुझे एक के बाद एक दो तार मिले । इनमें से एक मेरे पुत्र का था । तत्क्षण मैंने निश्चय कर डाला । अपने इस निश्चय से देशवासियो को ठेस पहुचेगी यह जानते हुए भी, सरकार को दी गई इतिहास-प्रसिद्ध चुनौती के, ठीक एक दिन बाद मैंने सत्याग्रह-आदोलन भग किया ।

मैं—हा बापू, अवश्य ही इससे एकबारगी हम सब विचलित हो गये ।

गा०—मैं खुद यह बात जानता हू । किंतु मुझे कहते हुए गर्व होता है कि इससे बढकर अपने देश की कोई सेवा मेरे द्वारा कभी हुई न होगी । इसी कारण मैं डाक्टरो से भी चीरफाड बद कर देने के लिए कहता हू । अगर कुदरत किसी की आख या दात छीन लेती है तो छीनने दो, क्योकि वही इनकी दात्री भी

है। चूकि मनुष्य कुछ देता नही इसलिए उसे छीनने का भी हक नही। मै जानता हू कि कुछ किताबो मे आदमी के भले के लिए ही चीरफाड की तरफदारी की गई है। और अगर हमे भले-बुरे का डर न होता तो हम बराबर इस तरह के जुल्म ढाते जाते। अत आभ्यतरिक भय ही श्रेयस् है।

मैं—किंतु क्या हमे मनुष्य के कष्टो को कम करने एव अज्ञानवश किये जानेवाले स्वैराचार के भयानक परिणामो को टालने की चेष्टा न करनी चाहिये ? आप कहते है कि कृत्रिम सतति-नियमन के फलस्वरूप विषयासक्ति बढ़ेगी। किंतु क्या आज भी वह नही है ? क्या उस सभोग की अपेक्षा, जो बुद्धिपुरस्सर किया गया हो, अबुद्धिपूर्वक किया हुआ सभोग कम हानिकर है ऐसा आप सोचते है ?

गा०—आपने बिल्कुल ठीक कहा। मेरे कहने का यही तात्पर्य है। और एक मिसाल देता हू। मेरे पास ऐसी बीसो स्त्रिया आती रहती है जो कि अपत्य-वरदान मागती है। मैं उनसे कहता हू कि इस प्रकार की वरदान शक्ति मुझमें है नही। किंतु इनमे से कुछ बदकिस्मत होती है, और जब तक वरदान के तौरपर मैं कुछ गुनगुनाता नही तबतक हटने का नाम नही लेती। एक स्त्री की बात तो मुझे विशेष रूप से याद है। उसे बच्चा न होता था, और डाक्टरो के कथनानुसार गर्भाशय की गडबड़ी इसका कारण था। निस्सतान होने की वजह से वह इतनी अधिक दुखी थी कि मैने आपरेशन द्वारा अपने गर्भाशय की शिकायत दूर करने की उसे सलाह दी। वैसा ही उसने किया, अब वह बच्चे जनती है और आनद-मगल मे है।

मैं—किंतु इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि मातृत्व की भावना स्त्री के पिंड मे गहरी पैठी हुई होती है, और किसी भी प्रकार के सतति-नियमन के के साधनो द्वारा वह विनष्ट नही की जा सकती। इस प्रकार के साधनो के प्रयोग की सलाह केवल ऐसी ही माताओ को दी जा सकती है जो कि ढेर के ढेर बच्चे जनना नही चाहती।

गांधी जी की एक झलक

गुरुदयाल मल्लिक

सन् १९२१ ई० की एक घटना, जब कि गाधी जी असहयोग-आदोलन के प्रचारार्थ निकाले गये अपने देशव्यापी दौरे के दरमियान कराची पहुचे थे, मुझे याद आ रही है। सार्वजनिक स्वरूपके भारी कार्यक्रम से घिरे होते हुए भी मजदूरो की उस रात्रि-पाठशाला मे, जिसका कि मै एक कार्यकर्ता था, चद मिनट के लिए पधारने की उन्होने कृपा की थी। नियत समय पर हमने अपना सायकालीन कार्यक्रम दो भजन गाकर शुरू किया। इनमे से प्रथम भजन सिध के किसी अज्ञात रहस्यवादी सत का था, और दूसरा, राजस्थान की सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवियत्री मीराबाई का। प्रथम भजन तब से गाधी जी का बहुत प्रिय बनने, एव अनतर कभी भी उनसे मिलने पर प्राय वही अपने को सुनाने के लिए उन्होंने मुझसे कहने के कारण, अनुवाद-रूप मे वह नीचे उद्धृत कर रहा हू —

तेरा मकान बहुत उम्दा है, हर जगह तू मौजूद है ॥
चलो आसमान देखे, मित्रो चलो देखे।
आसमान भरा है तारो से, तारो मे चाद है तू ॥
चलो तो बाजार देखें, मित्रो चलो देखें।
बाजार भरा है आदमियो से, आदमियो का प्राण है तू ॥
चलो तो मदिर देखें, मित्रो चलो देखे।
मदिर भरा है मूर्तियो से, मूर्तियो की सूरत है तू ॥
चलो तो दरिया देखें, मित्रो चलो देखे।
दरिया भरा है लहरो से, लहरो का लाल है तू ॥
चलो तो किश्ती देखें, मित्रो चलो देखें।
किश्ती मे रहता है मल्लाह, मल्लाह का स्वामी है तू ॥

इस सम्मिलित प्रार्थना मे हम सब इतने लवलीन रहे कि पाठशाला के विस्तृत अहाते के एक कोने मे सदल उपस्थित होकर शातिपूर्वक उक्त भजन

सुननेवाले गाधी जी के आगमन का आभास भी हमें नही मिला। अवश्य ही भजन की समाप्ति पर गाधी जी की ओर दृष्टि जाते ही उनके प्रति आदरभाव प्रदर्शित करने के हेतु हम सब उठकर खडे हो गये। फिर मैंने उनसे विनय की कि विद्यार्थियो को कुछ उपदेश दें। उत्तर में वे बोले, "जो कुछ मै कहता वह सारा इस भजन में आ ही गया है।" और किसी अन्य महत्वपूर्ण काम से वे चल दिये।

गाधी जी विषयक एक अन्य देदीप्यमान स्मृति मधुर मातृप्रेम की भाति आज तक मेरे जीवन को परिमलित करती रही है। यह उस समय की बात है जब कि पजाब के क्षितिज पर, भय और नैराश्य से भरी प्रदीर्घ रात्रि के बाद, उषा उदित हो रही थी। वहा की ताजा भीषण घटनाओ की जाच समाप्त कर उसकी रिपोर्ट तैयार करने में गाधी जी व्यस्त थे। इसी बीच एक दिन श्रीमती सरलादेवी चौधरानी के लाहौर स्थित मकानपर, जहा कि वे ठहरे थे, मै उनसे मिलने गया। पहुँचने पर देखा कि उनके कमरे का दरवाजा भीतर से बद है। अतः भक्तियुक्त धीरता से उनकी प्रतीक्षा में बाहर ही ठहर गया। आखिर, कोई तीन घटे बाद, द्वार खुलनेपर मै भीतर दाखिल हो सका।

"क्या बड़ी देर से इतजार कर रहे थे ?" प्यार के साथ उन्होने मुझसे पूछा।

"कुछ कुछ।" एक चचल युवक की तरह किंचित् रुक्षता से मैंने उत्तर दिया।

"मुझे खेद है," प्रत्युत्तर स्वरूप एक सच्चे सत्पुरुष के समान अत्यत ओजस्वितापूर्वक उन्होंने कहा। और पुनः बोले, "देखो भाई, मार्शल ला के वक्त एक खास जगह पर एक दलविशेष द्वारा जोश-खरोश में आकर किये गये कांडो सबधी वृत्तात के एक वाक्य की पूर्ति करने के लिए उचित शब्द खोजने में मैं मग्न था।"

और एक गाधी-प्रसग, जो कि अपने सीमित स्मृति-कोष में सुरक्षित है, यहा उपस्थित करने में मुझे बहुत ही प्रसन्नता होगी। १९४५ ई० की, बबई की घटना है। गाधी जी द्वारा तैयार किया हुआ एक वक्तव्य उनके कतिपय सहयोगियो की राय में आवश्यकता से अधिक लबा था। उनमें से एक ने उसे

वक्तव्य को उद्देश्य कर यहा तक कह डाला कि, "आपने जो इतना सारा लिखा है वह केवल चार पक्तियो मे आ सकता था।" इस पर गाधी जी बोले, "क्या ऐसी बात है ? तो कृपया आप ही इसे सक्षिप्त कर लावे, जिस पर मैं आख मूदकर हस्ताक्षर कर दूगा।" सुन कर अबोध आलोचक सहसा स्तब्ध रह गया। तब सभी उपस्थित व्यक्तियो को किसी ज्ञानी पुरुष के वचन की याद दिलाते हुए गाधी जी बोले कि दूसरे के किसी भी कार्य की आलोचना करनेवाला व्यक्ति आलोच्य विषय की विधायक रूप से स्थानपूर्ति करनेके लिए भी सदैव तैयाररहे।

बबई,
६-१२-१९४५.

गांधी जी से मेरी मुलाक़ातें

सर रुस्तम मसानी

अप्रैल १८९३ मे जब गाधी जी ने शुद्ध व्यावसायिक उद्देश्य से दक्षिण अफ्रीका की यात्रा की, तब बीस बरस बाद वे उक्त दूर देश से, वहा पर अपने ही चलाये हुए सत्याग्रह-आदोलन के विजयी योद्धा के रूप में भारत लौटेंगे ऐसा किसने सोचा होगा ? और, दक्षिण अफ्रीका स्थित अपने देशवासियो को हिंसाका आश्रय लिये बिना केवल आत्मिक बल के सहारे सत्य के पक्ष में विजय प्राप्त करने का रहस्य बताकर भारत लौटने के बाद शीघ्र ही वे स्वदेश के अनेक महान् सत्याग्रह-सग्रामो के अगुआ बनेगे, ऐसा भी क्या किसी ने सपने में कभी सोचा होगा ? अवश्य ही बीच का अल्प काल उन्होने पक्षाभिनिविष्ट राजनीति से दूर रह कर एक समाज-सेवक के नाते बहुत शाति के साथ बिताया। अनिष्ट रिवाजो के दासत्व से स्त्री-पुरुषो की मुक्ति, अस्पृश्यता-निवारण, स्वदेशी के प्रचार द्वारा दरिद्रनारायण की सेवा, और विशेषत नैतिक सुधार सबधी अपने विचारो के प्रचार-प्रसार आदि सामाजिक कार्यों मे ही वे व्यस्त रहे। अत जब बबई की धारासभाने भिक्षावृत्ति रोकने के हेतु एक समिति नियुक्त करने की बात सोची, तब गाधी जी को, जो कि सर्वश्रेष्ठ विद्यमान समाज-सेवक थे, उक्त समिति का सदस्य बनने के लिए निमत्रित किया। इसी समिति की बैठक मे सामाजिक कार्यकर्ता के रूप मे हम दोनो पहले-पहल परस्पर से मिले।

एक कट्टर सहयोगी

शुभ्र अंगरखा, 'परथडी', और काठियावाड़ी फेंटा पहनकर वे समिति के अध्यक्ष स्वर्गीय सर फीरोज सेठना की दायीं ओर बैठे थे। दुर्भाग्य की बात है कि एक अत्यंत कठिन और गहन समस्या सुलझाने के लिए जारी हमारी इस कोशिश के बीच ऐसी कई वारदातें हुई कि जिनकी वजह से यह उत्साही सहयोगी विरक्त असहयोगी के रूप में बदल गया। ब्रिटेन की संकटपूर्ण स्थिति से भारत का लाभ उठाना अनुचित होगा ऐसा मान कर अहिंसा के इस अग्रदूत ने ब्रिटेन और मित्रराष्ट्रों की मदद करने के लिए बड़ी लगन के साथ सैन्य-भर्ती का कार्य उठाया। किंतु खेद की बात है कि खेड़ा के अकाल एवं रौलट एक्ट के समय अधिकारियों की नृशंसता का परिचय पाकर इस देश के शासकों के प्रति गांधी जी की उपरोक्त सद्भावना को शीघ्र ही ठेस पहुंची, और उन्होंने ऐसा अनुभव किया कि अब अपरिहार्य रूप से असहयोग और सविनय अवज्ञा-आंदोलन का श्रीगणेश करना ही पड़ेगा। इस तरह हमारी समिति ने एक कीमती साथी खो दिया और उसकी रिपोर्ट बिना उनके हस्ताक्षर के ही प्रकाशित हुई।

तत्कालीन नौकरशाही ने शायद ही यह महसूस किया होगा कि उसने अपनी करतूत की वजह से ब्रिटिश सरकार के एक ऐसे उत्तम हितैषी का रुष्ट किया है जो कि राजनीतिक सुधारों संबंधी सरकार की उपयुक्त योजनाओं में योग देने के साथ ही ब्रिटेन और भारत के बीच स्थायी सख्य एवं सहकारिता के नवयुग का निर्माण करने के लिए उत्सुक था। विफलताओं और अस्थायी विपदाओं के बावजूद अनंत सत्याग्रह अपने ध्रुव-लक्ष्य की ओर अग्रसर होकर

वाहियों के प्रति कार्पोरेशन द्वारा स्वीकृत निषेधात्मक प्रस्तावों के संबंध में गवर्नर-महोदय से मेरी चर्चा चल रही थी। जैसी कि शीघ्र उत्तेजित होनेवाले लोगों की साधारणतया आदत होती है, गर्मागर्म बहस के बाद वह ठंडे पड़ गये। फिर बहुत ही स्नेहपूर्ण संभाषण में उन्होंने ऐसे दो प्रसंगों का उल्लेख किया जब कि वे, अपने सलाहकारों की परास्त मनोवृत्ति के बावजूद, सख्त कदम उठाने का साहस दिखा सके थे। प्रथम था श्री हार्निमैन का देशनिकाला, और दूसरा, गांधी जी की गिरफ्तारी का। बोले, "सर इब्राहीम रहिमतुल्ला (गवर्नर की कार्यकारिणी के एक सदस्य) मेरे पास डबडबाई हुई आंखों से आकर सानुनय कहने लगे कि गांधी जी को हाथ न लगाया जाय।"

इसी भांति जब जुलाई १९३१ में गांधी जी उस समय के वायसराय लार्ड विलिंग्डन से मिलने शिमला गये तब भी मैं वहीं था, और वहां नौकरशाही के हठभरे वैरभाव एवं यूरोपियन समाज का, खास तौर से बंगाल के यूरोपियन समाज का, खुला विरोध देख कर गांधी जी की विलायत-यात्रा कहां तक सफल होगी इस संबंध में मुझे तीव्र रूप से आशंका होने लगी थी। इतना ही नहीं बल्कि गांधी जी लंदन जायंगे भी या नहीं इस में भी बाज दफे संदेह हुआ। और अधिकांश अधिकारीगण तो आखरी घड़ी तक यही आशा बांधे हुए थे कि वे लंदन जायंगे ही नहीं।

किंतु इन दुरात्माओं को निराश बनाकर गांधी जी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए। परिषद् के प्रति अपनी विरोधी भावना के कारण उग्र कांग्रेसियों ने भी कुछ ऐसा रुख अख्तियार किया कि जिससे गांधी जी के कार्य में बाधा पहुंची। युद्धकालीन-सी उत्तेजना का भूत उनके सर पर सवार हुआ, और वे ऐसे समय, जब कि उनका नेता परिषद् की कार्यवाही में संलग्न था, ब्रिटेन के ऋण एवं व्यापारिक संबंधों को धता बता कर ब्रिटिश व्यापारी—वर्ग और भारत स्थित यूरोपियन समाज को भयभीत करने की गप हांकते रहे। परिणाम यह हुआ कि उक्त वर्ग ने कांग्रेस के साथ स्नेहपूर्ण समझौता करने के लिए जारी सारी योजनाओं को उड़ा देने की ठान ली। अलावा इसके इसी समय ब्रिटिश मंत्रिमंडल में आकस्मिक रूप से

परिवर्तन होने के कारण कांग्रेस के प्रति ब्रिटिश सरकार का रुख भी कड़ा होता गया। इस वक्त में लंदन मे ही था, और मुझे कुछ इस तरह की भनभनाहट सुनाई पडी कि कांग्रेस के इस नेताग्रणी के लदन से भारत लौटते ही उस पर आफत का पहाड टूटनेवाला है।

'पिल्सना' जहाज पर का वार्तालाप

उस साल के दिसंबर के मध्य मे मैने 'पिल्सना' जहाज से बबई लौटने का प्रबध कर लिया था। सुखद सयोग की बात यह रही कि गाधी जी भी, मुसोलिनी मे मुलाकात करने के बाद ब्रिडिसी में इसी जहाज पर सवार होनेवाले थे। उन दिनो मुसोलिनी की कितनी बडी हस्ती रही होगी इसकी आप ही कल्पना कीजिये। वह एक ऐसा सिंह-हृदय राजनीतिज्ञ था जो कि ससार का सर्वाधिक मेधावी और सफल अधिनायक बना, और न केवल पास-पडोस के ही, अपितु भारत जैसे दूर देश के राजे-महाराजे भी उसे अपना ध्रुवतारा मानने लगे थे। अब हमारे ही जहाज से यात्रा करनेवाले स्वर्गीय सर अकबर हैदरी, उनके पुत्र सर अकबर, एव गोलमेज-परिषद् के लिए गये हुए हैदराबाद के अन्य प्रतिनिधियो को मुसोलिनी का जीवन-चरित्र पढने में मशगूल देखकर मुझे जरा भी आश्चर्य नही लगा। ब्रिडिसी मे गाधी जी आ गये। डेक का एक खास हिस्सा उनके एव उनके साथ के लोगो के लिए रिजर्व रखा गया था। शाम का वक्त होने की वजह से मैने उन्हें दिक करना ठीक नही समझा। दूसरे दिन प्रात:, भारत के भावी गत्यवरोध विषयक अपनी आशकाओं के समाधान के हेतु, मै उनसे मिला। बोला, "ईश्वर के लिए अब देश को दुबारा सविनय अवज्ञा-आदोलन की यातनाओ के गर्त में न ढकेलें। अबकी सरकार आदोलन को कुचल डालने पर तुली हुई दिखाई देती है।"

उत्तर में गाधी जी ने कहा कि हाल ही में जारी किये गये बंगाल-आर्डिनेंस के कारण अपनी स्थिति बहुत ही विषम बन गई है। बोले, "रौलट एक्ट के पास होने पर मैने जो रुख अख्तियार किया था वह तो आप जानते ही है। अत: जो जनता को गुलाम

बनाये रखने के लिए ही कायदे-कानून पास करते हैं उनसे किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं किया जा सकता।"

"लेकिन गाधी जी," दलील करते हुए मैंने कहा, "जब जनता आप का उपदेश अनसुना कर हिंसा का आश्रय लेती है, इतना ही नहीं बल्कि अपना फर्ज अदा करनेवाले मैजिस्ट्रेटों को भी जान से मार डालती है, तब उसी के कारण ऐसे आर्डिनेंसो की सृष्टि होती है इस तथ्य से हम कैसे आँख मूद ले सकते है? यदि आप आर्डिनेंस वापस लेने के लिए कहते है तो सरकार को इस शर्त पर मिलनेवाला आप का सहयोग, अपनी प्रतिष्ठा का ख्याल करते हुए, बहुत ही महगा मालूम पड़ेगा। हा, अगर आप यह कहते हो कि सहयोग-काल मे आर्डिनेंस का अत्यत आपत्तिजनक अश लागू न किया जायगा इस आशय का आश्वासन जब तक सरकार की ओर से नहीं मिलता तब तक समझौता कायम रहना असभव है, तो हो सकता है कि इस गत्यवरोध का कोई न कोई सतोषप्रद हल निकल आवे।"

"मैं कोई अप्रतिष्ठापूर्ण शर्त रखता नहीं; बल्कि मैं तो इस बात के लिए सचेष्ट हू कि कोई सम्मानप्रद समाधान निकल आवे।"

इस जहाज-यात्रा के शेष चद दिनो मे उनसे कई बार बातचीत करने का सुअवसर मुझे मिला। यद्यपि मैंने पुन: उपरोक्त विषय नहीं छेडा, तो भी उसके सबध में भारत-मत्री से उनका पत्र-व्यवहार होता रहा है यह बात मुझे मालूम ही हुई। बबई पहुचने पर हमसे कहा गया कि जहाज़ से सर्वप्रथम गाधी जी के उतरने का प्रबध किया गया है। जब वे जहाज़ के गलियारे से जा रहे थे तब मैंने अपने पुत्र से, जो कि मुझे लेने आया था, कहा, "मीनू, मैं उम्मीद करता हू कि तुम गर्म मिजाजवाले नौजवान उन्हे सरकार के साथ जारी समझौते की अपनी बातचीत तोड़ने के लिए मजबूर न करोगे।"

"आप क्या कह रहे है?" वह चिल्लाकर बोला, "आन्दोलन कब का छिड़ चुका है। क्या आपने जवाहरलाल जी की गिरफ्तारी की खबर नहीं सुनी? अब शाति की बात करना बेकार है।"

"हमे जवाहरलाल की गिरफ्तारी की तो कुछ भी खबर नही मिली। फिर भी आदोलन की बात करना बेवकूफी होगी। शातिपूर्ण समझौते के सबधमे सोचने के लिए उन्हे वक्त दिया जाना चाहिये," मै बोला।

बीस दिसबर की यह बात है। घर पहुचते ही मैंने अपनी मेज पर बबई के गवर्नर सर फ्रेड्रिक साइक्स से प्राप्त एक क्रिसमस-कार्ड देखा। उनके साथ के अपने सारे सभाषणो में मैंने यही अनुभव किया था कि देश के राजनीतिक गत्यवरोध का अत करने के हेतु हर तरह के सुझावो पर सोचने के लिए वे सदैव उत्सुक रहते है। अत यह अनुमान कर कि उन्हे बहुधा ऐसा कदम उठाने के लिए हिदायते मिल चुकी होगी जिससे कि और एक प्रबल सघर्ष का सूत्रपात हो सकता है, मैंने अपने प्रति प्रदर्शित की गई उनकी शुभेच्छाओ के उत्तर-स्वरूप लिखे हुए पत्र मे निम्न बाते जोडना जरूरी समझा: "गाधी जी के सानिध्य से हमारी समुद्र यात्रा बहुत ही सुखद रही। सरकार के साथ यथासभव सहयोग बनाये रखने के लिए वे उत्सुक दिखाई पडे, किंतु यहा पहुचकर देखता हू कि उनकी स्थिति बहुत ही अधिक जटिल बना दी गई है।"

के लिए तैयार हैं, उन से भेट की। अपनी स्वीकृति प्रदान करते हुए गाधी जी ने हमे गवर्नर से यह बात सूचित करने का अधिकार दिया, और कहा कि शातिपूर्ण समझौते की हार्दिक इच्छा के कारण ही वायसराय के सामने मुलाकात का प्रस्ताव रक्खा गया था। तब हम सीधे गवर्नर से मिलने गये। उनका गभीर और म्लान मुख देख कर मुझे यह आशका हुई कि गाधी जी को गिरफ्तार करने के सबध मे उन्हें पहले ही हिदायतें मिल चुकी हैं। एकेक कर के प्रतिनिधि-मडल के सभी सदस्यो ने यही प्रतिपादन किया कि गाधी जी को वायसराय से मुलाकात करने का मौका दिया जाना चाहिये। जब अपनी बारी आयी तब मैंने जहाज पर गाधी जी के साथ हुई बातचीत का जिक्र कर यही कहा कि सघर्ष मे बचने का उपाय खोजने मे वे मन पूर्वक प्रयत्नशील रहे हैं। और यह भी जोड दिया कि केवल गाधी जी द्वारा भेट की अनुमति पाने के हेतु भेजे गये तार की भाषा ठीक न होने की वजह से वायसराय का उनसे मिलने से इन्कार करना एक खेदजनक बात है।

सर फ्रेड्रिक साइक्स ने सब की बाते धीरज के साथ सुन ली। किंतु अत में हमे उन से यही सुनने मिला—"सज्जनो, यहा पधारने का जो कष्ट आपने किया है उस के लिए मैं आप सब का आभारी हूं। मैं आप के मनोदय से बडे लाट को अवगत करा दूंगा।"

इसके ठीक दूसरे ही दिन गाधी जी गिरफ्तार कर लिये गये। लगभग नौ मास तक आदोलन पुरजोश चलता रहा। शुरू शुरू मे तो उसने काग्रेस के पीछे की ताकत का खासा परिचय दिया। किंतु आगे चलकर वह ठढा पडता गया, यहा तक कि १९३३ ई० के प्रारभ में समाप्त-प्राय दिखाई देने लगा। देश भी अब इससे ऊबने लगा था। खुद कारावास सहन कर अधिकारियो को अवसरवादियो के सहयोग से राजकाज चलाने का मौका देने की बात में अब कई काग्रेसियो को भी कोई बुद्धिमानी नजर न आ रही थी। अवश्य ही उन मे से किसी ने भी कौसिल-प्रवेश द्वारा सत्ता प्राप्त करने की बात प्रकट रूप से नही कही। काग्रेस निष्प्रभ हुई है ऐसा भी वे

मानते न थे; किसी भी प्रकार वह निष्प्रभ हो ही नही सकती थी। किंतु कुछ समय के लिए आदोलन स्थगित कर अनुकूल परिस्थिति पैदा होते ही पुन जोरदार सग्राम छेडने के लिए शक्तिसचय करना राजनीतिक दृष्टिकोण से उन्हे उचित जचा।

ऐतिहासिक उपवास

इसके बाद जो बीती वह हम सब की समझ से गाधी जी के जीवन की सर्वाधिक सकटपूर्ण घटना है। नये विधान मे दलित जातियो के प्रतिनिधित्व का प्रश्न ब्रिटिश सरकार के ऊपर छोड़ दिया गया था, जब कि इसका निबटारा हिंदू समाज के नेताओ द्वारा आपस मे ही होना चाहिये था। गाधी जी को, जो कि उपेक्षित एवं उत्पीडित जातियो की अधिकार-रक्षा के सब से बडे हिमायती हैं, ब्रिटिश सरकार का उक्त निर्णय शरारत-भरा नजर आया। गोलमेज-परिषद् में ही उन्होने यह चेतावनी दे रक्खी थी कि यदि दलित जातियो के लिए पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र का निर्णय किया गया तो वे अपने प्राणो की बाजी लगाकर उसका विरोध करेंगे, क्योंकि इस प्रकार का निर्णय न केवल दलितो के लिए अपितु समस्त हिंदू समाज के लिए ही हानिप्रद सिद्ध होगा। अत हिंदुत्व एव राष्ट्रीयत्व के उपर समान रूप से आघात करनेवाले इस सकट के प्रति देश-वासियो को सजग करने के उद्देश्य मे उन्होने आमरण अनशन करने की ठान ली।

इस भयावह निर्णय की घोषणा के दिन ही मैने अपने कई दोस्तो से, खास तौर से 'वेल्फेअर आफ इंडिया लीग' के सदस्यो से, प्रस्तुत सकट को टालकर उसका देश के विभिन्न वर्गो में स्नेह और सद्भाव स्थापित करने की दृष्टि से किस प्रकार उपयोग किया जा सकता है यह पूछने के साथ ही कहा, कि वे मिली-जुली आवाज मे गाधी जी की रिहाई की माग कर आर्डिनेंस-राज और सत्याग्रह-आदोलन एकबारगी खत्म कर दें। अपना दिमाग और ताक़त लगाकर यह सवाल हल करने की हमारी कोशिश चल ही रही थी, कि गाधी जी के इस आमरण-अनशन को सिर्फ एक राजनीतिक चाल मानने की

कुछ लोगों की वृत्ति देखकर मुझे बडा दुख हुआ। अत· हिंद् समाज रूपी ऐक्य-मदिर की नीव खोखली बनानेवाले जिस भाईचारे की कमी के कारण गाधीजी को मनोव्यथा हो रही थी उसकी ओर इन आलोचकों का ध्यान आकृष्ट करना मैंने आवश्यक समझा। तदनुसार मैंने इस विषयक अपने एक लेख में उपरोक्त बातों का निम्न प्राक्कथन के रूप मे उल्लेख किया :—

"पराई पीर कोई जान नही सकता। हम में से कोई भी उस व्यक्ति के भार का, जिस ने कि अपने क्षीण कधोंपर गोवर्धनधारी की भांति एक विशाल उप-महाद्वीप उठाया है, कदापि अदाजा नही लगा सकता। फिर भी कतिपय वज्रमूर्ख इस गुरुतर भार को हलका करने का, जिसके नीचे कि महात्मा गाधी की आत्मा दब कर कराह रही है, दम भर रहे हैं। इनसे हमे केवल इतना ही कहना है —'ओ नगे पैरोवाले लोगो, काटोंपर मत चलो!'"

उक्त लेख 'फ्री प्रेस जर्नल' के ता० २२ सितबर १९३२ के अक मे 'महात्मा गाधी की प्राणरक्षा के लिए क्या किया जाय ?' शीर्षक से 'माली' के एक व्यगचित्र के साथ, जिसमे कि अपने कधो पर महाद्वीप उठाये हुए गाधी जी दिखाये गये थ, प्रकाशित हुआ था।

कौंसिल-प्रवेश की तरफ़दारी

अस्तु, उस दिव्य उपोषण की कहानी निवेदन करने का यहा प्रयोजन नही है। इतना ही कहना काफी होगा कि 'पूना पैक्ट' के बाद उपवास भग कर दिया गया, किंतु शीघ्र ही उनका पुन. एक उपोषण शुरू हुआ, और तब उन्हे बिना शर्त रिहा कर देना पडा। रिहाई के बाद जब वे पूना मे लेडी ठाकरसी के मकान पर स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे, तब एक दिन शाम के वक्त मैं उनसे जाकर मिला। मैंने उन्हे कई काग्रेसियो और सर्वसाधारण लोगो की उस भावना से अवगत करा देना आवश्यक समझा जो कि सत्याग्रह-आदोलन आगे जारी रखना निरर्थक मानने लगे थे। मैंने उनसे अर्ज की कि १९३२ ई· मे जो कदम उठाया गया था उससे अब पीछे हटने के माने हार या शरणागति तो नही हो सकते; और इसे काग्रेस की नीति का

परित्याग तो और भी कम माना जा सकता है। अनावश्यक आत्म क्लेश की रोकथाम यही इसका अर्थ है । विषम परिस्थिति पैदा होने पर एक सेनानी भी पीठ दिखाता है । किंतु इसके ये मान नहीं कि वह मोर्चे पर पुन आ कर डटेगा ही नहीं । "इसी भांति," मैं बोला 'अगर आप सत्याग्रह-आंदोलन स्थगित कर देते हैं तो उसका यही अर्थ होगा कि आप कुछ समय के लिए उस शस्त्र को, जो कि इच्छित रूप से अपने काम नहीं आ सका, म्यान करना चाहते हैं। अवश्य ही पुन कभी भी इच्छा होने पर आप इसे ग्रहण कर सकेंगे। '

सुनकर गाधी जी हँस दिये, और बोले कि मेरी बात उनके विचारो से मेल नही खाती । उनकी जो राय रही, और जिसका मैं खडन न कर सका, वह यही थी कि सत्याग्रह की तरह का आदोलन एकबार बद कर देने से उसी के कारण लोगो म पैदा हुई विद्रोह की भावना भी नष्ट हो जायगी, जिसे पुनर्जीवित करना आसान काम नही है।

इसके शीघ्र ही बाद गाधी जी न व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा कर दी। किंतु इससे खीचातानी दूर न हुई । उन्होन वायसराय क सामने दुबारा मुलाकात का प्रस्ताव रक्खा। लेकिन अब की बार भी इस सबब पर, कि आदोलन पूरी तौर से बद नही किया गया है, यह प्रस्ताव ठुकरा दिया गया । चुनाचे पुनश्च गाधी जी गिरफ्तार हुए, और उनके साथ की मेरी भेट-मुलाकातो का सिलसिला टूट गया, जो पाच साल बाद चलकर तब स्थापित हुआ जब कि मैंन जुहू मे उनके पुनर्दर्शन कर स्व-लिखित दादाभाई नौरोजी के जीवन-चरित्र के लिए उनस प्रार्थना-पूर्वक भमिका मागी। वे ब-खुशी तैयार हुए। मैंने कहा कि मै इग्लैंड जाकर वहा आवश्यक छानबीन क बाद अपनी पाडुलिपि पूरी करना चाहता हू, जिस की एक अग्रिम प्रति आपको भेज दूगा। वे मुस्कराये, और बोले कि उस पर नजर डालने के लिए *अपने को अवकाश मिलेगा भी या नही इसम सदेह है।* मैंन उन स कहा कि अपनी उक्त पुस्तक का दक्षिण अफ्रीका विषयक अध्याय लगभग पूरा ही आप क और दादाभाई के बीच हुए पत्र-व्यवहार पर आधारित है, और म इसकी ओर ही आपका ध्यान विशेष रूप म आकृष्ट करना चाहता हू ।

गांधी जी की भूमिका

उक्त भूमिका मुझे यथासमय लदन म मिल गई। मालूम होता था कि *मेरी पाडुलिपि पढने के लिए गाधी जी समय न निकाल सके,* किंतु अपन नाम प्राप्त उनक निम्न पत्र से मै यह जान गया कि उन्होने एक अन्य विषय पर की मेरी पुस्तक, जो कि उन्हे प्रिय है, पढने के लिए वक्त निकाल लिया है।

प्रिय मित्र,

वचनानुसार भूमिका भेज रहा हू, और आशा करता हू कि वह समय के भीतर ही पहुच रही है।

उत्मनजई,
१९–१०–१९३८

आपका
मो. क. गांधी

पुनश्च

इस समय, अवकाश के क्षणो म मे आपके द्वारा कृपापूर्वक भेजी गई अपनी पुस्तक The Religion of the Good Life पढ रहा हू।

आप मेरा फोटो चाहते हैं। किंतु आप को जानकर आश्चर्य होगा कि मे अपने पास कोई फोटो नही रखता।

मो. क गांधी

अनतर महादेव देसाई स मझ ज्ञात हुआ कि The Confeience of the Birds नामक मेरी दसरी एक पुस्तक भी गाधी जी ने आदि से अत तक पढ डाली है। सूफी रूपक के ढग की इस पुस्तक मे एक ऐसे दार्शनिक-राजनीतिज्ञ के जीवन-दर्शन विषयक आध्यात्मिक सिद्धान्तो का निरूपण किया गया है, कि जिसने १९३२ ई० म अपने उपवास के सबध मे वायसराय के नाम भेजे गये पत्र मे 'परम धार्मिक व्यक्ति' के रूप मे स्वतः का उल्लेख किया था।

आशा और विश्वास प्रकट करते हुए मैंने कहा कि उचित अवसर दिया गया तो गाधी जी यह समस्या अवश्य सुलझा सकेंगे। किंतु यह आशा फलीभूत न हुई । काग्रेस और सरकार के बीच की सधि १९४० ई० में सहसा समाप्त हो गई, और लोकप्रिय नेताओ ने पुन •एक बार अपने आप को लोह की शलाको के पीछे बद पाया।

अस्तु, एक बार फिर गाधी जी रिहा कर दिये गये, और पुनश्च एक बार एक कुशाग्रबुद्धि एव सच्ची सहानुभति रखनेवाले वायसराय ने प्रसिद्ध शिमला-परिषद् के आयोजन द्वारा कलह का अत करना चाहा। यद्यपि यह परिषद भी अधूरी रही तथापि काग्रेस के हाई–कमाड ने कौंसिल-प्रवेश के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की। तब मुझे यह इच्छा हुई कि मौका पा कर गाधी जी से मिलू और अपनी विनम्र राय से उन्हे अवगत कराते हुए कहू कि इस बार केवल काग्रेस के शक्ति-प्रदर्शन के हेतु ही चुनाव न लडा जा कर, स्थायी रूप से अधिकार-ग्रहण करने का भी उसमे उद्देश्य रहे। अकस्मात एक दिन ऐसा मौका मुझे मिल गया। जिस गाडी से मैं पूना से बबई जा रहा था उसी से गाधी जी भी यात्रा कर रहे थे। चुनाँचे लोनावला पर मैं उनके डिब्बे में चला गया, और मैंने उनसे कहा कि जब तक काग्रेसी राजद्रोही के रूप में देखे जाते रहे तब तक वे ठुकरा दिये गये, किंतु एक बार उनके पद-ग्रहण करते ही अधिकारीगण उनके आदेशो का पालन करने के लिए उत्सुक रहेंगे जैसा कि लोकप्रिय मत्रिमडलो के शासनकाल में वे पहले कर चुके है। मैंने और यह भी कह दिया कि इस स्थिति म ब्रिटिश सरकार भी अधिक तत्परतापूर्वक काग्रस के साथ समझौता कर लेगी। गाधी जी इसमे सहमत हुए ऐसा तो मैं नही कह सकता । वह उनका मौन-दिन था, वे कुछ भी नही बोले, किंतु जिस ढग से उन्होंने अपना माथा हिलाया उससे मालम होता था कि मेरी बातो में उन्हे कोई उज्र नही है। अवश्य ही सरदार वल्लभभाई पटेल न, जो कि उसी गाडी से सफर कर रह थ, दृढतापूर्वक यह कहा कि अब की बार पद-ग्रहण से इन्कार करने या बाद में पदत्याग करने का कतई विचार नही है।

अब पुन किस सुअवसर पर गाधी जी से अपनी भेंट हो सकेगी यह मै नही जानता। मैं इतनी ही आशा करता हू, और प्रार्थना भी, कि मुस्लिम लीग से समझौता करने मे कामयाब होने, एव भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के बृहस्पति के नाते विगत तीस वर्षों से जिस स्वाधीनता प्राप्ति के लिए वे लडते रहे है वह हासिल करने के उपलक्ष्य म उन्हे बधाई देने के लिए ही, मैं उनके पुनर्दर्शन कर सकू।

बबई,

१५–२–१९४६

पुनश्च—

उपरोक्त बात लिपिबद्ध करते समय मैने स्वत से ही पूछा, "क्या ऐसा सुअवसर मेरे लिए कभी उपलब्ध हो भी सकेगा ?" जो भी हो, इसके सप्ताहभर के भीतर ही ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई इस घोषणा के कारण, कि भारतीय वैधानिक गत्यवरोध का अत करने के हेतु प्रमख त्रि-मत्रियों का एक प्रतिनिधि-मडल भारत भेजने का निश्चय किया गया है, बडी आशायें बँधी। इस घोषणा के दूसरे ही दिन मै पूना पहुचा, और चूकि उस वक्त गाधी जी भी वहा के प्राकृतिक-चिकित्सालय म थे, उक्त सस्था म जाकर मैने उन्हे बधाई दी। कुछ सोचकर उन्होने २३ फरवरी के दिन प्रातःकाल ७ बजे पुन. मिलने के लिए मुझ से कहा। हेतु यही था कि वे अपनी सुबह की सैर के वक्त मझसे ज्यादा देर बातचीत कर सकें, जैसा कि अन्यथा सभव नही है। उनसे मिलकर विदा होते समय मैने त्रि-मत्रियो की आगामी भारत–यात्रा का उल्लेख कर कहा कि भारतीय मसला हल करने के उपलक्ष्य म आपको बधाई देने की अपनी इच्छा पूरी होने का अवसर इतना शीघ्र उपस्थित होगा ऐसी आशा नही थी। मैने और यह भी कह दिया कि मत्री–मिशन ने भारत को शीघ्रातिशीघ्र स्वाधीनता प्रदान करने का अभिवचन दिया है, और मुझे इस मे कोई सदेह नहीं कि इस विषयक भावी विधायक कार्य मे आप श्री जिन्ना का सहयोग व सुखी प्राप्त कर सकेंगे। सुनकर गाधी जी जिस तरह मुस्कराये उससे मुझे विश्वास हो गया कि वे इसके लिए तैयार है।

बबई,

१–३–१९४६

आर. पी. एम.

कुछ व्यक्तिगत संस्मरण

जी. वी. मावलंकर

सितंबर १९१७ के आसपास की बात है। तब मैं अहमदाबाद का एक युवा वकील था। उन दिनो अहमदाबाद मे ऐसे बहुत ही कम पुराने वकील थे जिन्होने कि धोती और साफा पहनना अभी छोड़ा नही था। विपरीत इसके युवा वकीलो के लिए, वे सभ्य और चुस्त दिखाई पड़े इस हेतु, कोट व पतलून पहनना अनिवार्य था। अलबत्ता, साफा अभी हटाया नही गया था। अच्छी अग्रेजी मे उचित ढग से लिखे गये प्रार्थना-पत्र सरकार के पास भेजना यही उन दिनो सार्वजनिक सेवा का अर्थ था।

अतः मै ही इस सर्वमान्य नियम के लिए कैसे अपवाद हो सकता था? लगभग दिसंबर १९१६ मे मै गुजरात-सभा का मत्री चुना गया। गुजरात की आर्थिक, राजनीतिक एव सामाजिक अभ्युन्नति के हेतु उक्त सभा स्थापित की गई थी, और वही काग्रेस कमेटी के रूप मे भी कार्य करती थी।

मोतीहारी स्थित बिहारी मजदूरो की शिकायतो की जाच के सबध में मैजिस्ट्रेट द्वारा अपने ऊपर लगाये गये प्रतिबध गाधी जी ने तोड दिये हैं ऐसी खबर मिलते ही गुजरात-सभा के कई प्रमुख सदस्यो मे सनसनी फैली, और हम सब इस बात पर सहमत हुए कि यदि गुजरात की वास्तविक उन्नति करनी हो तो गाधी जी से मिलकर 'सभा' का अध्यक्ष-पद ग्रहण करने के लिए उनसे अनुरोध किया जाय।

'सभा' के मत्री के नाते उपरोक्त उद्देश्य से मै गाधी जी से मिला। उन्होने हमारा अनुरोध मानने की कृपा दिखाई। गाधी जी के मार्गदर्शकत्व मे मुझे गुजरात-सभा के मत्रीपद पर रहते हुए, नये क्षेत्रो मे कार्य करने की प्रेरणा मिली।

वस्तुत: भारत के राजनीतिक या आर्थिक प्रश्नो के प्रति गाधी जी के दृष्टिकोण से हम सर्वथा अनभिज्ञ थे। हम तो पुराने खयालातो के लोग थे, याने वढिया अग्रेज़ी मे लिखे हुए प्रातिनिधिक स्वरूप के आवेदन-पत्र सरकार के पास भेजने मे ही हम सार्वजनिक सेवा विषयक अपने कर्तव्य की इतिश्री मानते थे।

अत गाधी जी द्वारा मोतीहारी मे प्रदर्शित साहस के अलावा उनका वैरिस्टर होना, एव अग्रेज़ी भाषा पर का उनका ऐसा असाधारण प्रभुत्व, कि जिसकी वरावरी करना किसी अग्रेज के लिए भी मुश्किल मालूम पडता, हमारी सस्था के उस समय के दृष्टिकोण के अनुसार अलभ्य वाते थी।

गाधी जी द्वारा अध्यक्ष-पद ग्रहण किया जाते ही 'सभा' के कार्य मे नया जोश पैदा होने के साथ ही उसका क्षेत्र भी वढा। मुझे 'सभा' के नाम के 'लेटर-पेपर्स' छपा लेने थे। ऐसे लेटर-पेपर्स के वाये सिरे पर सस्था के पदाधिकारियो के नाम तो छपे रहते ही है। सो सब से पहले अध्यक्ष जी का ही नाम दिया गया, जो इस प्रकार था —

'मोहनदास के० गाधी, एस्क्वायर, वार-एट-ला'

सब के साथ, जिन मे गाधी जी भी शामिल रहे, इन्ही 'लेटर-पेपर्स' पर पत्र-व्यवहार किया जाता था।

उक्त 'लेटर-पेपर्स' छप जाने के वाद जब पहली ही वार मैं गाधी जी से मिला तब उन्होंने मुझ से पूछा, "मावलकर, तुमने 'वार-एट-ला' के रूप में मेरा उल्लेख क्यों किया है ?" मैंने पूछा भी कि क्या वास्तव मे आप वैरिस्टर नहीं है ? उनके हा कहने पर स्वत मे कहीं कुछ गल्ती तो नहीं हुई है ऐसा मुझे सदेह होने लगा। तब वे वोले, "मैं तो किसान और जुलाहा हू।" (और अपने अछूत होने का भाव भी उन्होंने ध्वनित किया) सुन कर मे स्तब्ध रह गया, किंतु साथ ही मुझे एक नई रोशनी दिखाई पड़ी। उपरोक्त दोनों शब्द गाधी जी की विचारधारा के मूलभूत सिद्धातो के उत्तम निदर्शक थे। अवश्य ही मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उस समय उन शब्दो का वास्तविक अर्थ मैं उतना नहीं समझ पाया जितना कि आज उसे समझने का अधिकारी हू।

(२) सावरमती में जहा आजकल हरिजन-आश्रम बना हुआ है वह जगह उन दिनों नई ही खरीदी गई थी, किंतु वहा आश्रमवासियों के लिए

यथेष्ठ वासस्थानो का प्रबध नही था । इसलिए कुछ तबू तान दिये गये थे । एक दिन शाम के वक्त गुजरात सभा के काम के निमित्त मे महात्मा जी से मिलने गया, और उस रात को मुझे आश्रम मे ही रह जाना पडा । एक विस्तर देकर किसी तबू मे रात बिताने के लिए मुझ से कहा गया। सवेरा होते ही मैंने विस्तर लपटा, और वह कहा रखना चाहिये यह न जानने के कारण पूछताछ के लिए सदर मकान की तरफ चल पडा । लौटती बेर मैंने देखा कि खुद गाधी जी विस्तर अपने कधे पर उठाकर आ रहे है । यह दृश्य देख कर मै इस कदर दग रह गया कि उनके कधे पर का विस्तर उठा लेने का भी मुझे भान न रहा ।

(३) १९२० के मार्च मे मेरी प्रथम पत्नी का देहांत हुआ । उस समय मेरी अवस्था ३१ वर्ष की थी, और उस पत्नी से करीब दस मास की मेरी एक बच्ची थी । मेरे पुर्नविवाह क प्रश्न ने स्वाभाविक रूप से सब को चितातुर किया, और खास कर मेरी माता इसके लिए सब से अधिक उत्सुक थी । उसके मन को यह आशका बुरी तरह से घेरे हुए थी कि यदि शीघ्र ही मेरा पुर्नविवाह न हुआ तो मैं परिवार से दूर होकर कही पूर्णतया गाधी जी के चक्कर मे फस न जाऊ। उसकी यह आशका सरासर गलत थी ऐसा तो मै नही कह सकता । किंतु कम से कम सालभर तक विवाह के विषय मे कुछ भी विचार मन म न लाने का मैंने निश्चय कर रखा था । साथ ही मै अपनी मा की भावनाओ को किसी भी प्रकार पीडा पहुचाना न चाहता था । गरज कि मेरी हालत एक कमज़ोर आदमी की-सी हो गई थी ।

अपने व्यक्तिगत विचारो के कारण ही मैंने यह वृत्ति धारण कर ली थी । अपनी प्रथम पत्नी की मृत्यु के दो ही मास बाद मे पुर्नविवाह के लिए तैयार हुआ हू इस बात पर विश्वास न करना दोस्तो के लिए मुश्किल मालूम हो रहा था । और उनमे से कुछेक ने तो, जैसा कि बाद म मुझे मालूम हुआ, मेरे उपरोक्त आचरण के लिए गाधी जी के पास खेद प्रकट किया । विवाह के समय की प्रतिज्ञाओ के कारण स्वत पर आ पडनेवाले कर्तव्यो के प्रति अपन सुहृद की कठोर व कृतघ्न वृत्ति देखकर यह मित्र-मडली स्वाभाविक रूप से दुखी थी । अवश्य ही उनमे से किसी मे मुझ से इसकी चर्चा करने या इस सबध मे स्पष्टीकरण माँगने की हिम्मत नही थी । जैसा कि साधारणतया होता है, मेरे सबध में एकतरफा

फैसला किया गया, और सारी बातें गांधी जी के कान में डाल दी गई। उस वक्त मैं बबई मे था।

फलस्वरूप गाधी जी ने 'नवजीवन' मे एक लेख लिख कर वैवाहिक जीवन विषयक कर्तव्यो और किसी भी पुरुष द्वारा अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद पुनर्विवाह करने सबधी बातो पर प्रकाश डाला। हा, इस लेख मे कही भी प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप मे भी मेरा उल्लेख किया न गया था, फिर भी जिन हितैषियो ने मेरी बाबत गाधी जी के कान भरे थे वे उक्त लेख लिखने के लिए गाधी जी को प्रेरित करने वाली बातो से अवगत थे।

साथ ही गाधी जी ने मेरे नाम का एक व्यक्तिगत पत्र भेजते हुए लिखा कि एक सुहृद के नाते वे मेरे अनुचित आचरण के लिए मुझे उपदेश देना अपना कर्तव्य समझते हैं। जवाब मे मैंने अपनी सारी स्थिति पर प्रकाश डालते हुए उन्हे एक लबा पत्र भेजा। प्रत्युत्तर स्वरूप प्राप्त गाधी जी का पत्र वैशिष्टयपूर्ण रहा। लिखा था, "आप के दृष्टिकोण मे मैं सर्वथा सहमत हू। आप अपनी अत - प्रेरणा के अनुसार ही चले। एक सुहृद के नाते आप को सलाह देने के बाद मेरा कर्तव्य पूरा हो जाता है। विश्वास मानिये कि आपके द्वारा किसी भी मार्ग का अवलब किया जाने पर भी आप के प्रति मेरे व्यवहार या प्यार मे जरा भी अतर न पड़ेगा।'

कुछ दिन वाद सामूहिक सविनय अवज्ञा-आदोलन स्थगित कर उसके वदले व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोपणा की गई । इससे मेरे सामने एक नई समस्या खडी हुई । यदि मै व्यक्तिगत सत्याग्रह म भाग लेता तो मुझे अनिश्चित काल के लिए वह जारी रखना पडता । ऐसा करने क लिए तो मैं तैयार न था । तव अहमदावाद एव अन्य स्थानो के मेरे कतिपय दोस्तो न कहा कि मै आज्ञा भग कर छ मास क भीतर, जो कि उनकी राय म ज्यादा से ज्यादा सजा मुझे हो सकती थी, अपनी स्थानवद्वता से छुटकारा पाऊ । क्योकि वह सोचते थे कि इससे एक पथ दो काज हो जायगे । याने जल जाने से एक तो मेरी शक्ति व साहस प्रगट हो जायगा, और दूसरे, अपनी स्थानवद्धता से भी मै अपेक्षाकृत शीघ्र मुक्त हो सकूगा ।

सत्याग्रह के मूलभूत सिद्धातो की ओर इन दोस्तो का ध्यान आकर्षित करते हुए मैने कहा कि यदि मै अपनी कमजोरी कबूल कर लूगा तो इससे अतत मेरी ताकत बढही जायगी, जव कि इसके विपरीत शक्ति-प्रदर्शन एव कपटपूर्ण व्यवहार मेरा नैतिक पतन कर डालेगा ।

चुनाचे मै इस निर्णय पर पहुचा कि कम से कम सालभर स्थानवद्ध रहने के वाद, सरकार द्वारा अपने अधिकारो के दुरुपयोग का प्रश्न उपस्थित कर, आज्ञा-भग करने की वात सोची जाय ।

यह तो सभी जानते ही हैं कि १ अगस्त १९३३ को गाधी जी सत्याग्रह करने वाले थे, हरिजन-आश्रम त्यागने का भी वे प्रण कर चुके थे । आदोलन एव राष्ट्र के भवितव्य विपयक महत्वपूर्ण प्रश्नोपर विचार करना भी उनके लिए जरूरी था । फिर भी इन सव झझटो के बीच उन्होने, खुद के हाथ से, मुझे एक पोस्ट-कार्ड लिखने के लिए समय निकाल ही लिया । सक्षेप मे उनका पत्र इस प्रकार रहा —

"कई दिनो से आप को लिखने की सोच रहा था, किंतु समय ही न निकाल सका । आज लिखने का सकल्प कर के ही बैठ गया, जिससे आप के पास यह पत्र पहुच रहा है । देशसेवा के लिए अभी बहुत वडा कार्यक्षेत्र पडा हुआ है । अत आप के लिए यही वेहतर होगा कि आप अनिवार्य रूप से प्राप्त इस विश्राम का अपने स्वास्थ्य-सुधार के लिए उपयोग कर ले, ताकि भविष्य मे स्वत पर आ पडनेवाली और अधिक जिम्मेदारियो को उठाने की क्षमता आप में आ जाय ।"

(५) १९२१ ई० की बात है। मैं गुजरात प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का मंत्री था, और साथ ही उस वर्ष अहमदाबाद में आयोजित कांग्रेस के ३६ वे अधिवेशन की स्वागत-समिति के प्रधान-मंत्री के नाते भी काम कर रहा था। स्वागत-समिति ने यह निश्चय किया था कि प्रतिनिधियों आदि के लिए बननेवाले वासस्थान विशुद्ध खादी के ही हो। अतः मैं बड़ी भारी तादाद में खादी खरीदता था, जिस के लिए मुझे हर रोज दस से ले कर पंद्रह हजार रुपये तक की हुंडियां छुड़ानी पड़ती थी। बंबई कमेटी द्वारा आश्वासित १।। लाख रुपये की मोटी रकम का कई महीनों से मैं इंतजार कर रहा था। इसकी याद दिलाते हुए मेरे द्वारा भेजे गये पत्र भी, मालूम होता है, बेकार साबित हुए थे। तब मेरे पास कुल जमा सिर्फ पचास हजार रुपया ही रह गया था। इस हालत में यदि बंबई से तुरंत रकम नहीं आती है तो पांचवे दिन की हुंडियां मैं कैसे छुड़ाता? बापू बंबई जानेवाले थे। उन्हें सारी स्थिति समझाते हुए मैंने प्रार्थना की कि वे बंबई पहुंचने पर तुरंत मुझे इस आशय का तार दें कि बिल्कुल उसी दिन रुपया रवाना कर दिया जायगा। इससे मेरी चिंता मिटेगी। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। उन दिनों तार देने में सिर्फ छः आने लगते थे। किन्तु दूसरे दिन तार नहीं मिला। इससे स्वाभाविक रूप से मुझे कुछ झुंझलाहट हुई, और मैंने सोचा कि इसमें ज्यादा जरूरी कामों की गड़बड़ी में बापू मेरा यह छोटा सा काम भूल गये होंगे।

दूसरे दिन मुझे एक पत्र मिला, जिसके साथ तार का एक फार्म, जो कि गांधी जी ने अपने हस्ताक्षर सहित भरकर बंबई के तार-घर में देने के लिए किसी के सुपुर्द किया था, नत्थी था। उक्त फार्म की पीठ पर गांधी जी द्वारा लिखा हुआ निम्नाशय का मजमून था.—

"प्रिय मावलंकर, आप की चिंता को चौबीस घंटे के लिए मैंने बढ़ा दिया है इसका तो मुझे ख्याल है। किंतु आज छुट्टी का दिन होने के कारण तार देने में कुछ अधिक पैसे लग जाते। चूंकि आप को निश्चित रूप से रुपये भेजे जानेवाले हैं इसलिए मैंने, यह जानते हुए भी कि आप कुछ अधिक घंटों तक चिंतित रहेंगे, तार-व्यय की बचत करना उचित समझा।"

सार्वजनिक धन की रक्षा के प्रति कैसी सूक्ष्म सावधानी है! बापू के कई मसौदे और लेख अपने नाम प्राप्त तारों या पत्रों की कोरी जगह पर लिखे हुए होते, यह बात शायदः बहुत कम लोग जानते होंगे।

(६) अहमदाबाद मे आयोजित ३६ वे काग्रेस-अधिवेशन की स्वागत-समिति ने यह तय किया था कि किसी भी व्यक्ति को किसी भी कारण से काम्प्लिमेंटरी टिकट न दिये जाय। एक दिन बापू के नाम से मेरे पास इस आशय का सदेसा पहुचा कि मै, मत्री के नाते, १८ काम्प्लिमेंटरी टिकट भेज दू। न तो उन लोगो के नाम ही दिये गये थे जिनके लिए कि टिकट जारी करने थे, और न इनके जारी करने का कारण ही बताया गया था।

मै बापू के पास जा पहुचा, और उनके साथ मेरी कुछ खटपट हुई जो निम्न प्रकार है —

मै—बापू, क्या वास्तव म आप ने इतने अधिक काम्प्लिमेंटरी टिकट मागे है ?

बापू—जी।

मै—क्या मै उन सज्जनो के नाम, और किस सबब से उन्ह टिकट जारी किये जाय यह जान सकता हू ?

बापू—श्री . .. . उन लोगो के नाम जानते है। टिकट जारी करने का कारण यह है कि उन म से हरेक ने तिलक-स्वराज्य-फड मे पचीस हजार से अधिक रुपये प्रदान किय है। •

मै—तो क्या स्वत द्वारा राष्ट्रीय कार्य के लिए दान-स्वरूप दी गई रकम पर कमिशन पाने का प्रयत्न यही इसका अर्थ नही होता ?

बापू—ना।

मै—तो क्या मै ऐसे लोगो क लिए भी काम्प्लिमटरी टिकट जारी कर सकूगा जिनके पास देने के लिए पैसा नही है किंतु जिन्होन अपना खून और पसीना बहा कर बहुत कुछ अदा किया है ?

बापू—जरूर।

मै—इसी भाति अमुक अमुक सज्जन के लिए, जो कि दिन-रात हमारे साथ काम कर रहे है और जिनकी मदद के बिना हमारा प्रबध-कार्य कतई आगे नही बढ पाता, मेरे द्वारा काम्प्लिमेंटरी टिकट जारी किया जाना क्या उचित माना जायगा ?

वापू—हा।

मैं—फिर, इसी तर्क के अनुसार, मै खुद अपने लिए भी एक टिकट क्यों नही ले सकता?

इस पर अट्टहास करते हुए वापू बोले, "हा, ले तो आप सकते है। किंतु मैं आप को यह वता देना चाहता हू कि यदि निमंत्रित सज्जनो मे से कोई कांग्रेस-अधिवेशन मे उपस्थित रहना चाहता होगा तो मैं उसे इतना अवश्य ही कह दूगा कि स्वागत-समिति ने शिष्टाचार का परिचय दिया है; किंतु क्या आप कांप्लिमेंटरी टिकट लेने के वजाय उसका पैसा अदा करके ही अधिवेशन में शामिल होना पसंद न करेंगे?"

यह तर्कसगत विचार-प्रणाली मुझपर अत्यधिक असर कर गई। क्योंकि दर्शक-टिकट की दर अधिक से अधिक पाच हजार रुपये थी, और मेरे पास फंड की वहुत कमी थी।

किंतु स्वागत-समिति के पूर्वोक्त प्रस्ताव के रूप मे मेरे मार्ग में पुनः वाधा उपस्थित हुई। तव मैं बोला, "टिकट तो मैं दे दूगा, किंतु स्वागत-समिति के इस विषयक प्रस्ताव के कारण कुछ कठिनाई मालूम हो रही है। वहरहाल टिकट तो मैं दे ही दूगा।"

वापू—आप स्वागत-समिति के प्रस्ताव के विरुद्ध कैसे जा सकते हैं?

मैं—उसकी ओर से आँख मूद लेंगे। क्योंकि मैं नही समझता कि उक्त प्रस्ताव अव रद किया जा सकेगा।

वापू—ना, आप स्वागत-समिति के प्रस्ताव के विरुद्ध कोई काम न करें।

मैं—फिर और क्या करू? स्वागत-समिति के साथ वहस कर उसे कायल करने में मैं कामयाव हूंगा ऐसा मैं नही समझता। अतः, यदि ये टिकट जारी करना लाजिमी हो तो, समिति को अप्रसन्न करने का धोखा मुझे उठाना ही पड़ेगा।

वापू—ना, यह तो ठीक न होगा। आप स्वागत-समिति की एक विशेष बैठक बुलाकर प्रस्ताव रद कर लें।

मैं—सो तो मैं कर सकता हू, लेकिन इसी शर्त पर, कि आप उक्त बैठक में उपस्थित रहकर सदस्यो के साथ बहस करने के लिए तैयार हो।

यह कहने की तो कोई आवश्यकता ही नही कि गाधी जी बैठक मे उपस्थित रहे। मूल प्रस्ताव रद किया गया, और तभी 'काम्प्लिमेंटरी' टिकट जारी हुए। स्मरण रहे कि अवैधानिक तरीके से अपने उद्दिष्ट की पूर्ति करने के लिए मेरे तैयार हो जाने पर भी गाधी जी इससे सहमत नही हुए। "साध्य से ही साधन का औचित्य सिद्ध होता है" इस तर्कप्रणाली का उन्होंने अवलंब नही किया। क्योकि साध्य के समान ही साधनो का भी शुद्ध और उच्च होना नितात आवश्यक था। यह छोटी-सी घटना गाधी जी को एक सच्चे प्रजातत्रवादी के रूप में हमारे सामने उपस्थित करती है।

सासवने (बबई),
१-६-१९४६

गांधी जी से भेंट

गगनविहारी मेहता

गांधी जी से मै पहले पहल दिसबर १९१५ मे बबई में काग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर मिला। तब वे दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट कर यहाँ अपना आसन जमाने की कोशिश मे थे। मैं पिता जी के साथ उनसे मिलने गया। पतलून पहनकर जाने के कारण फर्श पर विराजे हुए गाधी जी के साथ बैठने में मैंने कैसी कठिनाई अनुभव की यह बात आज भी मुझे याद है। अछूतो के विषय मे उन्होने चर्चा की, और बोले कि अछूतो के लिए प्रचलित "शूद्र" शब्द की अपेक्षा "पददलित" शब्द का प्रयोग करना उन्हे अधिक पसद है। उनकी राय मे तथाकथित उच्च वर्णीय लोग ही वास्तव मे "शूद्र" कहे जाने योग्य थे। उन्होंने और यह भी कह दिया कि उपरोक्त सज्ञा के आविष्कारक वे खुद नही है, बल्कि किसी सज्जन,-सभवत श्री एड्रयूज द्वारा उन्हे यह सुझाया गया है। उस समय मैं बहुत ही छोटा—याने केवल पद्रह वर्ष की उम्र का—होने के कारण उनकी महानता का आकलन करने मे असमर्थ था। उनके सबध में, जैसा कि मुझे याद है, उस समय मैंने अनोखापन अनुभव किया, और मुझे ऐसा लगा कि यह शख्स मामूली लोगों से बिल्कुल ही निराला है, याने, आप बुरा न माने तो कह दू-"सनकी"।

काग्रेस के खुले अधिवेशन मे गाधी जी द्वारा दिया गया भाषण, कम से कम मुझ जैसे युवा श्रोताओ के लिए, बड़ा ही निराशापूर्ण रहा। दक्षिण अफ्रीका के ऐतिहासिक आदोलन मे भाग ले कर हाल ही मे लौटे हुए गाधी जी का जनता ने अतुलनीय उत्साह से स्वागत किया। किंतु वे धीमी आवाज में भावनाशून्य ढग से बोले, अर्थात् उनके भाषण मे अलकारिक और आडवरपूर्ण वातो को कोई स्थान ही नही रहा। सीधीसादी, साधारण वातचीत के ढग की, धीमी आवाज़ में—स्मरण रहे कि उन दिनो ध्वनि-विस्तारक नही थे—दी गई उनकी वक्तृता, तत्कालीन सभा-सम्मेलनो के मचपर अपनी धाक जमानेवाले सुरेन्द्रनाथ वनर्जी की आवेश और हावभाव से युक्त वक्तृत्वशैली के सर्वथा विपरीत थी। चुनाँचे हम वोले, "ना, इन महाशय ने दक्षिण अफ्रीका स्थित गोरो के विरुद्ध भले ही किसी आदोलन का नेतृत्व किया हो, किंतु ये वक्ता तो हैं ही नहीं। ये जनता को उत्तेजित नही कर सकते, और न इनमे अपार श्रोतृ-समुदाय को अपने वशवर्ती करने की ही क्षमता है।" अविवेकता के कारण उनके प्रति बना ली गई उक्त धारणा कैसी खेदजनक थी !

गाधी जी विषयक मेरा दूसरा सस्मरण गोधा मे आयोजित गुजरात प्रातीय राजनीतिक-परिषद् के समय का है, जब कि उन्हो ने राजनीतिक क्षेत्र में पहलेपहल प्रवेश किया। अक्तूबर १९१७ की यह वात है। ववई के शिक्षाधिकारियो ने एक विज्ञप्ति निकाल कर विद्यार्थियो को राजनीतिक सभाओ में भाग लेने की मनाही की थी। एनी वेसेंट के होम-रूल आदोलन का यह परिणाम था। लेकिन अधिकारियो का हुक्म तोडने में भी कुछ वहादुरी है ऐसी गर्वीली भावना से हम में से कुछ सभा-सम्मेलनो में वरावर भाग लेते ही रहे। गोधा जाने के लिए मैं उसी ट्रेन में सवार हुआ जिसमे कि श्री महादेव देसाई अपने आपको गाधी जी के चरणो मे अर्पित करने के लिए जा रहे थे। गाधी जी से जाकर मिलने मे मैं हिचक रहा था, किंतु महादेव भाई ने आग्रह किया। चुनाँचे मैं उनके सामने जा कर नतमस्तक खडा हो गया। किसी ने—मेरा ख्याल है कि वे श्री मणिलाल कोठारी थे—गाधी जी से कहा कि चूँकि मैं सरकारी हुक्म तोड़ कर राजनीतिक-परिषद् मे उपस्थित रहने के लिए आया हूँ इस लिए मुझे भी एक सत्याग्रही और वापू का अनुयायी माना जाय। सुन कर वापू हँस दिये। सभवतः इस प्रशस्ति-पत्र से वे सहमत नहीं थे।

परिषद् में गाधी जी द्वारा दिया गया भाषण, जिसमे लोगो के दैनदिन जीवन से सबधीत सडास-सफाई आदि बातो का ही उल्लेख किया गया था, इतना मामूली रहा कि सुनकर अधिकाश लोग भौचक्का रह गये और शेष थोडे से लोगो को उससे चोट पहुँची। कुछ लोगो को उनके द्वारा किया गया अहिंसा सिद्धात का प्रतिपादन जँचा नही, जब कि दूसरे कई लोग सरकार और ब्रिटिशो के प्रति आवेशयुक्त आलोचना से शून्य उनकी वक्तृता सुन कर निराश रह गये। और शेष कुछ लोगो को तो उनके द्वारा अछूतो का जोरदार पक्ष ले कर उसके बहाने हिंदुओ की कट्टरता के विरुद्ध बुलद की गई आवाज के कारण सदमा पहुचा।

उसी समय की और एक घटना मुझे याद है। वे इस बात के लिए बडे उत्सुक थे कि परिषद् की कार्यवाही ठीक वक्त पर शुरू हो। एक बार परिषद् मे किसी प्रमुख नेता के पधारने मे देर होने की वजह से कार्यवाही नियत समय के पौन घटा बाद शुरू हुई। वह शुरू करते हुए गाधी जी ने केवल इतना ही कहा · "मैं सोचता हू कि स्वराज्य भी पैंतालीस मिनट देर से ही आयगा।"

इस के बाद कई वर्ष तक, सिवाय बीच मे एक बार एक झलक पाने के, गाधी जी से भेट करने का मुझे कोई मौका ही नही मिला। मई १९२४ म अपने ऊपर की गई शस्त्रक्रिया के कारण जेल से रिहा होने के बाद वे स्व० सेठ नरोत्तम मोरारजी के जुहू स्थित दरिया-किनारे के बगले मे जाकर ठहरे हुए थे। मैं अपने पिता जी और भतीजे के साथ उनसे मिलने गया। मेरे छोटे भतीजे ने एक बगला राष्ट्र-गीत गाया, जो सुनकर गाधी जी को प्रसन्नता हुई।

पुन· कई वर्ष गुजर गये। बीच बीच मे महादेव देसाई मुझ से कहते रहे कि मैं बापू से मिल कर अपनी दिक्कता और एतराजो के बारे मे उनमे चर्चा करूँ। किंतु मैं सकोच और लज्जा अनुभव करता रहा, और उनका कीमती वक्त बर्बाद करने मे भी हिचकिचाहट मालूम हुई। एक बार की, सभवत १९३४ की, बात है जब कि वे हरिजन-दौरे के सिलसिले में उडीसा से बगाल की ओर जा रहे थे। तब मेरी धर्मपत्नी और मैं उन्हे अपनी श्रद्धाजली अर्पित करने के हेतु, और खास तौर से इस लिए कि हमारे बच्चा ने कभी उनका दर्शन न किया था, कलकत्ते से लगभग ७० मील दूरी पर स्थित खडगपुर जा पहुँचे। वेटिंग रूम मे बैठ कर सूत कातने के साथ ही साथ वे स्वतः को घेर रखनेवाले

लोगो द्वारा पूछे गये प्रश्नो के उत्तर उल्हसित वृत्ति से देते जा रहे थे। श्री सतीश दासगुप्ता के सुपुत्र ने उनसे पूछा, "बापू, आप मजे मे तो है ?" इस पर गाधी जी ने नपेतुले शब्दो मे धीरे से प्रतिप्रश्न किया, "आप का आशय शरीर से है या मन से?" सुन कर सारी भीड खिलखिला पड़ी। किसी ने कहा कि स्टेशन-मास्टर आपसे मिलना चाहते है। "बुलावो उन्हे, वह कोई भी क्यो न हो, मेरे लिए तो सभी स्टेशन-मास्टर ही है! " उनका उत्तर रहा।

उपर्युक्त भेट के अवसर पर, और बाद में भी जब कभी हमने सेवाग्राम की यात्रा की है तब, जो एक बात विशेष रूप से अनुभव की वह यही है की गाधी जी और कस्तूरबा अपने अतिथियो की सुख-सुविधा सबधी छोटी से छोटी बात का भी खुद ख्याल रखते थे। अनेकविध कामो मे फसे रहने पर भी हमारा भोजन हुआ या नही, और खडगपुर स्टेशन पर या शहर मे इसके लिए क्या व्यवस्था की गई है इस बात की स्वय गाधी जी ने ही पूछताछ की। चुनाचे इन छोटी-छोटी बातो की ओर एक ऐसे व्यक्ति द्वारा ध्यान दिया जाना देख कर, जिसमे कि साधारणतया इसकी आशा नही की जा सकती, मैं वास्तव में दग रह गया।

१९३७ ई० में जब गाधी जी कलकत्ते मे श्री शरथ्चद्र बोस के घर ठहरे हुए थे तब हमने कभी उन्हे कोई कष्ट नही दिया। उन्होने हम लोगो को यह सरल, सुखद और स्पृहणीय काम सौप रखा था कि हम हर रोज शाम के वक्त महादेव भाई को अपने साथ घूमने ले जाया करे। इस से पहले महादेव भाई किसके साथ घूमने जाते रहे यह उन्हे मालूम न था, किंतु शीघ्र ही उन्हे हमारा ख्याल हो आया जिसमे उन्होंने यह काम हमे सौपा। एक बार ऐसा हुआ कि महादेव भाई का बहुतसा काम करना अभी बाकी पडा था और वे थक भी बहुत गये थे। अत उस दिन उन्होने घूमने आने मे अपनी असमर्थता प्रगट की।

ऐसे ही एक अन्य अवसर पर सौ साल तक जीवित रहने सबधी उनके विचार मुझे जानने मिले। एक दिन शाम के लगभग पाच बजे, जब कि मैं उनके पास बैठा हुआ था, कमरे के बाहर घटी बज उठी। सुन कर वे मुझ से पूछने लगे कि यह क्यो बजी है ऐसा तुम्हारा ख्याल है ? मैं बोला कि शायद भोजन का वक्त हो जाने की सूचना देने के लिए बजी है। उन्होने जवाब दिया कि यह खुद उन के लिए ही काम बद कर देने की सूचना-स्वरूप बजायी गई है, और यह आश्रमवासियो की सूझ है। उन्होने और यह भी कह दिया कि, एक ज्योतिषी ने उनके सौ साल तक जिन्दा रहने की भविष्यवाणी की है, और कुछ नही तो कम से कम उस ज्योतिषी को सच्चा साबित करने के लिए अपने को इस दिशा में उद्योग कर के शतायु होनाही पडेगा। सुन कर सभी हस पडे।

फरवरी-मार्च १९४३ ई० के उनके उपवास-काल मे मैं उनसे मिलने के लिए पूना स्थित आगा खा महल मे गया। उनकी आवाज धीमी हो जाने पर भी साफ सुनाई पड रही थी। जब मैंने दिल्ली मे आयोजित सर्वदल-सम्मेलन का उनसे जिक्र किया तब वे, मानो यह व्यक्त करने के लिए कि अपने को इस बाबत सब कुछ मालूम है, मुस्करा दिये। और धीमे से बोले, "अब तक का तो यही अनुभव है कि उनके कानो पर जरा भी जू नही रेगनेकी। न मैं ही कोई आशाएँ बाँध बैठा हूँ।"

उनके थरथराते हुए हाथो मे अग्रेजी कविता की एक पुस्तक देख कर मैं दग रह गया। मुझे बताया गया कि उक्त पुस्तक मे सग्रहित थामसन की "हाउड आफ हेवन" रचना उस समय उनकी मनभाती कविता बन गई थी।

बावजूद इन सब बातो के वे शात और प्रसन्नचित्त दिखाई पड़े। जब मैंने श्रीमती सरोजिनी नायडू से इसका जिक्र किया तब वे बोली : "किंतु यह उनके शारीरिक स्वास्थ्य का प्रमाण तो नहीं माना जा सकता। वैसे तो वे अतघडी तक प्रसन्न ही बने रहेगे, और मौत का भी हँसमुखसे स्वागत करेंगे।"

मई १९४४ मे अपनी रिहाई के बाद जब वे जुहू रहने के लिए आये तब सयोगवश हमें भी उनके पड़ोस के ही घर मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यहा हमने उनकी अगवानी की, और जब वे जुहू से पूना के लिए प्रस्थान कर रहे थे तब उन्हे बिदाई भी दी। महादेव भाई के देहावसान पर "हिंदुस्तान

स्टैंडर्ड" में मेरे द्वारा एक लेख रूप मे उनके प्रति अर्पित की गई श्रद्धाजली पढ कर वे प्रभावित हुए। उन्होने मुझे एक सुदर पत्र लिख कर, जिसे कि मै अपना गौरव-धन मानता हू, यह आदेश दिया कि मै महादेव भाई के सुपुत्र को कुछ पढाया करू और उसकी शिक्षादीक्षा मे रुचि लू। जब हम उनसे (उनके महीने भर के मुकाम मे सिर्फ एक ही बार) मिलने गये तब मैने उन्हे कहा कि मै आप को हँसाना चाहता हू। सुन कर वे बोले कि यह तो उत्तम बात है, क्योकि बाकी सभी लोग तो अपना दुखडा रोने के लिए ही आते रहते है।

मेरी पुत्री उमा की अस्वस्थता के समाचार मिलते ही वे चितित हो उठे। वे प्रति दिन डा. सुशीलाबेन से उसके स्वास्थ्य के बारे मे आस्थापूर्वक पूछताछ करते रहे, और एक दिन तो खुद ही उससे मिलने आये। उन दिनो उनका मौन-व्रत चल रहा था, अत. वे सकेत से एव दुभाषियो के ज़रिये बातचीत का काम लेते रहे। फिर भी उन्होंने रोगिनीसहित सब को खिलखिलाकर हँसा दिया।

अपने अमेरिका से लौटने पर मै उनसे मिलने के लिए सेवाग्राम गया। हेतु यही था कि वहा के अपने अनुभव एव उनके नाम लाये हुए सदेस उन्हे सुना दू। उनका मौन चल रहा था। जो सब से पहला सवाल उन्होंने मुझ से पूछा वह यही था "खुद आप ने तो पूरा लुत्फ उठाया या नही?" सुन कर उनकी अगल-बगल बैठे हुए सभी लोग हस पडे। उनके लिए लुई फिशर की जो एक पुस्तक मै ले आया था उसका स्वीकार करते हुए वे बोले, "सक्षेप में यही कहना पड़ेगा कि अमेरिका और अन्य राष्ट्र तब तक हमारी सहायता करने के लिए तैयार नही है जब तक कि हम आप अपनी सहायता नही करते।"

सोदपुर में हमे दो बार उनके साथ तेज चाल से सैर करने का सुअवसर मिला, एक बार तो सुबह के वक्त और एक बार शाम को। सैर के समय फुटकर बाते करना उन्हे बहुत भाता है, और जब हमने कुछ किस्से सुनाये तब वे मुस्करा दिये। पडित जवाहरलाल का जिक्र करते हुए वे बोले, "कई बातो में वे मुझसे बाजी मार ले गये है।"

कलकत्ता,

२५-३-१९४६.

उनका दैनंदिन जीवन

मीराबेन

बापू के दीर्घ जीवन-काल के प्रसगो मे मेरे लिए सब से बढ कर कीमती और सर्वोत्कृष्ट प्रसग है नित मथा जाने वाला उनका दैनदिन जीवन। अवश्य ही इस से मेरा अभिप्राय उनके प्रात ३॥ या ४ बजे जगने, दिन मे दो बार प्रार्थना करने, सात्विक आहार लेने आदि से नही है। दूसरे भी कई लोग ये सब बाते करते हैं। किंतु हरेक काम करने का उनका अपना अलग ढग है, जो कि उनकी विशेषता है। मैं जब भी कभी बापू के सन्निध होती हू तब प्रति दिन कुछ देर के लिए उनके पास चुपचाप बैठे रहना मुझे बहुत भाता है। सो भी ऐसे वक्त नहीं जब कि वे लोगो से भेंट-मुलाकातें और सलाह-मशविरा करने में मशगूल हों, बल्कि ऐसे वक्त जब कि वे अकेले रहते हैं। बापू के कर-स्पर्श से बढ कर कोमल स्पर्श मैंने कभी अनुभव नहीं किया, और लेखन-मग्न बापू को देखते देखते तो मैं कभी अघाती ही नहीं। उनके हाथो कोई चीज जरा भी जाया नहीं हो पाती, और न वे कोई वस्तु विनष्ट ही होने देते हैं। मैं देखती हू कि बापू विचार-मग्न हो गये हैं। फिर पत्र लिखने के लिए कागज का एक पुरजा धीरे से उठा लेते हैं। और, वह छोटा होने पर भी, अपने सक्षिप्त पत्र-व्यवहार के लिए उसे आवश्यकता से अधिक बडा समझ कर सावधानी के साथ मोड कर दो टुकडो म बाट देते हैं। अब लगभग ३ इच चौडे और ५ इच लबे इस पुरजे पर वे जो कुछ चाहते हैं, लिखते जाते हैं। पश्चात् वे पुन कुछ ढूढने लगते हैं। पास ही स्टेशनरी से भरा हुआ खादी का एक बक्स है। इसे वे धीरे से खोल कर उसके भीतर से एक लिफाफा निकाल लेते हैं। फिर उस पर पता लिख कर पूर्वोक्त पत्र उस में बद कर के पास की एक दूसरी टोकरी मे, जो कि बाहर भेजी जाने वाली डाक रखने के लिए है, वह डालते हैं। इसके बाद लिखा जाने वाला पत्र और भी छोटा होने की वजह से वे पोस्ट-कार्ड काम में लाते हैं। उनके पास लिखने के लिए फोटनपेन नहीं हैं। दुर्भाग्यवश अपना पिछला फोंटनपेन गुम हो जाने के बाद से साधारण निब व होल्डर का ही वे उपयोग करने लगे हैं। और दावात के तौर पर काठ के कुन्दे म गडाई गई काच की बोतल,

जिसके साथ कलम व पेन्सिलें भी रक्खी जा सकती है, वापू की छोटी सी 'पेटेंट' चीज़ो में से एक है। इस कलम-दान का इस्तेमाल करते वक़्त वापू हर बार उसके भीतर की दावात पर का टिन का ढक्कन वड़ी सावधानी के साथ खोल कर काम हो जाने के वाद पुनः उसी भाति लगा देते है। पोस्ट-कार्ड लिखना खत्म हो कर, डाकखाने में छोड़ी जानेवाली चिट्ठिया रखने के लिए जो टोकरी है उसमे डाला जाता है। अब पुन. वे स्टेशनरी से भरे हुए खादी के वक्स की ओर मुड़ते हैं। विभिन्न आकार-प्रकार के जो एकपीठे कागज चुनने मे वे व्यस्त है उससे यह साफ़ झलकता है कि कोई लेख लिखने का उनका इरादा है। 'पुस्ती' के उनके ये कागज़ हर डाक से अपने नाम नित्य आते रहनेवाले अनगिनत पत्रो में से वडी सावधानी से छाटे गये एकपीठा पत्रो से वना लिये गये है। वापू लिखना शुरू कर देते है। ज्ञात होता है कि किसी गभीर विषय पर, सभवत किसी वर्तमान ज्वलत समस्या पर, लेख लिखा जा रहा है। क्योंकि उनके चेहरे पर से उनकी एकाग्र और दृढ़ निश्चयी वृत्ति जो व्यक्त हो रही है। किंतु लेख पूरा होने से पहले ही वे ऊघने लगते है। तव कलमदान में कलम रख दी जाती है, वाम की वोतल का ढक्कन लगा दिया जाता है। 'पुस्ती' के कागज भी सावधानी के साथ एक ओर रख दिये जाते है। फिर वापू मुड़ कर अपनी गद्दी पर लेट जाते हैं। वे अपना ऐनक उतार कर सिरहाने रख देते है, और फिर दो-एक मिनट के भीतर ही निद्रामग्न हो कर वच्चों की नाईं सहज ढग से श्वासोच्छवास करने लगते हैं।

मैं एक रूमाल उठा कर उनके सिरहाने वैठे वैठे मक्खिया उड़ाने लगती हूँ।

ये क्षण मुझे अपरपार मूल्यवान् और नितात मधुर प्रतीत होते है, क्योंकि वे इतने अधिक शिक्षाप्रद हैं कि शब्दो द्वारा उनकी अभिव्यक्ति कदापि सभव नहीं।

" मुझ तो अपना वह छोटा सा टुकडा ही चाहिये।" इस पर किसी ने पेन्सिल का एक टुकडा ला दिया। देख कर वे पूछने लगे, "क्या मैं दूसरे की पन्सिल से सतुष्ट हो जाऊगा ऐसी आप मुझ से आशा करते हैं? मान लो कि आप का बच्चा खो गया है। ऐसी हालत मे यदि कोई दूसरा बच्चा लाकर आप से कहने लगे कि 'उसके बदले यह लो', तो क्या आप उस से सतुष्ट हो जायगे?" इसके बाद तो बडे ज़ोर से खोजबीन की गई, आखिर पेन्सिल का वह छोटा सा टुकडा मिल ही गया, और जब विजयोल्लास के साथ बापू को वह ला दिया गया तब उन्हो ने प्रसन्न मुद्रा से उसका स्वीकार किया।

विश्वभर मे वास्तविक गाधी-आश्रम केवल एक ही है, और वह है कुछ वर्गफीट वह स्थान जहा कि बापू की गद्दी और लिखने का छोटा सा डेस्क लगा हुआ है।

पशुलोक (यू. पी.)
२४-१-१९४८

गांधी जी मेरी नज़रों में

प्यारेलाल नय्यर

[निम्न स्मृतिया गाधी जी के देहात से कुछ ही दिन पूर्व, जब कि मै उनके साथ था, लिपिवद्ध की गई थी। उनसे ये अतिम बार सुधरवा कर इनके लिए उनकी स्वीकृति भी प्राप्त की जाने वाली थी। अपनी लिखी हुई इन छोटी छोटी घटनाओ और जीवन-प्रसगो में से कतिपय मैं प्रति दिन उन्ह सुना देता था, जिससे वे काफ़ी मनोविनोद अनुभव करते रहे। मै उनसे कहता था, "बापू, यह सारी सामग्री आपके सामने रक्खी जाने वाली है। मेरे नोआखाली लौटने से पहले आप को इसे पढ जाना होगा।" "अवश्य, इसके लिए तो मैं तैयार ही बैठा हू," उनका उत्तर रहता था। किंतु, खेद के साथ कहना पड रहा है कि, यह बात कभी पूरी होने वाली नही थी, अतः फिलहाल, जब तक कि प्रभु मुझे हम सब की कल्याण-कामना से हमारे बीच पधार कर अपनी पद-रज द्वारा यह भूमि पावन करने वाले उस पुरुष की जीवन-स्मृतिया एक वृहत् ग्रथ के रूप मे पाठको की सेवा में उपस्थित करने के लिए सामर्थ्य और सुअवसर प्रदान नही करते, इन खडित सस्मरणो से ही सतोष मान लेने के सिवा दूसरा कोई चारा दिखाई नही पडता।]

मुझे सर्वप्रथम उस बेत की मार ने गाधी जी का भान करा दिया जो कि सामूहिक रूप से हम सब पर पड़ी। तब मै हाईस्कूल का विद्यार्थी था। गोखले जी हाल ही में दक्षिण अफ्रीका से लौट आये थे, और गाधी जी द्वारा सचालित दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयो के सत्याग्रह-आदोलन मे उनकी सहायता करने के लिए जनता से अपील करने के हेतु लाहौर के ब्रैडला हाल में भापण देने-वाले थे। इस "राजनीतिक सभा" मे छात्रावास के अधिकारियो से बिना "उचित रूप" मे अनुमति प्राप्त किये उपस्थित रहने के कारण ही हमे बेत लगाये गये थे। मुझे माफी मागने के लिए मौका दिया गया, लेकिन मैंने इस से इन्कार कर दिया, इस प्रकार मै अपनी इच्छा के विरुद्ध एक राजद्रोही के रूप मे बदल गया, और बिना किसी प्रकार का विचार किये मैंने सत्याग्रह की दीक्षा ले ली। उस समय मै इन बातो से, कि अपने द्वारा उठाया गया यह कदम भावी घटनाओ के शुभ-शकुन स्वरूप है, या जो कुछ मैं खुद आज कर रहा हू वही एक दिन सारा भारत गाधी जी से प्रेरणा पा कर करनेवाला है, बिल्कुल अनभिज्ञ था।

उक्त सभा बडी ही शानदार रही। लाला लाजपत राय सभापति थे और उन्होंने सदा की भाति बहुत ही भावनाप्रधान शैली मे लोगो से अपील की, जो सुनकर हरेक की नस नस मे खून दौडने लगा। किंतु मुझ पर सब से अधिक प्रभाव गोखले के भापण मे उल्लिखित उस वर्णन का पडा, जिस मे कि उन्होंने गाधी जी के जेल चले जाने की बात कहने के साथ ही उन से प्रेरणा प्राप्त कर दक्षिण अफ्रीका स्थित अन्य हजारो भारतीय स्त्री-पुरुषो के सग, प्राचीन काल के शहीदो के समान साहसी और श्रद्धालु वृत्ति से जेल जाने वाली उनकी धर्मपत्नी और बच्चो के बारे में प्रकाश डाला था।

इसके छः साल बाद, १९१९ ई० के बड़े दिनों में, अमृतसर मे मुझे पहली ही बार गाधी जी की एक झलक पाने का मौका मिला। तब मैं लाहौर के सरकारी कालेज मे एम. ए. मे पढ़ रहा था, और एक विद्यार्थी-दर्शक के नाते कांग्रेस-अधिवेशन मे उपस्थित रहने के हेतु अमृतसर गया हुआ था। वह कड़ाके के जाड़े वाली संध्या थी, और जिस पर उस दिन मूसलाधार पानी बरसने के कारण जाड़ा और अधिक बढ़ गया था। मैं स्टेशन से, कीचड़ रौंदता हुआ, अपने एक मित्र के घर चला आया। जिस घड़ी मैं मकान की सीढ़िया चढ़ रहा था, एक और दल, जिसमे स्वामी श्रद्धानद जी, प. मालवीय जी और गाधी जी थे, मेरे ठीक पीछे

आ पहुंचा । मैं सीढीपर के एक दरवाजे के पीछे छिप कर उक्त तीनो सज्जनो का सभाषण, जो कि मेरी जीवन-यात्रा मे घटी हुई एक विशेष बात हैं, सुनने लगा । तीनो सज्जन इस निर्णय पर पहुचे कि जलियावाला बाग का स्थान राष्ट्र के लिए प्राप्त कर उसे उन अमर शहीदो का स्मारक-स्वरूप प्रदान किया जाय जो कि १३ अप्रैल १९१९ के दिन जनरल डायर द्वारा की गई कत्लेआम मे मारे गये थे । और इस प्रस्तावित स्मारक के लिए धन-सग्रह करने के हेतु ही उक्त तीनो सज्जनो का प्रतिनिधि-मडल अमृतसर पधारा था । इसकी चर्चा के समय मालवीय जी ने अपनी अपूर्व रूपसे चित्ताकर्षक शैली मे धर्म, अर्थ-काम और मोक्ष के नाम पर धन के लिए लोगो से अपील की । किंतु अमृतसर के कठोर-हृदय व्यापारियो पर इसका जरा भी असर नही पडा । जब गाधी जी के बोलने की बारी आई तब उन्होने सरल भाव से इतना ही कहा कि अपने सुनिश्चित लक्ष्यतक अब हमे पहुँचना ही होगा । और यदि इस मे सफलता नही मिली तो वे अपना आश्रम बेच कर आवश्यक निधि की पूर्ति कर देगे । किंतु किसी भी हालत में वे एक ऐसी राष्ट्रीय प्रतिज्ञा को, जिसमे कि खुद भी शामिल हैं, बट्टा न आने देगे । अपने इस अनोखे वकील की पाषाणवत् दृढता देख कर अमृतसर का व्यापारी वर्ग दग रह गया । इस प्रकार राष्ट्रीय प्रतिज्ञाके पालित्य विषयक पहला पाठ आज गाधी जी ने उन्हे पढाया था ।

उपर्युक्त काग्रेस-अधिवेशन मे ही माटेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना के सबध में बड़े जोर का वाद-विवाद छिड गया । इस विषयक जिस प्रस्ताव पर चर्चा चल रही थी उसमे उक्त सुधारो को "अपर्याप्त, असतोषप्रद एव निराशाजनक" कहा गया था । लोक-मान्य तिलक ने इन सुधारो को अपर्याप्त सिद्ध करने के हेतु उनकी स्वीकृति के पक्ष में अपनी राय दी। इसका स्पष्टीकरण करते हुए वे बोले, "इन सुधारो को हम कार्यरूप देना चाहते हैं अथवा नहीं यह बात इस प्रस्ताव मे हेतुपुरस्सर टाल दी गई है । क्योकि यह तो मानी हुई बात है कि पार्लमेंट द्वारा स्वीकृत प्रत्येक कानून का इस देश मे पालन किया ही जायगा । यदि हम ब्रिटिश राष्ट्र की स्वामीभक्त प्रजा हैं तो पार्लमेंट द्वारा स्वीकृत हरएक कानून हमारे लिये बधनकारक हैं ।" मूल प्रस्ताव सबधी इस सदिग्ध मध्यस्थता के प्रति गाधी जी ने

आपत्ति प्रकट की। वे इस विषय पर लोकमान्य से भिड पडे। बोले, "मै यही घोषित कर देता हू 'कि सम्राट् द्वारा जारी हरेक हुक्म और कानून में केवल उसी घडी तक मानूगा जब तक कि मेरे दिल और दिमाग को वह मजूर है। किंतु जिस हुक्म या कानून का पालन करने के लिए मेरी आत्मा गवाही नही देती उस को मानने के लिए मै कतई बधा हुआ नही हू। अवश्य ही ऐसे कानून तोड कर उस की सजा भोगने के लिये मैं तैयार रहूगा।" आगे चल कर उन्होने यह भी कहा कि यदि कोई बात निराशाजनक हो तो उसको पूर्णतया त्याग देना चाहिये। विपरीत इसके यदि ऐसी बात स्वीकार करनी ही हो तो हम उसके प्रति प्रामाणिक बने रहे।

खुले अधिवेशन मे हिंदुस्तानी मे किये गये अपने भाषण मे उन्होने उपर्युक्त कथन का और भी अधिक जोरदार भाषा मे समर्थन किया। वे बोले, "यदि इस मामले मे मुझे कोई चुनौती देगा तो उसे मै स्वीकार कर लूगा, और देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौरा निकाल कर इस बात का प्रचार करूगा कि सहयोग का जो हाथ हमारे सामने बढाया गया है उसका यदि हमने स्वागत नही किया तो अपनी सभ्यता के प्रति हम अप्रामाणिक सिद्ध होगे और इससे हमारी स्थिति भी बिगड जायगी।"

इस सारे प्रकरण का अत नाटकीय रहा, क्योकि बिल्कुल आखरी वक्त विरोधी दलो मे समझौता हो गया। उनका सशोधन साररूप में मान लिया गया था। इसके सबध में जो असाधारण बात रही वह यही थी कि उनकी सारी दलील का रुख समझौते की ओर होने पर भी उसमे भरा हुआ भाव इतना अधिक विद्रोही और शाति के स्वरूप का था कि जैसा इससे पूर्व किसी भी भारतीय ने व्यक्त न किया हो।

जनता के स्वच्छद आचरण सबधी प्रस्ताव पर का उनका भाषण मुझे और भी अधिक प्रभावशाली प्रतीत हुआ। उसमे नेपोलियन की भाति हिम्मत और जोश भरा हुआ था। मुझे वह लगभग पूरा का पूरा ही याद है। इसे "सभा के सामने रक्खा जानेवाला सर्वाधिक

महत्वपूर्ण प्रस्ताव वतलाते हुए वे वोले कि हृदय से इस प्रस्ताव के मान लेने एव उस मे जो सत्य निहित है उस को समझ कर तदनुसार आचरण करने पर ही हमारी भावी सफलता निर्भर है। "किंतु", वे आगे बोले, "इस प्रस्ताव में निहित सनातन सत्य को समझने में हम जितने अश मे असमर्थ रहेगे उतने अश तक हमारा असफल रहना निश्चित ही है। . इस सारी बौखलाहट के पीछे सरकार का हाथ रहा है यह बात तो मै जानता हू। सरकार तो पागल हो ही गई थी, पर हमारे लोग भी पागल जो बन गये। मेरा तो इतना ही कहना है कि पागलपन का जवाव पागलपन से मत दो, बल्कि कुछ समझदारी के साथ दो जिससे सारी स्थिति आप के अनुकूल हो जाय।" उनकी वाणी इतनी अस्खलित, स्पष्ट और गुजायमान रही कि उन दिनो ध्वनि-विस्तारके न होने पर भी सभा-स्थान के कोने कोने मे वह सुनाई दी।

इसके दो मास वाद और एक प्रसग देखने मिला। मैं एक दोस्त की मार्फत लाहौर स्थित गाधी जी के अस्थायी डेरे पर उनसे मिलने गया था। मार्शल-ला के अतर्गत दायर किये गये दावो का काम तव वडे जोर से चल रहा था, और ऐसे मामलो मे फसे हुए लोगो के मित्रो और रिश्तेदारो का तॉता गाधी जी के डेरे पर हर घडी बँधा ही रहता था। मैं जिस वक्त उनके पास पहुचा उस वक्त इसी प्रकार के लोगो के एक दल की उनसे वातचीत चल रही थी। उनका मामला सर्वथा निराशाजनक समझा गया, क्योंकि इसमे फसे हुए व्यक्ति के विरुद्ध हत्या का अभियोग लगाया गया था। अत: ऐसे व्यक्ति को माफी दिलाने के लिए सिफारिश करना, जिसके विरुद्ध राजनीतिक हत्या का अभियोग हो, कैसे सभव हो सकता है? वे लोग वडे ही परेशान नजर आ रहे थे। किंतु उन्हे धीरज बँधाते हुए गाधी जी वोले, "इस मामले से सवधित सारी बातें मुझे खोल कर बता दो, और अगर तुम्हारे रिश्तेदार का किसी भी प्रकार के अपराध में कोई अग हो तो वह भी खुले दिल से कबूल कर लो। मैं भयकर से भयकर हत्यारा को भी फॉसी के फदे से बचाना

चाहता हू। मेरे आश्रम मे इस किस्म के कई लोग है जो कि मेरे कीमती सहयोगी बन गये है। आज वे अहिसा मे पूर्ण रूप से विश्वास करते है।"

राजनीतिक क्षेत्र में यह बात, कि एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति राजनीतिक समस्याओ को सर्वथा मानवीय दृष्टिकोण से हल करने की चेष्टा करे, बिल्कुल नई थी। उनकी वाणी, जिस मे अविचल प्रतिष्ठा से युक्त दयालुता और राजसी सामर्थ्य भरा हुआ था, मेरे हृदय को बरबस छू गई। आज मै अपने गुरुदेव को पा गया था, और उस दिन से मै उन्ही का हो रहा।

दो-एक दिन बाद मै पुन उनसे मिला, और यह तय रहा कि मै साबरमती-आश्रम मे भरती हो जाऊ। "किंतु", वे बोले, "आप अभी से अपनी पढाई छोड बैठे ऐसा तो मै नही चाहता। जो कुछ पढ़ना आप ने प्रारभ किया है उसे पहले पूरा कर दीजिये।" इसी आशय के सस्कृत के एक श्लोक का यह चरण कि—'प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति'—कितनी ही बार उनके मुह से मुझे सुनने मिला है।

उस साल के शरद्काल मे मै अपनी पढाई छोड़ कर आश्रम मे भरती हो गया। तब असहयोग आदोलन पुरजोश चल रहा था। गाधी जी से मुलाकात होने पर वे बोले, "आप मुझे दो निबध लिख कर दीजिये। एक तो अग्रेजी मे असहयोग विषय पर; और दूसरा, हिंदुस्तानी में किसी ऐसे विषय पर जो कि आप को पसद हो,—उदाहरणार्थ, 'मै गाधी के पास क्यो आया?' ये दोनो निबध मुझे शाम के तीन बजे से पहले मिल जाने चाहिये।" मै तुरत पहला निबध लिखने बैठा। आध घटे तक इसके लिए सिर खपाया, लिखा, फाड़ डाला, फिर लिखा; आखिर दोपहर के एक बजे मैने दोनो निबध उनके हाथ मे दिये। दूसरे दिन पुन. वे अपने तूफानी दौरे पर अनिश्चित काल के लिए आश्रम से चल दिये, और मै निबध सबधी सारी बातें बिल्कुल भूल कर आश्रम के कामों में लग गया।

एक दिन दोपहर के समय, जब कि मैं अपनी चारपाई पर झुका हुआ-सा बैठा था, मुझे हिंदुस्तानी मे लिखा हुआ उनका एक पत्र मिला। लिखा था कि मेरा निबध उन्होने पढ लिया है, और वह उन्हे पसद भी है। उक्त पत्र इस वाक्य के साथ पूरा किया गया था —"मै आपकी लेखन-शक्ति का उपयोग कर लेना चाहता हू।" इसके दो ही दिन बाद उनका तार आया जिसमे लिखा हुआ था कि मै तुरत रवाना होकर न. १ दरियागज, दिल्ली स्थित डा. अन्सारी के वासस्थान पर उनसे मिलू। तदनुसार जब दो दिन बाद उनके सामने जा कर मै उपस्थित हो गया तब उन्होंने आश्रम-वासियो के सबध मे, जो कि उनके लिए कुटुबीय ही थे, सवालो की झडी-सी लगा दी। पश्चात् मुझसे कहा गया कि चूकि मैं लबी मुसाफिरी से आया हू इस लिए नहाअ-धोऊ और कुछ देर आराम करू।

इसके बाद दिन मे और एक बार मुझे बुलाया गया। मेरा निबध उनके सामने था। वे इसे 'यग इडिया' म प्रकाशित करना चाहते थे। पूछने लगे, "क्या तुमने थोरो का साहित्य पढा है?" मैं बोला, "जी नही। मुझे अग्रेज ग्रथकारो से, खास तौर से कवियो से, और टालस्टाय से लेखन-कार्य के लिए प्रेरणा प्राप्त हुई है। ग्रथाध्ययन की ओर मेरी कम प्रवृत्ति है। विचार करने में सहायता भर प्राप्त करने के हेतु ही मैं पढता हू। अन्यथा, कोई किताब शुरू से आखिर तक पढ जाना मुझे भारी मालूम होता है।" सुन कर वे बोले, "ठीक है।" और उन्होने मेरा लेख इस टिप्पणी के साथ, कि "हाल ही में असहयोग करनेवाले एक पजाबी विद्यार्थी की सुयोग्य रचना," 'यग इडिया' म प्रकाशनार्थ भेज दिया।

दूसरे दिन गाधी जी अपने दलबल सहित रोहतक के लिए रवाना हुए। मैं पीछे डेरे पर ही रह गया। शाम को वापस लौटने पर उन्होने इसके लिए मुझे झिडका। स्पष्टीकरण–स्वरूप मैंने कहा कि किसी ने मुझे साथ चलने के लिए कहा नहीं इस लिए रुक गया। सुन कर उन्होंने भविष्य मे मेरे साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाय इसके सबध म अपने सहयोगियो को निश्चित सूचनायें

दे रक्खी। पश्चात् वे मुझे बोले कि दल के किसी व्यक्ति की असावधानी के कारण ऐसा हुआ है, फिर भी अपनी सतर्कता से उस व्यक्ति को इस प्रमाद का भागी होने से बचा लेना तुम्हारा फर्ज था। जब सकोच और विनय अपने कर्तव्य-पथ को अवरुद्ध करते हो तब वे मिथ्या अहता के लक्षण मान कर उन पर विजय प्राप्त की जानी चाहिये।

अनतर उन्होने सेठ जमनालाल बजाज से इन शब्दो में मेरा परिचय कराया—"*वही नौजवान यह है जिसका कि मैंने आप से जिक्र किया था।*" सहृदय जमनालाल जी ने मुझे तुरत अपने बाहुपाश मे ले लिया, और अपने स्नेहस्वरूप रोटी का एक टुकडा मुझे खाने के लिए दिया। उसे लेने में मेरे आनाकानी करने पर वे बोले, "खानेपीने के इन मामलो मे तुम मेरा कहा माना करो, शेप सब बाते बापू की आज्ञानुसार कर सकते हो।"

उसी दिन शाम को महादेव भाई *'यग इडिया'* के काम से अहमदाबाद चल दिये, और बापू की निगरानी में मेरी दीर्घ शिक्षा-दीक्षा का श्रीगणेश हो गया। किसी को भी पानी का गिलास देने से पहले उसके बाहर लगा हुआ पानी पोछ दिया जाय। खाना परोसने के हेतु हाथ धो लेने के बाद दरवाजा आदि खोलने जैसा काम उन्ही हाथो से न किया जाय। किसी को प्याली मे दूध देने से पहले वह चम्मच से अच्छी तरह हिला लिया जाय, ताकि उसकी तलहटी में कोई अखाद्य पदार्थ हो तो वह ऊपर आ सके। अपनी पाडुलिपि को सुपाठ्य बनाने के लिए उसमे विरामचिन्ह, अनुस्वार आदि स्पष्ट लिखे जायँ। बिछौना कैसे बिछाया जाय, मल-मूत्र के काम आनेवाले बर्तन कैसे साफ किये जाय, आदि कुछ अन्य ऐसी छोटी-छोटी बाते थी कि जो मुझे थोड़े ही दिनो के भीतर सीखनी पड़ी।

सूक्ष्म अध्ययन और निरीक्षण के बाद उनकी सादगी कैसी दुसाध्य कला है इसका मुझे पता चल गया। एक बार किसी अवसर पर वे बोले, "सादगी ऐसी सहज साध्य नहीं है जैसा कि अधिकाश लोग सोचा करते हैं।"

इसके बाद तो उनके सबध में मुझे और कई बाते देखने मिली। पहली तो यह, कि उनमे अपार कार्यक्षमता थी। प्रति दिन तीन या चार घटे नीद लेकर, और बाज दफे तो बिना नीद लिये ही, लगातार कई दिन तक वे काम करते रहते थे। दूसरी बात, वे हर काम बडी सावधानी से करते थे। तीसरी बात है साफ-सफाई और सुव्यवस्था के प्रति उनकी सतर्कता, चाहे उसका सबध सोच-विचार, लेखन-कार्य, ,अपनी पोशाक, या दैनदिन जीवन विषयक अन्य किसी भी कार्य से क्यो न हो। चौथी, फौजी ढग का उनका अनुशासन और घडी की ओर ध्यान देकर ठीक वक्त पर हरेक काम करने के लिए उनका आग्रह। इन नियमो का वे स्वय तो पालन करते ही थे, साथ ही दूसरो से भी वे इसकी आशा रखते थे। और पाचवी बात है अपने सारे काम यथासभव खुद ही करने की उनकी आदत। यदि उन्हे कामकाज के कोई कागज देखने होते, या पीकदान की जरूरत लगती तो वे खुद ही उठ कर ले आते थे, यहातक कि अपने वस्त्र भी आप ही मरम्मत करते थे। खुद बोल कर दूसरे से कुछ लिखवाने की अपेक्षा अपना लेखन-कार्य आप ही करना उन्हे अधिक पसद था। एक दिन मैंने ऐसे ५६ पत्र देखे जो कि उन्होने खुद के हाथ से लिखे, एव वे डाक में छोडने के लिए देने से पहले उनमें से प्रत्येक पर की तारीख से लेकर पता—ठिकाना तक सारी बाते पुन पढी।

नई दिल्ली,
१३-४-१९४८

धूप-छाँह

सुशीला नय्यर

बहुतों का ऐसा ख्याल है कि गभीर एव धार्मिक मनोवृत्ति के लोगो के जीवन के साथ हँसी-मजाक की बातें मेल नहीं खा सकतीं। इसी लिए जब वे यह सुनते हैं कि गाधी जी हँसी-मजाक का एक भी मौका हाथ से नहीं जाने देते तब उन्हे उसमें सदेह होने लगता है। और अन्य कुछ लोग पूछते हैं, "अपने कधा पर

महान् कार्यभार लेकर चलनेवाले गाधी जी हसी-मजाक की वातो मे सभवतः कैसे सम्मिलित हो सकते है ?" इसके जवाब मे गाधी जी कहते है कि हर परिस्थिति मे हास-परिहास करने की अपनी क्षमता के कारण ही बहुत सारे कामो का वोझ वे उठा पाते हैं। हाल ही मे अपने एक मित्र से वे वोले, "यदि मुझ मे परिहास वृत्ति नही होती तो जो आघात मुझे सहने पड़े हैं उनके कारण मेरे प्राण-पखेरू कभी के उड गये होते; किंतु ईश्वर में मेरी ज्वलत निष्ठा है, और जब तक प्रभु मेरा पथ-प्रदर्शन करते रहेगे तब तक लोग अपने सबंध में क्या कहते है इसकी मुझे चिंता नही। उनके द्वारा की जानेवाली अपनी आलोचनाओ पर मैं ध्यान ही नही देता, और जो मेरी हसी उडाते है उनके साथ भी मैं हसी-मजाक कर सकता हू। इसी के बलपर तो अवतक जिंदा रह सका हू!"

•

अपने साथियो के सग वातचीत या हसी-मजाक करने का गाधी जी का ढग देख कर मै अक्सर दग रह गई हू। वच्चो के साथ वे बालकोचित तरीके से मनोविनोद करते है, युवको के से युवको जैसा, और बड़े-बूढ़ो के सग वे भी बूढे वन जाते है। इसी भाँति वे राजनीतिज्ञ व्यक्तियो के साथ राजनीति विषयक विनोदपूर्ण वाते करते हैं, और गृहस्थो के साथ घरेलू जीवन से सबधित हास-परिहास का मजा लेते हैं। किंतु उनके समस्त हास-परिहास की पृष्ठभूमि में गाभीर्य की जो अत सलिला बहती रहती है वह सूक्ष्म निरीक्षक की दृष्टि से कदापि नही छूट सकती। मजाक के तौर पर भी वे कभी निरुद्देश्य या निरर्थक वात नही करते।

राजकोट-सत्याग्रह के समय की वात है। श्रीमती मणिवेन पटेल और मृदुला साराभाई की गिरफ्तारी के कारण उक्त सत्याग्रह-आदोलन में जो खड पड़ रहा था उसकी पूर्ति के हेतु कस्तूरवा राजकोट जाने पर तुली हुई थी। इसमे कुछ ही दिन पहले उन्होने रामदास गाधी के छोटे पुत्र की देखभाल का काम सँभाला था, और वह लड़का अपनी दादी से इतना हिलमिल गया था कि क्षणभर के लिए भी उन से दूर रहने के लिए तैयार न था। फलत वा के राजकोट चले जाने पर वह व्यथित हुआ, और दिनभर 'मोटी वा' ('दादी)

का नाम लेकर रोताकलपता रहता था। उसका सात्वन करना किसी के लिए भी सभव नही था, और गाधी जी उस समय अत्यधिक कार्यव्यस्त थे। किंतु आखिर उन्हे ही इस ओर ध्यान देना पडा। अपने नाती को बुलाकर वे बोले कि जल्द ही 'मोटी वा' आने वाली है। सुनकर उस लडके की कली खिल गई! तव गाधीजी ने उसके हाथ मे एक जपमाल थाम कर उसे बाल-ध्रुव की कथा सुनाई। बोले, कि तुम भी उसकी भाति बाल-साधु बनकर ध्यान-मग्न हो जाना। जब बच्चा बैठ गया तव गाधी जी ने उससे कहा, "माला का हरेक मनका फेरते समय 'मोटी वा' का नाम जपा करो। यदि तुम ध्यानावस्थ हो कर अखंड गति से जप करोगे तो अवश्य ही 'मोटी वा' तुम्हारे सामने आकर खडी हो जायगी।" चुनाचे छोटा कान्हा आँखे मूँद कर एव यथासभव ध्यानावस्थ हो कर माला फेरने लगा। इससे घरवालो को साँस लेने के लिए कुछ फुरसत मिली, और वे अपने कामकाज मे लग गये। बीच बीच में बालक कान्हा आँखे खोल कर शिकायत करता "फिर भी मोटी वा अभी तक नही आई!" तव बनावटी गभीरता से उसे झिडक कर गाधी जी कहते—"चूँकि तुम वार बार ध्यान-भग करते हो इसी लिए वह नही आती। तुम ऐसा ही करोगे तो वह बिल्कुल ही नही आवेगी।" इस तरह यह मजाक दो-तीन दिन चलता रहा। इस बीच गाधी जी ने बच्चे को उसकी मा के पास देहरादून भेजने का प्रबध कर लिया।

हममे से अधिकाश लोग तभी अपना हँस सकते है जब कि जीवनक्रम निरापद रीति से चलता हो; किंतु विषम और दुखदायी परिस्थिति मे भी गाधी जी का हास्य उनसे विछुड़ता नही। श्रीमती कस्तूरबा की दाह-क्रिया के दिन स्वतः से मिलने के लिए आनेवाले लोगो के साथ हास-परिहास करनेवाले गाधी जी को जिन्होने देखा है उन्हे वा का प्रयाण गाधी जी के लिए क्या अर्थ रखता है इसकी कुछ भी कल्पना नही होगी। वस्तुत यह एक ऐसी रिक्तता थी कि जिसकी पूर्ति होना असभव था। जैसा कि स्वय गाधी जी ने एक से अधिक वार कहा है विना वा के एकाकी जीवन विताना उनके लिए कठिन था

फिर भी उन्होने अपना दुख व्यक्त नही होने दिया। वे सुवह से ही, विना खाये-पिये, धधकती चिता के पास वैठे रहे। शाम होने पर किसी ने उनसे कहा कि चल कर थोड़ा आराम और नाश्ता करे। सुन कर वे हँस दिये और बोले, "यदि वासठ साल के साहचर्य के वाद आज मै यह दाहक्रिया अधूरी छोड़ कर चला जाऊँ तो बा मुझे कदापि क्षमा नही कर सकती।" किस तरह तो वा कभी कभी उन्हे झिड़क देती थी, और किस तरह वे स्वय उनके और हरेक के प्रसन्न हास्य की सामग्री वन सके इस हेतु उदार वृत्ति से वा को एकाधिकार की अपनी इच्छा पूरी करने देते थे यह बात किसे याद न होगी? अत्यत दुखदायी परिस्थिति में भी प्रसन्नचित्त वने रहने की उनकी क्षमता का रहस्य, जैसा कि कई बार स्वय उन्होंने कहा है, ईश्वर की कृपालुता मे उनके दृढ विश्वास पर आधारित है।

"गीतवत् कलकल वहने वाले जीवन में मुस्कराते रहना आसान है। किंतु पुरुषत्व तभी है जब कि मनुष्य सकटो के वीच भी मुस्कराता रहे!"

बीमारी मे भी उनके चेहरे पर हसी छाई रहती है, और शिष्ट हँसी-मजाक का लुत्फ भी वे पूरा उठाते है। आगा खा महल मे जव वे वीमार पड़ गये तव उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा के लिए ववई सरकार ने अपने सर्जन-जनरल को भेज दिया। गाधी जी ने अपनी स्वाभाविक सौजन्यशील वृत्ति के अनुसार उसका स्नेहपूर्ण मुस्कान से स्वागत किया। उसके साथ उन्होंने हसी-मजाक की वातें की। फलत. उनके चेहरे पर जो क्षणिक प्रसन्नता झलक गई उससे डाक्टर को उनके वारे मे धोखा हुआ। उसने लौट कर एक विज्ञप्ति द्वारा उनके पूर्णतया स्वस्थ होने की घोषणा की। किंतु इसके ४८ घटे के भीतर ही गाधी जी की स्वास्थ्य-परीक्षा करने वाले एक अन्य चिकित्सक की रिपोर्ट प्राप्त होने पर उसे अपनी पूर्वोक्त विज्ञप्ति का खडन करना पड़ा। वाद में प्राप्त हुई उक्त रिपोर्ट मे उनके बुरी तरह अस्वस्थ होने का पता चला, जिससे सरकार को उन्हे अविलव विना शर्त छोड़ देने का निर्णय करना पड़ा।

यहा मुझे एक होम्योपैथिक-चिकित्सक के साथ एक बार गाधी जी का जो वार्तालाप हुआ था उसकी याद आ रही है। उक्त चिकित्सक उनका रोग-निदान करना चाहता था। इस लिए सर्वप्रथम उसन उनके वंशेतिहास का प्रश्न उपस्थित किया। पूछा, "आप के पिता जी की कव और किस कारण मृत्यु हुई ?" "वे कमजोर होते गये, फिर उन्हे नासूर हुआ, और ६२ वर्ष की अवस्था में चल वसे," गाधी जी का उत्तर रहा। इतने से काम न चला। चिकित्सक-महाशय का दूसरा सवाल था. "आप की माता की मृत्यु किस कारण से हुई ?" गाधी जी: "वैधव्य के दुख से झुर झुर कर वे चल वसी।" यह उत्तर भी उसे असतोषप्रद मालूम हुआ। क्योकि गाधी जी के रोग का निदान करने में इससे उसे कुछ भी मदद नही मिल रही थी। चुनाँचे गाधी जी की मेज पर की मुरब्बे से भरी हुई बोतल को लक्ष्य कर वह बोला, "क्या आप को मीठी और स्वादु चीजें ज्यादा पसद है ? आप को मिठाइया अच्छी लगती है ऐसा मेरा ख्याल है।" उत्तर मे गाधी जी ने कहा, "लेकिन मुझे भजिया जैसी चीजें भी चलती है।" सुन कर डाक्टर अदव से बोला, "अवश्य ही केवल मिठाइया ही खाना कोई पसद नही कर सकता।" उसे बीच मे ही टोक कर गाधी जी बोले, "सो न कहिये। क्योकि मै ऐसे ब्राह्मणो को जानता हू जो कि विना कोई नमकीन चीज खाये कई दर्जन वड़े वड़े लड्डू चट कर जाते है !"

डाक्टर व्यग्र हो उठा। क्योकि होम्योपैथी चिकित्साप्रणाली के सिद्धातानुसार औषध-योजना रोग के लक्षणो पर निर्भर करती है। अतः वह वड़ी होशियारी के साथ गाधी जी से वाछित उत्तर प्राप्त करने के लिए सचेष्ट था। किंतु इस में उसे सफलता नहीं मिल रही थी। फिर भी वह हार मान कर चुप बैठने के लिए तैयार नहीं था। पूछने लगा, "आप की स्मरण-शक्ति कैसी है ?" गाधी जी बोले, "इतनी सड़ी हुई, जितनी कि आप सोच सकते हैं। कोई भी वात विस्तार से याद रखने की मेरी शक्ति समाप्त हो गई है। मै प्रायः अपने उन मित्रो से ईर्षा करता रहा हू जिन्हें कि कोई भी

कविता एक बार पढने से कठस्थ हो जाती है। यदि आप मुझे ऐसा वरदान दे सके तो मै आप का अवैतनिक प्रचारक बन जाऊगा।" डाक्टर बोला, "महात्मा जी, केवल भगवान् ही ऐसा वरदान दे सकते है। किंतु मै इच्छा होते हुए भी आप की यह माग पूरी कर ने में असमर्थ हू।" और फिर अकस्मात् वह पूछ बैठा, "क्या आप को कई वर्ष पहले का वह प्रसग याद है जब कि मै हरद्वार के अस्पताल का निरीक्षण कराने के लिए आप को अपने साथ ले गया था?" स्मरण रहे कि उक्त वाक्य के अतिम हिस्से पर डाक्टर ने विशेष रूप से जोर दिया था। "हा, हरद्वार के अस्पताल के निरीक्षण की बात तो याद है," गाधी जी बोले। सुन कर चिकित्सक-महोदय को बहुत ही प्रसन्नता हुई और वह झट बोल उठा, "तब तो आप की स्मरण-शक्ति बिल्कुल ठीक है।" "ना", "गाधी जी ने झट जवाब दिया, "मेरी याददाश्त बडी ही कमजोर है और उक्त अवसर पर अपने साथ आपके होने की बात मुझे बिल्कुल याद नही आती!"

डाक्टर हैरान रह गया। गाधी जी की स्वास्थ्य-परीक्षा स्वरूप प्राप्त जानकारी वह सक्षेप मे नोट करता जा रहा था। अब उसने अपने ये नोट गाधी जी के सामने, उनकी राय जानने के हेतु, रख दिये। लिखा था, "बहुत मेधावी, दार्शनिक और धार्मिक अध्ययन की ओर ज्यादा झुकाव...।" पढ कर गाधी जी ने "बहुत मेधावी" शब्द के आगे एक बडासा प्रश्न-चिन्ह लिख दिया। डाक्टर ने पूछा, "क्या यह सही नही है?" गाधी जी बोले, "मैं क्या जानू?" पास ही बैठे हुए डा. बी सी राय ने, जो कि गाधी जी के साथ मजाक करने का एक भी मौका चूकते न थे, सहसा कहा, "इसमे और एक बात आप जोड़ दें, और वह यही कि अपनी प्रशस्ति पर भी आपत्ति प्रकट करने की इनकी आदत है।" हँस कर डाक्टर बोला, "यह तो इनकी विनयशीलता है।" गाधी जी ने जवाब दिया, "विनयशीलता का दास तो मैं कभी नहीं बना।" सुन कर सारे उपस्थित लोग हँस पड़े।

बातचीत का सिलसिला आगे जारी रखते हुए उक्त डाक्टर गाधी जी से बोला, "हर कोई कभी न कभी बीमार पड़ ही जाता है;

किंतु अपनी बीमारी के लिए मनुष्य स्वयं कारणभूत नही होता। वह तो आनुवंशिक होती है।" "कमसे कम मुझे तो अतिसार आदि बीमारियाँ अपने माता-पिता से विरासत मे नही मिली है," गाधी जी ने कहा। डाक्टर निरुत्तर रह गया। फिर कुछ अधिक गभीरतापूर्वक गाधी जी बोले, "स्व० सी. आर. दास और प. मोतीलाल नेहरू की आदरभरी स्मृति-स्वरूप ही मै होम्योपैथिक चिकित्सा-प्रणाली का अवलबन कर रहा हू। वे हमेशा यह चाहते रहे कि एक बार मै इस को भी आजमा कर देखू। अन्यथा, इसमे मेरा तो विश्वास नही है। मै स्वयं सदैव प्राकृतिक चिकित्सा को तरजीह देता हू। चूंकि एलोपैथी मे मेरा विश्वास नही है, और साथ ही भगवान् और पच तत्वो के भरोसे चलने की क्षमता भी मै अपने मे नही पाता, इस लिए मैं आप से सहायता लेने आया हूं।" अत मे डाक्टर और इतना कहा, "महात्मा जी, मै नही समझता कि आप को किसी दवाईकी जरूरत है। आहार मे नियमितता लाने भर से ही आप स्वास्थ्यलाभ कर सकते है।" और गांधी जी से आज्ञा लेने से पहले उस ने अपनी एक शिष्या का, जो कि उनसे मिलने के लिए अत्यधिक उत्सुक थी, उल्लेख किया। बोला, "महात्मा जी, वह एक मधुर गुजराती लड़की है, और यदि आप की अनुमति हो तो मैं उसे आपके पास ले आऊंगा।" "सभी गुजराती लड़किया मधुर होती है," गाधी जी ने जवाब दिया। "ना महात्मा जी, बल्कि ऐसा कहिये कि सभी लड़किया मधुर होती है।" गाधी जी को दुरुस्त करते हुए डाक्टर बोला, "ना—ना!" प्रत्युत्तर-स्वरूप गाधीजी बोले, "गुजराती लड़कियों की ही यह खासियत मानी जाती है। लेकिन ख्याल रहे कि कही उस को ले कर भाग न जाना।" इस पर बेचारा डाक्टर सिहर कर बोला, "महात्मा जी, आप कह क्या रहे है? साठ साल की इस उम्र में मैं किसी को ले कर नही भाग सकता।" किंतु गाधी जी उसे चिढाने पर तुले हुए जो थे। बोले, "मैं एक ऐसे शख्स को जानता हू जो कि साठ साल की उम्र हो जाने पर भी एक तरुण युवती को लेकर भाग गया था।" सुन कर हर किसी को जोर की हंसी छूटी। हंसी रुकने पर गाधी जी बोले, "यही है रक्तचाप की अपनी शिकायत दूर कर लेने का मेरा तरीका!"

गाधी जी बहुत ही प्रत्युत्पन्नमति है। मैंने उन्हे हाजिरजवाबी में कभी हारते नही देखा।

दूसरी गोलमेज-परिषद मे उपस्थित रहने के लिए 'राजपूताना' जहाज् द्वारा गाधी जी इग्लैंड जा रहे थे उस समय की बात है। उक्त जहाज् पर के यात्रियों ने, जिन में अधिकाश यूरोपियन थे, एक क्लब बना रक्खा था। इसका नाम "बिल्लीगोट्स" रखा गया था, और उसकी ओर से "स्कैण्डल टाइम्स" के नाम से टाइप किया हुआ एक अखबार निकाला जाता था। पत्र का उक्त शीर्षक ही उसके भीतर की सामग्री का उत्तम परिचायक था। एक दिन इसके सदस्यो ने इस पत्र मे महात्मा जी के प्रति अपनी श्रद्धाजली अर्पित करने की सोची। चुनाचे उनके प्रवक्ता ने, जो थोड़ी पिया हुआ था, "स्कैण्डल टाइम्स" का ताजा अक क्लब के सदस्यो की शुभकामनाओ सहित गाधी जी को दे कर "वह ध्यानपूर्वक पढ़ कर उसके भीतर की सामग्री के बारे में अपनी राय देने" के लिए उनसे कहा। और शराब के नशे में ही वह आगे बोला, "मिस्टर गाधी, मैं अपनी कैबिन मे व्हिस्की का दूसरा गिलास चढ़ाने के लिए जाने से पहले वह मुझे मिल जानी चाहिये।" गाधी जी ने अखबार पर एक नजर डाली, जिस क्लिप से उसके पन्ने नत्थी किये गये थे वह निकाल ली, और यह कहते हुए, कि "प्रस्तुत पत्र का सर्वोत्तम अंश मैंने रख लिया है," शातिपूर्वक उसे वह लौटा दिया। यह मजाक सुनते ही शराबी झेंप कर नौ दो ग्यारह हो गया।

साबरमती-आश्रम के छोटे लड़के प्रति सप्ताह पत्र द्वारा उनसे कुछ प्रश्न पूछा करते थे, और वे उनका उत्तर भी देते थे। गाधी जी के उत्तर इतने सक्षिप्त होते थे कि पढ़कर कभी कभी बालक मुझला जाते थे। एक बालक ने, जो औरों की अपेक्षा जरा अधिक ढीठ था, अपने साथियो की ओरसे शिकायत पेश करते हुए कहाः "बापू जी आप हमेशा गीता के विषय में कुछ न कुछ सुनाते रहते हैं। गीता में अर्जुन प्रश्न-स्वरूप एकाध वाक्य पूछता है, जिस के उत्तर में भगवान् कृष्ण पूरा का पूरा अध्याय ही सुना डालते है। किन्तु आप तो

हमारे पूरे पृष्ठ के प्रश्न का उत्तर एक शब्द या वाक्य मे ही दे कर छुट्टी पा लेते है। क्या यह उचित है?" अविलंब उत्तर मिला, "देखो, भगवान् कृष्ण को तो एक ही अर्जुन से पाला पड़ा था, जब कि मेरे पास अर्जुनों का पूरा झुड ही है! क्या मैं दया का पात्र नही?" सुन कर छोटे अर्जुन खिलखिला पडे, और इस हसी-खुशी में उनकी शिकायत रफा-दफा हो गई।

गत मई में आगा खा महल से उनके रिहा होने पर पं. मालवीय जी ने उन्हे बधाई का तार भेजा। लिखा था, "पूर्ण आशा है कि मातृभूमि और मानवता की सेवा के लिए प्रभु आप को सौ साल तक जीवित रक्खेगे।" गाधी जी का जवाब बड़ा ही वैशिष्ट्य-पूर्ण रहा। ८ अगस्त १९४२ को अ. भा. काग्रेस कमेटी की बैठक के अवसर पर दिये गये भाषण मे गाधी जी ने अपने सवा सौ साल तक जीवित रहने की सभावना का विनोदपूर्वक उल्लेख किया था। उनके दोस्त भी प्रकट रूप से की गई इस प्रतिज्ञा का उन्हे स्मरण दिलाते रहते थे। अत मालवीयजी के तार के उत्तर में गाधीजी ने लिखा : "आप का तार मिला। कलम के एक ही फटकारे से आपने मेरे पच्चीस वर्ष काट लिये हैं। अपनी आयु में से पच्चीस वर्ष जोड़ लीजिये!"

गाधी जी का विनोद इतना मर्मान्तिक होता था कि एक बार स्व० मौलाना अली ने इसके लिए उनसे शिकायत की। बोले, "महात्मा जी, आप हम लोगों के प्रति बड़ा अन्याय करते हैं, क्योंकि हम तो क्रोधाविष्ट हो कर आप से लड़ने के लिए आते हैं, जब कि आप हमें हसने के लिए विवश कर सारी बातें उड़ा देते हैं। इससे हमारा गुस्सा ठढ़ा हो जाता है, और आप सोचते हैं कि शिकायत रफा-दफा हो गई।" अपने इस कथन के समर्थन-स्वरूप उन्होंने गालिब का निम्न मशहूर शेर सुनाया :

उनके दीदार से चेहरे पे आ जाती है जो रौनक
वे समझते हैं कि बीमार का हाल अच्छा है।

बहुत से लोगो का ऐसा ख्याल है कि जब गाधी जी अपने साथियो से राजनीति सबधी चर्चा करते है तब वहा का वातावरण बहुत ही तग और गभीर बन जाता होगा ! किंतु वास्तविक बात यह होती है कि ऐसी बैठके प्रायः विनोद और हँसीमज़ाक के जलसे का रूप धारण कर लेती है। मसलन् राजाजी और गाधीजी के बीच गाधीजी द्वारा चर्चिल को भेजे गये पत्र सबधी हुई बातचीत ही लीजिये। गाधीजी के प्रति चर्चिल द्वारा प्रयुक्त 'नग्न फकीर' उद्गारो के विनम्र उत्तर-स्वरूप उक्त पत्र लिखा गया था।

राजाजी—मुझे यही आशका होती है कि आप के पत्र से कही गलतफहमी पैदा न हो जाय। उनका पत्र तो शरारत भरा ही था।

गाधीजी— मै नही ऐसा सोचता। मैने तो उसका गभीर आशयही लिया है।

राजाजी—आपने उनके पूर्वकथन का उल्लेख कर उन्हे मर्मस्पर्श किया है, जिसके लिए सभवत स्वय वे भी अब विशेष गर्व अनुभव न करते होगे।

गाधीजी—उनके द्वारा अहेतुक प्रदर्शित अपनी इस प्रशस्ति को आत्मसात् कर मैने उसके भीतर का तीखापन हटा दिया है।

राजाजी—आपने उचित ही किया है ऐसा मेरा ख्याल है।

गाधीजी—खेद है कि अपने प्रति प्रदर्शित इस प्रशस्ति को मै अस्वीकार नही कर सकता।

प्रतिपक्षी को पराजित करने वाले उनके उत्तर भी सद्भावपूर्ण होते है। दूसरी गोलमेज-परिषद में अल्पसंख्यकों सबधी समझौते पर बोलते समय श्री रैम्से मैकडोनाल्ड ने यह दलील पेश की कि भारत की ४६ प्रतिशत जनता अल्पसंख्यक होने के कारण कांग्रेस का यह दावा, कि वह भारत का प्रतिनिधित्व करती है, लगभग आधी भारतीय जनता द्वारा झूठा साबित होता है। ऊपरी तौर पर देखने से यह तर्क युक्तियुक्त प्रतीत हो रहा था। इसके जवाब में अब गाधीजी क्या कहते है यह सुनने के लिए सारा सभा-भवन अधीर हो उठा। गाधीजी बोले:

"आज आपने अपने अकशास्त्रीय अज्ञान का आश्चर्यप्रद रूपसे प्रदर्शन किया है।" फिर स्त्री-प्रतिनिधियो के भाषणो का उल्लेख करते हुए उन्होने कहा, "आपने स्त्रियोको अपनी ओरसे स्पष्ट रूपसे यह कहते हुए सुना ही है कि वे अपने लिए विशेष प्रतिनिधित्व सबधी दावा पेश नही करना चाहती। अत भारतकी आधी जनसख्या स्त्रियो की होने के कारण ४६ प्रतिशत सख्या अवश्यही घट जाती है।"

नई दिल्ली,
जून १९४६

गांधीजी और महिलाएँ

रामेश्वरी नेहरू

सन् १९२७ मे गाधीजी से मेरा परिचय हुआ। दक्षिण अफ्रीका से उनके भारत लौट आने के बाद से उनके बारे मे मै बराबर सुनती-पढती रही। 'यग इडिया' भी नियमपूर्वक पढा करती थी। उनके उपदेशो और बोधप्रद वचनो का भी मुझपर गहरा प्रभाव पडा और मैं अनिवार्य रूपसे उनकी ओर आकृष्ट हुई। किंतु अब तक मै उनसे मिल न पायी थी। सोचती थी कि उनका उत्तुग व्यक्तित्व मुझ जैसे सर्वसाधारण की पहुँच के परे है।

सन २७–२८ मे भारत सरकार द्वारा नियुक्त 'एज आफ दि कन्सेंट कमिटी' की एक सदस्या के नाते मै कार्य करती रही। इसी सिलसिले में भ्रमण करते हुए जब मै अहमदाबाद पहुँची तब गाधीजी अहमदाबाद के पास साबरमती आश्रम में निवास कर रहे थे। मै उनसे भेंट कर उनके साथ वार्तालाप करने के लिए अत्यधिक उत्सुक थी, क्योकि मैं चाहती थी कि बालविवाह एव सम्मतिआयु के सबध मे, जो कि हमारी कमिटी के सामने विचारणीय विषय थे, उनका अभिमत प्राप्त करू।

समय निश्चित हो कर मुलाकात के लिए मुझे चद मिनट दिये गये। पूर्वान्ह का समय था और अपने अगल-बगल बैठे हुए आश्रम-वासियों के सग वे कुछ न कुछ काम करने में व्यस्त थे। न जाने

अकस्मात् मुझे क्या हो गया। मैं भावावेश से व्याकुल हुई और मेरी आँखो से अविरल अश्रुधार बहने लगी। मैं लज्जित हुई और मेरी घिग्घी बँध गई। तब और एक मुलाक़ात होना तय हुआ और मैं दुबारा आश्रम आई। अब की बार प्रात.कालीन प्रार्थना मे उपस्थित होने के हेतु मुझे आश्रम में ही रात बितानी थी। मेरी देखभाल का काम महादेव भाई को सौंपा गया था। मेरी आवश्यकताओ की ओर वे ही ध्यान देते रहे। उस रात को सोने के लिए जाने से पहले उनके साथ मेरी प्रास्तविक बातचीत हुई। दूसरे दिन तडके साबरमती नदी के बालुकामय तट पर प्रात-प्रार्थना हुई। इसके बाद आज पहली ही बार में गाधीजी के साथ सैर करने निकली। अपनी कमिटी के कार्यों से मैंने उन्हे भली भाँति अवगत कराया। सारी बाते उन्होने कृपापूर्वक एव प्रसन्न चित्त से सुन ली। फिर भी कोई बात मुझे खटक रही थी। खैर, मुझे बिना हतोत्साहित किये, या जो कुछ मै कर रही थी उसे बगैर नापसद किये, अपनी ओर से स्पष्टीकरण स्वरूप उन्होने इतना ही कहा कि यद्यपि बाल-विवाह की प्रथा बुरी है और उसका बद होना भी आवश्यक है, फिर भी यह काम एक ऐसी विदेशी सरकार की मार्फत न किया जाय जिसे कि वे दुराचारी मानकर उससे असहयोग करना जरूरी समझते है। उन्होने मुझसे और यह भी कहा कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मैं तबतक बाल-विवाह की बुराइयो के विरुद्ध देशभर प्रचार करती रहूँ जबतक कि लोग इस अनिष्ट प्रथा से विमुख नही हो जाते। मुलाकात का महत्वपूर्ण अश समाप्त होनेपर दो युवतियों को सग लेकर वे रसोईघर मे दाखिल हुए, और एक स्टूलपर बैठकर सामने के मेजपर की सब्जियाँ छीलने लगे। बीच बीचमें उक्त युवतियो से उनकी गपशप और हँसीमज़ाक़ चलता रहा। सब्जियाँ छीलनेका उनका काम पूरा होने के साथही मुलाक़ात के लिए मुझे दिया गया वक़्त भी खतम हुआ, और ऊपर निर्दिष्ट जो जो बातें मैंने देखी एव अनुभव की थी उनका मनन करती हुई पुनः अपनी कमिटी के कामो में मैं जुट गई।

मन ही मन मैंने कहा कि अनेकविध कार्यो एव करोड़ो लोगो के भाग्य को बदल डालनेवाले महान् आन्दोलनो के नेतृत्व की जिम्मेवारीका

बोझ सरपर होते हुए भी यह व्यक्ति कैसे तो सब्जियाँ छीलने जैसे तुच्छ काम के लिए समय निकाल लेता है, और कैसे उसे उन साधारण एव अननुभवी युवतियो से बाते करने मे आनद आता है? वे लडकियाँ तो मुश्किल से पढी-लिखी होगी। कालातर मे उनसे अधिक परिचय हो जाने पर इन दोनो प्रश्नो के उत्तर मै पा गई।

वर्धा और सेवाग्राम की समय समय पर की हुई अपनी यात्राओ के अवसर पर मैने उन्हे अपने रोजाना कामो मे मशगुल पाया, और ऐसा अनुभव किया कि किसी कार्य या व्यक्ति के प्रति उनके मन मे जरा भी ऊँच-नीच का भाव नही है। उनके लिए तो प्रत्येक कार्य सेवा-स्वरूप था, और सेवा भक्तिरूप। अत. इसमे ऊँच-नीच की भावना के लिए गुजाइश ही कैसे हो सकती है? मैने उन्हे सुबह-शाम दोनो वक्त खुद के हाथो आश्रमवासियो को भोजन परोसते देखा है। इसी भाँति मै उन्हे दत्त चित्तसे बीमारो की सेवाटहल करते हुए भी देख चुकी हूँ। अपने शिष्यो मे होनेवाले आपसी तुच्छ झगडो का निपटारा करने के लिए वे ठीक वैसा ही कष्ट उठाते रहे जैसा कि किसी राजनीतिक समस्या को सुलझाने के लिए उनके द्वारा उठाया जाता है। स्वतः से प्रेरणा और पथप्रदर्शन प्राप्त कर चलनेवाली छोटी छोटी सस्थाओ की भी विवरण-पत्रिकाएँ वे बड़ी सावधानी से पढते हैं। स्मरण रहे कि इस प्रकार की अनगिनत सस्थाएँ देशभर में बिखरी हुई हैं। जो लोग अपने कौटुबिक कलह लेकर उनके पास सलाह की याचना करते हुए आते है उनके लिए भी वे समय निकाल लेते है। दुखी एव हतोत्साहित जीवो की ओर ध्यान देकर उनकी सहायता करने और उन्हे धीरज बँधाने के गाधीजी के काम मे कभी खड नहीं पड़ता। इस वृद्धावस्थामे भी, जब कि एक ओर शारीरिक शक्ति क्षीण होती जा रही है और दूसरी ओर काम का बोझ बराबर बढ़ता ही जा रहा है, वे अपना सारा पत्रव्यवहार आप ही करते है। अनेक लोगो की दृष्टि मे यह समय का अपव्यय हो सकता है। मैंने कई भद्र स्त्री-पुरुषो को ऐसा कहते सुना है कि यदि वे इन क्षुद्र कामो में अपने समय का अपव्यय न करें तो निस्सन्देह अधिक अच्छे कामो के लिए उसका सदुपयोग हो जाता।

किंतु उक्त धारणा कैसी गलत है यह मैं भली भाँति जानती हूँ। बुद्ध और ईसा मसीह के प्रेम की तरह ही गाधीजी के अगाध प्रेम-स्रोत का आस्वाद सभी को बिना भेदभाव के मिलना नितात आवश्यक है। लाखो लोगो पर के उनके प्रभाव का वास्तविक रहस्य उनके स्वाभाविक, स्वयस्फूर्त एव बुद्धिमत्तापूर्ण आचरण में निहित है। अपने निजी अनुभव से मैं यह बता सकती हूँ कि उनके हाथ की लिखी चद अस्पष्ट पक्तियाँ पढ कर मैं पुलकित हो गई हूँ। क्याही उत्कठा से मैं उनके इस पत्र की प्रतीक्षा करती रही! इन छोटी छोटी बातो को भी भावना का पुट देने की इस वृत्ति ने ही उन्हे अन्य सभी की अपेक्षा अधिक ऊँचा उठाया है, और इसी कारण उनकी योजनाओ में अपने लिए भी एक स्थान सुरक्षित है ऐसा निम्न श्रेणी के लोग तक मानते हैं। मानव मात्र के प्रति उनका जो आचरण रहा है उसके आधारपर मैं यह कह सकती हूँ कि उपलब्ध मानवी द्रव्य के भीतर से आदर्श स्त्री-पुरुषो का निर्माण करनेवाले वे एक श्रेष्ठ शिल्पी है। अपनी कल्पना के अनुसार ही वे उन्हे गढ़ते और रग-रूप देते हैं। अवश्य ही उनके द्वारा निर्मित इन आदर्शों का उत्कृष्ट होना न होना मूल द्रव्य के गुण-दोषो पर ही निर्भर करता है। इसी लिए उनके असख्य अनुयायियो मे रग-रूप आदि की दृष्टि से खासी विविधता दिखाई देती है। गाधीजी के उत्तुग व्यक्तित्व की तुलना में उनके अनुयायी अति तुच्छ दिखाई देनेपर भी जो एक बात निस्सन्देह रूप से कही जा सकती है वह यही है कि उनके चमत्कारपूर्ण प्रभावमें आये हुए सैकड़ो-हजारो लोग अपने मूल रग-रूप की अपेक्षा अधिक अच्छी शकल में ढाले गये हैं।

वे एक नये ससार का निर्माण करने के लिए कटिबद्ध है,—एक ऐसा ससार जो कि आज की दुनिया के दुख, क्लेश और सघर्षो से मुक्त हो। वे इस पृथ्वीतल पर ऐसे राम-राज्य की स्थापना करना चाहते हैं कि जहाँ सहयोग और स्नेह का बोलबाला होकर मनुष्य के भीतर की दुर्वासनाएँ नष्ट हो जायें। इस प्रकार के विश्व की निर्मिति के लिए स्त्रियाँ ही समुचित सामग्री प्रदान कर सकेंगी ऐसा उनका विश्वास है। कई बार उन्होंने कहा भी है कि अपने अहिंसक दल के सैनिको की स्थानपूर्ति पुरुषो की

अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक अच्छी तरह कर सकेगी। इसी लिए स्त्रियो के प्रति उनका इतना अधिक विश्वास है, और इसी कारण स्त्रियाँ भी उनकी ओर प्रबल रूप से आकृष्ट होती रहती है। वस्तुत इन दयामयी छोटी बहनो के पास सिवाय सरलता, विनय, सत्यप्रेम और स्वय गाधीजी द्वारा प्रेरित दृढ इच्छाशक्ति के और है ही क्या? फिर भी इन बहनो को उनके द्वारा ऐसे काम सौंपे जाते हुए मैंने देखा है जो कि विद्वान् और कार्यक्षम पुरुषो के लिए भी भारी व उलझे हुए मालूम होते हैं। बहने भी उनके आदेशो को पूरा करने मे जी जान से जुट जाती हैं। इस प्रकार आज अनेक बहने भारतके दूर दूर के कोनें मे अपनी जीवन-ज्योति जलाकर आसपास के दीन-दुखियो को प्रकाश-दान कर रही है। भले ही उनके कार्यका विस्तार अधिक न हो, किंतु उसकी महत्ता उसके पावित्र्यमे समाई हुई है। क्योकि यही पावित्र्य स्वत के सपर्क में आनेवाले ससार को अदृश्य रूप से चैतन्य प्रदान कर रहा है।

उपदेश की भरमार की अपेक्षा तदनुसार अल्प आचरण को ही वे बहुमूल्य मानते है। इसी लिए उनकी दृष्टि मे सारे सामाजिक नीति-नियमो और रीति-रिवाजो का केवल तबतक ही महत्व है जबतक कि वे नैतिक सिद्धातो पर आधारित होकर वास्तविक जीवन के साथ मेल खाते है। कोरे सिद्धातो का उद्घोष, फिर वह कितना ही विद्वत्तापूर्ण क्यो न हो, उन्हे मोतीरहित सीप के समान निरर्थक प्रतीत होता है। सत्यानुसार जीवन-यापन करने के लिए जो मर्यादाएँ उन्होंने बाँध रखी है वे सर्वसाधारण के आकलन के परे है। इसका ताजा उदाहरण है इदुमति-तेडुलकर विवाह, जो कि गत वर्ष उन्हीं के आदेशानुसार सेवाग्राम में सपन्न हुआ। ऐसा प्रसग उपस्थित होने पर वे परिणामो की पर्वाह नही करते।

उक्त विवाह के अवसर पर उन्होंने जिस पद्धति का अवलब लिया उसके कारण हिंदू विवाह विषयक सारे रूढ़ सस्कारो को व्यावहारिक स्वरूप प्राप्त हुआ। स्वत. द्वारा स्वीकार की गई इस पद्धति को देश के कानून का समर्थन प्राप्त न होने पर भी उन्होने उसकी चिंता नहीं की। 'सप्तपदी' को भी उन्होने एक नया रूप प्रदान किया। उनकी इस अभिनव

विवाह-विधि के अनुसार वर व वधू दोनो के लिए गीता-पठन, सूत-कताई गो-सेवा, कुएँ के पासकी तथा खेती की जमीन की साफ-सफाई आदि सप्त क्रियाएँ एक साथ पूरी करना लाजिमी था। पौरोहित्य करनेवाले महाशय की जाति हरिजन और धर्म ईसाई था। सारा कार्य हिंदुस्तानी में सपन्न हुआ। वर-वधू म जिन प्रतिज्ञाओ का आदान-प्रदान हुआ उनकी सूची से पुराना अनावश्यक अश निकाल दिया गया था। विवाह-विधि को उनके द्वारा प्रदत्त इस अभिनव स्वरूप का एकमात्र आधार था वे उच्च नीति-तत्व जो कि वर-वधू दोनो को समान रूप से स्वीकार थे। इस प्रकार एक साथ और एक ही कार्य द्वारा उन्होंने स्वत. द्वारा पुरस्कृत इतने सुधारो को जीवन के पट मे बुन डाला।

इसी प्रकार का दूसरा उदाहरण है मेरे सुपुत्र के विवाह का। वह उन्हीकी सलाह के अनुसार ही सपन्न हुआ। वधू विदेशीय और साथही विधर्मी होने के कारण उभय वर-वधू को विवाह-विषयक धार्मिक स्वातत्र्य प्रदान करनेका प्रश्न उपस्थित हुआ। इस सबध मे गाधीजी से प्राप्त पत्र का आवश्यक अश मैं नीचे उद्धृत कर रही हूँ। उससे साफ झलकता है कि वे झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा की कतई पर्वाह न कर केवल नैतिक मूल्यो को ही मानते हैं।

उन्होने लिखा था.

"वस्तुत: 'हिंदू' शब्द आधुनिक है। यह 'लेबुल' दूसरो द्वारा हमपर चिपकाया गया है। हमारे धर्म का नाम है 'मानव धर्म', अर्थात् मनुष्यका धर्म। मनुस्मृति मनुष्य-धर्म की सहिता है। इन सब का उगम-स्थान वेद हैं। किंतु कोई भी व्यक्ति सारे वेदोंका जानकार नहीं है। मनुष्य का धर्म सतत विकसित होता रहता है। ब्रिटिश-शासन की स्थापना मे पूर्व समाजमें समय समय पर परिवर्तन होता रहा है। ब्रिटिश राज ने यह सब बदल डाला। जो परिवर्तनशील था वह पाषाणवत् अचेतन बन गया। यदि कभी कोई परिवर्तन हो भी जाता तो वह प्रीव्ही कौन्सिल या ब्रिटिश धारा-सभाओं द्वारा ही। इससे समाज को क्षति पहुँची, और समाज उन कानूनो की नाईं, जो कि उसपर थोपे गये हैं, निर्जीव बन गया। इस परिस्थिति में मैं तो यही सलाह दूंगा कि मानवधर्म प्रणित

नीति-नियमो के अनुसार ही विवाह-विधि सपन्न किये जायँ। वधन की दृष्टि से इतना काफी है। हमे ऐसे कानूनो की ओर, जो कि सर्वोच्च नीति-नियमो से मेल नही खाते, ध्यान देनेकी जरूरत नही। हाँ, अगर ऐसा कदम उठाने मे किसी किस्म का खतरा हो तो अलबत्ता उसके लिए हमे तैयार रहना ही चाहिये।"

अपने अमर्यादशील कार्यक्षेत्र मे वे सपूर्ण मानव-जीवन को समा लेते हैं। उसके किसी भी अग की उपेक्षा नही करते। व्यक्ति और समाज से संबधित सारी समस्याएँ सुलझाने की वे चेष्टा करते रहे हैं। इन समस्याओ के समाधान का दृष्टिबिंदु यही रहा है कि इस भू-तल पर शाति एव मानव मानव के बीच सद्भाव का प्रादुर्भाव करनेवाली सस्कृति स्थापित हो जाय।

नई दिल्ली,
८-३-१९४६

दांडी-कूच और पश्चात्

एम्. एम्. पकासा

सन् १९३० के दाडी-कूच मे मैं सूरत जाकर शामिल हुआ। नमक-कानून तोडने के लिए निर्धारित दिन की पिछली सध्या को आयोजित प्रार्थनामे मैं उपस्थित था। उक्त संध्या समयें समुद्रतट पर हुई प्रार्थना का प्रसग गभीर और पवित्र था। उद्दिष्ट के औचित्य पर की अनन्यसाधारण श्रद्धा और ईश्वरी प्रेरणा के कारण उत्पन्न उत्साह से उसमे चार चाँद लग गये थे। इस प्रकार का कोई अन्य अवसर मुझे याद नही पडता जो कि अपने जीवन में मैंने देखा हो। गाधीजी का प्रार्थना-प्रवचन सयम, आत्मविश्वास, और परमात्मा के प्रति पूर्ण श्रद्धा से भरा हुआ था। प्रार्थना के बाद उन्होंने दूसरे दिन तडके नमक उठाने के लिए बनाई गई योजना के संबध में स्थानीय कार्यकर्ताओ से पूछताछ की। विशुद्ध नमक ठीक किस स्थान से आसानी से मिल सकेगा और इसके लिए क्या योजना बनाई गई है इसमे उन्हे अवगत कराया गया। सब कुछ सुन लेने के बाद मजाक में गाधीजी बोले,

"यहां अपने सामने ही खादीधारी खुफिया पुलिस मौजूद है और वे जासूसी कर रहे है यह बात क्या मै नही जानता ? अत. कार्यकर्तागण इनसे सचेत रहे। अगरेजी राज के इन स्वामिभक्त सेवको ने यदि अपने अफसरो को खबर कर दी तो रात ही रात निर्दिष्ट स्थान से नमक की राशि हटा ली जाना, या किसी के लिए भी उसका उठाना असभव कर देना उनके बाएँ हाथ का खेल है। इसलिए आप अन्यान्य स्थान भी ध्यान मे रखें, ताकि किसी को यह उलहना देनेका मौका न मिले कि इतने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य में हमारे लिए चुटकी भर नमक भी नसीब न हो सका। अगर ऐसी बात हुई तो साम्राज्य की शान मे बट्टा लग जायगा !" सुनकर खुफिया पानी पानी हो गये।

दूसरे दिन सुबह सारा कार्य पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार ही पूरा हुआ। सदा की भाँति तडके ४ बजे गाधीजी जग गये, फिर प्रार्थना हुई और वे तैयार हो कर समुद्र-तट पर पहुँचे। समुद्र-स्नान के बाद उन्होने पूर्वनिश्चित स्थान पर जाकर नमक उठाया। यह एक अनन्यसाधारण दृश्य था, जिसका न केवल भारत के जनमत पर अपितु विदेशो मे भी गहरा प्रभाव पडा। यह सरल और उपद्रवशून्य कृति भारत के कोने कोने पर विद्युत् गतिसे अपना असर छोड गई। उसका मेरे मनपर भी गहरा और चिरस्थायी प्रभाव पडा। अत मैने बापूके आदर्शो पर चल कर किसी रचनात्मक कार्य मे लग जाने का निश्चय किया। उन दिनो श्रीमती मिठूबेन पेटिट सूरत जिले में शराब-बदी का कार्य कर रही थी। चुनाँचे हमने सूरत के समीपस्थ मरोली के ग्रामीणो, और खास तौर से आदिवासियो के बीच काम करने के हेतु, गाधीजी से पथ-प्रदर्शन प्राप्त कर एक आश्रम चलाने का निश्चय किया। तदनुसार आश्रम स्थापित किया गया, और उसका नाम रखा गया कस्तूरबा सेवाश्रम। आश्रम के श्रीगणेश-स्वरूप सर्वप्रथम आदिवासी बालिकाओ के लिए एक पाठशाला-विभाग खोला गया, इसके साथ ही हमने एक औषधालय भी चलाया। उक्त आश्रम आज भी चालू है।

नागपूर,
३-८-१९४९

गांधीजी के चरणों में

बी. पट्टाभी सीतारामय्या

मैंने श्री मो. क. गाधी को सर्वप्रथम १९०३ मे मद्रास-कॉग्रेस के अवसर पर देखा। बहुत ही धीमी आवाज मे भाषण देने के कारण उनका कोई विशेष प्रभाव नही पड़ा। उन दिनो मै डाक्टरी का अभ्यास कर रहा था।

उनसे मेरा निकट परिचय १९१७ ई. में कलकत्ते में हुआ। वहाँ अ. भा. काग्रेस कमिटी की बैठक हो रही थी, जिसके सामने अलग आध्र प्रातीय काग्रेस कमिटी की स्थापना का प्रश्न एक विचारणीय विषय था। गाधीजी ने इस आधार पर, कि मोटफर्ड सुधार-योजना जारी होने के बाद यह प्रश्न सुलझ सकता है, उसका विरोध किया। किंतु लोकमान्य तिलक का समर्थन प्राप्त होने के कारण अ. भा. काग्रेस कमिटी द्वारा इसे स्वीकृत कराने में मै कामयाब रहा।

१९१९ के दिसबर मे, अमृतसर में, मुझे गाधीजी की सपूर्ण अहिंसक कार्यपद्धति का उसके यथार्थ रूप मे दर्शन करने का सुअवसर मिला। १० अप्रैल को जनता ने स्थानीय नैशनल बैंक जला डाली थी, और इस अग्निकाड मे तीन या चार गोरो की भी मृत्यु हुई थी। जब विषय-निर्वाचिनी समिति ने लोगो के उक्त हिंसक कार्य के प्रति निषेध प्रदर्शित करने से इन्कार किया तब गाधीजी ने भी उसकी कार्यवाही मे भाग लेना अस्वीकार कर दिया, और समिति द्वारा अपने उक्त निर्णय में परिवर्तन किया जाने के बाद ही वे उसमे सम्मिलित हुए। लेकिन लोकमान्य द्वारा पेश किये गये एक अन्य प्रस्ताव के कारण गाधीजी की उनके साथ ख़ासी चखचख हुई। बाह्यत. उग्र प्रतीत होनेवाले उनके उक्त प्रस्ताव के शुरू के दो परिच्छेदो की तुलना मे उसका अतिम अश, जिसका रुख सहयोग की ओर था, कुछ असगतिपूर्ण मालूम हो रहा था। अत: मैंने एक सशोधन पेश करते हुए कहा कि तिलक के मसविदे का आख़री हिस्सा हटाकर वहाँ ये शब्द जोड़े जायँ :-"अतः काग्रेस मोटफर्ड-योजना नामजूर करती है।" "बिलकुल ठीक", अकस्मात खड़े होकर गाधीजी बोल उठे, "लोकमान्य, अगर आप आदमी है तो इसे मजूर करें।"

इसके कई वर्ष बाद, याने अप्रैल १९२९ की अपनी खादी-यात्रा के अवसर पर, मेरे घर से बिदा होते वक्त गाधीजी ने मुझसे पूछा: "निर्दोष जीवन व्यतीत करने के लिए प्रयत्नशील रहने की बात तो आप कहते हैं, लेकिन आपका लडका अपनी पत्नी के साथ, जिसकी उम्र मुश्किल से १२ साल की होगी, रहता जो है।" जवाबमे मैं बोला, "यह झूठ है!" "तो क्या वह लड़की आप ही के घरमे नही रहती?" वे पूछने लगे। "जी, वह खुद और उसके माता-पिता, दादी, बहनें आदि सभी लोग हमारे यहाँ ही हैं। वे इसी शहर मे रहते है और उनका मकान फर्लांग भर के फासले पर ही है। आप को नजदीक से देख सके इस हेतु ये लोग यहाँ आकर टिके हुए है।" सुन कर वे बोले, "अहा, यह बात है!" उन्हे जो गलत खबर मिली थी उसके लिए मुझे दुख हुआ, फिर भी वह कहाँ तक सच है यह जानने के हेतु उन्होने जो पूछताछ की उसके लिए मैंने उन्हे धन्यवाद ही दिया। यही गाधीजी की विशेषता है। किसी के भी बारे मे कोई अफवाह सुनते ही वे तुरत सबधित व्यक्ति से स्पष्टीकरण माँगते हैं, और उस स्पष्टीकरण को पूर्णतया सत्य मानकर ही चलते है।

१९२५ मे पटना मे गाधीजी ने काग्रेस को दो दलो मे बाट दिया; अर्थात् एक था कौसिल दल, और दूसरा, विधायक दल। अ. भा. काग्रेस कमिटी की बैठक मे इसका उल्लेख करते हुए वे बोले, "अब डा. पट्टाभी अपनी तीखी कलम पर अकुश लगा देगे।" मैं इसका आशय ताड़ गया। उसी बैठक में एक अन्य अवसर पर मैंने स्वराज्य-दल के विरुद्ध विश्वास-भग करने का अभियोग लगाया, जो सुनकर मोतीलाल और सत्यमूर्ति आपे से बाहर हो गये। मोतीलालजी तो चुटकी बजाकर गरज पडे– "मुझे काग्रेस की ज़रा भी पर्वाह नही है, मैं उससे अलग हो जाऊँगा।" गाधीजी उस वर्ष के राष्ट्रपति थे। उन्होने यह कहकर कि, "मैं आप की वक्तृता का प्रदर्शन नही चाहता," मुझे बोलने से रोक दिया। चुनाँचे उनके प्रति विनय प्रदर्शित कर मैंने अपना स्थान ग्रहण किया। इसके बाद कोई बीस मिनट तक गाधीजी मोतीलाल जी को उपदेश देते रहे, और बोले, "विद्वत्ता मे आप भले ही श्रेष्ठ होगे, किंतु यदि आप विनय से काम लेने मे चूके तो अपनी अहता के कारण अवश्य ही किसी जजाल में फँस जायँगे।" मोतीलालजी से उन्होंने आग्रह किया कि

वें मुझ से और साथ ही काग्रेस से क्षमा-याचना करे। वैसा ही उन्होने किया, मैं भी चद शब्द बोला, और मामला शात हो गया। दूसरे दिन प्रातः जब मैं गाधीजी से मिलने गया तब वे पूछने लगे, "मोतीलाल जी की क्षमा-प्रार्थना स्वीकार करते समय आप इतने उछल क्यो रहे थे?" सुन कर मैं निरुत्तर रह गया।

दिसबर १९२५ मे आयोजित कानपुर-काग्रेसके समय की बात है। गाधीजी का मौन-दिन था। जब मैं आज्ञा लेने के निमित्त उनसे मिलने गया तब उन्होने एक पुर्जे पर चद पक्तियाँ लिख कर वह मेरे हाथ मे थामा। लिखा था, "साबरमती–आश्रम मे महीना भर आ कर रहो।" असमर्थता प्रकट करते हुए मैंने कहा कि आश्रम मे प्रविष्ट होकर उसे दूषित करने की अपेक्षा दूर रह कर ही उसकी प्रशसा करना मुझे अधिक भाता है। सुन कर वे पूछने लगे, ऐसा क्यो? मैं बोला, "न तो तडके ४ बजे जग कर मैं प्रार्थना में शामिल हो सकूगा, और न मुझे अहमदाबाद का जाडा ही बर्दाश्त हो सकता है।" "प्रार्थना के बाद आप पुन. सो सकते है," उन्होने लिखित उत्तर दिया। किंतु मुझे वह जँचा नही, और बात वही खत्म हुई।

अप्रैल १९२९ मे गाधीजी ने आंध्र प्रात का दौरा निकाला और खादी-कार्य के लिए २,६३,००० रुपये इकट्ठा किये। इस दौरे के दरमियान, जब कि मसुलीपट्टण स्थित मेरे मकान पर वे टिके हुए थे, उन्होने मेरे कार्यों के बारे मे जिज्ञासा प्रकट की। मैंने उन्हे सब बाते विस्तार से बता दी। सुनकर उन्होने यह इच्छा प्रकट की कि मै आध्र प्रात का खादी-कार्य सँभालू। मैंने उन्हे अपनी कठिनाइयोंसे अवगत कराया। पूछने लगे "क्या 'जन्मभूमि' तो आपके मार्ग में बाधक नही हो रही है?" मैंने कहा, "उसके लिए तो मै सप्ताह में सिर्फ पाँच ही घटे खर्च करता हूँ। और फिर भी हजारो रुपयो का जो घाटा मुझे उठाना पड़ रहा है उसके कारण उसे बद करने की सोच रहा हूँ।" वे बोले, "ओह, यह तो आप अपने विज्ञापन पर खर्च कर रहे हैं!" स्वतः द्वारा उपरोक्त स्पष्टीकरण केवल चर्चित विषय के सदर्भ-स्वरूप दिया जानेपर भी गाधीजी ने मेरे प्रति जो अन्याय्य और अनुदार उद्गार प्रकट किये उनसे मुझे मर्मान्तक

वेदना हुई। आतरिक दुखका यह घूट चुपचाप पीकर मैं वहाँ से चल दिया, और मन ही मन यह कहकर, कि बड़े आदमियो से भी गलतियाँ होती हैं, मैंने आत्मसतोष कर लिया।

१९३५ मे एक सत्याग्रही, जो कि जेल-यात्रा कर चुका था, मुझसे मिलने आया और वर्धा का आश्रम देखने के लिए परिचय-पत्र माँगने लगा। मैंने झट दे दिया। स्टेशन पर एक दोस्त को अपने साथ ले चलने की उसे इच्छा हुई, जिससे उस दोस्त का नाम भी अपने उक्त पत्र में मैंने जोड दिया। पत्र मे उक्त उभय मित्रो को केवल वर्धा-आश्रम देखने देने की आज्ञा माँगी गई थी। किंतु इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप जब कहर-क्रोध से भरा गांधीजी का पत्र आया तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। लिखा था:

प्रिय डॉ पट्टाभी,

बिना किसी पूर्व-सूचना और बर्तन बिस्तरो के, दो नौजवानों को यहाँ भेज कर आपने मेरी परिस्थिति बहुत ही विषम बना दी है। अभी तो खुद हमारा ही यहाँ प्रबध नही हुआ है। हमारे गुजर-बसर का इतजाम होना अभी बाकी है। क्या किसी भी सस्था पर इस प्रकार एकदम से बोझ डालना उचित है? मान लो कि दूसरे लोग भी आपका अनुकरण करने लगे, तो मेरी क्या हालत हो जायगी?

अध्ययन के हेतु यहाँ आनेवालो के लिए अभी किसी भी प्रकार की व्यवस्था नही हुई है। सिखाने जैसा यहाँ कुछ है भी नही। मैंने उन मित्रों को रख लिया है और कह दिया है कि जिस तरह हम सब अपने अपने जिम्मेका काम पूरा कर मेहतर व मजदूरी के कामो मे भी हाथ बँटाते हैं उसी तरह आपको भी करना होगा। कृपया दुबारा आप ऐसा कोई कदम न उठावे।

यदि आप उनके घर मे या मित्रों से कुछ रुपये ले सकते हो तो उनके प्राथमिक खर्च और वापसी सफ़र के लिए भेज दें। आजकल आपका वक्त कैसे कट रहा है?

वर्धा, आपका

२-४-३५ मो. क. गांधी

पढकर मै दग रह गया। और इसके प्रायश्चित-स्वरूप मैंने तुरत मनीआर्डर-द्वारा बीस रुपये रवाना कर किसी को आश्रम देखने के लिए, न कि वहाँ रहने के लिए, स्वत द्वारा भेजे जाने के सबध मे उनसे माफ़ी माग ली। साथ ही अपने ,जीवन मे आज पहली ही बार उनकी उद्विग्नताके लिए कारणभूत हो जाने के सबध मे भी मैंने खेद प्रदर्शित कर अपने पूर्वोक्त पत्र के वास्तविक उद्दिष्ट पर प्रकाश डाला। इसके कोई चार-पाँच दिन बाद मुझे तसल्ली देने के लिए उन्होने लिखा:

' प्रिय डॉ. पट्टाभी,

दोनो नवयुवक यहाँ से तब तक वापस लौटने का नाम नहीं लेना चाहते जब तक कि आश्रमीय जीवन से वे ऊबते नही। यहाँ का भोजन, और जलवायु भी, उनके लिए अपरिचित है। अतः यदि सभव हो तो उनके मित्र पैसे भेज दें, ताकि आवश्यकता पडने पर उनके वापसी सफर और ओढना-बिछौना खरीदने के काम आ जायें। वे मीराबेन की देखभाल मे है।

वर्धा, आपका

८-८-३५ **मो. क. गांधी**

इस बीच मैं रुपये रवाना कर चुका था।

१९३६ में मैं अ. भा. प्रजा-परिषद् के कराची-अधिवेशन का अध्यक्षपद ग्रहण करने जा ही रहा था कि मुझे बगलोर मे गांधीजी और सरदार का बुलावा आया। अवश्य ही वह स्वीकार करना मेरे लिए असभव था। उन दिनों मेरी पत्नी और पुत्र दोनों बगलोर में ही थे। जब वे गांधीजी से मिलने गये तब उनकी मार्फत मुझे संदेसा भेज कर गांधीजी ने सूचित किया कि मैं बंगलोर आने से क्यों घबराया इसकी वजह अपने को मालूम है। उनका विनोद पूरी तौर से समझ न सकने के कारण मैंने निम्न स्पष्टीकरण लिख भेजा: " मैं इस विचार का हूँ कि सालभर में कम से कम एक बार अपनी पत्नी और बच्चों को स्वच्छद विचरने देना चाहिये। पति और पिता के नाते निरतर मेरी देखभाल करने का जो भार उन्हे उठाना पडता है वह उनके लिए कितना ही प्रिय होने पर भी मुझे उनकी इस

स्थिति पर दया आती है। अतः सोचता हूँ कि इससे उन्हे कुछ काल के लिए छुटकारा मिल जाय तो अच्छा ही है। अवश्य ही इससे यह न समझ लेना चाहिये कि पति और पिता के नाते काम लेने मे मैं कठोर हूँ; अपितु इसका केवल यही अर्थ है कि भले पति और पिता के लिए, इस साधारण नियम का पालन करना मेरे विचारानुसार उचित रहेगा। मेरा तो सदा से ही यह विचार रहा है कि स्त्रियो को आठो पहर पुरुषो की गुलामी का बोझ न ढोना चाहिये, और जब वे स्वतत्र रूपसे विचार करने लगती है तब उन्हे इसके लिए प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिये। अन्यथा, वे पुरुषो की पर्वाह न कर अपनी योजनाओ और निर्णयो को कार्यरूप दे डालेगी, जो कि पुरुषों को मानने ही पड़ेगे। इसी लिए जब मेरी पत्नी और बच्चो ने बगलोर मे गरमी विताने का खुद होकर निर्णय किया तब उस निर्णय के अनुसार चलने के लिए उन्हे स्वतत्रता प्रदान करना मुझे उचित जँचा।" इसके उत्तर-स्वरूप गाधीजीने केवल इतना ही लिखा:

प्रिय डॉ पट्टाभी,

आपका लडका है तो बहुत मेधावी,-ठीक अपने पिताकी तरह; किंतु ऐसा लगता है कि मेरा पूरा मजाक आप तक पहुँचाने में वह सफल नही रहा। बात यू हुई कि आपकी श्रीमतीजी को एड़ी से चोटी तक सजीधजी देखकर मै बोल उठा, "अब मैं जान गया कि आपके पिता बगलोर आने से क्यो डरे। इसीलिए न कि इस गवारूपन का पाप माता की अपेक्षा पिताके कन्धोपर अधिक है?" अब इस मजाक का आप चाहे जितना गभीर अर्थ ले सकते है। आपकी विचारधारा से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। स्त्रियो और वयस्क बच्चो को अपने पतिओ और पिताओ से छुटकारा तो मिलना ही चाहिये।

सेगाँव, वर्धा, आपका

२२-६-३६ **मो. क. गांधी**

गाधी सेवा-सघ के वार्षिक अधिवेशन, उसके विसर्जन के पूर्वतक, भारत के भिन्न भिन्न स्थानो पर हर वरस होते रहे। सघ का सन् ३८ का अधिवेशन कटक के पास डेलाँग में हुआ। मैं उसमे उपस्थित था और एक दिन गाधीजी से मिलने गया। उस समय जो चदरा मैंने ओढ रखा

था वह एक जगह फटा हुआ था। उनके दर्शन से लौटकर मैं अपना स्थान ग्रहण करने जा ही रहा था कि मुझे उनका एक पुर्जा मिला। लिखा था: "आपके चदरे में जो एक मोटासा छेद है उसकी मैं प्रशसा नही कर सकता। यह तो पत्नी न होने, खराब पत्नी होने, या आलस्य का चिन्ह मात्र है।" मैंने अविलंब उत्तर दिया, "मै तो इस दुशाले को दो तौलियो मे बाँटने की फिक्र मे हूँ। सोचता हूँ कि फिर हरेक तौलिये से दो-दो तकियो के खोल, यथासमय उनसे दो-दो रूमाल, और आखिर उन रूमालो से बच्चो के वस्त्र बनवाकर ही दुशाले का पिंड छोडा जाय!"

१९३८ मे हरिपुरा मे गाधीजी ने रियासती प्रजा की समस्या पर विचार-विनिमय करने के हेतु मुझे निमत्रित किया। आखिर इस सबध मे समझौता होकर मैं पुन. काग्रेस की कार्यकारिणी में शामिल कर लिया गया। १९३८ के दिसबर मे वार्डोली मे काग्रेस-कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। उक्त बैठक मे, जैसा कि बाद मे मुझे मालूम हुआ, यह निर्णय किया गया कि त्रिपुरी-अधिवेशन का अध्यक्षपद ग्रहण करने के लिए मौलाना आजाद से प्रार्थना की जाय। तदनुसार वे इस से सहमत भी हुए। उनके वार्डोली से विदा हो जाने के बाद मैं गाधीजी से मिलने गया, और आध्र प्रातीय काग्रेस के आवश्यक कार्यवश लौटने की इच्छा मैंने प्रकट की। उस वक़्त मैं गाधीजी द्वारा वार्डोली में क्यो रोक रखा गया हूँ इससे बिलकुल अनभिज्ञ था। आखिर रात के कोई ८॥ बजे उन्हाने मुझे बुला भेजा और पूछा, "क्या सरदार की आपके साथ कुछ बातचीत हुई?" मेरे "ना" कहने पर वे बोले, "अगर मौलाना राजी न होते तो यह काँटो का ताज मै आप के सर पर रखना चाहता था। लेकिन खुशकिस्मती से कल सुबह ही उन्होने अपनी मजूरी दे दी है।" "यह काँटो का ताज आप भले ही किसीके सरपर रखें, लेकिन दरअसल वह है तो आप ही के सर पर," मैंने जवाब दिया, और वार्डोलीसे चल पड़ा। इसके बाद की कहानी बहुत दिलचस्प है। मौलाना ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली, और उसके लिए मुझसे आग्रह करने लगे। इसी हालत में, याने अपने सर पर चक्कर काटने वाले इस अनचाहे ताज के साथ, मैं अभी घर पहुँचा ही था कि मुझे वार्डोली लौटने सबधी तार मिला।

स्थिति पर दया आती है। अत सोचता हूँ कि इससे उन्हे कुछ काल के लिए छुटकारा मिल जाय तो अच्छा ही है। अवश्य ही इससे यह न समझ लेना चाहिये कि पति और पिता के नाते काम लेने मे मैं कठोर हूँ, अपितु इसका केवल यही अर्थ है कि भले पति और पिता के लिए, इस साधारण नियम का पालन करना मेरे विचारानुसार उचित रहेगा। मेरा तो सदा से ही यह विचार रहा है कि स्त्रियो को आठो पहर पुरुषो की गुलामी का बोझ न ढोना चाहिये, और जब वे स्वतंत्र रूपसे विचार करने लगती है तब उन्हे इसके लिए प्रोत्साहन प्रदान किया जाना चाहिये। अन्यथा, वे पुरुषो की पर्वाह न कर अपनी योजनाओ और निर्णयो को कार्यरूप दे डालेगी, जो कि पुरुषों को मानने ही पडेगे। इसी लिए जब मेरी पत्नी और बच्चो ने बंगलोर मे गरमी बिताने का खुद होकर निर्णय किया तब उस निर्णय के अनुसार चलने के लिए उन्हे स्वतंत्रता प्रदान करना मुझे उचित जँचा।" इसके उत्तर-स्वरूप गांधीजीने केवल इतना ही लिखा.

प्रिय डॉ पट्टाभी,

आपका लडका है तो बहुत मेधावी,-ठीक अपने पिताकी तरह; किंतु ऐसा लगता है कि मेरा पूरा मजाक आप तक पहुँचाने मे वह सफल नही रहा। बात यू हुई कि आपकी श्रीमतीजी को एडी से चोटी तक सजीवजी देखकर मै बोल उठा, "अब मै जान गया कि आपके पिता बंगलोर आने से क्यो डरे। इसीलिए न कि इस गवारूपन का पाप माता की अपेक्षा पिताके कन्धोपर अधिक है?" अब इस मजाक का आप चाहे जितना गभीर अर्थ ले सकते है। आपकी विचारधारा से मैं पूर्णतया सहमत हूँ। स्त्रियो और वयस्क बच्चो को अपने पतिओ और पिताओ से छुटकारा तो मिलना ही चाहिये।

मगाँव, वर्धा,
२२-६-३६

आपका
मो. क. गांधी

गांधी सेवा-संघ के वार्षिक अधिवेशन, उसके विसर्जन के पूर्वतक, भारत के भिन्न भिन्न स्थानों पर हर बरस होते रहे। संघ का सन् ३८ का अधिवेशन कटक के पास डेलॅग में हुआ। मैं उसमें उपस्थित था और एक दिन गांधीजी से मिलने गया। उस समय जो चदरा मैंने ओढ रखा

था वह एक जगह फटा हुआ था। उनके दर्शन से लौटकर मैं अपना स्थान ग्रहण करने जा ही रहा था कि मुझे उनका एक पुर्जा मिला। लिखा था: "आपके चदरे मे जो एक मोटासा छेद है उसकी मैं प्रशसा नही कर सकता। यह तो पत्नी न होने, खराव पत्नी होने, या आलस्य का चिन्ह मात्र है।" मैंने अविलंब उत्तर दिया, "मैं तो इस दुशाले को दो तौलियो मे बाँटने की फिक्र मे हूँ। सोचता हूँ कि फिर हरेक तौलिये से दो-दो तकियो के खोल, यथासमय उनसे दो-दो रूमाल, और आखिर उन रूमालो से बच्चो के वस्त्र बनवाकर ही दुशाले का पिंड छोडा जाय!"

१९३८ मे हरिपुरा मे गाधीजी ने रियासती प्रजा की समस्या पर विचार-विनिमय करने के हेतु मुझे निमत्रित किया। आखिर इस सबध मे समझौता होकर मैं पुन काग्रेस की कार्यकारिणी में शामिल कर लिया गया। १९३८ के दिसबर मे वार्डोली मे काग्रेस-कार्यकारिणी की एक बैठक हुई। उक्त बैठक में, जैसा कि वाद मे मुझे मालूम हुआ, यह निर्णय किया गया कि त्रिपुरी-अधिवेशन का अध्यक्षपद ग्रहण करने के लिए मौलाना आजाद से प्रार्थना की जाय। तदनुसार वे इस से सहमत भी हुए। उनके वार्डोली से विदा हो जाने के वाद मैं गाधीजी से मिलने गया, और आध्र प्रातीय काग्रेस के आवश्यक कार्यवश लौटने की इच्छा मैने प्रकट की। उस वक्त मैं गाधीजी द्वारा वार्डोली में क्यो रोक रखा गया हूँ इससे बिलकुल अनभिज्ञ था। आखिर रात के कोई ८॥ बजे उन्होंने मुझे बुला भेजा और पूछा, "क्या सरदार की आपके साथ कुछ बातचीत हुई?" मेरे "ना" कहने पर वे बोले, "अगर मौलाना राजी न होते तो यह काँटो का ताज मैं आप के सर पर रखना चाहता था। लेकिन खुशकिस्मती से कल सुवह ही उन्होने अपनी मजूरी दे दी है।" "यह काँटो का ताज आप भले ही किसीके सरपर रखें, लेकिन दरअसल वह है तो आप ही के सर पर," मैंने जवाव दिया, और वार्डोलीसे चल पड़ा। इसके वाद की कहानी वहुत दिलचस्प है। मौलाना ने अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली, और उसके लिए मुझसे आग्रह करने लगे। इसी हालत में, याने अपने सर पर चक्कर काटने वाले इस अनचाहे ताज के साथ, मैं अभी घर पहुँचा ही था कि मुझे वार्डोली लौटने सबधी तार मिला।

वहाँ पहुँचने पर मुझसे कहा गया कि मैं अपनी उम्मीदवारी के सबध में एक वक्तव्य तैयार कर लूँ। सो मैंने तैयार कर लिया। उक्त वक्तव्य मे गाधीजी ने एक परिच्छेद जोड दिया, जिसमे कहा गया था कि, "यदि मैं चुन लिया गया तो यही समझूँगा कि रियासती प्रजा की स्वतः द्वारा हुई सेवा की जनता ने उचित कद्र की है।" इस सबध मे मै यहा केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि उक्त परिच्छेद के जोड़े जाने से मैंने अत्यधिक सतोष अनुभव किया। इसका एक सबल कारण यह था कि रियासतों की समस्याओ में हाथ डालते समय न तो मैंने किसी से सलाह ली थी, और न किसी ने मेरे इस प्रयास की सराहना ही की थी। रही बात 'काँटो के ताज' की। इस विषय मे 'जन्मभूमि' के ता. १२-१०-२९ के अक मे मैंने लिखा था. "इन चर्चाओ के समय यह 'काँटों का ताज' वस्तुतः उन्ही के (गाधीजी के) मस्तक पर था, और उसमें अक्षरशः कीलें भी जड़ी जा चुकी थी।"

काग्रेस-कार्यकारिणी की १४ जुलाई १९४२ की कुछ लम्बी और सघर्षपूर्ण बैठक समाप्त हुई थी। सकट पार किया जा चुका था। जो निर्णय हुआ वह अत्यत महत्वपूर्ण था। कार्यकारिणी के सदस्य गाधीजी से आज्ञा ले रहे थे। मैं भी उनसे आज्ञा लेने लगा। किंतु सभी सदस्यो की उपस्थिति में ही वे बोले, "आप भी जाना चाहते है? अभी तक तो हम परस्पर से मिलने भी न पाये हैं यह आप जानते हैं ना?" जवाब में मैं बोला, "अगर आप चाहते हो तो ठहर जाऊँगा।" सुनकर गाधीजी गुस्सा हुए और रूखेपन से बोले, "अगर आप खुद चाहे तो ही ठहर सकते है, वर्ना मैं तो आपको ठहरने के लिए नही कहता।" वैसे मैंने उन्हे कई बार कहर-क्रोध करते देखा या सुना है। किंतु आज का अवसर सब से बढ़कर था। यह कड़वी गोली मैं निगल गया, सफ़र का विचार छोड़ दिया, और अगले दिन उनसे भेंट करने के हेतु वर्धा ठहरा। अगले दिन जो कुछ हुआ वह राजनीति का एक अध्याय बन गया है, और वह इतना ताजा है कि इतिहास या सस्मरणों में उसे शुमार नही किया जा सकता।

मसुलीपट्टम,
१८-१०-१९४५

दक्षिण अफ्रीका के कुछ संस्मरण

हेन्री एस्. एल्. पोलैक

गाधीजी से मैं पहले-पहल १९०४ ई में जोहन्सवर्ग मे मिला। इससे कुछ ही दिन पूर्व मैंने 'ट्रान्सवाल क्रिटिक'' क सपादकीय विभाग मे कार्यभार ग्रहण किया था। उस समय तक मुझे दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयो के अस्तित्व का, जो कि एक महत्वपूर्ण जमात थी, कुछ भी ज्ञान नही था। हमे परिवर्तनार्थ प्राप्त होनेवाले 'इडियन ओपीनिअन' के पढनेसे यह ज्ञान मुझे मिला। इस पत्र का सपादन गाधीजी द्वारा न होने पर भी उसके सचालन मे अधिकतर उन्हीका हाथ था। उक्त पत्र मे भारतीय सस्कृति, इतिहास एव राजनीतिक घटनाओ सबधी महत्वपूर्ण जानकारी रहती थी। साथ ही इसमें दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयो की राजनीतिक शिकायतो की भी जोरदार चर्चा रहती थी। कुछ ही दिन बाद जोहन्सवर्ग के उस हिस्से में, जहाँ कि भारतीय बसे हुए थे, प्लेग का प्रकोप हो गया। उस समय जोहन्सवर्ग की जनता में भारतीयो के नेता के नाते प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले गाधीजी ने स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी के स्वास्थ्य-अधिकारी को समाचार-पत्रो द्वारा खूब खरीखोटी सुना दी। उनका यही कहना रहा कि गोरे नागरिको की भाँति भारतीयो से भी सभी प्रकार के टैक्स वसूल करने के बावजूद स्थानीय म्यूनिसिपैलिटी ने उन्हे मताधिकार से वचीत रखकर उनका जो बहिष्कार किया है उसी के दुष्परिणाम-स्वरूप प्लेग का प्रकोप हुआ है। यह दलील मुझे सयुक्तिक जँची। अत एक सच्चे पत्रकार के नाते उनसे भेट कर स्थानीय भारतीय एव उनकी आवश्यकताओ के बारे मे मैंने अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहा।

इससे कुछ ही दिन पूर्व, निरामिष आहार विषयक टालस्टाय की विचारप्रणाली का अवलब कर, मैंने शाकाहारी भोजनालय में जाना शुरू किया था। एक दिन एक दोस्त के सग उक्त भोजनालय में मेरे पहुँचते ही उसने मेरा ध्यान गाधीजी की ओर आकृष्ट किया। वे अकेले ही बैठे

थे, और प्रसन्नचित्त दिखाई पड़े। अपने पेशे के अनुरूप उनकी काली पगड़ी और साँवली काया के अलावा उनमे कोई विशेष रूप से चित्ताकर्षक वात मुझे नजर न आई। अवश्य ही इस शाकाहारी भोजनालय मे उन्हे देखकर उनसे भेंट करनेकी मेरी लालसा और अधिक बढ गई। किंतु यह व्यक्ति, जिसकी ओर कि मै एकटक देख रहा हूँ, आगे चलकर अपने समय का सर्वप्रसिद्ध पौर्वात्य पुरुष बनेगा इसकी उस समय मुझे ज़रा भी कल्पना नही थी।

चद दिन बाद मैंने एक दूसरे शाकाहारी भोजनालय की मालकिन से, जिसके यहाँ कि मै अक्सर जाया-आया करता था, इस दिलचस्प व्यक्ति से भेट करने की इच्छा प्रकट की। यह मेरे लिए सौभाग्य का दिन था। वह झट बोली, "यह तो सरल बात है। आप कल रात मेरे यहाँ चाय पीने आइये। वे रोज यहाँ आया करते है। मै जरूर उनसे आपका परिचय करा दूँगी।" तदनुसार हम मिले, और इस मुलाकात ने हम दोनो के ही जीवन की धारा बदल दी। बाद मे उनके निकट सपर्क मे आने पर ज्ञात हुआ कि एक निष्ठावत शाकाहारी होने के कारण उक्त उभय भोजनालयो के सचालको की उन्होने काफी आर्थिक सहायता की थी, और फिर भी जब उनके बद करने की नौबत आई तब उन्हे भारी घाटा उठाना पडा।

यह एक विचित्र बात है कि उनसे मेरा वास्तविक परिचय पत्रकार के रूप मे न हो कर प्राकृतिक चिकित्सा के विद्यार्थी के नाते हुआ। उनसे मिलनेवाला मैं ही एक ऐसा व्यक्ति था कि जिसने एडाल्फ जस्ट नामक लेखक की 'रिटर्न टु नेचर' पुस्तक पढ़ ली थी। यह ज्ञात होने पर उन्होने अपनी दोनो भुजाएँ फैलाकर मेरा स्वागत किया, और फिर इससे सबधित अन्यान्य विषयो पर देर तक हमारी बाते होती रही। मेरा शाकाहारी होना उन्हे बहुत पसद आया, और स्वय अपनी ही तरह मैं भी टाल्स्टाय का अनन्य प्रशसक हूँ यह जानकर उन्हे अत्यधिक प्रसन्नता हुई। कहने लगे, "मेरे घर उनकी लिखी हुई पुस्तको से एक पूरा दराज़ ही भरा पड़ा है। कभी आकर देख जाना।" इस हार्दिक निमत्रण से लाभ उठाने के हेतु मैंने मुलाकात के लिए उनसे

वक्त मॉगा। भारत की समस्याओ के वारे मे मैं उनसे अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता था, और साथ ही उन्हे एक वात की, जो कि लबे अर्से से अपने मस्तिष्क मे चक्कर काट रही थी, सूचना देने की मेरी इच्छा थी।

उन दिनो वे ट्रान्सवाल की हाईकोर्ट में एटर्नी के तौरपर प्रैक्टिस कर रहे थे। एक बैरिस्टर होनेपर भी उन्होने कानूनी पेशे की एक ऐसी शाखा चुन ली थी कि जिससे गरीव मुवक्किलो से अपना सीधा सपर्क स्थापित हो सके। उनके साथी-वकील और जज-महोदय उनका बहुत आदर करते थे। अपने किसी मुवक्किल के विरुद्ध, फीस अदा न करने के अभियोग मे, उन्होने कभी कानूनी कार्यवाही नही की; और मुवक्किल को बगैर यह पूर्वसूचना दिये, कि अगर उसके केस मे जरा भी झूठापन नजर आया तो खुद को उसकी पैरवी वद कर देनी पडेगी, किसी मुकदमे मे उन्होने कभी हाथ नही डाला।

एक ऐसे ही मौके पर मैंने उन्हे अदालत से क्षमा-याचना कर पैरवी का काम अधूरा छोड कर चले जाते देखा है। जब कोई मामला आपसी समझौते द्वारा तय होने की सभावना दिखाई पडती थी तव वे अपने मुवक्किल से अनुरोध करते थे कि इसी मार्ग का अवलब कर अदालती कार्यवाही मे अनावश्यक रूप से होनेवाले व्यय से वचा जाय। उस आदमी का मामला भी, जिसके निमित्त वस्तुत दक्षिण अफ्रीका में उनका आगमन हुआ था, उन्होने इसी भाँति तय किया। स्मरण रहे कि अनतर उन्होने वकालत छोड कर 'किसान' का पेशा अख्तियार किया। इसमे उनके दो उद्देश्य थे। एक तो यह, कि सार्वजनिक सेवा के लिए स्वत को समर्पित करने के निमित्त 'सादा जीवन' विताने मिले; और दूसरा, अहिसा विषयक अपनी श्रद्धा के प्रति पूर्णतया प्रामाणिक रहने के हेतु जीवन-निर्वाह के एक ऐसे साधन से नाता तोड लिया जाय कि जिसमे अतत अदालत की डिक्री लागू करने के लिए पुलिस याने पाशविक वल का सहारा लेना पडता है।

जिस वक्त उनसे हमारी पहली मुलाकात हुई उस वक्त उनका परिवार भारत मे होने के कारण वे अपने आफिस के पिछवाड़े में एक छोटेसे

कमरे मे रहते थे। इसके कुछ ही दिन बाद वहाँ सपरिवार बस जानेपर उन्होने अपने घर मे मेरे रहने का भी प्रबध कर लिया, जिससे उनके निकट सपर्क मे आनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

मुलाकात के लिए निश्चित किया हुआ दिन आनेपर अपने कार्यालय मे उन्होने मेरा स्वागत किया। वहाँ विराजते ही मै अपने इस मेजवान के चहुँ ओर की परिस्थिति का काल्पनिक चित्र खीचने मे मग्न हो गया। मै उसके साथ इतना अधिक एकरूप हो गया कि आज भी मेरे स्मृतिपट पर वह ज्यो का त्यो अकित है। उनकी मेज के ऊपर ईसा मसीह की एक सुदर और प्रशस्त प्रतिमा दिखाई पडी। इससे उनकी सहानुभूति का स्रोत, अशतः ही क्यो न हो, किस दिशा मे बह रहा है इसका मुझे तुरत पता चल गया। वे हिंदू हैं यह बात पहलेसे ही ज्ञात होनेपर भी मैने अविलब ऐसा अनुभव किया कि धर्म विषयक उनकी वृत्ति सहिष्णु है। दीवार पर एक ओर उनकी राजनीतिक प्रवृत्ति के प्रतीक-स्वरूप दादाभाई नौरोजी और रानडे की, एव दूसरी ओर उनके राजनीतिक गुरु गोखले की प्रतिमाएँ टँगी हुई थी। यदि अपनी स्मृति मुझे धोखा न देती हो तो मै कहूँगा कि वहाँ टालस्टाय की भी एक सुदर तस्वीर थी। उनकी कुर्सी के पास ही के छोटेसे किताब-खाने मे मेरी परिचित पुस्तको की कई जिल्दे थी, किंतु शेष कई मेरे लिए बिल्कुल नई थी। बाइबल्, अर्नोल्ड की भगवग्दीता, एव टालस्टाय की रचनाएँ वहाँ सिलसिलेवार रक्खी हुई थी। अधिकाश पुस्तके अहिसा विषयक थी। प्रो० मैक्स मूलर की 'इडिया वॉट कैन इट टीच अस?' नामक पुस्तक की भी एक प्रति वहाँ दिखाई दी, जो झट मैने पढने के लिए माँग ली।

भारतीय शिष्टाचार की परपरा के अनुरूप ही गाधीजी ने मेरा स्वागत किया। उन्होने बातचीत की शुरुआत शात और सयत ढग से की। किंतु दक्षिण अफ्रीका स्थित भारतीयो को जिन कठिनाइयो और असमर्थताओ से गुज़रना पड रहा था उनका वर्णन करते समय वे आवेश में आ गये। किस तरह इन भाइयो ने लगभग आधी शताब्दी तक अत्यधिक परिश्रम एव मजदूरी सबधी अपमान जनक इकरार-नामे का पालन कर नेटाल को आर्थिक विनाश से बचाया है आदि बात वे बताने

लगे। विशेप कर मजदूरी संबंधी अपमानास्पद इकरार-नामे के कारण वे अत्यत व्यथित दिखाई दिये। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि इस प्रणाली की समाप्ति के लिए में यथासंभव अधिक से अधिक प्रयत्न करूँ। उनका उपदेश मेरे चित्त में गहरा पैठ गया। तब से लगातार दस साल, याने लार्ड हार्डिज के जमाने में उक्त प्रणाली का पूर्णतया अंत होने के दिन तक, गाधीजी के नेतृत्व मे इस दिशा में मै कार्य करता रहा।

उन शुरू के दिनो में शीघ्र गति से बोलते समय गांधीजी एक विचित्र प्रकार का सकोच अनुभव करते रहे। बातचीत के बीच जब वे उचित शब्द—योजना के लिए चेष्टा करते थे तब उनके मुंहसे हलकी सी सिसकार निकलती थी। बाद में उनसे अपनी घनिष्ठता होने पर मैंने इस त्रुटि की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया। और उन्हे यह सलाह दी कि सार्वजनिक स्थान पर के अपने भापणों में वे इसे अवश्य सुधार ले, ताकि श्रोताओं का ध्यान भापण के मुख्य मुद्दोपर से विचलित न हो। उन्होंने तत्परता से यह सलाह मान ली और शीघ्रही वे इस दोप से मुक्त हो गये।

हमारे आपसी वार्तालाप में कईएक भारत-विरोधी व्यक्तियों का उल्लेख होनेपर भी मैंने उन्हे कभी किसीपर व्यक्तिगत आक्षेप लगाते, या किसी के प्रति कहर-क्रोध करते नही देखा। शीघ्र ही मुझे पता चल गया कि प्रत्येक प्रकार की हानिप्रद कृति और नीति से उन्हे चीढ होने पर भी व्यक्तिद्वेप से वे सर्वथा मुक्त हैं। भारतीय मसला उनके लिए एक वैसी ही मानव-समस्या थी, जैसी कि अन्य अनेक समस्याएँ। अपने वर्ण और वंश के कारण उन्हे कई बार मानहानि सहनी पड़ी थी। फिर भी ऐसे अपमानास्पद अवसर पर, या बादमे भी कभी, उनके वचन या स्वर मे मुझे ज़रा भी कटुता नज़र न आई। इसी लिए वे चद यूरोपियन, जो कि एक व्यक्ति के नाते उन्हे भली भाँति जानते थे, उनकी आत्मसयमी वृत्ति की भूरि भूरि प्रशसा करते थे। उनका स्वभाव इतना सरल, स्नेहपूर्ण एव उपद्रवशून्य था कि उनसे निकट संपर्क स्थापित करने में कभी किसी को दिक्कत न मालूम होती थी। किंतु स्मरण रहे कि राजनीतिक चातुर्य और आध्यात्मिक सूक्ष्मता से युक्त उनकी बुद्धिमत्ता प्रायः उनके निकटतम सहयोगियो को भी चक्कर में डाल देती थी।

यथासमय मैंने उन्हे यह सूचित किया कि उनके द्वारा सपादित 'इडियन ओपीनियन' पत्र पढते रहने के कारण भारत की राजनीतिक समस्याओ मे मैं अधिकाधिक दिलचस्पी लेने लगा हूँ, और अपने खुद के पत्र की इस विषयक नीति से सहमत न होने की बात पत्र-सपादक को बताने पर उसने वश और वर्ण विषयक पत्र की नीति का समर्थन न करनेकी छूट उदारतापूर्वक मुझे दे रखी है। जैसे ही यह बाते मैंने गाधीजी को बताई वे प्रसन्नता से फूल उठे, और मैंने खुद होकर जो कदम उठाया था उसके लिए उन्होंने मुझे हार्दिक बधाई दी। मैंने उन्हे यह भी बता दिया कि प्लेग के प्रकोप के सबध मे मेडिकल अफसर के साथ समाचार-पत्रो द्वारा उनका जो वाद-विवाद हुआ था उसमे उनकी ओर से उपस्थित की गई बातो से मैं सहमत हूँ। फलतः उन्होने इस विषयक ऐसी और कई बाते मुझे विस्तारपूर्वक बता दी जो कि समाचार-पत्रो मे प्रकाशित नही हुई थी। किंतु इस समग्र वार्तालाप मे उन्होने भूल से एक शब्द भी उस खतरे के बारे मे नही निकाला जो कि प्लेग-ग्रस्तो की सेवा करने मे उन्होने उठाया था। वे सब बाते तो बाद मे मुझे मालूम हुई। अवश्य ही अपने देशवासियो द्वारा की गई सेवाओ और आत्मत्याग सबधी बहुतसारी बातो का उन्होने उल्लेख किया।

अनतर लेखक के नाते अपनी सेवाएँ उनके पत्रके लिए अर्पित करने की इच्छा मैंने प्रकट की। इस प्रकार उनके पत्रके साथ मेरे सपादकीय सहयोग का श्रीगणेश हुआ, जो कि लगभग बारह बरस याने दक्षिण अफ्रीकासे अपने बिदा होनेके दिनतक कायम रहा।

इस सपादकीय सहकार्य के शुरू के दिनो का एक मजेदार अनुभव याद आता है। दक्षिण अफ्रीकन रिपब्लिक के भूतपूर्व अध्यक्ष पाल क्रेगर का यूरोप मे देहावसान हो गया था। हिटलर की भाँति इन महाशय का भी यही कहना था कि काले आदमियो की कीमत बुद्धिमान् बदरों से अधिक न होनेके कारण उन्हे गोरो की बराबरी नहीं मिलनी चाहिये। उनके मृत अवशेष प्रिटोरिया मे दफ्नाने के लिए दक्षिण अफ्रीका लाये गये थे। 'इडियन ओपीनियन' के लिए उक्त शव-यात्रा की रिपोर्ट तैयार करनेका काम मुझे सौंपा गया था। अपने पत्र के मुद्रण-दोषो मे

अवगत होने के कारण मैंने गाधीजी से विशेष रूपसे यह प्रार्थना कर रखी थी कि वे मेरी रिपोर्ट छपने से पहले उसके प्रूफ स्वय दुहरा जावे। सो उन्होंने कबूल भी किया। उन दिनो अपनी 'शैली' का मुझे कुछ गर्व सा था। अपनी रिपोर्ट की शुरूआत मैंने इस तरह की थी—"He is dead and buried" अर्थात्—"उनकी इहलीला समाप्त हुई है और वे कब्र मे सदा के लिए सुला दिये गये है।" सोचता था कि यह प्रभावशाली रहेगा। किंतु जब अक छप कर हाथ में आया और पढा— "He is dead and burned"–अर्थात् "उनकी इहलीला समाप्त हुई है और उनका दाह-सस्कार कर दिया गया है," तब मैं कैसे हक्का बक्का रह गया हूँगा इसकी आप ही कल्पना कीजिये। झट इसकी शिकायत करते हुए मैंने उन्हे लिखा की आपने अपना वादा पूरा नही किया। साथ ही मैंने इस ओर भी सकेत कर दिया कि यदि किसी कट्टर बोअर की इस रिपोर्ट पर नजर पडी तो वह क्रोध और द्वेष से आग बबूला हो जायगा, जो कि भारतीयो के हित की दृष्टि से ठीक न रहेगा। मैं नही समझता कि किसी बोअर ने उक्त रिपोर्ट पढी होगी, किंतु गाधीजी की ओर से तुरत सविनय क्षमा–प्रार्थना पत्र प्राप्त हुआ। स्पष्टीकरण–स्वरूप उन्होंने मुझे सूचित किया था कि वस्तुत वचनानुसार सारा प्रूफ स्वय पढ जानेपर भी उसम उल्लिखित 'Burned' शब्द अपनेको, एक हिंदू होने के कारण, जरा भी अखरा नही और बिल्कुल स्वाभाविक जँचा।

उनके पत्रकार–व्यवसाय में उनसे अपनी घनिष्ठता स्थापित होने-पर स्वत के उत्तरदायित्व के प्रति उनकी सतर्कता एव वादविवाद के समय वस्तुस्थिति का विपर्यास न होने देने सबधी उनकी सावधानी मुझे देखने मिली। मेरे लेखो, विशेष कर वशभेद के कारण भारतीयो को जो कष्ट सहने पड रहे थे उनके सबध में की जानेवाली आलोचनाओ, की भाषा अपेक्षाकृत अधिक कटु और आवेशयुक्त होती थी। ऐसे ही एक प्रसग पर मुझे समझाते हुए वे बोले कि इस प्रकार की अत्युक्ति द्वारा सस्ती और दिखावटी पत्रकार–कला के वशीभूत होने की अपेक्षा मेरे लिए यह कही अधिक अच्छा होगा कि मैं लदन टाइम्स की सयत और वस्तु-

निष्ठ लेखन–पद्धति का अनुकरण करूँ। इससे आत्मानुशासन का, जिसकी कि इस क्षेत्रमे काम करनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यकता है, अभ्यास हो जायगा और परिणामत वह हितप्रद रहेगा। तबसे मैंने उनकी इस उत्तम सलाह के अनुसार ही चलनेकी चेष्टा की है।

उन दिनो आज की तरह सजीव और सूत्रमय अगरेजी पर गाधीजीका प्रभुत्व नही था। अक्सर उन्हें जल्दबाजी में लिखना पडता था और इसमे भी कार्याधिक्य के कारण बाधा पहुँचती रहती थी। इससे कभी कभी उनके लेखो की भाषा मुझे असाहित्यिक प्रतीत होती थी। ऐसे ही एक प्रसग पर सपादकीय गभीरताका स्वाँग भरते हुए मैंने उनसे कहा, "जबतक आप अपनी 'कापी' फिरसे नकल नही कर लेते तबतक मैं इसे छपनेके लिए नही दे सकता।" वे कर लाये,–झिलमिलाती हुई आँखो से और अदबके साथ। गजबके वे मजाकिया थे।

मैंने गाधीजी को सदैव इस बात पर जोर देते हुए पाया कि हरेक व्यक्ति को अपने दृढ विचारानुसार ही चलना चाहिये, फिर ये विचार चाहे आध्यात्मिक हो, या राजनीतिक। १९१०–११ मे मेरे नाम भेजे गये एक पत्र मे वे लिखते है "अपने विचार-स्तर को गिरने न दें; अन्य सब बाते यथासमय पूरी हो जाएँगी।" इसी प्रकार एक दिन दूसरे की स्वतत्र मनोवृत्ति के प्रति उनकी सद्‌भावना की प्रतीति मिली। ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयो की स्थिति सबधी दक्षिण अफ्रीका के किसी पत्रकार का एक लेख एक विख्यात अगरेजी पत्र मे प्रकाशित हुआ था, जो कि गभीर स्वरूप की असत्य उक्तिया से भरा हुआ था। पश्चात् ज्ञात हुआ कि वह हेतुपुरस्सर नही लिखा गया है। किंतु उस समय मुझे ऐसा लगा कि यदि इन असत्य बाता का अविलब और अधिकृत रूप से खडन नही किया जाता तो इससे ट्रान्सवाल-निवासी भारतीयो की समस्या के सबध में इग्लेंड में अनेक गलतफहमियाँ पैदा होकर, ट्रान्सवाल की शासन-व्यवस्था इग्लेडके ही नियत्रण में होनेसे, अतत उक्त समस्या के समाधान मे बडी भारी बाधा उपस्थित होगी। यह सारी बात मैंने आग्रहपूर्वक गाधीजी से निवेदन की। किंतु मेरी दलीलो से वे अप्रभावित दिखाई दिये। फलतः अत्यत निराश होकर मैंने सारा दिन पाषाण-शाति में काटा। गाधीजी

चुपचाप यह सब देखते रहे। फिर मुझे बुलाकर पूछने लगे कि क्या माजरा है? कुछ रुखाई से मैंने जवाब दिया कि दरअसल यह सवाल आपही से संबध रखता है, अतः आप ही इसका निर्णय करें। सुनकर मुझे सलाह देते हुए सौम्य स्वर में वे बोले, "यदि उक्त लेख की बातें आपको इतनी अधिक चुभी हो तो यही उचित रहेगा कि स्वय आप ही उनके खडनस्वरूप प्रतिलेख लिख कर भेज दे।" तदनुसार मैंने लेख भेज दिया, जो कि शीघ्र ही लदन में प्रकाशित हुआ। अनतर वह भारत के समाचार-पत्रो मे भी पुनर्मुद्रित हुआ। सर्वप्रथम इस लेख के कारण ही भारतीय जनता से मेरा सीधा सपर्क स्थापित हुआ। इतना ही नही बल्कि शीघ्र ही एक भारतीय समाचार-पत्र ने इस विषयक अन्य लेख की मुझसे माँग की।

लगभग इसी समय एक दिन गाधीजी ने अपने इस निर्णय की सूचना देकर, कि भविष्य में अधिक काल तक 'इडियन ओपीनियन' पत्र विज्ञापन की आय पर अवलबित नही रहना चाहिये, मुझे आश्चर्य मे डाल दिया। स्पष्ट ही था कि इससे पत्र का प्रकाशन बद कर देना पडता। वैसा ही मैंने उनसे पूछा भी। "कदापि नही," वे बोले, "हमें पत्र की ग्राहक-सख्या पर्याप्त रूप से बढाने की कोशिश कर विज्ञापन लेना बद करने के कारण होनेवाली क्षति की पूर्ति करनी चाहिये।" "सो कैसे किया जाय आप ही बतावे," मैंने कहा। जवाब में वे बोले, "इसके निमित्त आप आसपास के प्रदेशो की यात्रा कर वहाँ के भारतीयो का परिचय प्राप्त करे, और उनमे से जो अधिकाश लोग अबतक इस पत्र के ग्राहक नही बने है उन्हे इस के महत्त्व से अवगत करावे। यदि आप इतना कर सके तो वे लोग दूसरे भाइयो से भी इसके ग्राहक बनने के लिए आग्रह करेगे। आप उन्हे यह भली भाँति समझा देवे कि केवल लोकसेवा से प्रेरित होकर ही प्रस्तुत पत्र चलाया जा रहा है, और प्रेम-भावसे ही कुछ लोगो ने इसके सचालन का भार उठाया है। इससे लोगो के निकट सपर्क में आप आ जाएँगे और उनकी रहन-सहन एव समस्याएँ समझ लेने का भी आप को सुअवसर मिलेगा।" वस्तुत. उनकी बाते तथ्यपूर्ण थी। चुनाँचे मैं भ्रमण के लिए निकल पडा। इस यात्रा में मैंने अनेक नये मित्र बनाये। उनकी मार्फत अनेकानेक भारतीयो से सीधा

संपर्क स्थापित करने एव उनका आतिथ्य ग्रहण करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इस प्रकार भारतीयों की रहन-सहन से परिचित होने के साथ ही साथ अपने पत्र की उस समय की विषम आर्थिक परिस्थिति मे पत्र के लिए कई नये और उत्साही ग्राहक पैदा करने का मौका मुझे मिला।

इन्ही दिनो गाधीजी की मनोवृत्ति में गभीर एव मौलिक स्वरूप का परिवर्तन हुआ। कुछ समय से शातिपूर्वक इसकी तैयारी चल रही थी; किंतु अबतक वह स्पष्ट रूप से सामने नही आया था। अवश्य ही इसे केवल सयोग की बात नही माना जा सकता। अफ्रीका-निवास के समय लिखे गये अपने लेखो में गाधीजी ने इसका उल्लेख किया है। अपने पत्र की उस समय की आर्थिक कठिनाई उनकी चिंता का कारण बन रही थी। पत्र के प्रकाशनार्थ उन्होंने पानी की नाई पैसा खर्च किया था। फिर भी वे उसकी आर्थिक क्षति की अपेक्षा उसके बद हो जाने से अफ्रीका स्थित भारतीय जनता के सेवा–कार्य की होनेवाली हानि से अधिक चिंतित थे। आखिरकार सकट की घड़ी आ पहुँची, जिससे उन्हे तुरत डरबन की ओर प्रस्थान करना पड़ा। फलतः पत्र की रक्षा के हेतु उन्होंने उसकी आर्थिक जिम्मेदारी एवं प्रबध पूर्णतया अपने अधिकार में रखने का निश्चय किया, और इस प्रकार उनकी दूरदर्शिता के कारण अफ्रीका निवासी भारतीयों की एक सभाव्य सकट से जान बची।

जिस रातको वे डर्बन के लिए रवाना हो रहे थे मैं जोहन्सबर्ग स्टेशन पर उन्हे बिदा करने गया। सवर्ण लोगो के लिए सुरक्षित रखे गये डिब्बे में वे सवार हुए। यह सुप्रसिद्ध 'कुली वकील' पहले दर्जे के डिब्बे मे अकेला ही बैठा हुआ था। सामाजिक और आर्थिक कार्यों के प्रति अपने उत्साह के जोश मे हालही में पढ़कर समाप्त की हुई रस्किन की 'Unto This Last' किताब मैंने उन्हें पढ़ने के लिए दी। मैं निश्चित रूपसे जानता था कि उन्हें वह पसद आएगी। वही हुआ। उस पुस्तक के अध्ययन–स्वरूप अपने जीवन मे और एक महान् परिवर्तन उपस्थित होने की बात स्वय गाधीजी सदैव स्वीकार करते आये हैं। किस प्रकार तो इस पुस्तक ने अपने को मोहित कर लिया, और कैसे

वह एक सॉसमें पढ़कर समाप्त की गई, इसका स्वय उन्होने ही वर्णन किया है। उनके डर्बन पहुँचने से पहले ही इस पुस्तक ने उनका दृष्टिकोण सदा के लिए बदल डाला। और उन्होने 'सादा जीवन' एव उससे सबधित बातो का पुरस्कार व प्रचार करनेका अविलब निश्चय किया।

डरबन के उत्तर में बारह मील दूरी पर लगभग सौ एकड जमीन खरीद कर वहाँ उन्होने एक प्रेस खोला। गन्ने की खेती और इमारती वृक्षो से युक्त इसी प्रदेश मे उन्होने अपनी इतिहास-प्रसिद्ध 'फिनिक्स' बस्ती की स्थापना की। जातीय भेदभावो से ऊपर उठकर टालस्टाय एव रस्किन के उपदेशानुसार सादा जीवन बिताने की इच्छा रखनेवाले भारतीयो और अगरेजो की यह बस्ती थी। शहरी और औद्योगिक वातावरण से दूर रह कर स्वल्प मासिक वेतन में अपनी न्यूनतम आवश्यकताएँ पूरी करना इस बस्ती का मुख्य ध्येय था। इसी भाँति परस्पर की झोपडियाँ बनाने में सहयोग प्रदान करना, एव अपने हिस्से की दो एकड जमीन खुद जोत कर शाकाहार के योग्य खाद्यान्न पैदा करना वहाँ की योजना के प्रमुख अग थे। इनके अतिरिक्त ये भाई अवैतनिक रूप से एक साप्ताहिक पत्र भी चलाना चाहते थे।

कुछ दिन बाद गाधीजी जोहन्सबर्ग की मध्यम वर्गीय बस्ती के भीतर का अपना घर छोड़कर यहाँ सपुरिवार रहने आये। यहीं उन्हो ने उन अतर्धर्मीय स्नेहपाठो का श्रीगणेश किया जो कि कालातर मे इतने सुप्रसिद्ध हुए। हर इतवार को इस बस्ती के सब बाशिंदे स्थानीय गाधी-गृह मे इकट्ठा हो कर न केवल हिंदू और मुस्लिम, अपितु ईसाई भजन भी गाया करते थे। गाधीजी ने सर्वप्रथम यही यत्र-उद्योग का अर्थ जाना एव उसकी विशेषता का परिचय प्राप्त किया। आइल-इजन से चलने वाला हमारा प्रेस प्राय. नादुरुस्त हो जाया करता था। ऐसे प्रसग पर, पत्र समय से निकल सके इस हेतु, हम सब आधी रात तक जगकर अपने हाथ से प्रेस चलाते थे। उन दिनो गाधीजी अत्यधिक व्यस्त रहते थे। और डरबन मे उनका रहना भी बहुत कम होता था। व्यावसायिक या सार्वजनिक काम के निमित्त बहुधा उन्हे ट्रान्सवाल जाना पड़ता था। फिर भी जब कभी वे डरबन पधारते थे तब उपरोक्त क़िस्म की आकस्मिक कठिनाई उपस्थित होने पर हमारी

भाँति ही उत्साह के साथ प्रेस के पहिये को अक्षरशः अपना कधा लगा देते थे।

'इडियन ओपीनियन' की अकाल मृत्यु से रक्षा करने के लिए गाधीजी ने जिस तत्परता और आत्मत्याग का परिचय दिया था वह शीघ्र ही सार्थक सिद्ध हुआ। प्लेग का प्रकोप होने के अठारह मास के भीतर ही जोहन्सवर्ग स्थित अधिकाश भारतीय सारे ट्रान्सवाल मे बिखर गये, जिससे सर्वत्र यह सदेह पैदा हुआ कि भारतीयो का नियमविरुद्ध स्थलातर बहुत बढ गया है। परिणाम-स्वरूप वहाँ की राजनीतिक परिस्थिति और अधिक उग्र बन गई। ऐसी अवस्था में भारतीय जनता को ऐक्य-सूत्र में बाँध रखने में 'इडियन ओपीनियन' ने बडा भारी हिस्सा उठाया, जो कि आगामी आदोलन के लिए लाभदायक सिद्ध हुआ। लगभग आठ साल तक गाधीजी और जनरल स्मट्स परस्पर विरोधी दलों का नेतृत्व करते रहे। 'इडियन ओपीनियन' ही एक ऐसा पत्र था कि जिसके द्वारा उक्त दीर्घ आदोलन से सबधित प्रमुख घटनाओ, उसमें भाग लेनेवाले स्त्री-पुरुषों की बलिदान गाथाओ, एव उनके अजेय नेता के जीवन-सिद्धान्तो और व्यक्तित्व का भारत को और साथ ही सारे ससार को परिचय प्राप्त हुआ। गाधीजी ने, श्री गोखले के कथनानुसार, यह दिखा दिया कि उन्हे वह ईश्वरीय देन मिली हुई है कि जिसकी बदौलत वे मामूली मिट्टी के भीतर से वीर पुरुष निर्माण कर सकते हैं।

और एक प्रसग याद आ रहा है। उन्हे सजा सुनायी जा चुकी थी। एक जेल से दूसरी जेल में उनका तबादला होनेवाला था। हम कई लोग पार्क स्टेशन पर उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुतेरे मद्रासी फेरीवाले भी इन प्रेक्षको में शामिल रहे। सहसा एक नाटा, दुबला-पतला, साँवले रग का व्यक्ति ट्रेन से फुरती के साथ नीचे उतरा। आँखें उसकी शात थी, और मुद्रा धीरोदात्त। जेल का वरदीधारी वार्डर उसके साथ था। वह खुद वहेसीय बदी की वरदी पहने हुए था। अर्थात् सर पर फौजी ढग की टोपी (जो कि आगे चलकर गाधी टोपी में परिवर्तित हुई); बदन पर चौड़े की नवरयुक्त ढीलीढाली जाकट; घुटने तक की इजार, जिसका एक हिस्सा गहरा और दूसरा भूरा था; उसी

तरह के निशान लगे हुए भूरे रग के ऊनी मोज़े और चमड़े के जूते। जब वार्डर से कुछ आदेश पाने के हेतु वे मुडे तव हम सभी ने उन्हे सादर प्रणाम किया। कपड़े एव दूसरी चीजो से भरी हुई टाट की सफेद थैली, और किताबो से भरा हुआ एक बक्स वे लिये हुए थे। वार्डर के साथ उन्होने कुछ विचार-विमर्श किया। मालूम होता था कि वार्डर अपनी और इस कैदी की परिस्थिति के बीच निर्माण हुई असगति का आभास पा गया है। क्योकि कैदी के साथ वह अदव से पेश आ रहा था। यह [illegible] क्ति है और इसके प्रति विशेष रूप से नम्र व्यवहार करने [illegible] वह समझ चुका था। उनके आपसी वार्तालाप [illegible] गाधीजी जेल तक किराये की गाडी से जाना पसद [illegible] र हो जाएँगे। यदि गाडीसे जाना वे पसद करते [illegible] हें खुद की जेब से चुकाना, पडता। चुनाँचे उन्हो [illegible] कर दिनदहाडे कैदी के भेष में ही तीन-चौथा [illegible] करनेका सोचा। थैला अपने कधे से लटका कर [illegible] जिसका कि हमने भी अनुसरण किया,–किंतु सलज्ज [illegible] और अपने बीच आदरसूचक दूरी रखकर। कुछ [illegible] जेल के क्रूर सीखचो के पीछे वे अदृश्य हो गये। जेल के [illegible] ा में यह ध्येयवाक्य खुदा हुआ था. 'संगठन में ही [illegible] स्वय गाधीजी का भी जनता के लिए ठीक यही [illegible] क इसी को वे चिपके रहे।

[illegible] आ रहा है। उनके दुखद देहावसान के ठीक [illegible] ात है। अपने ही देशवासियों द्वारा सगीन चोट [illegible] मे जा पहुँचे थे। बात यू हुई कि दक्षिण अफ्रीक [illegible] हदुस्तानी के रजिस्ट्री करा कर प्रमाणपत्र लेनेके [illegible] धीजी ने जो आन्दोलन छेड़ा था उसके सबध [illegible] ा गया कि यदि वे सरकार की प्रतिष्ठा रखने के लिए अपना आन्दोलन खीच लेंगे तो उक्त कानून रद कर दिया जायगा। फलतः उन्होंने लोगों को प्रमाणपत्र निकालने की सलाह दी। लोगोंको उनकी यह सलाह बहुत ही अखरी। तब सर्वप्रथम

खुदका ही नाम रजिस्टर करानेकी उन्होने सोची। किंतु रजिस्ट्री-कार्यालय में जाते समय लोगो की भीड ने उन्हे घेर लिया और गाधी-स्मट्स समझौता भग करने से उनके इन्कार करने पर उन्हे मार गिराया। यदि पूर्वनिश्चय के अनुसार मै ठीक वक्त पर उनके कार्यालय मे पहुँचा होता तो निस्सन्देह मेरी भी मिट्टी पलीद हो जाती। पश्चात् रेवरेड डोक के वासस्थान पर मैने उनसे भेंट की। अपनी अनिच्छा के बावजूद अधिकारियो द्वारा हमलावारो पर दावा दायर किया जानेपर भी गाधीजी ने उनके विरुद्ध गवाही देना अस्वीकार किया। तब केवल उन यूरोपियनो की गवाहियो के आधार पर, जो कि गाधीजी के सहायतार्थ घटनास्थल पर दौड आये थे और जिन्होने अपनी आँखो सारा काड देख लिया था, अपराधियो को दड दिया गया।

जेल मे गाधीजी के पास जो किताबें थी उनमे से कुछ तो स्वय जनरल स्मट्स द्वारा भेजी गई थी। स्मरण रहे कि अपने इस भारतीय विरोधी को उन्ह कारावास का दड देना पडा था। फिर भी गाधीजी के मन म स्मट्स के प्रति जरा भी व्यक्तिगत स्वरूप का वैरभाव नही था। इतना ही नही बल्कि छ वर्ष बाद दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते समय गाधीजी ने उन्ह, मेरी और कुमारी श्लेसिन की मार्फत, टालस्टाय-फार्म पर खुद के हाथा तैयार किया हुआ एक जोडी जूता गाधी-स्मट्स समझौते की स्मृति स्वरूप भेज दिया। स्वय स्मट्स प्रिटोरिया के पास की निजी जमीदारी पर सादी रहन-सहन के प्रति अपने विश्वासानुसार जीवन बिता रहे थे। उक्त जूतो का उन्हाने पचीस वर्ष भली प्रकार उपयोग किया, और इसी के प्रमाण-स्वरूप फिर गाधीजी को वह लौटा दिया।

मै पहले ही इस बात का जिक्र कर चुका हूँ कि गाधीजी द्वारा तापसी जीवन के प्रयाग प्रारभ किये जाने से पूर्व मै एक कुटुबी के नाते उनके साथ रहता था। हमारे आपसी सबध 'भाई' और 'छोटा भाई' की भाँति रह। उन्ही के आग्रह के कारण मेरी भावी धर्मपत्नी भी यहाँ आकर रहने लगी। हमारे विवाह-विधि के समय प्रमुख गवाह के नाते व ही उपस्थित रहे, और उन्हाने ही मजिस्ट्रेट को इस बा त का, कि हम

उभय पति-पत्नी यूरोपियन है, विश्वास दिलाया। बात यू थी कि गाधीजी एव उनकी बिरादरी से निकट सपर्क रखने के कारण लोग मुझे भी भारतीय समझने लगे थे। और इस हालत मे ट्रासवाल में हमारा विवाह गैरकानूनी करार दिया जाता।

उन दिनो मैं उनसे गुजराती पढा करता था। उस वक्त काममे लाई गई नोटबुक पर हाल ही मे मेरी नजर पड़ी। रातको भोजनोपरात हम गीता-पाठ करते थे। पुस्तक का नाम था 'Song Celestial'। गाधीजी की राय मे यह गीता का सर्वोत्कृष्ट अगरेजी सस्करण था। गाधीजी के इस आग्रह पर, कि गीता-बोध का वाच्यार्थ न लेकर उसे लाक्षणिक रूप मे ही ग्रहण करना चाहिये, मै आश्चर्यचकित् रह गया। क्योकि बोअर-युद्ध मे, और पुन. जुलू-विद्रोह के समय, कर्तव्य के तौरपर उनका ब्रिटिश सार्जेण्ट-मेजर की वरदी पहनना मुझे याद आ गया। सायही, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया यह उपदेश पढकर, कि "सदोप स्वधर्म-पालन की अपेक्षा परधर्म का निर्दोप पालन भयप्रद होने के कारण तुझे, एक क्षत्रिय के नाते, स्वकर्तव्य मे ही रत रहना चाहिये," मै और अधिक आश्चर्यचकित् हुआ। किंतु इस विपय की चर्चा मे एक विशिष्ट मर्यादा के आगे बढ़ने मे मै असमर्थ था। क्योंकि एक तो स्वभावतया मैं शरीरबल का सहारा लेने के विरुद्ध था; और दूसरे, अपने गुरु एव हिंदू के नाते योग्यता मे वे मुझसे श्रेष्ठ थे।

फिर भी यह तो सर्वप्रसिद्ध ही है कि प्रथम महायुद्ध के समय रगरूटो की भर्ती मे उन्होंने सक्रिय भाग लिया। तब श्रीकृष्ण के उपदेश के आधार पर मैने उन्हें इस कार्य से विमुख करने की प्रबल चेष्टा की। इसके उत्तर-स्वरूप उनसे मुझे निम्नाशय का पत्र मिला:—

"रगरूटो की भर्ती के हेतु जो आदोलन सप्रति मैं कर रहा हूँ उसके सबध मे आप की क्या राय है? अहिसा के पवित्र सिद्धान्त के लिए धर्माचरण-स्वरूप मैंने इसे उठाया है। मुझे इस बात का पता चल गया है कि भारत अपनी युद्ध-शक्ति को खो बैठा है। यह युद्ध-शक्ति, न कि युद्ध-प्रवृत्ति, उसे पुनः प्राप्त कर लेनी चाहिये। केवल उसी हालत में, यदि वह चाहे तो, पीड़ित ससार को अहिंसा का

खुदका ही नाम रजिस्टर करानेकी उन्होने सोची। किंतु रजिस्ट्री-कार्यालय में जाते समय लोगो की भीड़ ने उन्हे घेर लिया और गाधी-स्मट्स समझौता भग करने से उनके इन्कार करने पर उन्हे मार गिराया। यदि पूर्वनिश्चय के अनुसार मैं ठीक वक्त पर उनके कार्यालय में पहुँचा होता तो निस्सन्देह मेरी भी मिट्टी पलीद हो जाती। पश्चात् रेवरेड डोक के वासस्थान पर मैने उनसे भेंट की। अपनी अनिच्छा के बावजूद अधिकारियो द्वारा हमलावारो पर दावा दायर किया जानेपर भी गाधीजी ने उनके विरुद्ध गवाही देना अस्वीकार किया। तब केवल उन यूरोपियनो की गवाहियो के आधार पर, जो कि गाधीजी के सहायतार्थ घटनास्थल पर दौड आये थे और जिन्होने अपनी आँखो सारा काड देख लिया था, अपराधियो को दड दिया गया।

जेल मे गाधीजी के पास जो किताबें थी उनमे से कुछ तो स्वय जनरल स्मट्स द्वारा भेजी गई थी। स्मरण रहे कि अपने इस भारतीय विरोधी को उन्हे कारावास का दड देना पडा था। फिर भी गाधीजी के मन मे स्मट्स के प्रति जरा भी व्यक्तिगत स्वरूप का वैरभाव नही था। इतना ही नहीं बल्कि छ वर्ष बाद दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटते समय गाधीजी ने उन्हे, मेरी और कुमारी श्लेसिन की मार्फत, टालस्टाय-फार्म पर खुद के हाथो तैयार किया हुआ एक जोड़ी जूता गाधी-स्मट्स समझौते की स्मृति स्वरूप भेज दिया। स्वय स्मट्स प्रिटोरिया के पास की निजी जमींदारी पर सादी रहन-सहन के प्रति अपने विश्वासानुसार जीवन बिता रहे थे। उक्त जूतो का उन्होने पचीस वर्ष भली प्रकार उपयोग किया, और इसी के प्रमाण-स्वरूप फिर गाधीजी को वह लौटा दिया।

मैं पहले ही इस बात का जिक्र कर चुका हूँ कि गाधीजी द्वारा तापसी जीवन के प्रयोग प्रारभ किये जाने से पूर्व मैं एक कुटुबी के नाते उनके साथ रहता था। हमारे आपसी सबध 'भाई' और 'छोटा भाई' की भाँति रहे। उन्हीं के आग्रह के कारण मेरी भार्या धर्मपत्नी भी वहीं आकर रहने लगी। हमारे विवाह-विधि के समय प्रमुख गवाह के नाते वे ही उपस्थित रहे, और उन्होने ही मजिस्ट्रेट को इस बात का, कि हम

उभय पति-पत्नी यूरोपियन है, विश्वास दिलाया। बात यू थी कि गाधीजी एवं उनकी बिरादरी से निकट सपर्क रखने के कारण लोग मुझे भी भारतीय समझने लगे थे। और इस हालत में ट्रांसवाल मे हमारा विवाह गैरकानूनी करार दिया जाता।

उन दिनो मैं उनसे गुजराती पढा करता था। उस वक्त काममे लाई गई नोटबुक पर हाल ही में मेरी नजर पड़ी। रातको भोजनोपरात हम गीता-पाठ करते थे। पुस्तक का नाम था 'Song Celestial'। गाधीजी की राय मे यह गीता का सर्वोत्कृष्ट अगरेजी सस्करण था। गाधीजी के इस आग्रह पर, कि गीता-बोध का वाच्यार्थ न लेकर उसे लाक्षणिक रूप में ही ग्रहण करना चाहिये, मै आश्चर्यचकित् रह गया। क्योकि बोअर-युद्ध मे, और पुन. जुलू-विद्रोह के समय, कर्तव्य के तौरपर उनका ब्रिटिश सार्जेण्ट-मेजर की वरदी पहनना मुझे याद आ गया। साथही, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया यह उपदेश पढकर, कि "सदोष स्वधर्म-पालन की अपेक्षा परधर्म का निर्दोष पालन भयप्रद होने के कारण तुझे, एक क्षत्रिय के नाते, स्वकर्तव्य मे ही रत रहना चाहिये," मैं और अधिक आश्चर्यचकित् हुआ। किंतु इस विषय की चर्चा में एक विशिष्ट मर्यादा के आगे बढ़ने मे मै असमर्थ था। क्यो-कि एक तो स्वभावतया मैं शरीरबल का सहारा लेने के विरुद्ध था; और दूसरे, अपने गुरु एव हिंदू के नाते योग्यता मे वे मुझमे श्रेष्ठ थे।

फिर भी यह तो सर्वप्रसिद्ध ही है कि प्रथम महायुद्ध के समय रगरूटो की भर्ती मे उन्होने सक्रिय भाग लिया। तब श्रीकृष्ण के उपदेश के आधार पर मैंने उन्हे इस कार्य से विमुख करने की प्रबल चेष्टा की। इसके उत्तर-स्वरूप उनसे मुझे निम्नाशय का पत्र मिला.—

"रगरूटो की भर्ती के हेतु जो आदोलन सप्रति मैं कर रहा हूँ उसके सबध मे आप की क्या राय है? अहिंसा के पवित्र सिद्धान्त के लिए धर्माचरण-स्वरूप मैंने इसे उठाया है। मुझे इस बात का पता चल गया है कि भारत अपनी युद्ध-शक्ति को खो बैठा है। यह युद्ध-शक्ति, न कि युद्ध-प्रवृत्ति, उसे पुन: प्राप्त कर लेनी चाहिये। केवल उसी हालत में, यदि वह चाहे तो, पीड़ित ससार को अहिंसा का

संदेश दे सकेगा। उसे देना तो मुक्त-हस्त से है, किंतु अपने सामर्थ्य-भडार के भीतर से, न कि दौर्बल्य द्वारा। इस दूसरे मार्गपर वह भूल से भी न बढे। क्योंकि मेरी राय में वह उसके सर्वनाश का कारण बनेगा। इससे वह आत्मगौरव से वचित हो कर अन्य राष्ट्रों की भाँति पाशवी शक्ति का उपासक बन बैठेगा। रगरूटो की भर्ती का यह जो काम मैंने उठाया है वह मेरे द्वारा आजतक शुरू किये गये कामो मे सर्वाधिक कठिन है। हो सकता है कि रंगरूट प्राप्त करने में मैं असफल रह जाऊँ। फिर भी इसके द्वारा मैं जनता को राजनीति की सर्वोत्कृष्ट शिक्षा दे सका इतना तो सिद्ध ही रहेगा।"

विगत वर्षों की घटनाओं पर एक नज़र डालकर देखने से यह विश्वास करना, कि पिछले युद्ध में सम्मिलित सभी गैर–भारतीय राष्ट्रों को गाधीजी पाशवी शक्ति के उपासको मे शुमार करेंगे, कठिन मालूम होता है।

१९१३ के लगभग उनसे यह पूछा गया कि क्या आप काग्रेस के आगामी अधिवेशन के अध्यक्षपद के लिए अपना नाम पेश कर सकेंगे? हमने इस सबध में चर्चा की। मैं उनसे बोला, "यह तो एक निरर्थक सी बात है। क्योंकि आपके विचार भारतीयो की वर्तमान विचारधारा से कहीं आगे बढ़े हुए हैं। और ख़ास कर दक्षिण अफरीका की वर्तमान परिस्थिति को मद्देनज़र रखते हुए भारत मे अधिक दिन रहना आपके लिए असम्भव है। इस हालत में आपके विचार आकलन न कर पाने के कारण उनके सबध में लोगों के मन में गलतफहमी पैदा हो सकती है।" सोच कर उन्होंने निमत्रण अस्वीकार कर दिया। इसी तरह एक अन्य अवसर पर मेरे दृष्टिकोण से वे सहमत हुए। लार्ड हार्डिज द्वारा प्रदर्शित निदेश के बाद जनरल स्मट्स ने एक जाँच–कमीशन के सामने गवाही देने को कहा। किंतु मैंने इसमें आपत्ति प्रकट की। क्योंकि कमीशन एक-पक्षीय था। उसके तीन सदस्यों में से दो अपने भारत-द्वेष के लिए प्रसिद्ध थे, और भारत का प्रतिनिधित्व करनेवाला कोई न था। चुनांचे काफ़ी बहस के बाद हम इस नतीजे पर पहुँचे कि जबतक कमीशन में, उसके अध्यक्ष के अलावा, स्वतत्र विचार का कमसे कम एक और सदस्य सम्मिलित नहीं कर लिया जाता तब तक भारतीय जमात उसके सामने गवाही

देने से इन्कार करे। आखिरकार इस गत्यवरोध का अत करने के हेतु लार्ड हार्डिज ने सर बेंजामिन राबर्टसन को भेज दिया जिन्होने आवश्यक प्रतिनिधित्व किया।

अब इन सस्मरणो को समाप्त करने से पहले हम दोनो के जीवन से सबधित एक ऐतिहासिक घटना में निवेदन कर देना चाहता हूँ। हम में स्पष्ट रूप से यह तय हुआ था कि सत्याग्रह-आदोलन समाप्त होने के बाद मैं अपनी मातृभूमि को लौटकर वहाँ वश और वर्णभेद से अलिप्त वातावरण में अपने बच्चो की शिक्षा-दीक्षा पूरी करूँ। लम्बे वार्तालाप के बाद १९१४ के गाधी स्मट्स समझौते पर आखिरकार हस्ताक्षर भी हो गये। अवश्य ही उक्त समझौता कार्यान्वित होना अभी शेष था। इसी बीच एक दिन गाधीजी आकर मुझ से आग्रह करने लगे कि मैं उनके बदले दक्षिण अफरीका में रहकर स्थानीय भारतीयो के सलाहकार के नाते कार्य करूँ। उनके जेल चले जाने पर, और इग्लैंड-निवास के समय, यह काम मैं कर चुका था। अबकी वे उन समस्याओ के समाधान हेतु, जिन पर कि हम दोनो समय समय पर चर्चा कर चुके थे, भारत जाना चाहते थे। गत बारह वर्ष से वे भारत के बाहर थे। किंतु उनका उपर्युक्त प्रस्ताव सुनकर मेरे मन की जो अवस्था हुई होगी उसकी आप ही कल्पना कीजिये। समझौता कार्यान्वित करने के सबध में सरकार पहले दो दफा धोखा दे चुकी थी। अतः उनका यह आग्रह, कि समझौता पूरी तौर से कार्यान्वित होनेतक हममें से कोई एक दक्षिण अफरीका में रहे, उचित ही था। अब इसके लिए मैं क्या करता? हम दोनो ने मेरी धर्मपत्नी से इसका जिक्र किया। वह बोली, "सारी परिस्थिति का विचार करते हुए मैं तो यही सलाह दूँगी कि, चाहे कितनी ही घोर निराशाओं का सामना करना पडता हो तो भी, आप गाधीजी को उनके महान् जीवनोद्देश्य के लिए छुट्टी प्रदान करें।" कौन कह सकता है कि यदि यही निर्णय विपरीत स्वरूप का होकर गाधीजी को दक्षिण अफरीका में अनिवार्यत: रुक जाना पडता तो भारत के राजनीतिक घटना-प्रवाह पर उसका क्या असर होता?

लदन,

१०-३-१९४८

जहाज़ पर गांधीजी के साथ

एडमण्ड प्रिवैट

गांधीजी से हमारी पहली मुलाकात गोलमेज-परिषद् के लिए उनके यूरोप पधारने पर १९३१ के सितबर मे मार्सेलिस मे हुई। हम तडके रोमाँ रोलाँ की बहन के साथ फ्रासीसी बदरगाह पर पहुँचे, और मय चार्ली एड्रूज के हमने जहाज पर महात्माजी के सहवास में चंद घटे विताये।

यह एक असाधारण अनुभव रहा। विदा होते वक्त मेरी पत्नी ने उनकी लदन-यात्रा के प्रति सफलता की कामना प्रकट की, जिसके जवाब मे मुस्करा कर वे बोले, "सदाचार ही सफलता है!" उनके सारे नैतिक सिद्धान्तो को सार रूप में प्रकट करनेवाली यह उक्ति हम प्रायः उद्धृत करते रहे है।

गोलमेज-परिषद् की समाप्ति के बाद उन्हें स्विट्जर्लैण्ड ले जाने के हेतु हम पेरिस पहुँचे। यहाँ रोमाँ रोलाँ के वीलन्यव के पास के घर पर उन्होंने एक सप्ताह विताया।

लोजेन और जिनेवा में हमने उनके व्याख्यानो का आयोजन किया। यहाँ एक वृद्ध ने उनसे पूछा, "क्या उस उपदेश को दोहराते समय, जो कि आज से दो हजार वर्ष पूर्व ईसा मसीह ससार को दे गये एव जिसकी असफलता की साक्षी इतिहास दे रहा है, आप निराशा अनुभव नहीं करते?"

इसका जो जवाब गांधीजीने दिया वह ज़िन्दगी भर में भूल नहीं सकता।

"कितने वर्ष बोले आप?" अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट से गांधीजी ने पूछा।

"मैंने कहा कि विगत बीस शताब्दियो से व्यर्थ ही इन बातो का प्रचार किया जा रहा है।" वृद्धने, जो कि एक साम्यवादी था, जवाब दिया।

"तो क्या बुराई का बदला भलाई से चुकाने जैसी दुरुह बात सीखने के लिए दो हजार वर्ष की अवधि आप को बहुत अधिक मालूम होती है ?" गाधीजी का प्रत्युत्तर रहा।

मानवजाति के इतिहास में अकित गाधीजी के कार्यो द्वारा इतना तो अवश्य ही सिद्ध हो जायगा कि कम से कम एक राष्ट्र ने उनके उप-देशो एव अपनी आध्यात्मिक परपरा के पुण्य-प्रभाव के बलपर स्वदेश की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए शाति का मार्ग ग्रहण किया। ऐसी घटना के बाद ससार का क्रम कदापि पूर्ववत् बना नही रह सकता। यहाँतक कि नार्वे जैसे राष्ट्र ने भी अपने नाज़ी अधिकारियो का प्रति-कार करते समय गाधीजी से प्राप्त प्रेरणा का ही अवलब किया।

स्विस-यात्रा क बाद अपने दल-बल सहित स्वदेश लौटने के हेतु गाधीजी ब्रिण्डिसी पहुँचे। केवल दो घटे पूर्व मिली हुई इस सूचना से लाभ उठा कर हमने इटली की सीमा तक उनका साथ दिया। इसी सफर मे ट्रेन मे वे सहसा हमसे पूछ बैठे, "आप भारत क्यो नही पधारते ?" जवाब मे हमने कहा कि यह बडा खर्चीला सफर है।

हँस कर वे बोले, "शायद आप पहले या दूसरे दर्जे के सफ़र की बात सोचते होगे। लेकिन हम लोग तो सिर्फ दस पौंड ही जहाज-यात्रा के लिए खर्च करते हैं। एक बार वहाँ पहुँच जाने पर आप अनेक भारतीय मित्रो के घरो के द्वार अपने लिए खुले पाएँगे।"

हमने अपने पास के पैसो का जोड लगाकर इस सुअवसर से लाभ उठाने का निश्चय किया। हम उसी ट्रेन से उनके साथ रोम पहुँचे, और हमने अपने पासपोर्ट और टिकट का प्रबध कर लिया। सिवाय टूथ-ब्रश और छाते के हमारे पास दूसरा कोई सामान नहीं था। अवश्य ही रोम में हमने बिस्तर खरीद लिये और तार द्वारा अपने भाषणा के कार्यक्रम रद कराये। इस प्रकार की साहसी-यात्रा जिन्दगी में एकाद बार ही नसीब होती है।

'पिल्स्ना' पर का सफर बडा ही मजेदार रहा। डेक पर हम सब कतार से सोते थे। सारे सफर मे गाधीजी प्रसन्न बने रहे।

कहते है कि कोई भी महापुरुष अपने सेवको से कभी सम्मान से पेश नही आता; और उससे निकट सपर्क स्थापित होनेपर तो उसके सबध के रहेसहे भ्रम भी दूर हो जाते है। किंतु इस नियम के लिए गाधीजी अपवाद है। अहर्निश उनके सहवास मे रहनेपर तो वे और ही अधिक महान् दिखाई देते है। उनकी चुटकियाँ और दयालुता अविस्मरणीय है। तीन सप्ताह उनके निकट सहवास मे हमने बिताये, और प्रति दिन के सभी छोटे-बड़े कामो में उनका हाथ हम बँटाते रहे। यहाँ-तक कि पहले दर्जे के मुसाफिरो के कुत्तो द्वारा समय असमय गदी की जानेवाली अपनी जगह भी हम साफ कर लिया करते थे। हर बार हमने महात्मा को महान् ही पाया।

अन्य महापुरुषो की नाईं अपने व्यक्तित्व और प्रभाव के बोझ से वे कभी किसी को दबाते नही। स्वत की उपस्थिति और सत्य-प्रेम द्वारा वे आसपास का वातावरण सर्वथा विमल और विशुद्ध बना देते है। अतः ऐसा कौन होगा जो कि इस प्रकार के मार्गदर्शक, मानव-सखा और मित्र की प्रतारणा कर सके?

'पिल्स्ना' पर का तीन सप्ताह का उनका सहवास हमारे लिए एक दुष्प्राप्य सौभाग्य था, और इस प्रकार भारत का परिचय पाना एक अपूर्व बात। स्वजनों के प्रति गाधीजी के प्रेमभाव की कोई सीमा नहीं। किंतु यह प्रेम कदापि अंध नहीं होता। जनता को स्वाधीनता-प्राप्ति के आन्दोलन मे युद्ध की अपेक्षा अधिक अच्छा मार्ग ग्रहण करनेका अभ्यस्त बनाना ही अपना जीवनोद्देश्य है यह बात गाधीजी अनेक बार दुहरा चुके है। हिंद-स्वराज्य अंतिम साध्य नहीं; अपितु, उसकी प्राप्ति के हेतु चलाया गया अहिंसक आदोलन मानवी इतिहास का एक अभिनव प्रयोग एव युद्ध का अत करने की दिशा मे उठाया गया एक कदम मात्र है।

एक विद्यार्थिनी द्वारा बगाल-गवर्नर की हत्या करने की की गई चेष्टा सबधी समाचार रेडियोपर सुनते ही उन्होने इस तरह लज्जा अनुभव की कि मानो अपनी खुदकी लड़की का ही इस काड में हाथ रहा है और इसके लिए वे स्वय जिम्मेवार हैं।

इस्लाम और मुसलमानो का जो वर्णन उन्होने हमे सुनाया वह इससे पूर्व हमारे द्वारा सुने गये इस विषयक सभी वर्णनो से अधिक औदार्यपूर्ण था। उनकी यह हार्दिक इच्छा रही कि मुसलमानो के धर्म की महत्ता एव प्रजातत्रीय ढग की उनकी समता-वृत्ति से हम अच्छी तरह अवगत हो जायें।

वड़े दिनो के कुछ ही दिन वाद हम ववई पहुँचे। वहाँ अपार जनसमूह उनके स्वागतार्थ उपस्थित था। भारत की राजनीतिक परिस्थिति ने वहुत ही उग्र रूप धारण किया था और वातावरण क्रातिमय था। जवाहरलाल नेहरू हाल ही मे गिरफ्तार किये जा चुके थे। लॉर्ड विलिंग्डन ने इस प्रकार के विषयोपर गाधीजी से विचार-विनिमय करना अस्वीकार किया था। इसके निषेध-स्वरूप नये सिरे से सविनय अवज्ञा-आदोलन छेड़ने की वात काग्रेसी क्षेत्रो मे सोची जा रही थी।

मैदान मे आयोजित विराट सार्वजनिक सभा में हमने मन ही मन इस भारतीय नेता की सयमशील वाणी की यूरोप के राष्ट्रीय नेताओ की विद्वेष फैलानेवाली पाशवी वाणी से तुलना की। गाधीजी लोगो को अहिंसा-पालन सवधी प्रतिज्ञाओ की याद दिला रहे थे, और कह रहे थे, कि प्रत्येक भारतीय स्त्री-पुरुष अगरेज अफसरो एव उनके कुटुवियो के जानमाल और आवरू की सतर्कतापूर्वक रक्षा करे, इतना ही नहीं वल्कि मौका आ पडने पर इसके निमित्त अपने प्राणतक होमने के लिए तैयार रहे। "हम उनके विरुद्ध नही लड रहे हैं, हम लड रहे हैं उस शासन-प्रणाली के विरुद्ध जो कि उनका उपयोग कर लेती है," वे वोले।

ववई मे उन्ही के मेजवानो के यहाँ ठहरने के कारण अत्यत विषम परिस्थिति मे भी गाधीजी जिस सयम और शाति से काम लेते हैं वह देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। वडे सवेरे एक आम चौक मे प्रार्थना-सभा हुई। श्वेत वस्त्रधारी स्त्री-पुरुषो की नि.शब्द भीड़ अपने इस प्रिय नेता को घेर कर खडी थी। गाधीजी ने चद शब्दो म भय की भावना पर, जो कि हिंसाका प्रधान स्रोत है, प्रकाश डाला। वोले, "अपने धन या प्राणो की हानि के भय से मुक्त होते ही आप अपने विरोधी का धीरोदात्त वृत्ति से सामना कर सकेंगे, और ऐसा करते समय आप के मन में उसके प्रति प्रेमभाव ही रहेगा।"

दूसरे दिन तडके हमने देखा कि गाधीजी अपने मेजबान के घर की छत पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार किये जा रहे हैं। उस समय सीढियो के दोनो तरफ खडे दो भीमकाय अफसरो की आँखे डबडबा आयी थी। उक्त दृश्य हम कदापि भूल नही सकते। किंतु इस प्रकार के प्रसग पर भी हम औदार्यपूर्ण परिचय-पत्र लिख देने के लिए उन्होंने समय निकाल ही लिया। यह कीमती पुर्जा हमे अपने भारत-भ्रमण में पासपोर्ट की तरह काम आया। जहाँ भी हम गये वहाँ हमने अपने लिए द्वार खुला पाया। १९३२ के जाडे म जब गाधीजी पूना में कैद थे तब हमने दक्षिणोत्तर सर्वत्र उनकी स्फूर्ति और प्रेरणा का सजीव रूप म दर्शन किया। खद्दर पहनने एव तीसरे दर्जे मे सफर करने के कारण रेल मे हमने सैकडो मित्र बनाये।

दो अनुभवो का हम पर विशेष रूप से प्रभाव पडा। एक सफेद बालो वाली वृद्धा यह कहते समय, कि वह खुद और उसकी तरह ही अनेक बहनें प्राचीन रूढियो को लाँघ कर गाधीजी द्वारा सचालित आन्दोलन मे भाग लेने के हेतु अपने घरो से बाहर क्यो निकल आयी, बोली—"हम यह निश्चित रूप से जानती थी कि वे हमे कदापि ऐसी बात करने के लिए न कहेगे जो कि सत्य या स्नेह के विरुद्ध हो।"

इसी प्रकार जब कलकत्ते में हमने भारत के महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेट की तब गाधीजी की सर्वश्रेष्ठ कार्यसिद्धि के सबध म अपने विचार व्यक्त करते हुए वे बोले, "उन्हाने हमारे देशवासियो को निर्भय बना कर द्वेष और दभ स, जो कि एक साथ रहते है, मुक्त होन की शिक्षा दी है।"

ऐसा नेता चुनने, एव उसकी भविष्यवादी दृष्टि का अनुसरण कर मानवजाति को युद्ध की विभीषिका से बाहर निकल आनेका मार्ग दिखाने के कारण सारा ससार भारत का अत्यधिक ऋणी है।

न्यूचैटेल (स्विट्जर्लैण्ड),

२५-३-१९४६

संस्मरण

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास

दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के कारण गाधीजी की कीर्ति समाचार-पत्रो द्वारा पहले ही सुन चुकने पर भी उनकी सुनिश्चित विचारधारा से मैं सर्वप्रथम तभी परिचित हुआ जब कि उनके स्वदेश लौटने पर उन्ही की विरादरी के सनातनी मोढ वनियो मे उन्हे जाति-बहिष्कृत करने के सबध मे हलचल मची। जब गाधीजी से इस बात का जिक्र किया गया तब वे सरल भाव से इतना ही बोले, "मुझे जाति-बहिष्कृत करने के निमित्त प्रस्ताव पास करने का कष्ट क्यो उठाते हो ? मैं खुद इससे निकल जाने को तैयार हूँ।" अपनी विरादरी के सनातनी महानुभवो के प्रति गाधीजी के इस समुचित व्यवहार की सर्वथा इष्ट प्रतिक्रिया हुई, और उन लोगो ने, जो यह सोचते थे कि उक्त प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने से गाधीजी की अप्रतिष्ठा होगी, चुप रहने मे ही बुद्धिमानी मानी। अपनी इस मोढ वनिया विरादरी के प्रति गाधीजी का आचरण अततक सर्वथा शान्त और उपेक्षापूर्ण रहा। अवश्य ही इस मे उन लोगो को उकसाने या जलील करने का जरा भी हेतु नही था। इसी के परिणाम-स्वरूप आज मोढ वनिया जाति उनपर गर्व करती है; और जातीय बधन, पूर्णतया नष्ट न होने पर भी, शनैः शनैः किन्तु निश्चित रूप से समाप्त होते जा रहे है।

गाधीजी के साथ मेरा सर्वप्रथम सपर्क १९२० मे तब स्थापित हुआ जब कि वे असहयोग-आदोलन का श्रीगणेश करने जा रहे थे। उन दिनो वे बबई मे स्व० रेवाशकर जगजीवन के 'मणि-भवन' मे ठहरा करते थे। स्व० रेवाशकर की ही मार्फत मैंने उनसे भेट की। देश एव जनता की तत्कालीन परिस्थिति मद्देनजर रखते हुए असहयोग-आदोलन कहाँ तक सफल होगा यह उनसे जान लेने की मैं चेष्टा कर रहा था। जब अपने दृष्टिकोण से मैं उन्हे अवगत करा चुका तब वे बोले, "अपने मे प्रयोग मे उन्ही लोगो को साथ ले कर करूँगा जो कि मेरे अनुयायी बनना चाहेगे। देश मे दारिद्रय इतने भयावक रूप से फैला हुआ

है कि यद्यपि मै अपने लिए उच्च श्रेणी के भीतर से अनुयायी प्राप्त न कर सका तो भी निम्न श्रेणी के बहुतसे लोग आ कर मेरे इस कार्य मे सम्मिलित हो जाएँगे।" गाधीजी से मुलाकात कर मै विदा हो ही रहा था कि पडित मोतीलाल नेहरू उनसे मिलने आये। पडित जी से मिलने का मेरे लिए यह पहला ही मौका था। उन्होने मेरे बारे में गाधीजी से पूछताछ की। गाधीजी ने उन्हे बतलाया कि मै बवई का शेरिफ हूँ। तब कुछ मजाक के तौर पर पडितजी बोले, "अब इन्हे यह सब कुछ छोड देना पडेगा।" इस पर मुझे एक शब्द भी बोलने का मौका न देकर गाधीजी बोल उठे, "सो तो अन्य अनेक लोगो की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह ये कर सकेंगे, लेकिन केवल उसी हालत में जब इन्हें हमारे कार्य के औचित्य के प्रति पूर्ण विश्वास हो जायगा।" सीढीयो के दरवाजे पर ही रेवाशकर भाई ने मुझ से पूछा, इस भेट से कुछ लाभ हुआ या नही? उत्तर-स्वरूप मैं मन पूर्वक बोला, "यह एक ऐसी गभीर घटना है जिसका कि मुझे हर घडी स्मरण रखना पडेगा।"

गाधीजी से मैं दुबारा १९२१ मे तब मिला जब कि प्रिन्स आफ् वेल्स के बवई-आगमन पर उक्त शहर मे अशाति फैलने के कारण उन्होने अनशन आरभ कर दिया था। यह निर्णय किया गया था कि जब गाधीजी अपना अनशन भग करेगे तब चन्द दोस्त उनके पास उपस्थित रहे। इस निमित्त मैं विशेष रूप से निमन्त्रित किया गया था। गाधीजी से अनशन-समाप्ति का अनुरोध करते हुए जो भाषण दिये गये उनमे उन्हे यह विश्वास दिलाया गया कि सारा भारत आपके प्रति एकनिष्ठ बना रहेगा। इन भाषणो के अत मे उन्होने मुझसे भी चद शब्द बोलने के लिए कहा। इस सबध में कोई पूर्वसूचना न मिलने के कारण मैं आश्चर्यचकित् हुआ। किंतु उनके दुबारा आग्रह करने पर मै बोला, और अपने भाषण मे मैंने भारतीय जनता के उस, सार्वजनिक या व्यक्तिगत स्वरूप के, अनुशासनहीन जीवन का, जो कि मुझे अखर रहा था, उल्लेख किया। मेरा यह सक्षिप्त भाषण काग्रेसी क्षेत्र के चद दोस्तो को बहुत ही चुभा। किन्तु, जैसा कि बाद में मुझे मालूम हुआ, गाधीजी उनसे बोले, "पुरुषोत्तमदास ने बिल्कुल मार्के की बात कही है, और उनके इसी अवसर पर उसे कहने मे मैं खुश हूँ।"

गाधीजी के पिता राजकोट के दीवान रह चुके थे। त्रिपुरी-काग्रेस के कुछ ही दिन पहले उक्त रियासत मे जो आन्दोलन छिडा उसमे बा के बाद गाधीजी ने भी भाग लेने का निश्चय किया। इसकी खबर मिलते ही मैने अपने दोस्तो को विशेष रूप से यह सूचना दे रक्खी कि बबई होते हुए राजकोट के लिए गाधीजी के प्रस्थान करने से पूर्व उनसे मेरी मुलाकात का वे प्रबध करे। वह सोमवार याने उनका मौन-दिन था, और बबई में वे कुछ ही घटे रुकनेवाले थे। किन्तु यह ज्ञात होते ही कि मैं उनसे मिलने के लिए उत्सुक हूँ, गाधीजी ने मेरे पास सँदेसा भेजते हुए कहलाया, कि जुहू स्थित उनके मेजबान के घर पहुँच कर मैं उनसे मुलाकात कर सकूँ इस हेतु वे अपना मौन एक या दो घटा देरसे शुरू करेगे। इससे कृतज्ञतापूर्वक लाभ उठाकर मैने जुहू मे लगभग आध घटेतक उनसे वार्तालाप किया। मैने उनसे यही कहा कि राजकोट की समस्या इतनी क्षुद्र है कि उसके समाधान हेतु वे स्वय वहाँ न जायँ। इसके जवाब मे गाधीजी सिर्फ इतना ही बोले, "यह तो मैं जानता हूँ। फिर भी मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि अगर वहाँ पहुँचना मेरे लिए मुमकिन हो तो मुझे वह टालना नही चाहिये।" जब मैने उन्हे निष्ठा द्विधा होकर मनोव्यथा पैदा होने की सभावना का स्मरण कराया तब वे बोले, " ठीक इसी वजह से तो मैं वहाँ जा रहा हूँ। रियासत की रिआया गलती पर नही है। युवा ठाकुर पर दीवान का बडा रोबदाब है। सो सोचता हूँ कि जिस राज्य की अपने पिताजी के हाथो सेवा हुई उसकी सभवत. मेरे द्वारा भी कुछ सेवा हो सकेगी।" तब इस विश्वास के साथ, कि अपनी कार्यकुशलता और बुद्धिमानी के बलपर गाधीजी प्राप्त परिस्थिति मे समस्या को अधिक से अधिक अच्छी तरह सुलझा देगे, मैं विदा हुआ। नतीजा वही निकला।

अतिम घटना, जो मैं निवेदन करने जा रहा हूँ, १९४५ ई० की मेरी बीमारी के समय की है। वे प्राय नियमित रूप से ही मेरे स्वास्थ्य के सबध में पूछताछ करते रहे। और बबई पहुँचने पर उन्होने अपने मेजबान श्री बिड़ला से कहा कि वे उसी दिन सान्ध्य-प्रार्थना के बाद मुझ से मिलना चाहते है। श्री बिडला के यह कहने पर, कि रात के

लगभग साढ़े आठ बजे उनसे मिलने मे सभवतः मै असमर्थ रहूँगा, गाधीजी बोले–" यदि वे मुझ से नही मिल सकते तो मैं ही जाकर उनसे मिलूँगा ! " और डा० सुशीला नय्यर एव एक अन्य मित्र के साथ वे मेरे घर पधारे। इसके चद ही मिनट पहले मेरी सुपुत्री और नाती वहाँसे रवाना हुए थे, और नर्स मेरे सोने की तैयारी करने जा रही थी। इतने में नौकर ने आकर गाधीजी के आगमन की सूचना दी। सुनकर मेरी पत्नी असमजस्य में पड गई। उनसे बोले भी तो •क्या यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। फिर भी उनका स्वागत करने के लिए वह झट नीचे चली गई। गाधीजी एकदम से उसे पूछ बैठे, " क्या पुरुषोत्तमदास घर मे है ?" मेरी पत्नी ने जवाब दिया, ' वे नीचे आ सकेगे या नही इसमे मुझे सदेह है, हालाँकि उनकी तबीअत जरूर कुछ सुधरी है। " हँस कर गाधीजी बोले, " मै खुद ऊपर जा सकता हूँ; और, अगर आप चाहेगी तो, अपने साथ आपको भी ले जा सकता हूँ, ताकि आपको यह विश्वास हो जाय कि कैसे आसानी से मै सीढियो पर चढ सकता हूँ। " और बिना अधिक प्रतीक्षा किये वे सीढियाँ चढने लगे, और मेरे कक्ष के प्रवेशद्वार पर पहुँचते ही उल्लसित स्वर मे बोल उठे, " आप जरा भी न हिले, मैं खुद आपके पास आकर बैठ जाऊँगा।" और मेरी बीमारी के बारे मे, शिष्टाचार के तौर पर भी, बगैर एक शब्द पूछे वे इस प्रकार सानन्द वार्तालाप करते रहे मानो मुझे स्वास्थ्य–लाभ करा रहे हो। बीस मिनट बाद वे वहाँ से विदा हुए। उस समय जो नर्स वहाँ उपस्थित थी, और जिसने अपने जीवन में आज पहली ही बार उन्हे देखा था, बोली. " यदि बीमारपुरसी के लिए आनेवाले सभी लोग ऐसे ही रहे तो मै यह निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि रोगी को स्वास्थ्य-लाभ कराने मे डाक्टरों की अपेक्षा वे ही अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे।"

बम्बई,
जुलाई १९४६

जब से मैं पढ़ रहा था

टी. एस्. एस्. राजन्

अहंता मनुष्य-स्वभाव का एक अग है। विशेष कर किसी बैठक या मडली में उपस्थित रहने पर हमें अपने बड़प्पन का प्रदर्शन करने की अनिवार्य इच्छा हो जाती है। किंतु वास्तविक महानता इस प्रकार अपना प्रदर्शन शायद ही करती हो। प्रभु का प्रिय पुरुष अपनी भलमनसाहत को व्यक्त करने के लिए कभी अवसर खोजा नही करता। वह उसका स्वभाव-धर्म होता है। यह एक पाठ था जो मुझे १९०९ के करीब लदन मे गाधीजी से पहली बार भेंट करने पर सीखने मिला। तब वे एक सर्वसाधारण व्यक्ति थे, न कि महात्मा, और मै चिकित्सा-शास्त्र का एक मामूली विद्यार्थी,--उन अनेकानेक मे से एक जो कि उन दिनो भी लदन विश्वविद्यालय मे भरे पडे थे। अब तक श्री गाधी का परिचय प्राप्त करने, या उनसे मिलने का कोई अवसर मुझे नही मिला था। अन्य अनेक युवको की भाँति मैं भी स्वतः के भीतर उत्कट देशभक्ति अनुभव कर रहा था। भारतीय स्वाधीनता-प्राप्ति की चर्चा मात्र करना ही उन दिनो एक महान् राष्ट्रकार्य माना जाता था। इसी लिए स्वदेश की स्वाधीनता-प्राप्ति के निमित्त प्रकट रूप से क्राति की बाते करनेवालो के प्रति मेरे मन मे आदरभाव था। चुनाँचे लदन-निवासी भारतीयो के क्षेत्र मे हम मुट्ठीभर मित्र बहुत ही खौफनाक समझे जाने लगे। विनायक दामोदर सावरकर हम लोगो के प्रधान थे, और स्वर्गीय वी. वी. एस. ऐय्यर उप-प्रधान। हमने ब्रिटेन भर में बिखरे हुए तमाम भारतीय छात्रो को एकत्रित कर उन्हे अपनी राष्ट्रीय एकता का भान कराने का निश्चय किया। इस समारोह मे सम्मिलित होने एव उसका अध्यक्षपद ग्रहण करने का अनुरोध करने के निमित्त उस समय लदन मे जो प्रथम कोटि के भारतीय नेतागण उपस्थित थे उनसे सपर्क स्थापित किया गया। किंतु उनमे से हरेक हमसे साफ इन्कार कर गया। आखिर श्री गाधी ने हमारा अनुरोध मानकर एक शर्तपर आना स्वीकार किया।

समारोह के कार्यक्रम-स्वरूप भोज और उसके उपरात भाषण का आयोजन किया गया था। सवा सौ से अधिक छात्रो ने चदा अदा कर भोज मे सम्मिलित होना स्वीकार किया। तदनुसार लदन के किसी होटल मे भोज का प्रबध करने का निश्चय किया गया। किंतु इस समारोह के प्रमुख अतिथि श्री गाधी इससे सहमत नही हुए। उनका आग्रह रहा कि भोज मे पूर्णतया भारतीय पद्धति के शाकाहार को ही स्थान दिया जाय। सो स्वीकार कर हमने किरायेपर एक हॉल लिया, जरूरी चीजे खरीदी गई और भारतीय पाकशास्त्र के अनुसार विविध प्रकार के खाद्य-पदार्थ स्वयं ही पकाने का निश्चय हुआ। हममे से कुछ दोस्तों ने खाना पकाने का काम खुद होकर अपने जिम्मे लिया, और शाम के ठीक साढ़े सात बजे खाना परोसा जा सके इस हेतु हम सब काम मे जुट गये। दोपहर के लगभग दो बजे एक प्रसन्नचित्त, फुरतीला, क्षीणकाय और नाटासा आदमी आकर हमे अपने काम मे बडी मदद देने लगा। उसने खुद होकर थालियाँ माँजने और तरकारी छीलने का काम अपने जिम्मे लिया, और उसका उत्साह व खुशमिजाजी देखकर हमने भी उसे वह सौंपा। घटे के बाद घटा बीतता जा रहा था, किंतु उसके काम मे खड नही पडा। अत मे जब सध्या समय श्री ऐय्यर रसोईघर मे आये तब कही हमें यह पता चला कि दक्षिण अफ्रीका के प्रसिद्ध पुरुष एव आज के समारोह के अध्यक्ष स्वयं श्री गाधी ही अनाहूत सहायक के रूप में अबतक हमारे सग काम करते रहे! जिस महापुरुष के बारे मे हमने इतना सुन रक्खा था उसकी यह असाधारण विनम्रता एव हमारे काम में हाथ बँटाने की स्वयस्फूर्त वृत्ति देख कर मै दग रह गया।

हमने उन्हे काम करनेसे रोकने की भरसक चेष्टा की। किन्तु उन्होंने हमारी एक न सुनी और वे अपने काम में लगे रहे, यहाँ तक कि थालियाँ लगाने और खाना परोसने के काम मे भी उन्होंने हमारी मदद की। अपने सरल और सकोचपूर्ण भाषण के प्रारभ मे ही कमर बाँध कर काम मे जुट जाने की हमारी तत्परता के लिए उन्होंने सन्तोष व्यक्त किया। बोले, "यह देख कर, कि आप लदन निवासी भारतीय विद्यार्थी, सम्पन्न माता-पिता की सतान होते हुए भी, अपने देशवासियों के लिए इस किस्म का हल्का काम करने में ओछापन अनुभव नही

करते, मुझे सानदाश्चर्य हुआ । मुझे इसमे स्वदेश का उज्वल भवितव्य नजर आ रहा है।" और भी बहुतसी बाते उन्होने कही। किन्तु वे सब अब मैं भूल गया हूँ। जो एक ही तस्वीर इतने लम्बे अरसे के बाद मेरी आँखो के सामने साफ झलक रही है वह है लदन के रसोईघर मे महात्माजी के साथ हुई अपनी पहली भेट के प्रसग की। उसके बाद तो गाधीजी द्वारा सचालित सत्याग्रह-आदोलन में भाग लेकर मैं कई बार जेल हो आया हूँ, और हर बार मैंने खुद होकर जेल के रसोईघर मे ही काम किया है। अतिम बार मेरे जेल पहुँचने पर एक दिन राजाजी ने सहज भावसे मुझसे पूछा, "राजन्, जब जब आप जेल पहुँचते है तब तब यहाँ के रसोईघर के इर्दगिर्द ही चक्कर काटते हुए कैसे नजर आते है?" सोचने लगा, वह आदर्श जो कि लदन के रसोईघर में गाधीजी ने उपस्थित किया था, मेरे रोम रोम मे व्याप्त तो नही हुआ है? कहा नही जा सकता। किन्तु इतना अवश्य ही सही है कि इस भावि महात्मा के भीतर की महानता से ससार के परिचित होने से कई वर्ष पूर्व मैं उसके दर्शन कर चुका था।

(२) मेरी यह धारणा थी कि रुपये-पैसे के मामलो मे महात्मा गाधी बेफिक्र रहते होंगे, और स्वत से पैसे खो जानेपर उसका उन्हे दुख भी न होता होगा। तामिल प्रान्त के चेट्टिनाड नामक स्थान मे आयोजित एक असाधारण रूप मे विराट सभा के समय की बात है। स्वागत-समिति ने गाधीजी के स्वागतार्थ उत्तम प्रबध कर रक्खा था। एक विस्तृत खुली जगह मे सजासजाया मडप खडा किया गया था, जहाँ कि हजारो लोग एकत्रित होकर अपने अतिथि की आतुरतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे। गाधीजी के विराजने के हेतु बनाये गये मच के चहु ओर के आकर्षक स्थान अपने लिए सुरक्षित करने मे स्वागत-समिति के सदस्य व्यस्त थे, कि इतने मे, जैसा कि प्राय हुआ करता है, हजारो लोगो की भीड़ ने मडप के सामने की जगह घेर कर मच की ओर आनेका रास्ता ही रोक डाला। गोधूली की वेला में गाधीजी सभास्थान पर पधारे। अभी वे मडप से कुछ दूरी पर थे। मडप मे किस तरह पहुँचा जाय यह उनके लिए एक पहेली थी। गाधीजी को देखते ही मडप में विराजे हुए स्वागत-समिति के सदस्यगण उठकर

खडे हो गये और अपने दोनो हाथ हिलाकर उन्हें स्वागत-पडाल में पधारने के लिए सकेत करने लगे। किन्तु लोग अपनी अपनी जगह इस तरह डटे हुए थे कि गाधीजी की मोटर को रास्ता देने के निमित्त भी खिसकनें के लिए कोई तैयार न था। थोड़ी देर इतजार कर एव निरुपाय देखकर गाधीजी बोले, "तब तो यहाँ पर खडी इस मोटर से ही सभा की कार्यवाही शुरू करना ठीक रहेगा।" और वे खडे होकर उन थैलियो एव मानपत्रो का, जिनकी कि उनपर अक्षरश वर्षा हो रही थी, स्वीकार करने लगे। ये सारी चीजे, जिनमे चादी की कई पिटारिया और एक स्वर्ण-मजूषा भी थी, मोटर के भीतर उनक पैरो के पास रखी हुई थी। सभा समाप्त होते होते रात हो गई। पागल हुई भीड के भीतर से मोटर बाहर निकालना मुश्किल मालूम हो रहा था। आखिर बडी कठिनाई से, बिना किसी के प्राण सकट मे डाले, हमने अपनी गाडी भीड से निकाल ली। डेरेपर पहुँचने पर थैलियाँ, मानपत्र आदि सब चीजे एकत्रित की गई। तब भेंट-स्वरूप प्राप्त इन वस्तुओ में से ठीक स्वर्ण-मजूषा ही, जो कि सर्वाधिक मूल्यवान् थी, गायब है यह देखकर मुझे खेद हुआ। आधी रात बीतने पर अपना यह दुख मुझे असह्य हुआ, और मैंने गाधीजीको इसकी इत्तला दी। सोचता था कि इसके लिए वे मुझपर नाराज होकर मुझे खरी खरी सुनावेंगे। किन्तु ऐसा कुछ भी नही हुआ। मन पूर्वक हसकर वे इतना ही बोले, "अच्छा हुआ, बला टली। जब ऐसी कीमती चीजे मैं उठा या सँभाल नहीं सकता तब उनकी मुझपर वर्षा करने से लाभ ही क्या? ऐसी चीजे सुरक्षित रखने के लिए महादेव एक बक्स चाहता था। अब वह इसकी इच्छा न करेगा। अपने असबाबके साथ मैं सोने और चादी की चीजोंसे भरा हुआ बक्स नही ले जाना चाहता।" इस परिच्छेद के प्रारभ में मैंने गाधीजी के सबध मे जो धारणा व्यक्त की है वह १९२७ क प्रस्तुत प्रसग के कारण ही बनी। कालान्तर मे यह धारणा गलत साबित हुई यह दूसरी बात है।

(३) १९३४ ई. के अपने ऐतिहासिक उपवास के बाद निकाले गये हरिजन-दौरे के सिलसिले मे गाधीजी तामिलनाड पहुँचे। केरल का भ्रमण समाप्त कर उन्होने तिन्नेवेल्ली का दौरा शुरू किया। तिन्नेवेल्ली

स हम तडके रवाना हुए और मोटर द्वारा डेढ सौ से अधिक मील का सफर पूरा कर गोधूली के समय तूतिकोरिन पहुचे । शहर से लगातार कई मील तक रास्ते के दोनो तरफ लोगो की ठसाठस भीड लगी होने के कारण मोटर के लिए धीरे धीरे रास्ता बनाकर सभास्थान तक पहुँचते पहुँचते रात हो गई । सभास्थान पर रग-बिरगे विद्युत्-दीपको की रोपणाई की गई थी। विशेप कर मच पर की रोपणाई आँखो को चकाचौंध कर देनेवाली थी । मच पर गाधीजी के पधारते ही तालियो की कडकडाहट से उनका शानदार स्वागत किया गया। अपने स्थान पर विराजने के बाद उन्होने मुझे बुला भेजा, और पूछा, "राजन्, यह रोपणाई किस लिए? इसका खर्चा कौन देता है? क्या हरिजन सेवक-सघ के लिए इकट्ठा की जानेवाली निधि से स्वागत-समिति यह खर्चा कर रही है? ख्याल रहे कि गरीब से गरीब आदमी के पास से भी मैं पाई-पैसा ले रहा हूँ। अत हरिजनो के लिए एकत्रित की जानेवाली रकम का इस प्रकार अपव्यय हर्गिज नही होना चाहिये । " वस्तुस्थिति मे अवगत होने के कारण मैने उन्हे यह आश्वासन दिया कि इस सजावट के लिए हरिजन-फड से एक पाई भी खर्च नही की गई है, और एक स्थानीय ठेकेदारने खुद होकर इसका सारा व्यय दिया है । किन्तु इतने से वे सन्तुष्ट नही हुए, और मेरा उक्त कथन कहाँ तक सच है इसकी बगैर पूरी तौरसे जाँच किये उन्होने सभा की कार्यवाही प्रारभ करनेसे इन्कार किया। चुनाँचे मै सभा के सचालको को बुला ले आया, जिन्होने मेरे उक्त कथन की ताईद की। फिर भी गाधीजी असतुष्ट ही रहे। पूछने लगे, "क्या ठेकेदार महाशय यहा उपस्थित है? तो कृपया उन्हें बुला लाइये।" सो ठेकेदार को उनके सामने लाकर हाजिर किया गया। गाधीजीने उससे कई सवाल किये और इस बात का विश्वास हो जाने पर ही, कि वास्तवमे ठेकेदारने स्वेच्छासे यह सब खर्चा उठाया है और इसके निमित्त निधि से एक पाई की भी अपेक्षा वह नही रखता, उन्हो ने सभा की कार्यवाही शुरू की। यह सारा मामला देखकर मै दग रह गया। मन ही मन सोचने लगा कि यदि तामिलनाड् भर में गाधीजी के स्वागतार्थ बनी हुई सैकड़ो स्वागत-समितियो में से कुछेक ने अपनी निधि से इस प्रकार फ़जूल

खर्चा किया हो, और यदि उसका गाधीजी को पता चल गया तो अवश्य ही तुतिकोरिन-प्रकरण की पुनरावृत्ति हो सकती है। ऐसी स्थिति मे गाधीजी एव उन अनेकानेक समितियो के सदस्यों को एकसाथ किस प्रकार सतुष्ट किया जाय ? मैंने तुरत सभी समितियों के पास इस आशय की सूचनाएँ भेज दी कि गाधीजी के स्वागतार्थ हरिजन-फड से एक पाई भी खर्च न की जाय, और जहाँ कही भी गाधीजी पहुँचेगे वहाँ की निधि के आय-व्यय का हिसाब ठीक प्रकार से रखकर उनके वहाँ से विदा होने के पूर्व उन्हे वह जरूर दिखाया जाय। यह एक अत्यंत कठिन काम था। और इस दौरे के दरमियान मुझे उनके भीतर के 'बनिये' का इतने यथार्थ रूपमें दर्शन करने मिला कि जैसा इससे पूर्व कभी नही मिला था। इस दौरे की समाप्ति के पहले गाधीजी विषयक अपने कई विचार मुझे बदल देने पड़े। और खैरियत यह हुई कि हिसाब-किताब ठीक से न रखने, या फजूल खर्ची की वजहसे अपनी जेबसे मुझे पैसे नही चुकाने पड़े।

तिरुवेगीमलाय
१०-५-१९४३

जब से वे चंपारन आये

राजेंद्र प्रसाद

अप्रैल १९१७ में मैं पहली बार गाधीजी से प्रत्यक्ष रूप से मिला। इससे पूर्व उनके जीवन, एवं दक्षिण अफ्रीका के उनके कार्य के सबध मे सुन-पढ़ चुका था। १९१५ मे उनके स्वदेश लौटने पर कलकत्ता मे आयोजित एक स्वागत-सभा मे उन्हे दूर से देख लेने का भी मौका मुझे मिला। १९१६ की लखनऊ-काग्रेस के अवसर पर मैंने दुबारा उनके दर्शन किये। लखनऊ के इसी काग्रेस-अधिवेशन मे चपारन के कुछ लोगो ने वहाँ के नीलबागान के मालिको के विरुद्ध उनसे शिकायत की। गांधीजी ने उनकी विपदाओ की कहानियाँ सुन तो ली, किन्तु वे उनपर तब तक विश्वास करने के लिए तैयार न थे जब तक कि खुद इस संबध में पूरी तहक़ीक़ात नही कर लेते। इस कार्य के निमित्त कुछ दिन चपारन आ कर रहने का उन लोगों

को उन्होंने आश्वासन भी दिया। तदनुसार अ. भा. काग्रेस कमिटी की कलकत्ते की बैठक के बाद श्री राजकुमार शुकुल को साथ लेकर वे चपारन के लिए चल पड़े। अ. भा. काग्रेस कमिटी की उक्त बैठक मे मैं भी उपस्थित था, और उन्ही की बगल म बैठा हुआ था। किन्तु प्रत्यक्ष परिचय न होने के कारण उनसे मेरी कोई बातचीत ही नही हुई, और इसी लिए उनकी प्रस्तावित बिहार-यात्रा से मैं अनभिज्ञ रहा। कलकत्ते से मै एक दिन के लिए पुरी चला गया, और इधर श्री राजकुमार शुकुल उन्हे साथ लेकर पटना के मेरे मकान पर पहुँचे। एक नौकर को छोड़कर घर मे और कोई नही था। उनसे अपरिचित होने एव यह भी कोई मुवक्किल होगा ऐसा सोचकर उसने उन्हे एक ऐसे कमरे में ठहराया जो कि प्रायः इसी प्रकार के आगन्तुको के लिए सुरक्षित था। वे कुछ ही घटे वहाँ ठहरे। उनके आगमन की शहर मे खबर पहुँचते ही स्व. मझरुल हक आकर उन्हे अपने घर ले गये, जहाँ से उसी दिन शाम को वे चपारन के लिए रवाना हुए। मार्ग में मुझफ्फरपुर पड़ता था, जहाँ के एक कालेज मे आचार्य कृपलानी उस समय प्रोफेसर थे। आधी रात के समय ट्रेन मुझफ्फरपुर पहुँची। पूर्वसूचना मिलने के कारण आचार्य कृपलानी अपने विद्यार्थियो समेत गाधीजी के स्वागतार्थ स्टेशनपर उपस्थित थे। मुझफ्फरपुरके प्रो. मलकानी के यहाँ दो दिन गाधीजी का मुकाम रहा।

चपारन की रय्यत का एक लम्बे अर्से से इतनी बुरी तरह छल और शोषण किया गया था कि नीलबागान के स्वामियो के विरुद्ध किसी मजिस्ट्रेट या अन्य सरकारी अफसर के पास शिकायत ले जाने मे भी उन्हें भय लगता था। कहते है कि यदि मजिस्ट्रेट के पास पहुँचनेका दुस्साहस कोई दिखाता तो नीलबागान के मालिकोंके आदमी भरी अदालतसे मजिस्ट्रेट की आँखो के सामने उसे खीचकर उसकी मिट्टी पलीद कर देते थे। इसी लिए रय्यत को चूँचिपड़ तक करने की जरा भी हिम्मत न पड़ती थी। किन्तु दक्षिण अफ्रीका में प्रसिद्धि प्राप्त करनेवाले कर्मवीर गाधी अपनी मदद करने आ रहे है ऐसी खबर मिलते ही इनमेंसे

अधिकाश लोगो में न जाने कैसे एक परिवर्तन नजर आया। जब गाधीजी मोतीहारी पहुँचे तब स्टेशनपर उनके स्वागतार्थ जनता की भारी भीड़ उमड़ पडी। अपने आगमन के एक दिन बाद वे एक देहात के दौरेपर निकल ही रहे थे, कि न्हे उक्त गाँव मे नीलबागान के मालिको के पिठ्ठुओ द्वारा आगजनी और लूटपाट मचाई जानेकी खबर मिली। इधर जिला-मजिस्ट्रेट ने भी उनपर यह हुक्म तामिल किया कि वे अविलब उक्त जिला छोडकर चले जायँ। अवश्य ही गाधीजीने यह हुक्म तोड़ दिया, जिसके लिए अगले दिन उनके खिलाफ मुकदमा दायर किया गया। अपनी ओरसे सफाई पेश करने के निमित्त जिस समय वे अदालत मे आये उस समय अदालत के आसपास हजारो की भीड़ लगी हुई थी। चपारन की अदालती कार्यवाहियो के इतिहास मे यह एक अभूतपूर्व दृश्य था। चपारन के किसानो की जिस समस्या के समाधान हेतु वे आये थे उसे यूही छोडकर चला जाना उनके लिए अब सभव न था। विशेष कर जब जिलाधिकारियो की ओरसे उनपर यह प्रतिबन्ध लगा दिया गया कि वे इस सबध मे किसी भी प्रकार की जाँच नही कर सकते तब वे और ही अधिक सशकित हुए। सोचने लगे जरूर दालमें कुछ काला है, जो कि अधिकारीगण उनसे छिपाना चाहते हैं। फलतः उन्होंने आज्ञा भग करनेका निश्चय किया। स्वत.पर नोटिस तामिल किया जाने एव उसे तोड चुकने के बाद उन्होंने मुझे तार देकर मोतीहारी बुलाया। श्री राजकुमार से, और सभवतः मुझफ्फरपुर एव मोतीहारी स्थित मित्रो द्वारा मेरे बारे मे वे सुन चुके थे। चपारन से मेरा परिचय नाममात्र का था। पहले मैं हाईकोर्टमें वकालत करता था, और उसी नाते मैंने हाईकोर्ट के कामसे आनेवाले कतिपय गरीब किसानो की समय समय पर सहायता की थी। स्व. बाबू ब्रिजकिशोर एव स्व. बाबू धरणीधर की जिला अदालत मे खूब प्रैक्टिस चलती थी। ब्रिजकिशोर बाबू तो बडी धारासभा के भी सदस्य थे और वहाँ सवाल, प्रस्ताव एव अन्य कई प्रकार की बातें पेश कर चपारन के किसानो की यथासभव सहायता करते रहते थे। उन के मुकदमो की पैरवी भी वे ही करते थे, और मामला हाईकोर्ट मे जाने पर पैरवी का काम मुझे सौंपते थे। इसी निमित्त राजकुमार शुक्ल का मुझ

से परिचय हुआ, और इसी परिचय के बलपर वे महात्माजी को मेरी गैरहाजिरी में पटना के मेरे मकान पर ले आये।

तार मिलते ही व्रिजकिशोर बाबू एवं हक साहब को साथ लेकर मैं मोतीहारी के लिए रवाना हुआ। दोपहर बाद लगभग तीन बजे हम वहाँ पहुँचे। मजिस्ट्रेट मुकदमे की कार्यवाही सवेरे ही शुरू कर चुका था। गाधीजी द्वारा यह वक्तव्य दिया जाने के बाद, कि हेतुपुरस्सर ही आज्ञा भंग की गई है और इसके लिए जो भी कठोर से कठोर दंड दिया जायगा वह भोगने की अपनी तैयारी है, उसने फैसला सुनाना चार-पाँच दिन के लिए स्थगित रखा। उसकी यह अपेक्षा थी कि सदा की भाँति इस मुकदमे की कार्यवाही के समय भी कानूनी मुद्दे उपस्थित कर बाल की खाल निकालना, गवाहों से जिरह करना, वादी एवं प्रतिवादी की ओर से दलीलें पेश की जाना वगैरह सारी रस्म अदा होगी। मुकदमे की कार्यवाही यथानियम ही प्रारंभ हुई। किन्तु ज्योंही सरकारी वकील एक गवाह से जिरह करने लगा, गाधीजी उसे टोककर बोले, "इसकी कोई आवश्यकता नहीं। आज्ञा भंग की जाने की बात स्वीकार करते हुए उक्त आशय का वक्तव्य भी मैंने तैयार कर लिया है।" गाधीजी द्वारा वह वक्तव्य पढकर सुनाया जाते ही मजिस्ट्रेट असमंजस्य में पड गया। अपने अपराधी होने की बात बहुत ही थोडे शब्दों में गाधीजी ने उक्त वक्तव्य में स्वीकार कर ली थी। उनके उन शानदार वक्तव्यों में से, जिनसे कि कालान्तर में सारा देश चिर परिचित हुआ, यह भी एक रहा। किन्तु उन दिनों वह सर्वथा असाधारण और अपूर्व था। वास्तविक बात यह थी कि मजिस्ट्रेट इस मुकदमे की कार्यवाही इतनी जल्द पूरी नहीं करना चाहता था, क्योंकि तत्क्षण सजा सुनाने को वह तैयार न था। किन्तु गाधीजी भी अब इस कार्यवाही को अधिक दिन तक जारी रहने देने के लिए तैयार न थे। अतः वे बोले कि यदि मजिस्ट्रेट का आग्रह ही होगा तो साफ शब्दों में अपराध स्वीकार कर लेने की अपनी तैयारी है। तब सिवाय सजा सुना देने के मजिस्ट्रेट के लिए अन्य कोई चारा ही नहीं रहा। दो घंटे बाद फैसला सुनाया जायगा, ऐसा कहकर उसने गाधीजी से जमानत माँगी। गाधीजीने जमानत देने से इनकार

किया। आख़िर लाचार होकर मजिस्ट्रेट ने उन्हे केवल इसी शर्तपर, कि जब भी ज़रूरत होगी वे हाज़िर हो जायँगे, रिहा किया। किन्तु गाधीजी वही रुके रहे। दो घटे बीतने पर मजिस्ट्रेट बोला कि फ़ैसला और कुछ दिन बाद सुना दिया जायगा।

गाधीजी अदालत से अपने डेरे पर अभी लौटे ही थे कि हम वहाँ जा पहुँचे। अपने घर पर नौकर द्वारा उनके प्रति किया गया व्यवहार ज्ञात होने के कारण मै स्वाभाविक रूप से लज्जित हुआ था। नवागतो मे से एक के रूप मे मेरे नाम का उनसे ज़िक्र किया जाने पर वे सिर्फ हँस दिये, और बोले, "आप की गैरहाज़िरी मे मै पटना के आपके मकान पर हो आया हूँ।" फिर औपचारिक बातचीत के झझट मे न पड़कर उन्होने सीधे काम की बाते छेड़ी। अदालत की कार्यवाही से हमे अवगत कराते हुए वे बोले, "सब कुछ ठीक वैसा ही हुआ जैसा कि मेरा अनुमान था। मजिस्ट्रेट जिला-मजिस्ट्रेट से, एव जिला-मजिस्ट्रेट प्रान्तीय सरकार से इस सबध मे सलाह लेना चाहता है। महायुद्ध जारी होने की वजह से प्रान्तीय सरकार मुझे जेल भेज कर किसी किस्म का धोखा उठाने के लिए तैयार नही। फिर भी जो कुछ सिरपर आ पड़ेगी सो सहने के लिए हमे तैयार रहना चाहिये।" इतना कहकर उन्हो ने हम से पूछा, "अगर मै गिरफ्तार कर लिया गया तो आप लोग क्या करेगे ?" उनकी कार्यप्रणाली से हम सर्वथा अनभिज्ञ थे और बगैर कुछ सोचे-समझे ही उनकी सेवा मे हम उपस्थित हुए थे। और जहाँ ऐसा कोई क़दम उठाने की, जिससे अपने रोजमर्रा के कामकाज में बाधा उपस्थित हो जाय, हमारी तैयारी नही थी, वहाँ जेल जानेका सवाल बेकारसा था। अत. यह जाने बिना, कि हम से वे किन किन बातों की अपेक्षा रखते है, उनके उक्त प्रश्न का उत्तर देने की परिस्थिति मे हम नही थे। चपारन-निवासियो की बोली से परिचित न होने के कारण मुज़फ्फरपुर से उक्त भाषा जाननेवाले दो वकीलो को दुभाषियो के तौर पर अपने साथ वे ले आये थे। अवज्ञा करने के जुर्म में जब मजिस्ट्रेट ने गाधीजी को तलब किया तब उन दो वकीलो से भी उन्होने वही सवाल पूछा। बाबू धरणीधर जी, जो कि उन उभय में ज्येष्ठ, और साथ ही अत्यत प्राजल, प्रामाणिक एव स्पष्ट वक्ता थे, बोले,—"हम तो दुभाषिये के

तौर पर यहाँ आये हुए हैं, और आपके जेल चले जाने पर, चूकि अन्य किसी के लिए यह काम करने की जरूरत न रहेगी, अपने घर वापस लौट जाएँगे।" यह तो हुआ एक वकील का जवाब। किन्तु इससे वह स्वय सतुष्ट नही थे। चित्त उनका परस्पर विरोधी विचारो से व्याप्त था। अत मे, दूसरे दिन प्रात., उन्होने गाधीजी का अनुसरण एव उनकी हरेक आज्ञा का पालन करने का निश्चय किया। तब गाधीजी ने उन्हे यह सुझाव दिया कि अपने जेल चले जाने के बाद वे जाँच का काम आगे जारी रक्खे, और यदि इस सबध मे उनपर प्रतिबध लगा दिया गया, एव वह तोडने की उनकी तैयारी न रही, तो वे किसी अन्य दल को उक्त काम सौपे, जो कि इसी क्रम से आगे भी चलता रहे। सो उन्हे स्वीकार था। मन ही मन वे सोचने लगे कि गाधीजी इस प्रदेश के लिए सर्वथा अपरिचित होने पर भी किसानो की खातिर जेल चले जाने के लिए तैयार हैं; विपरीत इसके वह खुद पास ही के जिले के रहिवासी होकर, एव किसानो की सेवा करने का दम भरते रहने पर भी, अगर घर भागे तो निस्सन्देह वह शर्मनाक बात होगी। आखिर उन लोगो ने जेल जाने का फ़ैसला किया, और इसकी सूचना गाधीजी को ठीक उस घडी दे दी जब कि वे अदालत जाने के लिए निकल रहे थे। सुनकर गाधीजी बहुत खुश हुए और तुरत बोले, "चपारन की लड़ाई जीत ली गई है।" जब हमसे भी वही सवाल किया गया तब इन सारी बातो से अनभिज्ञ होने के कारण हमने इस सबध मे उन दोस्तो से, जो कि शुरू से उनके साथ थे, सलाह-मशविरा करने के लिए कुछ वक्त माँग लिया। उन दोस्तो ने वह सारा किस्सा, याने किस तरह वे जेल जाने के निर्णय पर पहुँचे, हमे कह सुनाया। चुनांचे आपस में सलाह-मशविरा करने के लिए हम सब इकट्ठा हुए, और उपर्युक्त निर्णयपर पहुँचने में हमें भी कुछ कठिनाई नहीं मालूम हुई। तदनुसार हमने उन्हे सूचित किया, जिससे वे प्रसन्न हुए। दरअसल वे एक पक्का बनिया थे। उन्होने झट एक पेन्सिल और कागज का पुर्जा उठाया, और उसपर हम सब के नाम दर्ज कर लिये। फिर हममें से दो-दो की टुकड़ियाँ बनाकर कौनसी टुकड़ी कब आज्ञा भग कर उसकी भी एक सूची उन्होने तैया-

सिलेवार वना ली। फ़ैसला सुनाया जाने मे अभी कुछ दिन की देर थी। इस बीच जरूरी कामो से निपटने के लिए हमे अपने अपने घर जाकर लौटने की अनुमति मिली। यह तय हुआ था कि फ़ैसले के दिन हक् साहब एव ब्रजकिशोर बाबू की टुकडी तैयार रहे। इस प्रथम प्रसग ने बिहार के सबध मे गाधीजी की बहुत ही अनुकूल राय बना दी, और इसी के परिणाम-स्वरूप बिहार के प्रति अपना विश्वास एव सन्तोष वारबार व्यक्त करते हुए वे कभी अघाये नही।

किसानो की शिकायतो की जाँच होने लगी, और कुछ ही दिन वाद लेफ्टनट-गवर्नर द्वारा उन्हे मुलाकात के लिए बुलाया गया। अवश्य ही इस बीच उन शिकायतो के समर्थन-स्वरूप बहुतसा सबूत-प्रमाण हम इकट्ठा कर चुके थे। कोई बीस-पचीस हजार गवाहो से हमने जिरह की होगी, जिनमें से लगभग दस हजार के वक्तव्य तो अक्षर-अक्षर और शेष के सार रूप मे लिख लिये गये थे। हमने इस विषयक हजारो दस्तावेज भी इकट्ठा कर वे तरतीबवार छाँट लिये थे। इसी भाँति अपने जिले के सबध मे भी सूक्ष्म जानकारी प्राप्त कर ली गई थी। यह बहुत-सारी तैयारी देखकर जमीदार और अफसर दोनो घबरा गये, और उन्होने लेफ्टनट-गवर्नर से *झूठी-सच्ची बातो की रिपोर्ट की। गाधीजी को अदालत* मे सम्मन आने पर हम सभी ने यही अनुमान लगाया कि अब वे लौट न सकेगे। या तो वे स्थानबद्ध कर लिये जायँगे, या उन्हे प्रान्त से निष्कासित किया जायगा। अत गवर्नर से मिलने के हेतु राँची के लिए उनके प्रस्थान करने से पूर्व हमने पुनः एक बार सत्याग्रहियो की सूची उसी क्रम से बना ली जिस क्रमसे कि वे जेल जानेवाले थे, और राँची से प्राप्त होनेवाले उनके सँदेसे की हम प्रतीक्षा करने लगे। लेफ्टनट-गवर्नर के साथ हुई उनकी तीन-चार लबी मुलाकातो का नतीजा यही निकला कि उसने किसानो की शिकायतो की जाँच करने के लिए एक कमीशन नियुक्त कर गाधीजी को उसका सदस्य बना दिया। स्मरण रहे कि इस कमीशन ने, जिसमे नीलवागान के स्वामियो, जमीदारो एव सरकारी अफसरो को छोड़कर किसानो के एकमात्र प्रतिनिधि के नाते केवल महात्मा गाधी ही सम्मिलित थे, अपनी सर्वसम्मत रिपोर्ट पेश की और चद सुझाव दिये, जो कि सरकार ने एक कानून बनाकर अमल में लाये।

इस सर्वसम्मत रिपोर्ट का भी एक इतिहास है। सारी शिकायतें यहाँ सविस्तार उद्धृत करने की कोई आवश्यकता नहीं। इतना ही कहना काफी है कि कमीशन ने एकमत से वह प्रथा, जिसके अनुसार नीलबागान के स्वामियों के लाभार्थ उनकी रय्यत को अनिवार्य रूप से काश्त करनी पडती थी, एव जो सारी शिकायतों की जड थी, समाप्त कर देने की सिफारिश की थी। इन स्वामियों ने अपनी रय्यत से वसूल किया जानेवाला लगान बढाकर बहुत-सा रुपया ऐंठा था, जो कि कानूनन गलत था। इस सबध मे यह सुझाव दिया गया था कि बढाये हुए लगान में लगभग पचीस प्रतिशत कमी कर उतनी ही रकम नगदी लौटाई जाय। इसपर गाधीजी ने यह सुझाव देकर, कि बढाया हुआ लगान ७५ प्रतिशत तक कायम रखकर उसी अनुपात मे नगदी रुपया लौटाया जाय, कमीशन के सदस्यो मे एकमत निर्माण किया था। इस लाभ के लालच से सारे सदस्य समझौता करने के लिए सहमत हुए। मुझे याद है कि गाधीजी हम से बोले थे कि नीलबागान के ये स्वामी अपनी प्रतिष्ठा के बलपर ही रय्यत पर हुकूमत चलाते हैं। अत उनकी इस प्रतिष्ठा का अत नहीं तो कमसे कम उसे भग करने की दृष्टि से यह एक ही बात, कि उन्हे लगान की दर अशत. घटाकर आशिक नगदी रुपया भी लौटाने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है, काफी है। अतः हम इस बात का विश्वास रक्खें कि भविष्य में रय्यत अपने इन स्वामियों से कतई न दबेगी। गाधीजी साफ समझ चुके थे कि नीलबागान के इन स्वामियों के लिए गैरकानूनी तरीकों से रय्यत का शोषण करने का रास्ता बद होते, एव कानूनन जो उनका नहीं है वह उन्हे देने से इन्कार करने की अक्ल रय्यत में आते ही उनका सारा खेल अपने आप खतम हो जायगा। अक्षरशः यही हुआ। समझौते के अनुसार यद्यपि रय्यत की ओर से अपनी माँग ७५ प्रतिशत तक घटा दी गई थी, फिर भी गाधीजी की उपर्युक्त यात्रा के कुछ ही वर्ष बाद नीलबागान के ये स्वामी चपारन छोडकर चले गये। उनकी आलीशान कोठियाँ, अस्तबलों और बाग-बगीचों की जगह अब ग्रामीणों के घर खडे हुए हैं, और जिन जमीनों पर वे कब्जा कर बैठे थे उनका एक एक इच अब रय्यत के अधिकार में है। १९२०-२१ के असहयोग-आदोलन में गाधीजी ने इसी कार्यप्रणाली का अवलब किया। उस समय हममें से वे लोग,

यह सब मामला हमारी समझ मे नही आ रहा था। किन्तु वे इस विषयक हमारी भावना भाँप चुके थे। अत बोले, "आप सब सोचते है कि चूकि हम नीलबागान के अगरेज स्वामियो के विरुद्ध लड रहे है, और उनका अगरेज अफसरो एव केद्रीय व प्रातीय सरकारो पर और खुद इग्लैंड मे भी बडा भारी प्रभाव है, इसलिए प्रस्तुत विषम लडत मे एक अगरेज का स्वपक्ष मे होना लाभप्रद रहेगा। लेकिन इसमे आपके दिल की कमजोरी दिखाई देती है। हमारा कार्य न्याय्य है, और उसमे सफलता पाने के लिए हमें स्वत. पर ही अवलबित रहना चाहिये। आपका दुराग्रह देखते ही आपके मन की उथल-पुथल मैं ताड गया, और मेरा यह दृढ मत बना कि एण्ड्रयूजको हर हालत मे रवाना हो ही जाना चाहिये। उस मुताबिक कल सुबह वह चल देगे।" उन्होने बात तो बिल्कुल हमारे मन की कही थी, जो सुनकर हम निरुत्तर रह गये। अगले दिन सुबह एण्ड्रयूज रवाना हुए, लेकिन जाने से पहले मजिस्ट्रेट से मिले। वहाँ उन्हे मालूम हुआ कि प्रातीय सरकार ने मुकदमा उठा लेने, एव जाँच का काम आगे जारी रहने देनें का आदेश निकाला है। फिजी के लिए प्रस्थान करने से पूर्व यह समाचार उन्होने हमे सुनाए, जिससे हम खुश हुए, और निश्चिन्त भी। साराश, यह था गाधीजी का अपना ढग जिससे कि उन्होनें हमें स्वावलबन का एक पाठ पढा दिया।

और एक प्रसग। जाँच का हमारा काम पुन प्रारभ होते ही नीलबागान के स्वामियो मे स्वाभाविक रूप से बड़ी खलबली मच गई। वे गाधीजी और ब्रिजकिशोर बाबू के खिलाफ सरकार के पास झूठसच खबरें भेजने लगे। एक अगरेज आइ. सी. एस्. मजिस्ट्रेट भी, जो कि आगे चलकर किसी प्रान्त का गवर्नर बना और जो गाधीजी के साथ दक्षिण अफ्रीका विषयक उनके अनुभवो, उनकी अहिंसा, एव तत्सबधी विषयों पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया करता था, उनके विरुद्ध सरकार के पास सनसनीखेज समाचार भेजने लगा। इस प्रकार की अपनी एक रिपोर्ट मे उसने सारी स्थिति को बहुत ही भयानक रूप में चित्रित किया था। लिखा था, कि गाधीजी की उपस्थिति के कारण सारा वातावरण ही कानून के प्रति अवज्ञा की वृत्ति से भर गया है, प्रात के कुछ हिस्से मे

ब्रिटिश शासन का लोप हुआ है, और जनता गांधीजी को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखने लगी है कि जिनके पास सरकार, मजिस्ट्रेट आदि के विरुद्ध शिकायत की जा सकती है। इसमें हेतु यही रहा कि सरकार इस दिशा मे कदम उठाकर उन्हे स्थानातरित करे। अवश्य ही उसने उक्त रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि गांधीजी के पास अभिप्रायार्थ भेजने की उदारता दिखाई थी, और उन्हे सूचित किया था कि आपकी सम्मति सहित ही सरकार के पास वह भेज दी जायगी। उसमे और यह भी जोड़ दिया गया था कि उक्त पत्र गुप्त समझा जाय। गांधीजी हम लोगो से कोई भी बात कभी छिपाते नही थे। अत. उन्हे यह पत्र भी हमसे छिपाना उचित नही लगा। इसके उत्तर मे उन्होने मजिस्ट्रेट को सूचित किया कि 'गुप्त' का वे यही अर्थ लगाते है कि इसे कही प्रकाशित न किया जाय। किंतु ऐसे सहयोगियो से, जिनकी सलाह और सहायता के बिना कुछ भी करना अपने लिए असभव है, वह छिपाया नही जा सकता। और यदि मजिस्ट्रेट कोई बात उनसे छिपाना ही चाहता हो तो फिर वह स्वत. को भी न बताई जाय। गांधीजी का यह लिखना हमे पसद न आया। क्योकि हमें ऐसा लगा कि यदि मजिस्ट्रेट गांधीजी की सूचनानुसार ही चलने लगा तो खुद उन्हे एक ऐसे साधन से हाथ धोना पडेगा, जिसके द्वारा कि स्थानीय अधिकारियों के बीच चलनेवाली गुफ्तगू का अबतक पता लगता रहा; और इससे सभवत हमारे कार्य में भी रुकावट पैदा हो जाती। इसलिए हमने उनसे कहा कि हम यह बहुतसारी बाते जान लेने के मोह से अपने आप को दूर रखेगे, और सरकार की मनोवृत्ति के अध्ययन से गांधीजी जिस निर्णयपर पहुँचेंगे उसी मे सतोष मान लेगे। किंतु गांधीजी बोले कि यह उचित न होगा। वस्तुत जब हम सब यह दस्तावेज पढ़ चुके है तब मजिस्ट्रेट को इस गलतफहमी मे रखना, कि किसी की भी उसपर नज़र नहीं पड़ी है, अनुचित है। और आगे बोले, कि वे उसे अकेले ही पढ़ना नहीं चाहते। ऐसे मामलो में किस सतर्कता से काम लेना चाहिये यह उन्होंने आज हमे सिखा दिया था।

एक अन्य उदाहरण द्वारा यही बात और अधिक स्पष्ट हो जायगी। सरकारी नौकरो मे से कई हमारे सुपरिचित थे। उनमे से बहुतसे ऐसा

सोचते थे कि हमारी सहायता करना अपना कर्तव्य ही है, और उन में से कुछ तो सरकारी गुप्त दस्तावेज हमारे पास भेज भी देते थे। ये दस्तावेज हमारे काम की दृष्टि से बड़े कीमती होते थे। इस तरह का एक दस्तावेज एक बार हमारे हाथ लगा, जो हमने जाकर गांधीजी को दिया। किंतु उस विषयक ये सब बातें मालूम होते ही गांधीजी ने वह खोला ही नही, और बोले वे तब तक इसे देख नही सकते जब तक कि उन्हे यह विश्वास दिलाया नही जाता कि वह वैध उपायो से ही प्राप्त किया गया है। उन्होने हमे भी अपना अनुसरण करने की सलाह दी। तबसे इस सिद्धान्त पर हम अटल रहे हैं।

और एक उदाहरण। उन दिनो होमरूल-आदोलन पुरजोश चल रहा था। श्रीमती एनी बेसण्ट स्थानबद्ध कर ली गई थी, और प्रातभर मे बड़े जोरशोर से आदोलन चल रहा था। हम सब काग्रेस के कामों में दिलचस्पी लेने लगे थे, और सोचते थे कि होमरूल का सदेश गाँव गाँव में पहुँचाने के लिए कुछ न कुछ करना चाहिये। गाधीजी ने हमे इससे रोका। चुनाँचे हममे से किसी ने भी, यहाँ तक कि स्वय गाधीजी ने भी, चपारन जिले के अपने निवासकाल मे कभी भूल से भी राजनीति की चर्चा नही की। वे हमसे सदा यही कहते रहे कि चपारन मे हमारे द्वारा सच्चे होमरूल-आदोलन एव स्वराज्य-स्थापना का कार्य हो रहा है। अवश्य ही उनके उक्त कथन का आशय उस समय हम पूरी तौर से समझ नही पाये। फिर भी हमने उनके आदेश का पालन किया। और यदि उन दिनो हम स्वतः द्वारा उठाय गये कार्य में लगनपूर्वक जुटे न रहकर होमरूल-आदोलन की ही बातें करते रहते तो विहार की परिस्थिति कदापि न सुधरती। वे हमसे यह भी कहते रहे कि इस तरह हम अपनी जो साख जमा रहे है वह आगे चलकर बड़े काम की साबित होगी। सचाई से भरे हुए उनके इस कथन को अपने दैनदिन जीवन मे मैं तभी से बराबर अनुभव करता रहा हूँ।

बाद के दिनो की अन्य एक घटना अब निवेदन करता हूँ। १९१८ में बम्बई मे श्री हसन इमाम की अध्यक्षता मे काँग्रेस का एक विशेष अधिवेशन हुआ। गांधीजी उस समय अहमदाबाद में सख्त बीमार पड़

वहाँ जी लगे भी तो कैसे ? अहमदाबाद के मिल-मजदूरो मे मैंने काम शुरू किया, लेकिन वह थोडा आगे बढ़ ही पाया था कि इसी बीच एक दूसरे काम मे हाथ डालना पडा। फिर आश्रम चलाने का विचार किया। उस विषयक व्यवस्था हो ही रही थी कि चपारन से बुलावा आया। सोचता था वहाँ का काम जल्द खत्म कर आश्रम के उद्घाटन के लिए ठीक समय पर लौट आ सकूगा। किंतु वहाँ कई महीने रुकना पडा, जिससे यह इच्छा भी पूरी नही हुई। चपारन की रय्यत को राहत दिलाने मे कुछ कामयाबी तो जरूर मिली, लेकिन वह नाकाफी है। जिले की जनता से निकट सपर्क स्थापित कर जनता मे शिक्षा-प्रसार करने के हेतु पाठशालाएँ खोली, किन्तु बीच ही मे खेडा जाना पडा, जिससे इस काम के लिए वक्त नही दे सका। जहाँ तक चपारन की जनता को राहत दिलाने का प्रश्न था, योजना सफल हुई; किन्तु उसे शिक्षित करने का काम उठाने के पहले रगरूट-भर्ती के काम मे हाथ डालना पडा। और अब तो बीमार ही पड गया। कह नही सकता कि इस बीमारी से पिंड छूटेगा भी या नही, और अब कोई नया काम कहाँ तक उठा सकूँगा इसमे भी मुझे सदेह है। सारी उम्र नित नये नये काम उठाने एव वे अधूरे छोड़ देने में बीती, और अब कूच करने का वक्त आ गया। किन्तु यदि ईश्वर की यही इच्छा हो, तो फिर निरुपाय है! " इतना कहकर बच्चे की नाई वे रोने लगे। उस समय हममे से जो चद लोग वहाँ उपस्थित थे उनके मुँह से सवेदना का एक शब्द भी नही फूटा। जल्द ही वे होश मे आये, और बोले, "इतने दिन मेरा दम घुटता रहा, लेकिन आज ढाले गये इन आँसुओ से कुछ सात्वना मिली।" और इसके बाद वे अन्यान्य बातो की चर्चा करने लगे।

विगत तीस वर्ष की दीर्घ कालावधि मे उनके निकट सपर्क मे रहकर काम करते समय ऐसे अनेकानेक प्रसग उपस्थित हुए हैं जब कि उनकी कार्यप्रणाली के औचित्य एव निर्दोषिता के सबध में मेरा पूरी तौर से समाधान नहीं हो पाया, और अपनी शकाएँ मैंने उनके सामने व्यक्त भी की। वादविवाद द्वारा मेरा समाधान करने की चेष्टा वे करते रहे, किन्तु इसमें उन्हे सदा सफलता ही मिली हो सो बात नहीं। अवश्य ही उनकी सलाह के अनुसार ही मैं चलता रहा, और हर बार अतत मैंने यही

अनुभव किया कि उन्ही का दृष्टिकोण सही था, जब कि अपनी विचार-प्रणाली तर्कसगत होनेपर भी व्यवहारत सदोष थी। हमारे पारस्परिक सबध के प्रारभकाल से ही यह स्थिति बनी रही। आगे चलकर मैंने ऐसा अनुभव किया कि हो न हो अपनी विचारप्रणाली मे ही कुछ दोष है। इस अनुभव के परिणाम-स्वरूप मै उनका 'अध अनुयायी' बना ऐसा कहा जाय तो इसमे जरा भी अत्युक्ति न होगी।

अब और एक ही दृष्टात दूँगा। १९३० का आदोलन छेड़ा ही जानेवाला था, कि गाधीजी ने हमारे सामने नमक-कानून तोडने का सुझाव रक्खा। इससे ब्रिटिश सरकार को क्या क्षति पहुँचेगी यह बात हममे से बहुतो की समझ मे नही आ रही थी। कई एक ने इस विषयक अपनी शकाएँ व्यक्त की, जब कि शेष कई ने नमक-कानून तोड़कर स्वराज्य प्राप्त करने की बात का खुल्लखुल्ला मजाक उडाया। विहार की परिस्थिति का, जहाँ दरिया-किनारा नही है, ख्याल करते हुए मुझे ऐसा लगा कि हम इस तरह का कोई कानून चुन ले जो कि जनता सहज ही मे समझ कर तोड सके। हमारी तरफ एक चौकीदारी कर है। प्रायः प्रत्येक ग्रामीण को यह कर अदा करना पडता है, और अपने ऊपर यह एक प्रकार की ज्यादती है ऐसी गरीब लोगो की भावना है। हमेशा ही इस कर के विरुद्ध लोगो में भारी असतोष रहा है। इसलिए गाधीजी के साथ हुई अपनी बातचीत के दरमियान मैंने उनके सामने यह सुझाव रक्खा कि वे हम बिहारवासियो को नमक–कानून के बदले चौकीदारी कर तोड़ने की अनुमति दें। वे बोले, "अगर ऐसा किया गया तो शुरू में ही हमें मुँह की खानी पड़ेगी। हाँ, अगर नमक-कानून तोडने में हम कामयाब रहे तो आगे चौकीदारी–कर तोडने की दिशा में भी कदम उठाया जा सकता है। फिर भी उसमें हम कहाँ तक सफल रहेंगे इसमें संदेह है।" उनकी यह दलील मुझे जँची नहीं, किन्तु हमने उनका आदेश मानकर नमक-सत्याग्रह शुरू किया। बिहार में उसे इतनी अधिक सफलता मिली कि प्रातभर मे शायद ही ऐसा कोई कोना छूटा होगा जहाँ नमक-कानून खुल्लखुल्ला और धपड़क तोडा न गया हो। देश-भर में भी यही हुआ, और वास्तवतः निरुपद्रवी दिखाई पडनेवाले इस

कार्यक्रम के भीतर कितनी प्रचंड जनशक्ति निर्माण करने का सामथ्य मेरा हुआ है इस सबंध में सारे सशयात्माओ की खातिरजमा हो चुकी। कुछ मास तक हमारे द्वारा नमक-सत्याग्रह जारी रखा जाने के वाद वर्षा ऋतु आयी,, जिससे सत्याग्रह आगे जारी रखना निसर्गत असभव हो गया। इसलिए मैंने विहार की जनता को चौकीदारी-कर देना बंद करने की सलाह दी। वैसा ही जनता ने किया। किन्तु सरकार ने इस कदर दमन-नीति से काम लिया कि कई जगह आदोलन टूट गया; और यदि गाधी-इर्विन समझौता न हो जाता तो हम बुरे फँसते।

और भी वहुत से दृष्टात दिये जा सकते हैं, किन्तु अव यही समाप्त करता हूँ।

वर्धा,
१२-४-१९४८.

बापू के पत्र

रेजिनाल्ड रेनाल्डस

गांधीजी की हत्या के एक या दो सप्ताह वाद मैंने उनके द्वारा समय समय पर अपने नाम भेजे गये पत्रो की पुरानी फाइल निकाली। कोई वहुत ज्यादा पत्र नही थे। क्योकि रोजाना उन्हे कितनी वड़ी डाक देखनी पडती है यह मै जानता था, और इसीलिए, जहाँतक मेरा ताल्लुक था, उनका यह वोझ अपनी ओर से मै भरसक वढने न देता था। इतना ही नही वल्कि हाल के वर्षों मे उनके नाम भेजे गये अपने चद पत्रों में मे अधिकाश मे मैंने उन्हे यह स्पष्ट सूचित कर दिया था कि न तो आपसे उत्तर की अपेक्षा की जाती है, न इसकी कोई आवश्यकता ही है।

है तो ये इनेगिने ही पत्र, किंतु फिर भी इन्हे मै अपना अमूल्य धन मानता हूँ। ये पत्र मुझे न कि एक महान् नेता की, अपितु महत्व-पूर्ण कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहने पर भी अपने परिवार के अति तुच्छ सदस्य की साधारण से साधारण माँग पूरी करने के लिए समय निकालने वाले सुहृद की याद दिलाते है। मै सोचता हूँ कि इसी कारण 'बापू'

के रूप मे उनका स्मरण करना मुझे अधिकाधिक भाता है। वे हमारे पिताश्री थे, और पितृवत् चिंता एव ममतायुक्त भाव से हमारी गलतियो के लिए हमारे कान ऐठने का उन्हे पूरा हक था। यह हक वे किस प्रकार निस्सकोच अदा करते रहे इसका इन पत्रो से पता लग जायगा।

मेरे नाम बापू का सर्वप्रथम पत्र उनसे मेरी प्रत्यक्ष रूप से भेट होने के पूर्व आया था। मैं साबरमती-आश्रम मे गया हुआ था, और उनके लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था। अवश्य ही इस सबध मे पहले मेरी ओर से ही उन्हे पत्र भेजा गया होगा। क्योकि उनके उक्त सर्व-प्रथम (ता. २८-१०-१९२९) पत्र मे इसका उल्लेख मिलता है। उत्तर-स्वरूप प्राप्त इस पत्र मे मुख्यतया मेरे स्वास्थ्य एव पथ्य-परहेज सबधी सलाह दी गई है। और आगे लिखा है, "प्रार्थना के समय गाये जानेवाले भजनो और गीतो का आशय मालूम कर लिया जाय। दोनो शाम के भोजन की अपेक्षा दोनो शाम की प्रार्थना मैं अधिक महत्वपूर्ण मानता हूँ।" साथ ही उन्होने मुझे सूचित किया था कि अपने साबरमती लौटने तक आश्रमीय जीवन विषयक स्वत के विचार मैं उन्हे प्रति सप्ताह निस्सकोच लिखता रहूँ।

इसके बाद के और दो पत्र हैं। इनमे से दूसरा शाहजहाँपुर से ता. ११-११-२९ का लिखा गया है। अब तक हम परस्पर से मिलने न पाये थे। अब अपने को एक जगह मन्दिर-प्रवेश की आज्ञा न मिलने के समाचार मैंने उन्हे पत्र द्वारा ही सूचित किये। इस घटना से मैंने अपमान अनुभव किया हो सो बात नहीं। बल्कि मैं तो खुश था कि मियाँ की जूती मियाँ के ही सिर पड़ी। उस असीम मानहानि के विषय मे, जो कि भारतीयो को अपने ही देशमे, और बहुधा इंग्लैण्ड में भी, सहनी पड़ी थी, मैंने बहुत कुछ सुन-पढ़ रखा था, और इस लिए, खुद एक अंग्रेज होते हुए भी, अंग्रेजो को अपने पापो का फल चखना पड़ रहा था यह देख कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

किंतु इसी दृष्टिकोण से उक्त घटना की ओर देखना गांधीजी के लिए सभव न था। मालूम होता था कि मेरी परिहासपूर्ण प्रसन्नता से उन्होने भूल से औदार्य का आशय लिया है। क्योकि इसके लिए मेरी

सराहना करते हुए उन्होने लिखा था : "हम सभी के लिए यही उचित है कि हम परस्पर की ओर इसी दृष्टिकोण से देखें। किंतु इस विषयक भीषण सत्य यह है कि प्रस्तुत प्रतिबध अस्पृश्यता के अभिशाप का ही एक अंग है।....." शेष पत्र में उन्होने मुझे सावधान करते हुए लिखा था कि, "एक साथ बहुतेरे काम करने के लालच से बचा जाय। कम से कम कुछ काम तो भली भाति पूरे किये जायँ।" आश्रम मे सिखाई जानेवाली बातों से इसका सबध था।

इसके बाद के दो पत्र बगैर तारीख के है। इनमे से एक में उन उभय अमरीकी अतिथियों के स्वास्थ्य और सुख-सुविधा सबधी पूछताछ की गई है, जो कि एक-दो दिन के लिए साबरमती पधारे थे। और दूसरे पत्र में, जो मौन-दिन पर लिखा गया है, पुन: उन्ही मेहमानों की सुख-सुविधा सबधी अपनी व्यग्रता व्यक्त करते हुए वे पूछते है, "क्या आप, इन मित्रो को उस अपरिचित जगह परायापन महसूस न हो इस हेतु, सीतलासहाय के सहयोग से उनका यथासभव आदरातिथ्य करने का कष्ट उठावेगे ?"

किस प्रकार अत्यधिक कार्यव्यस्त होते हुए भी गाधीजी ये चिट्ठी-पत्रियाँ लिखते रहे है यह बात जिन्हे मालूम है वे ही उनका, वास्तविक मूल्य आँक सकते है। आदरातिथ्य आदि मे वे कतई कमी रहने नही दे सकते थे। हरेक आश्रमवासी बालक की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास समय का कभी अभाव न रहता था। दूसरो की मामूली जरूरतों का भी वे कितना ख्याल रखते थे इसका पूर्वोक्त पत्र से पता चल जायगा। एक दिन बापू स्नान से लौटते समय मेरी बगल, से गुजर रहे थे, कि उन्हे मेरी नाक से खून बहता हुआ दिखाई दिया। वह उनका मौन–दिन था। फिर भी उन्होने एक पुर्जेपर चद पक्तियाँ लिख कर इसका इलाज बताया।

इसके बाद का पत्र ता. २ फरवरी १९३० को आया। लाहौर-काग्रेस के बाद रास्ते में कई जगह ठहरता हुआ, मैं कलकत्ता और शान्ति-निकेतन की यात्रा पर निकल पड़ा था। अबकी बार अपने दीर्घ मौन

के लिए क्षमायाचना करते हुए बापू ने लिखा था—"अपने पत्रव्यवहार की ओर मेरा दुर्लक्ष्य हो रहा है। दरअसल इसको निबटाने की अब मुझमे हिम्मत ही नही रही है।" (इसकी अब मै यथार्थ रूप में कल्पना कर सकता हूँ। क्योंकि बाद के वर्षो मे, अपने जिम्मे इसके दसवे हिस्से काम न होते हुए भी, मैंने बहुधा यही दलील पेश की है।) पत्र के अत में राजनीतिक बातों का उल्लेख किया गया है। मैंने उन्हे क्या लिखा था सो तो मुझे याद नही है। किंतु उत्तर-स्वरूप गांधीजी ने मुझे सूचित किया था—"गत तीन दिन से मै आपके पत्रपर विचार कर रहा हूँ। .... का श्रीगणेश सभवत मार्च से पहले न हो सकेगा।"

और पुन: लिखा था, "जब भी कभी सभव हो आप आ जाएँ। १५ फरवरी को आते तो बेहतर होता। लेकिन जो तजुर्बे आप हासिल कर रहे है उनमे मै रुकावट पैदा नही करना चाहता। आश्रम आपका ही है। जब भी इच्छा हो चले आएँ।"

गांधीजी के उपर्युक्त पत्र मे 'श्रीगणेश' का उल्लेख, समझौते सबधी वार्तालाप भग होने की हालत मे १९३० के ग्रीष्म मे छेड़े जानेवाले सविनय अवज्ञा-आदोलन को उद्देश्य कर किया गया है। मैंने अपनी यात्रा आगे जारी रखी। तुरत मेरे पास युक्त-प्रात एव बगाल के मित्रो के नाम गांधीजी द्वारा लिखे गये परिचय-पत्र पहुँचे। उक्त पत्र यहाँ उद्धृत करने की धृष्टता मुझमें नही है, क्योंकि वे इतने अधिक स्नेह-पूर्ण और सद्भाव-युक्त है कि कोई विश्वास ही नही कर सकता। आज वे पढ़ते समय मनमें मेरे विचार आया कि व्यक्तिमात्र के भीतर की भलमनसाहत पर सदैव श्रद्धा रखनेवाले एक हृदय को मैंने अपने कारण

.यथासमय मैं साबरमती लौट आया, और गाधीजी के सदेश-वाहक के नाते वायसराय के नाम लिखा हुआ उनका इतिहास-प्रसिद्ध पत्र नई दिल्ली ले जाने का काम मुझे सौपा गया। नई दिल्ली से मैं सीधे आश्रम लौट आया। किंतु सत्याग्रह-आदोलन शुरू होने पर नमक-कानून तोड़ने के लिए निकाले गये मोरचे मे बापू का साथ देने की अनुमति अपने को नही मिली है यह देख कर मैं बहुत ही निराश हुआ। साबरमती स्थित चद मर्दो और स्त्री-बच्चो के साथ मुझे पीछे रह जाना पड़ा। इससे मैं बेचैन हुआ। निस्सदेह मेरी यह बेचैनी गाधीजी के साथ हुए अपने पत्रव्यवहार मे भी प्रतिबिंबित हुई। किंतु प्रतिदिन महत्वपूर्ण सत्याग्रही गिरफ्तार होने लगते ही ऐसा मालूम हुआ कि किसी उपयुक्त सेवा का सुअवसर मेरे लिए उपलब्ध होने मे अब ज्यादा देर नही है। १३ मार्च के पत्र मे 'यग इडिया' की सहायता करने सबधी उल्लेख है। और अप्रैल २४ के पत्र मे पूछा गया है: "महादेव जेल मे हैं; इस स्थिति मे 'यग इडिया' के सबध मे आप क्या सोचते है?"

१३ मार्च के पत्र मे आश्रम को उद्देश्य कर बापू लिखते है. "मैं इस बात के लिए, कि वह शाति, शुचिता और शक्ति का वास-स्थान बन जाय, लालायित हूँ। और मानता हूँ कि यह कार्य अग्रसर हो इस हेतु ही आपके रूप मे मुझे ईश्वरदत्त देन मिली हुई है।" तीन सप्ताह के भीतर ही (३१–३–१९३०) उन्हे इससे सर्वथा विपरीत लिखना पडा। उनके सबध के कतिपय असत्य वक्तव्यो एव उनके चारित्र्यपर की गई छीटाकशी के कारण मैं मर्माहत हुआ और आपेमे बाहर होकर उनके एक आलोचक को मैंने खूब खरीखोटी सुनाई। इस विषयक मेरा लेख 'बाम्बे क्रानिकल' में प्रकाशित हुआ था।

इसके सबध मे अपने विचार व्यक्त करते हुए बापू लिखते है:— "क्रानिकल में प्रकाशित आपका लेख मुझे जँचा नहीं। यह तो अहिंसा नहीं है।.....अंगीकृत कार्य उचित होने पर आप यदापि व्यक्तिगत रागद्वेष के वशीभूत न हो जायें।...आप समझ ही गये होंगे कि मैं केवल असभ्य आचरण पर ही जोर नहीं देना चाहता। मुझे व्यथित कर रही है वह हिंसक वृत्ति जो कि इसकी जड़ में छिपी हुई है। मेरे रहने

का आशय आप ठीक तरह से समझ गये न? अगर समझ गये हो तो मन ही मन प्रतिज्ञा करें कि जिसको अहिंसा पर अपनी श्रद्धा है ऐसे व्यक्ति को दिखाये बिना आइन्दा इस किस्म की कोई चीज न लिखूँगा।" साथ ही उन्होंने सूचित किया था कि मैं उक्त व्यक्ति से क्षमा-याचना करूँ जिसे कि मैंने खरी-खोटी सुनाई थी। उन दिनों उम्र मेरी सिर्फ २४ साल की, और मिजाज बड़ा ही गरम था। चुनाँचे महात्माजी का उपदेश, या जिस क्वेकर सम्प्रदाय से मैंने दीक्षा ग्रहण की थी उसका जीवन विषयक दृष्टिकोण मेरे गले उतरने में कई साल लग गये। फिर भी उक्त घटना का आज पुन:स्मरण कर मुझे प्रसन्नता हो रही है।

बापू के प्रति अपने उत्कट प्यार के कारण ही मैंने लिखित रूप से क्षमा माँगी, जो कि सहृदयतापूर्वक स्वीकार भी कर ली गई। अवश्य ही, "केवल बापू के अनुरोध से ही प्रस्तुत क्षमायाचना के लिए मैं उद्यत् हो रहा हूँ," इतना उसमें हेतुपुरस्सर जोड़ने से मैं नहीं चूका। इसमें मेरा उद्देश्य यही रहा कि वह व्यक्ति इस महात्मा की महानतासे, जिसके चारित्र्य के प्रति उसने शंका प्रदर्शित की थी, परिचित हो जाय। निश्चय ही इस यथार्थता के प्रभाव से मेरी भाँति वह व्यक्ति भी अछूता नहीं रह सका।

१४ अप्रैल के अपने पत्र में बापू ने मेरी पूर्वोक्त क्षमायाचना के लिए पुन: संतोष व्यक्त करते हुए आगे लिखा है, "मेरा विश्वास पुनरपि जमाने का कोई सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि वह कभी भंग ही नहीं हुआ था।" और पुनश्च—"अहिंसा आत्मसात् करने का मार्ग कभी कभी मथर और कष्टदायी होता है। आवश्यकता है मानसिक हिंसा से मुक्ति पाने की।" दो दिन बाद मैंने वह पत्र, जो अपनी क्षमा-याचना के उत्तर-स्वरूप प्राप्त हुआ था, उनके पास भेज दिया। देखकर उन्हें खुशी हुई। लिखा था, "प्रभु आपकी अहितकर मार्ग से रक्षा करेंगे।"

लगभग इसी समय गांधीजी गिरफ्तार कर यरवदा में बंदिस्थ किये गये। निश्चय ही इसके बाद का, ता. २२–५–१९३० का उनका पत्र यरवदा से आया। लिखा था, कि आकर मिल जाना। उस समय मैं वेरियर एल्विन के अतिथि के नाते क्रिस्त सेवा-संघ के आश्रम में

ठहरा हुआ था। बापू के पत्रों की अपनी फाइल में मैंने जेल-सुपरिंटेंडेंट से प्राप्त संक्षिप्त नोट भी नत्थी कर रखा है। नोट में इतना ही लिखा गया है—"श्री रेनान्डस् को सूचित किया जाय कि भेंट करने संबंधी उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की जा सकती।" इसके कोई दो मास बाद नाराणदास गांधी का पत्र आया। लिखा था, "आपके यरवदा जाने के बाद से बापू ने भेंट-मुलाकातें बंद कर रक्खी हैं।" इसका मैंने यही अर्थ लिया कि उनसे भेंट करने संबंधी अपनी प्रार्थना की अस्वीकृति के निषेध-स्वरूप ही उन्होंने अन्य किसी से भी भेंट-मुलाकात करने से इन्कार कर दिया है। सुपरिंटेंडेंट की निर्दयता के लिए स्वतः को दंडित करने की यह रीत दुनिया से न्यारी थी।

इसके बाद अगले वर्ष के आरंभ तक बापू की ओर से कोई पत्र नहीं आया। इस बीच में इंग्लैंड लौट आया था। अकस्मात् सत्याग्रह-आंदोलन स्थगित कर नये सिरेसे सरकार के साथ समझौते संबंधी वार्तालाप शुरू किया गया है यह सुनकर मैं असमंजस्य में पड़ गया। साथ ही मनस्ताप भी कुछ कम नहीं हुआ। इसी मन.स्थिति में मैंने उन्हें पत्र लिखा। इसके जवाब में गांधीजी की ओर से (कैम्प दिल्ली, ता. २३ फरवरी १९३१) जो पत्र आया वह आजतक उनके द्वारा मेरे नाम लिखे गये अन्य पत्रों की अपेक्षा विशेष रूप से लंबा है; और सदा की भांति वह उनके खुद के हाथ का लिखा न होकर उनके सेक्रेटरी द्वारा टाइप कर भेजा गया है। अपने 'विस्तृत, स्पष्टोक्तिपूर्ण एवं निर्धारयुक्त' पत्र के लिए मेरा अभिनंदन और मेरे प्रति स्नेहभाव प्रकट करने के बाद वे आगे लिखते हैं, कि मेरे विचारों से वे कतई सहमत नहीं हैं और सो इस इस कारण। वस्तुतः इस स्पष्टीकरण योग्य कोई बड़ा आदमी तो मैं था नहीं। किंतु जैसा कि वे अपने अन्यान्य आलोचकों के समाधान हेतु हर बार समय निकाल लेते थे, वैसा ही उन्होंने मेरे लिए भी निकाला। अपने उक्त पत्रमें उन्होंने अन्य बातों के साथ ही यह भी लिखा था—"स्मरण रहे कि सत्याग्रह एक ऐसा मार्ग है जो कि बुद्धि को परिचालित कर एवं मानव-मात्र के भीतर की संवेदनाशील तंत्रियों को छेड़कर उन्हें अपने विचारों का कायल बना देता है। व्यक्तिमात्र के भीतर के अंतिम सदाचार पर वह समाश्रित रहता है।...."

"यदि इतने से आपको सतोष न होता हो तो आप जरूर मुझसे लड़ते-झगड़ते रहे। ऐसा करने का आप को पूरा हक है। ....." बापू ने आगे लिखा था। इसके बाद भारतीय स्वाधीनता प्राप्ति के लिए इग्लैंड मे मेरे द्वारा जारी कार्य के प्रति प्रशसा और प्रोत्साहनपूर्ण कुछ पक्तियाँ है। और पुन: लिखा है, "प्रभु आप को आशीष और बल दे।" फिर भी मै उनके विचारों का कायल न हो सका। उनकी परिवर्तित नीति की आलोचना करते हुए मैंने एक लबा पत्र भेजा, जो ससम्मान, और बापू के उत्तरसहित, 'यग इडिया' में प्रकाशित हुआ। उक्त प्रकाशित पत्रव्यवहार की कोई प्रति अब मेरे पास नही है। जो भी हो, मुझे उनके अप्रकाशित पत्रव्यवहार से मतलब है। प्रकाशित सामग्री से तो जो चाहे लाभ उठा सकता है।

अप्रैल १९२९ साबरमती से भेजा हुआ उनका एक पत्र मेरे पास है, जिसमें उन्होंने मेरे द्वारा दुबारा लिखे गये आलोचनापूर्ण पत्र के प्रति अपने दृष्टिकोण की मुझे सूचना दी है। वस्तुत: उस समय मै इतनी कच्ची उम्र का था कि मेरा सहारा उनके लिए नगण्य था। फिर भी वे लिखते है—"अत. आप न तो अपने कार्य से विमुख हो, और न मुझे ही छोड़ बैठें।" मै सोचता हूँ कि प्रत्येक मानव-आत्मा के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा के कारण ही उन्होंने ऐसा लिखा था। आज उक्त शब्द पुनः पढ़ते समय मैं गद्गद् हो रहा हूँ। उन दिनो मै सकटावस्था से गुजर रहा था। अत: जरूर ही मैंने कुछ अडबड लिख दिया होगा। इसी बात को उद्देश्य कर वे आगे लिखते हैं, "आपके द्वारा की गई कटु आलोचना की अपेक्षा आपकी व्यक्तिगत बातों में मै ज्यादा दिलचस्पी रखता हूँ।....यदि वहाँ आपको मनःशांति नही मिलती तो इस तरफ क्यों चले नही आते? आप जानते ही है कि आश्रम आपका प्रति-घर है।"

यदि उस समय भारत की यात्रा के लिए आवश्यक मार्ग-व्यय अपने पास होता तो उक्त हार्दिक निमत्रण मैं अवश्य स्वीकार कर लेता। किंतु वह न बदा था। फिर भी उस साल के आखिर में गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के निमित्त बापू के इग्लैंड पधारने पर हमारी पारस्परिक भेंट का सुयोग आनेवाला था। इसके बाद का मेरे नाम का

उनका दूसरा पत्र परिषद् के दिनो में ही लिखा गया है। उनके द्वारा प्रदत्त आर्थिक रिआयतो को मै भूल से कमजोरी, याने दृढता के अभाव का चिन्ह समझ बैठा था। किंतु अपने उपर्युक्त पत्र मे उन्होने इस का स्पष्टीकरण देते हुए लिखा है कि ब्रिटेन-निवासियो, और खास तौर से लकाशायर के लोगो की कठिनाइयो के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना ही इन रिआयतो का उद्देश्य है। अपने कार्यों और शब्दो का अपने विरोधियों द्वारा विपर्यस्त अर्थ लगाया जाने पर मनुष्य-मात्र को असीम वेदना होती है। फिर बापू को तो अपने मित्रो के कारण ही इस दु ख का भागी बनना पड रहा था। केवल सहानुभूतिवश ही, न कि अपनी कमजोरी के कारण, वे झुकने के लिए तैयार रहते है यह बात कितने लोग जानते होगे? और उन्हे उग्र विचारक एव असतोष के जनक माननेवालो मे से कितने लोग इस वस्तुस्थिति से, कि अपने अनुयायियो मे स्वत: के विरोधियो के प्रति जरा भी गलतफहमी या कटुता नजर आते ही बापू उन्हे चुपचाप किंतु सतत जागरूक रह कर ठिकाने लाते हैं, परिचित होगे?

•

प्रातःकाल का समय। सभवत जनवरी १९३२ की बात है। लदन से बापू विदा हो रहे थे। यद्यपि बापू के इग्लैंड-आगमन पर प्रसगोचित रीति से ही उनका स्वागत किया गया था, तथापि आज उनकी विदाई के अवसर पर केवल इनेगिने लोग ही उपस्थित थे। सतोष की बात है कि उन्हे विदा करनेवालो मे से एक मैं भी रहा, क्योकि इसके बाद पुन: कभी मुझे उनके दर्शन नही हुए। भारत लौटकर उन्होने देखा कि अपने लदन से विदा होने के पहले ही देश मे दमन-नीति का श्रीगणेश हो चुका है। शीघ्र ही वे भी यरवदा की जेल मे पहुँचा दिये गये। वहाँ से उनके तीन पत्र आये। इनमें से तीसरा दिसबर १९३२ का है। वह उन्होने महादेव भाई से लिखाया है। इसमें अधिकाश पारिवारिक समाचार है, याने कौन रिहा हुआ है आदि। सरकार के साम्प्रदायिक निर्णय के निषेध-स्वरूप उनके द्वारा किया गया अनशन सफल हुआ था। मुझे यह याद कर खुशी होती है कि सदा की भाँति इस अवसर पर भी उन्ही के मत का पोषण कर, अपने लेखो और भाषणो द्वारा हरिजन-समस्या सबधी उनकी

मनोभूमिका पर प्रकाश डालता रहा। उनका पूर्वोक्त पत्र मानो एक पिता द्वारा अपने पुत्र के नाम लिखा गया है। लिखा है—"आपका पत्र पाकर मुझे इतनी अधिक प्रसन्नता होती है कि जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।" किसी की मिथ्या प्रशंसा करना उनके लिए कैसा असंभव है यह बात जो जानते नहीं वे इस पर विश्वास ही नहीं कर सकते। यरवदा से १९३२ में लिखे गये पहले के उनके दो पत्र यहाँ उद्धृत करना मेरे लिए और भी असंभव है। क्योंकि वे व्यक्तिगत स्वरूप के होने के साथ ही इतने अधिक वात्सल्यपूर्ण और कृतज्ञतायुक्त हैं कि आज भी उन पत्रों को पढ़ते समय मैं गद्‌गद् हो जाता हूँ।

इसके बाद बहुत दिनों तक हमारा पत्रव्यवहार बंद रहा। अवश्यही नाममात्र के लिए १९३५ में एक पोस्ट-कार्ड आया। लिखा था, "भारत-यात्रा के इच्छुक जिस अंगरेज मित्र की आपने सिफारिश की थी उसे मैंने पत्र लिख दिया है।" और पुनः—"किंतु आप स्वतः के संबंध में कुछ भी क्यों नहीं लिखते?" इसका वास्तविक कारण यही था कि उनकी विनयशील शिक्षा से मैं दूर होता गया था, और उनसे यह बात छिपाना चाहता था। १९३८ के आते आते उनकी विचारधारा से मैं और ज्यादा अलग पड़ गया। किंतु बापू के प्रति अपने आदर और प्यार के कारण मैंने सोचा कि अन्य किसी से उनको इसकी खबर मिलने की अपेक्षा मेरा खुदका ही कह देना अधिक उचित रहेगा। तदनुसार मैंने उन्हें पत्र भी लिख दिया। उक्त विषय की यहाँ चर्चा करना अनावश्यक है। अवश्य ही उत्तर-स्वरूप प्राप्त उनके (१४-४-१९३८ के) पत्र के कतिपय वाक्यों के लिए मैंने मनही मन उन्हें धन्यवाद दिया। पत्र की शुरुआत इस प्रकार की गई है—"मेरा हृदय बराबर आपकी ओर खिंचा जा रहा है।" और फिर लिखा है, "यदि कुछ मुद्दोंपर हमारी नहीं पटती तो इससे क्या?" पत्र उनके खुद के हाथ का एवं चलती ट्रेन में लिखा हुआ है, और अंत में "हम सबका प्यार" लिखकर, "बापू" करके हस्ताक्षर किये गये हैं। वस्तुतः विचार और उद्दिष्ट की दृष्टि से हम परस्पर से विलग दूर कभी हुए ही नहीं थे, और फिर भी अभिजात सौहार्द एवं वात्सल्ययुक्त उन अविस्मरणीय शब्दों से लिख सके थे।

महायुद्ध के दिनो मे मैंने बापू, या विदेशस्थ अपने मित्रो के नाम कोई पत्र नही भेजा। क्योंकि पत्र का महत्वपूर्ण भाग सेन्सर द्वारा काट दिया जाने, या उससे शत्रु के लाभ उठाने की सभावना रहती थी। अवश्य ही इस युद्ध-काल मे मुझे अपने शातिवाद पर पुनर्विचार करना पडा। शाति और युद्ध के लिए कारणभूत होनेवाले राजनीतिक एव आर्थिक सत्यो का सुस्पष्ट 'विश्लेषण विगत कई वर्षों से मेरे मस्तिष्क मे चक्कर काट रहा था। उसमे आध्यात्मिक दृष्टिकोण, मनुष्य-स्वभाव परिचय, सहिष्णुता एव औदार्य का अभाव रहा। अपने युग के सर्व-श्रेष्ठ पुरुष द्वारा इन बातो का ज्ञान प्राप्त करना मेरे लिए आवश्यक था। क्योंकि मै वर्षों से युद्ध-विरोधी होने पर भी वास्तविक अर्थ मे कतई शातिवादी नही था।

आखिरकार महायुद्ध की समाप्ति पर मेरे इन विचारो ने पुन किंचित् सिर उठाया। जागृति के इस क्षण में बापू को मेरा यह लिखना, कि मै फिरसे एक बार उनके साथ हूँ एव उनकी सेना मे भर्ती होने की अपनी इच्छा है, स्वाभाविक ही था। मै उन्हे एक नेता के रूप में आज कोई पहली ही बार नही देख रहा था। बल्कि आज से पद्रह-सोलह वर्ष पूर्व, उन्हे पूरी तौर से जाने बिना ही, मैंने उनका अधानुकरण आरभ कर दिया था। फिर भी उन दिनो जो शिक्षा मैंने उनसे ग्रहण की वह शनै शनै मेरी मानस-भूमि मे अकुरित होकर पनप भी गई। १९४५ मे अपने पूर्वजो के क्वेकर सप्रदाय मे मेरे पुन प्रविष्ट होने पर बापू को पत्र द्वारा इसकी सूचना देते हुए मैने लिखा कि आखिर मै इसी वृत्ति से जीवन बिताने की चेष्टा कर रहा हूँ।

उनका उत्तर वैशिष्ट्यपूर्ण रहा। "प्रिय अगद" को सबोध कर वह लिखा गया था। भारत मे रहते समय स्वत. द्वारा की गई गाधीजी की स्वल्प सेवा का स्मरण करानेवाले उक्त सबोधन को मै अपना अमूल्य धन मानता हूँ। १९४६ के वर्षारभ-दिवस पर गाधीजी को मेरा पत्र प्राप्त हुआ। उसी शाम को उन्होंने इसका जवाब लिख दिया, जिसमे वे कहते है, "इस पत्र में आप मुझे वैसे ही दिखाई देते है जैसा कि मैंने आपको जाना है।" वे सदैव मनुष्य के बाह्य रूप की अपेक्षा उसके आत-

रिक सभाव्य गुणो की ओर ही अधिक ध्यान देते रहे। मनुष्य के भीतर के सुप्त सद्गुण को, जिसे हम क्वेकर पथी बधु "दैवी अश" कहा करते हैं, वे महत्व देते थे। जो भी हो, इतना सही है कि मेरे प्रति उनके मन में कभी भी किसी प्रकार का सदेह निर्माण नही हुआ। गाधीजी की हत्या के समाचार प्राप्त होने के क्षणतक में यही आशा लगाये बैठा था कि पुनः एक बार भारत की यात्रा कर सकूँगा। भारत की यात्रा मैं कर सकूँ या न कर सकूँ, इतना अवश्य ही जानता हूँ कि बापू के आशीर्वाद, मनुष्य-मात्र के भीतर के देवत्व को देख पानेवाले महात्मा का स्नेहभाव सदा अपने साथ रहेगा, और इन चर्म-चक्षुओ के लिए प्रभु-दर्शन दूभर हो जाने पर उनसे सबल मिल सकेगा।

इस पत्रव्यवहार के बारे मे लिखते समय स्वत सबधी भी बहुत सी बातों का उल्लेख करना मेरे लिए अपरिहार्य हो गया। क्योकि जिस परिस्थिति मे इन पत्रो का आदान-प्रदान हुआ है उसके साथ मेरा व्यक्तिगत जीवन इतने दृढ रूप से जुडा हुआ है कि बिना उसपर प्रकाश डाले इन पत्रो को उद्धृत करना निरर्थक हो जाता। यह सही है कि मेरे जीवन की अत्यत विषम घड़ी में क्वेकर-मतश्रेष्ठ जान वुलमैन की रचनाओ ने उस धर्मनिष्ठा को, जिसपर कि आज तक मैं अटल रहा हूँ, एक सुनिश्चित आकार-प्रकार प्रदान किया। किंतु इस धर्मनिष्ठा को कृतिरूप प्रदान करने का श्रेय, उद्यान में उगनेवाले अलक्षित सुमन सम उन सस्कारो को ही देना पड़ेगा, जिनका कि मेरी मानसभूमि में बापू ने बीजारोपण किया था। बापू द्वारा निवेदित, लिखित, एव आचरित बातो ने ही मेरा मन जगाया। और उनकी विचारधारा से मैं अलग पड़ जाने पर भी उन्होने मेरा हृदय हिला दिया। ईसाइयत की ओर मैं मुख्यतया एक हिंदू के कारण ही पुन. प्रवृत्त हुआ। केवल इस एक बात के लिए मैं मोहनदास गांधी की महान् आत्मा का आजीवन ऋणी रहूँगा। और यह ऋणभार वर्ष के बाद वर्ष व्यतीत होने के साथ बराबर बढ़ता ही जायगा। क्योकि उनसे शिक्षा ग्रहण करने का मेरा कार्य अखड गति से जारी है।

लदन,
४-८-१९४८.

उनके दक्षिण अफ्रीका के दिन

एल्. डब्ल्यु. रिच

गाधीजी से मैं पहले-पहल १८९५ ई मे मिला। नैटाल-निवासी भारतीयो के हको के हिमायती के नाते वे प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। और मैने गैर-यूरोपियन लोगो की हितकामना एव भारतीय दर्शनशास्त्र की जिज्ञासा से प्रेरित होकर उनसे पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया था। फलस्वरूप उन्होने डर्बन स्थित अपने मकान पर मुझे मिलने के हेतु बुलाया। अवश्य ही कुछ विलब से मै गया, किंतु इस प्रकार उनसे सपर्क स्थापित करने का जो सुअवसर मुझे मिला उसे मै अपने जीवन की एक अत्यत महत्वपूर्ण घटना मानता हूँ।

आज भी वह कक्ष, जहाँ हम पहली वार परस्पर से मिले एव जहाँ के एक कोने में रखी हुई आरामकुर्सी पर बैठकर हमारे वद्ध मित्र नाझर उस समय गहरा काला चिरूट पी रहे थे, मेरी आँखो के सामने साफ झलक रहा है। उस समय हमारा जो वार्तालाप हुआ वह विस्तार से तो अब मुझे याद नही है, किंतु इतना अवश्य याद आता है कि मै गीता एव तदनुषगिक दार्शनिक और धार्मिक विषयोपर चर्चा करन चाहता था, जब कि गाधीजी राजनीतिक-सघर्ष सबधी विचारो मे लवलीन दिखाई दिये। नाझर दर्शन-शास्त्र के उत्कृष्ट ज्ञाता होने पर भी उस समय अस्वस्थ थे। हमारे वार्तालाप मे वे कब और कैसे शामिल हुए यह तो अब याद नही, लेकिन इतना याद आता है कि वे गाधीजी की ओर मुडकर उनसे बोले, "अब सचमुच में आप तर्कशास्त्र का अध्ययन आरभ कर दे।"

बोअर-युद्ध के बाद गाधीजी ने नैटाल छोडकर ट्रासवाल रहने जाना तय किया। तब मैने पूर्व की ओर के एक उपनगर में उन्हे किराये का मकान दिलवाया। इस 'काले' किरायेदार के आगमन पर वहाँ थोडी गडबडी पैदा हो जाने की बात मुझे आज भी याद है।

लगभग इसी समय गाधीजी ने कुछ दिन के लिए किसी होटल मे रहने की इच्छा प्रकट की। उन दिनो हीथ का होटल विशेष रूप से प्रसिद्ध होने के कारण मैं इस संबध मे उन से मिला। खुद हीथ भला आदमी था, और गाहक भी उसके ऊँचे दर्जे के होते थे। चुनाँचे हमारे प्रस्ताव के कारण वह पशोपेश मे पड गया। जहाँ एक ओर अपने होटल मे गाधीजी के रहने का प्रबध करने की उसकी इच्छा थी, वहाँ दूसरी ओर इसके सभाव्य परिणामो से वह भय खा रहा था। सोचता था कि एक भारतीय को अपने होटल मे स्थान देने से बडे गाहक बिगड़ खड़े होगे। सोचकर हमने आपस मे ही इसका निपटारा कर लिया। और वह यही कि गाधीजी होटल के सार्वजनिक भोजन कक्ष मे भोजन न कर लावी में करे। सदा की भाँति इस बार भी गाधीजी ने असाधारण समझदारी का परिचय दिया। हम दोनों ने साथ साथ भोजन किया, और इस प्रकार 'बड़े गाहक' हमारे साहचर्य के कारण होनेवाली अपनी मानहानि से बच गये।

व्यावसायिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि विविध कारणों से कई वर्षतक हमारा एक-दूसरे से सबध बना रहा। उस समय के गाधीजी का यदि वर्णन करना हो तो मै इन तीन शब्दो में वह करूँगा— माधुर्य, ज्ञान और आनद। उनसे अधिक सक्रिय व्यक्ति की कल्पना नही की जा सकती। किंतु उनका सारा कामकाज, जैसा कि मै जानता हूँ, सात्विक वृत्ति से प्रेरित होकर ही किया जाता था, जिससे उनके कट्टर विरोधियो पर भी उसका प्रभाव पड़ता रहा। अवश्य यही इसका यह अर्थ नही कि गाधीजी को कोई भी बेवकूफ बना सकता था। विपरीत इसके वे अपरिमित क्षमाशील और सहिष्णु वृत्ति के होने पर भी छल-कपट, धोखाधड़ी और हेत्वाभास उनकी दृष्टि से प्राय: छूट न पाता था।

दक्षिण अफ्रीका के 'कुरुक्षेत्र' में हर घडी व्यस्त रहने पर भी सकट-ग्रस्तों को सलाह देने या उनकी सहायता करने के लिए उनके पास समय की कभी कमी न रहती थी, हालाँकि बहुत से लोग इन बातो को मामूली समझकर जरूर ही उड़ा देते। उनकी परिचित एक ऐसी महिला थी जो कि अपने घरेलू जमा-खर्च मे कभी मेल ही न बैठा पाती थी। तब गाधीजी ने उसके खर्च में कटौती कर यह मेल बिठा दिया। किसी की कोई भी आवश्यकता उन्होंने अपने लेखे कभी मामूली नहीं मानी।

हम दोनो का एक दोस्त हमेशा कहा करता था कि वह जब चाहे तब सिगरेट पीना छोड़ दे सकता है। एक दिन की बात है कि सिगरेटो का उसका पाकिट मेजपर पडा हुआ था, और पास ही हम तीनो साथी बैठे हुए थे। सहसा गाधीजी ने उससे पूछा, "क्या इसी क्षण से सिगरेट पीना छोड़ सकोगे ?" "जरूर !" उसका जवाब रहा। "तो यही सही," कह कर गाधीजी ने उक्त पाकिट उठा लेने के मिस अपना हाथ बढाना चाहा। लेकिन ख्याल रहे कि पाकिट की ओर पहले हमारे दोस्त का ही हाथ पहुँचा, न कि गाधीजी का। गाधीजी मुसकरा दिये।

मैने गाधीजी को लोगो की लबी, मीठी और हेत्वाभासपूर्ण दलीले धैर्य के साथ सुनते हुए देख लिया है। वे न नो कभी उन्हे बीच में टोकते थे, और न उनकी बात पूरी हुए बिना खुद की बात छेडने की ही उनकी आदत थी। वे विपक्षी को बोलने का पूरा अवसर देते थे। और इसके बाद दो या तीन मार्मिक प्रश्नो द्वारा विपक्षी की सारी दलीलो का खोखलापन सिद्ध कर देते थे।

सगीत विपयक गाधीजी की अभिरुचि अत्यत अभिजात थी। सगीत के नामपर प्रचलित आजकल के अनेक वाद्यो को वे जरूर ही बेकार करार देते। एक दिन सध्या समय हमारे एक मित्र के घर गाने-बजाने का कार्यक्रम रखा गया था। इसके लिए चुने गये गीत थे तो अच्छे ही, किंतु उनमे कोई धार्मिक गीत नही था। गाधीजी को, जो कि इस समारोह के प्रमुख अतिथि थे, अपनी रुचि के अनुकूल कोई गीत चुनने के लिए कहा गया। उन्होने 'Lead Kindly Light' चुना। तदनुसार वह गाया गया। किंतु ऐसा लगा कि उनकी इस अभिरुचि मे अन्य उपस्थित महानुभाव सहभागी नही हो सके है।

सत्कार-समारोहो और अभिनदन-पत्रो की तो उनपर मानो वर्षा ही होती रहती थी। इनमे गाधीजी की सेवाओ के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश का कितना अश रहता होगा, और कितना तो स्थानीय नेताओ की आत्म-प्रसिद्धि की लालसा का, इसकी चर्चा न करना ही उचित है। ऐसे ही एक प्रसग पर गाधीजी को एक बड़ी-सी सोने की घडी मय चेन के

भेंट-स्वरूप दी गई। उसका स्वीकार करते समय गाधीजी के चेहरे पर जो भाव दिखाई पडा था वह आज भी मुझे याद है। आज की भाँति उन दिनो भी स्वर्ण-विभूषित गाधीजी कल्पना के सर्वथा परे थे। शौक के खातिर अपने लिए एकाध नया सूट सिलाने के लिए (और कई बार इसकी सख्त जरूरत होने पर भी) हम उन्हे कभी राजी न कर सके। मै सोचता हूँ कि उन्हे उपहार-स्वरूप मिलनेवाली दूसरी चीजो की भाँति ही उपरोक्त घडी भी सार्वजनिक निधि मे जमा हुई होगी। फिनिक्स वस्ती, एव 'इडियन ओपीनियन' पत्र और प्रेस जिस भवन मे है उसकी स्थापना भी मुख्यतया गाधीजी की इसी निःस्वार्थी वृत्ति के कारण हुई। धन के वास्तविक विनियोग का केवल एक ही मार्ग वे जानते थे, अर्थात् जनसेवा और जनोन्नति। अधिकतर अपनी इस आदर्श वृत्ति, न कि सुस्वभाव, के कारण ही उन्हे जनता द्वारा सार्वजनिक सेवाकार्य के निमित्त रुपया-पैसा मिलता रहा।

उनके सविनय अवज्ञा-आदोलन का इतिहास इतना सुप्रसिद्ध है कि उसका पुनरुच्चार करने की कोई आवश्यकता ही नही मालूम होती। नेटाल की कोयले की खानो से लेकर ट्रासवाल तक निकलनेवाले हम लोगो के मोर्चो में खुद के हाथो पावरोटियाँ बॉटनेवाले गाधीजी की तस्वीर आज भी मेरी ऑखो के आगे साफ झलक रही है। गजब की हम लोगो की सेना होती थी! इसके चद वर्ष वाद पूर्वी अफ्रीका के जिन पजावी हडताली रेल-मजदूरो का नेतृत्व करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ उनकी सेना भी बहुत कुछ ऐसी ही थी।

गाधीजी व्यायाम के शौकीन थे। "चलो! जरा घूम आयें," वे कहते थे, और हम द्रुत गति मे उनके साथ घूमने के लिए निकल पडते थे। ट्रासवाल ब्रिटिश इडियन कमिटी के कार्य के सिलसिले में उनका लदन पधारने पर भी यह क्रम भग नही हुआ। गाधीजी व्यायाम के मानो भूखे ही होते थे।

गलत देशभक्ति के आवेश मे आकर स्वतः पर हमला करनेवाले बूढे मीर आलम को उनके द्वारा क्षमा की जाने की बात, मै समझता हूँ, लोग भूल ही चुके हैं। जैसा कि मै जानता हूँ, यह उन अनेक प्रसगो

में से एक था, जब कि गाधीजी ने यह कहकर, कि "जाओ भाई, पुनः कभी ऐसा दुष्कृत्य न करना," अपराधी को विदा किया है।

मैं सोचता हूँ कि इस अपूर्ण स्मृति-कथा की समाप्ति के पहले गाधीजी के एक विशिष्ट गुणपर प्रकाश डालना सर्वथा उचित रहेगा। यह गुण है उनकी सेवावृत्ति! वे सदा एक सेवक ही रहे।

प्रसिद्धि प्राप्त या भावी कार्यकर्ताओ और प्रमुख अभ्यागतो के सम्मान मे समय समय पर आयोजित दावतो एव स्वागत-समारोहो के अवसर पर गाधीजी ने अक्सर साधारण कामो मे ही, जैसे रसोईघर के काम में मदद देना, अतिथियो की आवश्यकताओ की ओर ध्यान देना आदि,— हाथ बँटाया है। उन्होने लोगो के सामने आने, या उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने की कभी चेष्टा नही की। उन दिनो भी वे दीनहीनो के साथ वैसे ही एकरूप हुए, जैसे कि इधर हरिजनो के साथ होते रहे है। यदि आजतक किसी व्यक्ति ने 'सेवक' शब्द की सही व्याख्या कर उसकी प्रतिष्ठा कायम रखी हो तो वह एकमात्र गाधीजी ही है। अतः अपने सभी परिचितो के वे सम्मान-भाजन बने हो तो उसमे कुछ भी आश्चर्य नही।

मैं स्वय गाधीजी का चिरऋणी हूँ। मुझ जैसे साधारण व्यक्तियो से उनका जो स्नेहसबध रहा उसका हर्मन कैलनबेक से बढकर अच्छा वर्णन अन्य किसी ने न किया होगा। वह गाधीजी को 'Upper House' कहा करते थे, और खुद को 'Lower House.'

जोहन्सबर्ग,
२५-३-१९४६

गांधी-रोलाँ भेंट के कुछ संस्मरण

मादेलीन रोलाँ

सन् १९३१ ई में, लदन की गोलमेज-परिषद् मे भाग लेकर लौटती बेर, गाधीजी ने मेरे भाई की जो मुलाकात ली, उसे मैं अपने जीवन की एक बहुमूल्य स्मृति मानती हूँ। उन दिनो हम विलन्येव के निकटस्थ लेमन झील के पूर्वी छोर पर के एक मकान में टिके हुए थे। विलन्येव स्वित्सर्लैंड में है। कई दिनो से हम इस भेंट की प्रतीक्षा मे थे, और कई बार इस सबध में हमारी निराशा भी हो चुकी थी। इसीलिए यह तार मिलने पर, कि ६ दिसबर को गाधीजी विलन्येव पधार रहे है, हमारी खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

विलन्येव से दस मिनट के फासले पर के दो मकान हमने किराये पर ले रखे थे। एक विशाल पार्क मे स्थित इन दोनो मकानो को उनके इर्दगिर्द के दो छोटे छोटे बगीचो ने परस्परसे अलग कर रखा था। इनमे से उस मकान में, जो सडक से अपेक्षाकृत अधिक दूरी पर था, गाधीजी एव उनके दल के लोगो के रहने का प्रबध किया गया था। इसमें हेतु यही था कि वे किसी भी प्रकार के निर्बंध से पूर्णतया मुक्त रहे।

रविवार, ता. ६ दिसबर को सध्योपरात पैरिस की ओर की ट्रेन से गाधीजी का आगमन हुआ। खाँसी की बीमारी से पीडित होने के कारण भाईसाहब अपने इस श्रद्धास्पद मित्र के स्वागतार्थ स्टेशनपर न जा सके। लेकिन वीला लायोनेट की देहलीपर वे उनकी बराबर बाट जोहते रहे, और अपने चद भारतीय एव यूरोपियन मित्रो समेत शुभ्र शाल ओढे हुए गाधीजी के पधारते ही दोनो भुजाएँ फैलाकर आगे बढे। तब गाधीजी ने अपना गाल उनके कधे मे गडाते हुए भ्रातृभाव से उनका आलिंगन किया। बडा ही मर्मस्पर्शी दृश्य था। पारस्परिक कुशलक्षेम पूछा जाने के बाद हम अपने इस अतिथि को दुमजिले पर के कमरे म ले गये। साजसामान से शून्यप्राय यह कमरा उन्ही के लिए सुरक्षित

रखा गया था। इसकी एक खिड़की से झील दिखाई देती थी, जब कि दूसरी दो खिड़कियो से सेवाय के सुदर आल्पस्, एव 'देत दू मिदी' की हिमाच्छादित चट्टानो की पार्श्वभूमि पर खुलकर दिखाई पडनेवाले होन के विस्तीर्ण दर्रे का दर्शन हो जाता था। ऐसा यह स्थान था जहाँ कि १ दिसवर तक वे रहनेवाले थे। यही सुबह-शाम की उनकी प्रार्थनाएँ होने वाली थी, और यही चरखा चलानेवाले गाधीजी से भेंट करने के हेतु विभिन्न वशो व श्रेणिओ के लोगो का तॉंता वँधनेवाला था। गाधीजी के सुपुत्र देवदास, शिष्य एव सेक्रेटरी-द्वय महादेव देसाई व प्यारेलाल, और भगतिन मीरा के, जो कि उनकी आवश्यकताओ की ओर ध्यान देते थे, रहने का प्रबध अलग कमरे में किया गया था।

अव तो निश्चय ही खत-पत्र, तार व फोन, एव संदेसों का ताँता वँधेगा। कभी तो लोझेन-निवासी उन्हे अपने आश्वासित व्याख्यानो की याद दिला रहे हैं, तो कभी जिनेवावासी उनके कार्यक्रम मे स्वतः को दूसरा स्थान मिलने के कारण निराश होकर जिनेवा में आयोजित प्रचड सभा मे अविलव उपस्थित होने का उनसे आग्रह कर रहे है। फिर सवाददाताओ की भीड लग जाती है। उनमें से अधिकाश इस महा-पुरुप के वास्तविक जीवन और शिक्षाओ से सर्वथा अनभिज्ञ है। अहिसा के कतिपय कट्टर उपासक इन सवसे बढकर है। इनमें से कई तो केवल जिज्ञासावश ही आये है। वे गाधीजी से मुलाकात माँग रहे है। और उनकी सेवा करने के सबध मे भी इन महानुभावो की आपस में होड़ लगी हुई है। दो पादरिओ ने अपनी मोटर गाधीजी के हवाले की है, ताकि वे अपने इस मुकाम मे आवश्यकतानुसार उसका उपयोग कर सके। एक युवा वादक प्रतिदिन प्रात काल उनकी खिडकियो के नीचे वैठकर सारगी वजाया करता है। एक जापानी चित्रकार उनके रेखाचित्र तैयार करने के हेतु पैरिस से दौड़ा दौडा चला आता है। पाठशाला के वालक उन्हे पुष्पगुच्छ अर्पित करते हैं। उनकी विदाई की पूर्व रात्रि को विलन्येव के गायकगण उन्हे उद्यान म लोकप्रिय गीत गाकर सुनाते है, जिनमें से एक सुप्रसिद्ध 'रा दे वाच' है। राष्ट्रभक्ति और अपने घर के प्रति आकर्षण से ओत-प्रोत यह गीत किसी भी स्विस् के लिए अपने राष्ट्रगीत से भी वढ़कर हृदयस्पर्शी है। और एक वात

भुलाई नही जा सकती। गाधीजी के आगमन के पहले ही लेमान स्थित ग्वालो के एक सघ ने हिंदुस्तान के इस 'बादशाह' के लिए दूध का प्रबंध करने की अपनी मनीषा फोन द्वारा व्यक्त की है।

इस सारी बाह्य गडबडी के बीच भी गाधीजी शात और प्रसन्नचित्त रहते है। हरेक कार्यक्रम मे वे ठीक समय पर उपस्थित हो जाते है। और फिर भी रोज तडके, या दिनभर मे जब कभी फुरसत मिलती है तब, निष्ठावत मीरा के साथ खली जगह मे दौड लगाने के लिए निकल पडते है। तब झाडझखाडो मे पहले से छिपकर बैठे हुए फोटोग्राफर्स उनका पीछा करने लगते है, जिनका कि ब्रिटिश एव स्विस पुलिस गाधीजी की रक्षा करने के बहाने साथ देती है। बुधवार को मध्यान्होपरात वे किसी पहाडी गाँव मे रहनेवाली एक वृद्धा से मिलने के लिए मोटर द्वारा जाने की इच्छा प्रकट करते है। पूर्वाश्रम की मीरा, याने मादेलीन स्लेड, जब विलन्येव स्थित हमारे घर आया करती थी तब इस महिला के साथ उसका परिचय हुआ था। यह महिला वस्त्र-स्वावलबी है, याने खुद कातती-बुनती है। इसीलिए उससे हाथ मिलाने, एव उसके करघे के पास बैठकर उसके साथ वार्तालाप करने मे गाधीजी ने प्रसन्नता अनुभव की। यहाँ से वे लेजिन यूनिवर्सिटी सैनिटोरियम म पहुचे, और उक्त सस्था के विद्यार्थियो को उद्देश्य कर उन्होने सक्षिप्त भाषण किया।

लेकिन इन बहुतसारी बातो के बावजूद रोमाँ रोलाँ के साथ होनेवाली अपनी प्रतिदिन की मुलाकातो को वे प्राथमिकता देते है, और इसके निमित्त दो-तीन घटे विशेष रूप से सुरक्षित रखते है। क्या एकमात्र रोलाँ के कारण ही इस ओर उनका आगमन नही हुआ है? इसीलिए कभी सवेरे, तो कभी शाम के वक्त, मेरे भाई से भेट करने के हेतु वे अपने बगले का बगीचा लाँघ कर वील ओल्गा के फाटक के भीतर प्रविष्ट होते है। रोलाँ का स्वास्थ्य ठीक न होने की वजह से गाधीजी उन्हे सर्दी-पानी से बचाते रहते है। इसके बाद मेज के पास बैठे हुए रोलाँ और चौकीपर आसनबद्ध विराजमान् गाधीजी का वार्तालाप इस प्रकार शुरू हो जाता ह कि माना उभय पुरुष एकातवास कर रहे हो। क्योकि वहाँपर उपस्थित हम शेष सब, याने मीरा, महादेव, प्यारेलाल, मेरी भावी भौजाई

और मैं खुद, चुपचाप सिर्फ सुनने का ही काम करते है। वार्तालाप के नोट लेना एव बुलाया जानेपर दुभाषिये का काम करना इतना ही हमारे जिम्मे है। मेरे भाई गाधीजी को यूरोप की शोचनीय स्थिति का वर्णन सुनाते है। कहते है, तानाशाहो के पैरातले कुचले जानेवाले लोगो की दशा वडी ही दयनीय है। गुमनाम और बेरहम पूँजीवाद की जजीर तोड डालने के लिए सर्वाहारा वर्ग ने अपने प्राणो की वाजी लगा दी है, और न्याय एव स्वाधीनता की भावनाओ से प्रेरित इस वर्ग के लिए अब हिंसा और विद्रोह का सहारा लेने के अलावा अन्य कोई चारा ही नही रहा है। स्वभाव, शिक्षा-दीक्षा एव परपरा आदि सभी दृष्टियो से पश्चिम की जनता अभी अहिंसा-धर्म आचरने योग्य नही वनी है।..." सुनकर गाधीजी विचारमग्न हो जाते है।

किंतु, उत्तर देते समय, अहिंसक शक्ति के प्रति अपनी अटल श्रद्धा का वे पुनरुच्चार करते है। फिर भी इतना तो वे जानते ही है कि यूरोप में विश्वास की भावना निर्माण करने के लिए अहिंसा के और एकाद सफल प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष प्रमाण देना होगा। क्या भारत इस प्रकार का प्रमाण उपस्थित कर सकेगा ? आशा तो वे ऐसी ही करते है। इस मैत्रीपूर्ण वार्तालाप के दरमियान कई ज्वलत समस्याओ पर चर्चा होती है, और खुले दिल से होती है। इन समस्याओ के अतिम निर्णय के सबध में उनमे क्वचित् मतभेद हो जानेपर भी मानवता के प्रति प्रीतिभाव, पीडितो को कष्टमुक्त करने की लालसा, सत्य को उसके अनगिनत पहलुओ द्वारा देखने की उत्कट अभिलाषा आदि अपने समसमान गुणो के कारण इन उभय पुरुषो की हृद्तत्रियो की पारस्परिक तन्मयता में कभी वाधा उपस्थित नही होती।

स्विस शातिवादियो की ओर से मगलवार, ता ८ और गुरुवार, ता १० को क्रमश लोजेन एव जिनीवा में एडमड प्रिवैट और पियर सेरेझाल की अध्यक्षता म सार्वजनिक सभाएँ आयोजित की जाती है। इनके निमित्त ली गई मोटर का उपयोग न कर गाधीजी सदा की भाँति रेल के तीसरे दर्जे में सवार होकर लोजेन पहुँचते है। उनका भाषण सुनने की उत्सुकता से अपार जनसमूह यहाँ उनकी प्रतीक्षा करता रहता है। सभास्थान पर

उपस्थित लोगो द्वारा पूछे गये विभिन्न प्रश्नो के गाधीजी जो उत्तर देते हैं उनका उत्साहपूर्वक स्वागत किया जाता है। क्योकि कई दृष्टियो से वे असाधारण रूप से वैशिष्ट्यपूर्ण हैं। जैसे, सूत्रबद्ध, समयानुरूप, सरल और अत्यत स्पष्टतापूर्ण। लेकिन लोजेन मे आयोजित दो खानगी बैठके इनसे भी अधिक आकर्षक होती है। इनमे से एक तो उनके निजी मित्रो के लिए है। इस बैठक मे अतर्राष्ट्रीय नागरिक सेवा-सघ के सस्थापक पियर सेरेझाल अहिंसा के आचरण सबधी अपना दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं। वे मानते हैं कि एक निष्ठावान् नागरिक के नाते मनुष्य के जो कर्तव्य हैं उनके साथ युद्ध एव शस्त्रविरोधी सघर्ष का समन्वय स्थापित किया जा सकता है। कहते है, कि इन विनाशक और अहितकर शक्तियो का अवश्य ही विरोध किया जाना चाहिये। किंतु चूँकि राष्ट्र हमारी रक्षा करता है इसलिए हम कभी उसके उऋण नही हो सकते। इसीलिए राष्ट्रीय और अतर्राष्ट्रीय आपत्तियो के शिकार बननेवाले लोगो के सहायतार्थ हमे प्रतिज्ञाबद्ध हो जाना चाहिये। इसी उद्देश्य से अतर्राष्ट्रीय नागरिक सेवा-सघ की स्थापना की गई है। विपरीत इसके शस्त्रवादी सरकार के विरुद्ध गाधीजी के पास केवल एक ही उपाय-योजना है;—अर्थात्, सपूर्ण असहयोग। इस प्रकार एक शुद्धात्मा को, अपनी अपरिमित नम्रता और निष्ठा के बावजूद, इस दु सह आतरिक सघर्ष का सामना करना पड रहा है।

दूसरी खानगी बैठक स्विट्सर्लेण्ड स्थित शातिवादियो के प्रतिनिधियो के लिए आयोजित की जाती है। एक गिरजाघर मे वह होती है। वातावरण वहाँ का 'धार्मिकता से व्याप्त है। गाधीजी द्वारा अपने अनुभवो, एव 'ईश्वर ही प्रेम है' की व्याख्या से लेकर 'ईश्वर ही सत्य है', और अततः 'सत्य ही ईश्वर है' की व्याख्या तक अपने विचारो में समय समय पर हुए परिवर्तनो पर प्रकाश डाला जाने के साथ ही यह वातावरण अधिकाधिक धार्मिक बनता जाता है।

इस बीच लोजेन की सार्वजनिक सभा में उद्घोषित विचारो की प्रतिक्रियाएँ प्रकाश में आती रहती है। सारे स्विट्सर्लेण्ड में, और अन्यत्र भी, गाधीजी के भाषण की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। उनके कतिपय उद्गारो के कारण सकुचित मनोवृत्ति के सनातनियों में भय की भावना घर कर लेती है। इसी समय गाधीजी दो स्विस पत्रों के विरुद्ध, जिन्होने कि उनके

कुछ उद्‌गारो एव तद्विपयक उद्देश्यो की विपर्यस्त व्याख्या की है, निपेध प्रकट करने का साहस दिखाते हैं। यह क्षम्य नही माना जाता। फलत. वे शेप चद पत्रकार भी, जो कि अवतक अधिकाशत गाधीजी के अनुकूल रहे, रात ही रात मे उनके प्रति अपना रुख वदल देते है। परिणाम-स्वरूप, जिनीवा में आयोजित सभा लोजेन की सभा के वातावरण से सर्वथा शून्य दिखाई पड़ती है। किन्तु गुरुवार, ता. १० दिसवर को विक्टोरिया हॉल के विशाल एम्फी थियेटर में श्रोताओ की भारी भीड़ लग जाती है। स्पष्ट ही है कि परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियो के लोग यहाँ इकट्ठा हुए हैं। इनमें पूँजीवादी, शस्त्रवादी आदि वर्ग के जो लोग आये है वे गाधी-विरोधी है। समाजवादी सशकित एव जिज्ञासू वृत्ति से उपस्थित हुए है, और चाहते है कि गाधीजी सामाजिक समस्याओ पर बोले। रहे कुछ शातिवादी, जो कि गाधीजी के अनुयायी ही ठहरे। उपस्थित किये गये अधिकाश प्रश्न ऊपरी तौरपर सरल दिखाई पड़ने पर भी वस्तुत. गाधीजी को शब्दजाल मे फँसने की बुद्धि से ही पूछे गये है। किसी ने स्वित्सर्लॅण्ड जैसे तटस्थ राष्ट्र का उदाहरण पेश करते हुए पूछा, "स्वत पर परराष्ट्र द्वारा आक्रमण किया जानेपर वह कौनसी नीति वरते? क्या वह आत्मरक्षा न करे? और अगर करनी हो तो, क्या इसके लिए सैन्यबल आवश्यक नही? निश्चल किंतु निश्चयी स्वर में गाधीजी बोले, "सैन्यवल निरर्थक है। यहाँ के सभी नागरिक, याने स्त्री-पुरुष, आवाल-वृद्ध आदि सभी, यदि शत्रु के विरुद्ध अपनी देह की दीवार खड़ी कर दें तो वह काफी है। और अगर आक्रमक राष्ट्र इतना बर्बर बन गया कि इन सवको मौत के घाट उतार दे, तो कम से कम इनकी मौत अवश्य ही सुफल देगी।"

दूसरा सवाल वर्ग विग्रह के सवध मे था। इसके जवाब में गाधीजी बोले, "श्रमजीवी खुद ही अपनी ताकत से अनजान है। अगर उन्ह. इसका भान होकर वे जग पड़े तो पूँजीवाद की इमारत जरूर ही ढह जायगी। क्योंकि ससार मे एकमात्र श्रम ही शक्तिशील है।"

सुनकर उच्च वर्गीय श्रोताओ का जी जलने लगता है, हालांकि अधिकाश श्रोतागण तालियाँ बजाकर गाधीजी के उक्त उद्‌गारो के प्रति अपनी सम्मति ही प्रदर्शित कर देते है।

यदि इस प्रकार के वक्तव्य अधिकारी-वर्ग को आपत्तिजनक दिखाई दें, और समाचार-पत्र भी इनसे चिढकर उन्हे खरी-खोटी सुनावे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य नही। अगर अगले ही दिन गाधीजी वहाँ से विदा न होते तो अवश्य ही उन्हे वहाँ से निष्कासित किया जाता।

अविश्रात परिश्रमी गाधीजी, तीसरे दर्जे के कड़े बेंचपर कुछ मिनट नीद निकालकर, साध्य-प्रार्थना से पहले रोलाँ से पुन. भेंट करने के हेतु उसी दिन विलन्येव लौट आये। रोलाँ की सुविधा के लिए इस बार की मुलाकात वीला ओल्गा के निचले कमरे मे ही हुई। प्रार्थना के समय गाये गये अतिम भजन द्वारा निर्मित नि स्तब्धता के बीच मेरे भाई, गाधीजी, मीरा एव मैं खुद रोलाँ के सगीतकक्ष में पहुँचे। वहाँ महात्माजी के अनुरोध पर रोलाँ ने पियानो पर बीथोवेन की 'गत', याने उस श्रेष्ठ सगीतज्ञ की धर्मनिष्ठ अतरात्मा की नि शब्द प्रार्थना, हमें सुनाई। बीथोवेन के द्वारा ही मीरा का रोलाँ से परिचय हुआ है, और इस लिए वास्तवमें बीथोवेन के कारण ही मीरा जैसी निष्ठावान् शिष्या स्वतः को प्राप्त हो सकी, यह बात गाधीजी जानते थे। और इसी लिए उन्होंने उक्त अनुरोध किया।

दूसरे रोज, याने शुक्रवार ता. १० दिसबर को, कोई दो-तीन दिन अदृश्य रहने के बाद सूरज निकल आने से आसपास का सारा प्रदेश चमक उठा। फलत आज पहली ही बार हमारे अतिथि को जगमगाती हुई झील एव हिमाच्छादित शैल-शिखरो का दर्शन हो सका। उस दिन प्रातःकाल इन उभय महापुरुषो की आखरी मुलाकात हुई। अबतक की सारी भेंट-मुलाकातों की अपेक्षा यह अधिक आत्मीयतापूर्ण रही। इसके बाद विदाई की तैयारियाँ होने लगी। खुशकिस्मती से उस दिन हवा ठीक होने के कारण भाई स्टेशनतक जा सके। हमारे निवास-स्थान के सामने के चौक में गाधीजी को विदा करने के हेतु कई जिज्ञासू एवं उनसे सहानुभूति रखनेवाले लोग, और साथ ही उनके इष्टमित्र भी इकट्ठा हुए थे। ब्रिन्डिसी में जहाज पर सवार होने से पहले रोम में मुकाम करने की गाधीजी की इच्छा थी। भाई ने उन्हे फासिस्टो के दाँवपेंच एव युक्तिप्रयुक्ति से किसी को भी फँसने की नीति से सावधान करा दिया।

साथ ही रोम स्थित अपने एक ऐसे मित्र द्वारा, जिसका आचरण सन्देह के सर्वथा परे एव चारित्र्यसपन्न है, गाधीजी को निमत्रण प्राप्त होने की व्यवस्था भी वह कर देते हैं।

और हम खड़े हो जाते है, इन मित्रो की बगल मे, जो कि अब हमसे विदा होने ही वाले हैं। चित्त हमारा इस विचार से विषण्ण हो जाता है कि बहुधा इहलोक मे एक-दूसरे से पुन कभी हम मिल न सकेगे। किंतु, दूसरे ही क्षण, विधाता को धन्यवाद देते हुए मन ही मन हमने कहा कि उसी की कृपा से तो उनके सहवास मे चद दिन बिताने, उनके उज्ज्वल साहचर्य की अनुभूति प्राप्त करने, एव महादेव, प्यारेलाल, देवदास सरीखे आत्मिक बधुओ के स्नेह से परितुष्ट होने का सौभाग्य हमे मिल सका......

फिर गाधीजी मेरे भाई के निकट आते है, उनसे गले मिलते है, और अपने डिब्बे मे सवार हो जाते हैं। डिब्बे के भीतर से हाथ हिलानेवाली मीरा की ओर हम देरतक ताकते रह जाते है। और ट्रेन चल देती है, हमारे इस सुहृद को लेकर उस भवितव्य की दिशा में, जो कि सासारिक अग्निपरीक्षाओ एव आत्मिक विजयो से भरा हुआ है।

पैरिस,
१४–२–१९४६

जब गांधीजी बंगाल पधारे

नलिनी रंजन सरकार

महात्मा गाधी से अपना निकट सपर्क स्थापित करनेका सर्वप्रथम सुअवसर १९२५ के मई-जून में मुझे मिला। तब वे बगाल के दौरेपर निकले थे। बगाल के विभिन्न जिलो का उनका भ्रमण अभी चल ही रहा था कि बगाल एवं समूचे भारत पर आफत का पहाड टूट पड़ा। देशबधु दास सहसा चल बसे! यह दुखद समाचार मिलते ही महात्माजी अविलब कलकत्ते लौट आये, और दासबाबू के बगलेपर ही टिके। यह बगला देशबधु ने एक ट्रस्ट द्वारा राष्ट्र के नाम अर्पित कर दिया था।

देशबधु के स्मारक-स्वरूप उक्त ट्रस्ट के लिए निधि-संग्रह करने, एव उनकी मृत्यु के कारण बगाल के राजनीतिक जीवन में जो नई नई समस्याएँ पैदा हुई थी उनके निराकरण के काम मे गाधीजी जुट गये। अपनी मृत्यु के समय देशवधु कलकत्ता कार्पोरेशन के मेयर, बगाल प्रातीय काग्रेस कमिटी के सभापति, एव बगाल की धारासभा मे स्वराज्य-दल के नेता थे। इस त्रिविध कार्य का उत्तरदायित्व वहन करने के लिए गाधीजी ने स्वर्गीय जे. एम् सेनगुप्त को चुना।

लगभग इन्ही दिनो एक वार सहज भाव से गाधीजी ने मुझसे पूछा "सवेरे साधारणतया किस वक्त आप जग जाते है?" इस प्रश्न का कोई पूर्वापर सबध न होने के कारण मैंने सोचा कि वह निरुद्देश्य ही पूछा गया है। अत बोला, "जल्दी ही सोकर उठने की मेरी आदत है।" इसपर उन्होने कहा, "तो फिर कल भरसक जल्दी जग कर मेरे साथ घूमने चले आना।" और पुन बोले, कि वे मुझसे कुछ कहना चाहते है। उस समय उनके अधिक कुछ न कहने के कारण मै असमजस्य मे पड गया। यह बातचीत देशबधु के घर सवेरे के वक्त हुई थी। सयोग से उसी दिन शामको, जब कि महात्माजी श्रीमती वासतीदेवी के घर स निकल रहे थे, सीढी के पास उनसे मेरी मुलाकात हुई। तुरत मुझसे वे बोले, कि जिस वात की मेरे साथ चर्चा करने का उनका इरादा रहा उसका निवटारा हो जाने की वजह से अब अगले दिन सवेरे मेरा आना जरूरी नही हैं। इसके वाद उन्होने उस बात का मुझसे जिक्र भी किया। वात यू हुई कि बगाल के एक ख्यातनाम व्यक्ति ने, जो कि उसी समय वायसराय की कार्यकारिणी का सदस्य नामजद किया गया था, अपने कतिपय दोस्तो के कहने-सुनने से, मेरे विरुद्ध गभीर स्वरुप के अभाव-अभियोग लगाते हुए गाधीजी से शिकायत की थी। जवाब म गाधीजी बोले कि केवल सुनी-सुनाई बाते सही मानने के लिए वे तैयार नही, इसके लिए सबल प्रमाण देना होगा। इस प्रकार का प्रमाण प्राप्त होनेपर मुझ से जवाब तलब करने के हेतु ही गाधीजी ने अगले दिन प्रातः मुझे मिलने के लिए बुलाया था। किंतु इसके बाद उक्त महाशय पुनः गाधीजी से मिल कर बोले, कि चूंकि

अपने मित्र आरोप सिद्ध करने मे असमर्थ है, इस लिए 'एक सभ्य पुरुष के नाते'—उनके प्रति ये शब्द गाधीजी द्वारा प्रयुक्त किये गये हैं—वह क्षमा-प्रार्थी है। इतना ही नही बल्कि उन्होंने मेरी भी क्षमा-याचना करने की इच्छा प्रकट की। इस पर गाधीजी उनसे बोले, "इस निमित्त मै उन्हे ही आप के घर ले आनेवाला हूँ।" सुनकर हृदय मेरा भर आया। गाधीजी से मैं बोला, "ऐसी निंदा का अब मैं अभ्यस्त हो गया हूँ। अलावा इसके मैं ऐसा कोई बडा आदमी भी नही हूँ कि उक्त महाशय मुझ से क्षमायाचना करे।" फिर भी गाधीजी अपने सग उनके घर चलने के लिए मुझसे आग्रह करते रहे। किंतु मैंने कहा कि मैं खुद ही उनसे मिल लूँगा। और तदनुसार मैं मिला भी।

गाधीजी के इसी बग भ्रमण के समय बगाल धारा सभा के एक स्वतत्र दलीय प्रमुख सदस्य ने स्वराज्य-दल के विरुद्ध उनसे शिकायत करते हुए कहा कि उक्त दल बगाल के मत्रि-मडल को हराने के हेतु मत खरीदने जैसे अनीतिप्रद मार्ग का अवलब कर रहा है। अपने कलकत्ते लौटनेपर इस सबंध मे देशबधु से तहकीकात करने का गाधीजी ने उन्हे आश्वासन दिया। किंतु दुर्भाग्य से इसी बीच देशबधु का देहावसान हो गया। कुछ दिन बाद, कलकत्ते के अपने मुकाम मे गाधीजी ने मुझसे कहा कि मैं, स्वराज्य-दल के प्रतोद एव मत्री के नाते, उक्त शिकायत करनेवाले सज्जन और उनके सहयोगियो से अपनी उपस्थिति मे ही मिलकर उनके अभियोगों का उत्तर दूँ। तदनुसार हमारी बैठक हुई, जिसमे उन लोगों ने कौंसिल के दो या तीन मुस्लिम सदस्यो का नामोल्लेख कर कहा, कि हमने रुपया देकर उनपर अपना प्रभाव डाला है। उत्तर में मैं बोला कि उक्त उभय कौंसिलर्स स्वराज्य दल के सदस्य हैं, और चुनाव एव इसी प्रकार के अन्य प्रसगों पर उन्हें जो कर्जा हो गया था वह चुकाने के लिए हमने समय समय पर उनकी आर्थिक सहायता की है। किंतु किसी भी विपक्षीय व्यक्ति को, उसका मत प्राप्त करने के हेतु, हमारे द्वारा कभी रुपया-पैसा नहीं दिया गया। तब गाधीजी ने अभियोक्ताओ से पूछा, कि क्या वे स्वराज्य-दल के बाहर के किसी ऐसे व्यक्ति का नाम पेश कर सकते है जिसे कि हमारे द्वारा पैसे के बलपर अपने वशवर्ती करने की कोशिश की गई हो ? इस प्रकार

का प्रमाण उपस्थित करने मे असमर्थ होने के कारण इन लोगों के लिए सिवाय चुपकी साधने के दूसरा कोई चारा ही नही रहा। तब गाधीजी ने यह कह कर, कि वास्तविक आवश्यकता के समय अपने सहयोगियो की सहायता करने में कुछ भी अनुचित नही है, मामला यही ख़त्म किया।

निम्न प्रसग, जिसके बारे मे मैं प्रत्यक्ष रूप से जानकारी रखता हूँ, सार्वजनिक धन के प्रति गाधीजी की मनोवृत्ति का उत्तम परिचायक है। देशबधु स्मारक–निधि के लिए धन–सग्रह के कार्य का संगठन करने मे वे लगे हुए थे, और इस सिलसिले में उन्होने काग्रेस–कार्यकर्ताओ को आदेश दे रखा था कि वे घर घर जाकर चदा प्राप्त करे। एक कार्यकर्ता ने स्वतः द्वारा एकत्रित निधि में से ६७ रुपये इस कार्य के निमित्त मार्ग–व्यय खाते नाम डाले। गाधीजी ने इसमे आपत्ति प्रकट करते हुए कहा, "स्वतः द्वारा एकत्रित चन्दे की रकम से मार्ग–व्यय का रुपया चुकाना कार्यकर्ता के अधिकार–क्षेत्र के बाहर की बात है। यदि इस प्रकार की हरकतो को छूट मिली तो सार्वजनिक निधि के पावित्र्य की कदापि रक्षा न हो सकेगी।" इस मामले मे उन्होने इतना कड़ा रुख अख्तियार किया कि उक्त कार्यकर्ता को अपनी जेब से, या शायद दूसरे किसी उपाय से, वह रकम चुकानी पडी।

दास-स्मारक से सबधित और एक छोटीसी घटना उल्लेखनीय है। किसी बंक के मैनेजरने उक्त स्मारक–निधि के लिए चदा एकत्रित करने की इच्छा प्रकट की, जो कि गाधीजी ने मान ली। आगे चलकर दासबाबू के पत्रव्यवहार पर नज़र डालते समय गाधीजी को यह पता चला कि दासबाबू की राय में आर्थिक मामलो में इस सज्जन का आचरण विशेष अच्छा नही था। तुरत गाधीजी ने यह आदेश जारी किया कि इस सज्जन को, चूँकि दासबाबू की राय उसके विरुद्ध रही एव निधि उन्ही के स्मरणार्थ स्थापित है, चदा एकत्रित करने का काम न सौपा जाय।

१९३० के अत मे, जब कि मैं बगाल सरकार मे एक मत्री था, राजबदियों की रिहाई के लिए जोरदार आदोलन छिडा। गाधीजी भी इनकी रिहाई के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। मैंने उन्हे सूचित किया कि यह प्रश्न गवर्नर के अधिकार-क्षेत्र का होने के कारण यदि इस सबध मे वे गवर्नर, प्रधान-

मत्री एव गृह-मत्री से मिलेगे तो बेहतर होगा। गाधीजी मेरी राय से सहमत हुए। बगाल के तत्कालीन गवर्नर सर जान एडरसन उस समय दार्जिलिंग मे थे। चुनाँचे अपने कलकत्ते पहुँचनेपर गवर्नर एव मन्त्रियो से मिलने के लिए दार्जिलिंग जाना गाधीजी ने स्वीकार किया। लेकिन डॉ. बी. सी. राय ने गाधीजी की स्वास्थ्य-परीक्षा कर फोन पर मुझे सूचित किया कि उनका स्वास्थ्य दार्जिलिंग जैसे पहाडी स्थान की यात्रा के अनुकूल न होने के कारण मै सिलीगुरी में गाधी-गवर्नर भेट का आयोजन करूँ। मैंने सर जान को इस सारी स्थिति से अवगत कराया। तब सर जान को यह बात, कि स्वास्थ्य ठीक न होने की हालत में गाधीजी को सिलीगुरी तक आनेका कष्ट दिया जाय, उचित नही लगी, और उन्होन तय किया कि कलकत्ता स्थित बराकपुर गवर्मेंट-हाउस में ही यह भेंट हो। तदनुसार एक पूर्वनिश्चित दिन पर एक पेड़तले दोनो की भेट हुई, और स्थानबद्धो की रिहाई के सबध मे दोनो मे देरतक वार्तालाप हुआ। गाधीजी ने, जैसा कि बाद मे मुझे मालूम हुआ, यह भी आश्वासन दिया था कि मुक्त राजबदी पुन. किसी भी प्रकार के आतकवादी आदोलन में भाग न लेगे। इसी सिलसिले मे प्रधान मत्री श्री फजलूल हक एव गृहमत्री सर नाजुमुद्दीन से भी वे मिले। इन रिहाइयो के सबध मे बगाल धारा-सभा के यूरोपियन गुट्ट, पुलिस-कमिश्नर और स्टेटसमैन पत्र ने विशेष रूप से आपत्ति प्रकट की। मैंने गाधीजी से कहा कि इन महानुभावो से भी उनका मिल लेना लाभप्रद रहेगा। तदनुसार इन भेट-मुलाकातो की भी व्यवस्था की गई। गाधीजी ने उन लोगो को आश्वासन दिया, जिससे वे न्यूना-अधिक सतुष्ट भी हुए। इसके बाद की घटनाएँ अब इतिहास-रूप हो गई है। तीन हजार स्थानबद्ध तुरत रिहा कर दिये गये। सजायाफ्ता राजबदियो की रिहाई के सबध में यह नीति निश्चित कर ली गई कि उनमे से हरेक के विषय मे व्यक्तिगत रूप से पुन. विचार हो। इस आखरी मुद्दे से गाधीजी सहमत न हो सके। उन्होने पुन· पुन. आग्रह के साथ यही कहा कि वे खुद इन बदियो के लिए जामिन रहनेके लिए तैयार है, लेकिन उन्हे जरूर तुरत रिहा कर दिया जाय। किंतु दुर्भाग्य से सरकार अपनी बात पर अडी रही। इससे गाधीजी को इतना ज्यादा सदमा पहुँचा कि जिसे वे जल्दी भूल न सके।

प्रातीय स्वायत्त-शासन की स्थापना के बाद बगाल में जो पहला मत्रिमडल बना उसमे मैं भी था। बगाल के काग्रेसी नेताओ ने इस मत्रिमडल को उखाड फेकनेका बीडा उठाया, और मुझसे अनुरोध किया कि मैं भी अपना मत्रीपद त्याग दूँ। मुझसे यह भी कहा गया कि मेरे पदत्याग कर देने से शेष मत्रिमडल को पदभ्रष्ट करनेका काम आसान हो जायगा। किंतु इस सारे उपद्रवचाप के पीछे कोई खास समस्या या सिद्धात नजर न आनेसे पदत्याग करने सबधी उनका प्रस्ताव मुझे जँचा नही। तब काग्रेसी नेताओ ने गाधीजी से भेट कर उनसे अनुरोध किया कि वे मत्रीपद त्यागने के लिए मुझे मनावे। चुनाँचे गाधीजी ने इस सिलसिले मे स्वत से मिलने के लिए मुझे तार देकर वर्धा बुलाया। तदनुसार मैं उनस मिला और इस विषयक अपने दृष्टिकोण से मैंने उन्हे अवगत कराया। सुन कर गाधीजी को पूरी तौर से यह विश्वास हो गया कि फिलहाल मेरे मत्रीपद त्यागने की कोई आवश्यकता नही है। तदनुसार उन्होंने श्री सुभाषचद्र बोस के नाम एक पत्र लिखा, जो, उसकी प्रतिलिपि के आधार पर, नीचे उद्धृत किया जा रहा है।

"मैं प्रस्तुत पत्र हेतुपुरस्सर ही बोलकर लिखा रहा हूँ। यह लिखाते समय मौलाना साहब, नलिनी बाबू एव घनश्यामदास सुन रहे है। बगाल के मत्रिमडल के विषय में हमने विस्तारपूर्वक चर्चा की। परिणाम-स्वरूप मैं इसी निर्णयपर पहुँचा कि मत्रिमडल उखाड फेकना ही हमारा उद्दिष्ट न बन जाय, और न वर्तमान मत्रिमडल मे रद्दोबदल कर देने मे हमारा कुछ लाभ होगा। बल्कि इस मत्रिमडल म काग्रेसियो के सम्मिलित होनेस सभवत हमारा नुकसान ही अधिक होगा। अत, मेरी रायमें, शासन-व्यवस्था विषयक एकसूत्रता एव पूर्वनिश्चित कार्यक्रम और नीति में समन्वय स्थापित करनेकी दृष्टि स, जो जो सुधार हम चाहते है वे वर्तमान मत्रिमडल द्वारा ही पूरे कराना ठीक रहेगा। अवश्य ही जब मत्रिमडल कोई दशहित विरोधी कदम उठाने जा रहा हो तब वास्तविक कारण उपस्थित कर नलिनी बाबू पदत्याग कर सकते है, जिसक लिए कि वे खुद तैयार भी है। उस स्थिति में उनका त्यागपत्र सम्मानपूर्ण एव समुचित माना जायगा। रही बात म्यूनिसिपल कानून विषयक उपसूचना की। जैसा कि मैं जानता हूँ हरिजनो के लिए स्वतत्र मतदार-सघ की

जो माँग की जाती रही वह अब छोड दी गई है। अलवता मुसलमानो के लिए स्वतत्र मतदार-सघ की माँग अब भी बराबर जारी है। इसका आत्यतिक रूप से विरोध किया जाय या नही यह मै नही जानता। यदि बहुसख्य मुस्लिम जनता देश-विभाजन के पक्ष मे हो तो, मेरी राय मे, उसे सतुष्ट करने में ही बुद्धिमानी है। मैं नही चाहता कि काग्रेस-विरोध पर विजय प्राप्त कर मुसलमान अपनी उक्त माँग पूरी करे। क्योकि इसका तो यही अर्थ होगा कि काग्रेस को इस प्रश्न पर हार माननी पडी।

"यदि मेरे उपरोक्त विचारो से आप सहमत हो सके तो स्थानबद्धो की रिहाई का सवाल आज की अपेक्षा कही अधिक आसान हो जायगा। अत. मेरे इन विचारो से आप सहमत हो तो आप इस नई नीति की घोषणा कर दें। इससे निश्चय ही बगालभर मे जो आतक छाया हुआ है वह कम होने में मदद मिलेगी। और इसके स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप आज की उत्साहशून्य स्थिति से बगाल को मुक्ति मिलेगी। मेरी इस राय से मौलाना साहब, और साथही नलिनी बाबू एव घनश्यामदास भी, पूर्णतया सहमत हैं।"

१९४१ मे अपनी कार्यकारिणी का सदस्य बनने सबधी वायसराय का प्रस्ताव मेरे द्वारा स्वीकार कर लिया जानेपर गाधीजी बहुत ही आश्चर्यचकित् हुए। इस सबध मे मेरे नाम भेजे गये अपने एक पत्र म वे लिखते हैं—"आपने यह पद स्वीकार कर लिया है यह जानकर मुझे बहुत ही आश्चर्य हुआ। आपकी अभिलाषाएँ पूरी हो यही कामना। मेरा सलाह-मशविरा तो, जब भी आप चाहेगे तब, आपको मिल सकेगा।" उस समय की परिस्थिति मे प्रस्तुत पत्र से मुझे काफी प्रोत्साहन मिला। दिल्ली में मुझपर जो मामली हमला हुआ उसकी खबर गाधीजी को अखबारो के जरिये मिल गई। चिंतित होकर उन्होने तार भेजा। "आशा है कुछ विशेष नही हुआ होगा। तार से खबर दे।" इसके बाद कुछ आवश्यक कार्यवश महादेव भाई को जब दिल्ली जाना पडा तब गाधीजी ने उन्हें विशेष रूपसे यह सूचना दी कि मझसे मिलकर मेरे स्वास्थ्य के बारे मे पूछताछ करे। जब मै शिक्षा, स्वास्थ्य एव माल विभाग का सदस्य था तब गाधीजी सार्वजनिक स्वास्थ्य-सुधार, गोरक्षा आदि विभिन्न विषयोपर समय समय पर पत्र द्वारा मुझे परामर्श देते रहे।

कलकत्ता,
७-१-१९४७

उनके कतिपय निर्णयों की पृष्ठभूमि

चंद्रशंकर शुक्ल

काग्रेस के दिसबर १९२५ के कानपुर-अधिवेशन के बाद गाधीजी ने, अपने मित्रो की सलाह से, आगामी वर्ष, या कमसे कम उसका अधिकाश, साबरमती आश्रम मे बितानेका निश्चय किया। गत एक मास से उनके स्वास्थ्य मे जो गड़बडी चल रही थी उसके कारण ही यह निश्चय किया गया था। उन्हे अधिकसे अधिक आराम पहुँच सके इस हेतु यह सुझाव दिया गया था कि वे अपना सारा अगरेजी पत्रव्यवहार स्टेनोग्राफर से टाइप करावे, एव गुजराती के पत्र भी खुद न लिखे। तत्कालीन आश्रमीय विद्यालय के अध्यापको मे मैं ही सबसे कम उम्र का होने के कारण उनके गुजराती पत्र, एव 'नवजीवन' के लिए समय समय पर लेख, टिप्पणियाँ आदि लिख लेनेका काम मुझे सौंपा गया। इसके लिए उनकी दुपहरी की अल्प निद्रा के बाद, याने एक से दो बजे तक का समय, निश्चित किया गया था। कभी-कभार इससे भी अधिक समय तक काम करना पडता था। "आपके लिए यह एक प्रकारसे मनबहलाव का ही साधन है," गाधीजी एक दिन मुझसे बोले। किंतु इस प्रकार उनके निकट सहवास मे आनेका सुअवसर प्राप्त होना वस्तुतः कितने भाग्य की बात है यह मैं स्वय भली भाँति जानता था।

उस वर्ष के ग्रीष्म मे विश्व वाय्. एम्. सी. ए परिषद् फिनलैंड की राजधानी में होने जा रही थी और इसमें उपस्थित रहने के लिए गाधीजी को आग्रहपूर्वक आमन्त्रित किया गया था। परिषद् के सचालको ने गाधीजी की यात्रा का प्रबध करने का भार मद्रास के स्वर्गीय श्री के. टी. पाल को सौंपा था, जिन्होने इस यात्रा में गाधीजी के साथ जहाज पर एक बकरी भी ले चलनेकी व्यवस्था कर इसकी उन्हे सूचना दी थी।

कभी कभी दोपहर के एक बजे गाधीजी काम के लिए तैयार न मिलते थे। इस समय तक आराम न कर पाने के कारण वे लेटने के

लिए, या मुझे कुछ देर रुकने को कहकर 'लायेब्ररी' चले जाते थे। शौचगृह को उन्होने 'लायेब्ररी' नाम दे रखा था। इसका मुख्य कारण था लायेब्ररी की भाँति ही हरेक शौचगृह साफ-सुथरा रखने सबधी उनका आग्रह। और दूसरा, अपना अधिकाश पुस्तक-पठन वे वही करते थे। एक बार मैने उन्हे 'सिलेक्शन्स फ्राम डिकन्स' नामक पुस्तक लेकर वहाँ जाते देखा है। लेकिन लोग इस बात मे भी अपना अनुकरण करें यह उन्हे पसद न था। अगस्त १९२७ की एक दुपहरी को चिट्ठी-पत्रियो का एक पुलिदा साथ लेकर वे बगलूर के कुमार पार्क की 'लायेब्ररी' में जा रहे थे। पास ही मैं खडा था। सो मेरी ओर मुडकर व बोले, "लाचारी की हालत में ही मुझे ऐसा करना पड रहा है। लेकिन लोग इसमे मेरा अनुकरण न करे।"

खैर, यह तो विषयातर हुआ। अब मूल बातपर आवे। एक दिन दुपहर के समय उन्होने इसी भाँति 'लायेब्ररी' से अपने लौटने तक मुझे रुकने के लिए कहा। कोई आध घटे बाद वे लौटे, और अकस्मात् महादेव भाई एव अपने अन्य सहयोगियो को उन्होने बुला भेजा। कहने लगे, "अभी अभी 'लायेब्ररी' मे मुझे अपनी अतरात्मा की पुकार सुनाई पडी, जिसने मुझे यही आदेश दिया कि देश में मेरे योग्य बहुतसा महत्वपूर्ण काम बाकी होने के कारण मै फिलहाल विदेश-यात्रा न करूँ।" निश्चय ही अपनी अतरात्मा से आदेश पाकर किया गया उनका उक्त निर्णय अब बदला नही जा सकता था। न तो अब इसमें बहस के लिए कोई गुजाइश थी, और न बहस करने के फेर में कोई पडा भी। यथासमय और यथा-स्थान इस निर्णय की सूचना भेज दी गई। यूरोप-यात्रा का विचार रद हुआ।

इसके चद दिन बाद, यह ज्ञात होनेपर कि गाधीजी यूरोप नहीं जा रहे हैं, प. मोतीलालजी ने उन्ह अपने साथ डलहौसी में रहने के लिए निमन्त्रित किया। खुद पडितजी पजाब के इस पहाडी स्थानपर गरमी के कुछ महीने बिताने जा रहे थे। गाधीजी ने निमत्रण स्वीकार कर लिया, और उनका उधर जाना निश्चितसा दिखाई देने लगा। इसी बीच एक दिन श्री वल्लभभाई पटेल (इस समय तक वे 'सरदार' नही बने थे) गाधीजी से मिलने आये। उन दिनो वे कभी कभार गाधीजी से मिलने आकर हँसी-मजाक एव विनोदपूर्ण बातो द्वारा उनका जी बहला दिया

करते थे। अबकी वार वे अपने साथ डॉ. कानूगा को भी ले आये थे। डॉ. कानूगा ने गाधीजी की स्वास्थ्य-परीक्षा की और उन्हे पूर्णतया स्वस्थ पाया। तब विनयपूर्वक, किंतु विनोद के साथ, श्री वल्लभभाई गाधीजी से बोले कि अब उनके लिए पहाडी स्थानपर या अन्यत्र कही भी जानेकी जरूरत नही है, जहाँ है वही रहे। डॉक्टर ने भी उनकी इस वात की ताईद की। आश्चर्य की वात है कि गाधीजी को आश्रम छोड़ने के विचार से विमुख करने के लिए सरदार के ये इनेगिने शब्द ही काफी हुए। डलहौसी की प्रस्तावित यात्रा बिना वाद-प्रतिवाद के रद कर दी गई। इस प्रकार वड़ी कठिनाई से मिलनेवाले इस थोड़ेसे आराम से भी हाथ धोना पड रहा है यह देखकर निरुत्साहित हुए महादेव भाई मुझसे बोले, "देखा न आपने, कि हमारे मन कुछ और है, वल्लभभाई के मन कुछ और।" अवश्य ही वल्लभभाई ने कुछ विशेष कारणवश ही उपर्युक्त सुझाव गाधीजी के सामने रखा होगा। शायद उन्होने सोचा होगा कि हिमालय प्रदेश के पहाड़ी स्थानपर की ठडक की अपेक्षा आश्रमवासियों का सहवास, वहाँ के गर्म वायुमडल के वावजूद, मानसिक दृष्टि से गाधीजी के लिए अधिक सुखकर रहेगा। वे आश्रम को गाधीजी की एक 'सर्वोत्कृष्ट रचना' मानते आये हैं, और आश्रम की स्थापना के वाद आज पहली ही बार गाधीजी एक लबे अरसे के लिए आश्रम से दूर जाने का इरादा कर रहे थे। मुझे याद है कि मैंने गाधीजी को अपने तूफानी दौरों के दरमियान एक दिन ऐसा कहते सुना—"जब जब दौरा करते वक्त अपने भीतर की बैटरी खत्म हो जाती है तव तव मैं आश्रम लौट आता हूँ, कुछ दिन वहाँ ठहरकर बैटरी भर लेता हूँ, और पुन. आगे के दौरेपर चल पड़ता हूँ।"

इन्ही दिनो सावरमती पधारे हुए सेठ जमनालाल वजाज ने, गाधीजी शाति के साथ अपना काम कर सके एव समय असमय स्वत: से मिलने आनेवाले दर्शकों के उपद्रव से बचे रहे इस हेतु, आश्रम के अहाते में ही उनके लिए एक छोटासा एकतल्ला मकान वाँधने की इच्छा प्रकट की, और इसके लिए उनसे स्वीकृति भी प्राप्त की। अनेक लोगो ने इस योजना का स्वागत किया। किन्तु दूसरे ही दिन साध्य-प्रार्थना के वाद गाधीजी ने घोषित किया कि उक्त योजना के लिए असावधानी

वश अपनी सम्मति प्रदान की जाने के क्षण से वे बेचैनी अनुभव कर रहे है। बोले, "मै तो धरती पर का जीव हूँ, धरतीपुत्र हूँ। अलावा इसके एक किसान और जुलाहा के लिए, जैसा कि अपने आप को मै कहा करता हूँ, या एक लोक-सेवक के लिए भी, एकतल्ले पर जाकर रहना और इस प्रकार धरती-माता से अपना नाता तोड़ लेना नितात अशोभाप्रद है। फलत. अपना पूर्वोक्त निर्णय मैने अब बदल दिया है। मैं तो आश्रम के उस छोटे से कमरे से, जिसका कि आजतक उपयोग करता रहा, सतुष्ट हूँ।"

८ मई १९३३ को, मध्यान्होपरात, गाधीजी ने अपना इक्कीस दिन का उपवास, यरवदा मे कैदी की हालत में ही, शुरू किया। उसी दिन शाम को वे रिहा कर दिये गये, और जेलो के इन्सपेक्टर जनरल ने उन्हे खुद की मोटर द्वारा 'पर्णकुटी' पहुँचाया। 'पर्णकुटी' मे, जहाँ कि वे अपने उपवास-काल में रहनेवाले थे, आवश्यक प्रबध कर लिया गया था। गाधीजी के आगमन पर दो सवाददाताओ ने उनसे भेट की, जिन्ह उन्होने एक खासा लबा वक्तव्य एक ही साँस में 'डिक्टेट' किया। वह पुन. उन्हे पढकर सुनाया गया, जिसमे जरा भी रद्दोबदल करने की उन्हे जरूरत नहीं मालूम हुई। उक्त वक्तव्य श्रीमती सरोजिनी नायडू ने, जो कि उस समय वहाँपर उपस्थित थी, पढ़कर सुनाया था। किंतु वह श्री बापूजी अणे द्वारा पढकर स्वीकृत होनेपर ही प्रकाशनार्थ दिया जानेवाला था। चुनाँचे श्री अणे को श्री तात्यासाहब केलकर के घर से बुला लाने के लिए मुझे भेजा गया। गाधीजी ने अपने वक्तव्य में यही सुझाव दिया था कि सत्याग्रह-आदोलन छ. सप्ताह के लिए स्थगित रखा जाय। श्री अणे उस समय काग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष थे। अत. अपने वक्तव्य के लिए उनकी पूर्वस्वीकृति प्राप्त करना गाधीजी ने जरूरी समझा। श्री अणे आये, और अपने वक्तव्य द्वारा दी गई गाधीजी की सलाह से उन्होने पूर्ण सहमति प्रकट की। तदनुसार उसी रात को वक्तव्य प्रकाशित हुआ। अनतर एक दिन, सत्याग्रह स्थगित रखने सबधी उपर्युक्त निर्णय का उल्लेख करते हुए, गाधीजी बोले, "यदि अपने को यकायक रिहा कर दिया गया तो उस हालत में क्या कदम उठाया जाय इस सबध मे मैने कभी कुछ सोचा ही नहीं था। किन्तु कारागार का फाटक खुलते

ही मेरे मन के किवाड भी खुल गये, और 'पर्णकुटी' मे अपने पहुँचने के पहले ही मैने छ सप्ताह के लिए सत्याग्रह स्थगित रखनेका निर्णय कर डाला।" कुछ मास बाद वर्धा के अपने एक सहयोगी से इसी विषय की चर्चा करते हुए गाधीजी बोले, "ऐसी स्थिति मे, जब कि अपने जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हुआ हो, सत्याग्रह आगे जारी रखने के लिए आवश्यक उत्साह जनता में न रहेगा यह देख कर ही मैंने उसे स्थगित रखने की सलाह दी। जेलसे अपने रिहा होते ही उक्त विचार बिजली की कौंध की भाँति मेरे चित्त मे चक्कर लगा गया। चाहे तो आप इसे 'gesture' कह सकते हैं।"

इस उपवास के दूसरे ही दिन गाधीजी ने प मालवीय के नाम निम्न तार भेजा "आपके आशीर्वाद से बल मिला। आपके उपदेशानुसार ही चल रहा हूँ। बचपन से ही 'रामनाम' मेरा जीवन-मन रहा है। मैं स्वस्थ हूँ, और प्रसन्न भी। सकट-रक्षार्थ प्रार्थना करते रहे।"

और डा. अन्सारी को उन्होने यह तार भेजा "सरोजिनी ने समाचार-पत्रो में प्रकाशित आपके वक्तव्य का उल्लेख किया। भय से आप त्रस्त हैं। किंतु यह आपके अधिकार और कर्तव्य का प्रश्न है। जब भी इच्छा हो चले आयें। आपके प्रति विश्वास की मेरी भावना से आप परिचित ही है। सबसे प्यार।" दूसरे ही दिन डाक्टर साहब ने दिल्ली से पूना के लिए प्रस्थान किया, और उपवास की समाप्ति तक वही रहे।

उपवास के तीसरे दिन गाधीजी ने साबरमती के एक आश्रमवासी के नाम निम्न पत्र भेजा "मैं देखता हूँ कि खुद लिखने की अपेक्षा बोलकर लिखाने में अधिक कष्ट होता है। अत. अब ज्यो ज्यो दिन बीतते जायेंगे त्यो त्यो खुद लिखने, या बोलकर लिखाने मे भी, मैं असमर्थ रहूँगा। तब आप ऐसा अनुभव करेगे कि मेरे विचार आपसे बोल रहे है।...कृपया उठाये हुए काम में ही अपना सारा ध्यान लगावे। याने आदर्शभूत आश्रमीय बनने की चेष्टा करे। दूसरे साथी क्या करते हैं यह देखने की जरूरत नही।"

इस उपवास-काल में देश-विदेश के कई प्रिय एव निष्ठावान स्नेहियो और सहयोगियों से गाधीजी के नाम नित खत-पत्र आते रहे। इनमें

से बहुतेरे व्यक्ति या तो भारत के भिन्न भिन्न भागों मे देशसेवा के काम मे जुटे हुए थे, या उसीके निमित्त विभिन्न जेलो मे सजा काट रहे थे। ता. २ मई को फ्रेंच में लिखे गये अपने पत्र के अत मे रोमाँ रोलाँ लिखते हैं: "संसार की रक्षा करने मे क्रूस भले ही असमर्थ रहा हो; किन्तु, उसने ससारवासियो को आत्मरक्षा का मार्ग दिखा कर अपने प्रकाश से करोडो वदकिस्मतो की राते उजली बना दी हैं।

"किन्तु, ईश्वर करे, अव उसकी पुनरावृत्ति न हो। और अभी आप जीवित रहे, वहुत बहुत साल तक। निश्चय ही, हमारे बीच रहे ऐसा तो नही कह सकता। बीमार जो हूँ। इसीसे इस शरीर का अव कुछ भी भरोसा नही है। किन्तु भारत एव ससारभर के हमारे भाई-बहनो के बीच, इस आँधी-पानी के समय उनकी जीवन-नौका को पतवार थामने के लिए, आपकी उपस्थिति नितात आवश्यक है।

"अपने आशीर्वाद दे,-वहन मादेलीन को, और मुझे भी। आपका ही,-रोमाँ रोलाँ।"

इस प्रसग पर मादेलीन रोलाँ, प जवाहरलाल नेहरू, वेरियर एल्विन, माननीय श्रीनिवास शास्त्री, श्री जयरामदास दौलतराम, मीराबेन, दीनबधु एण्ड्रूज आदि और भी कई लोगो के पत्र प्राप्त हुए थे, जो कि सभी अत्यंत हृदयस्पर्शी रहे।

उस साल की पहली अगस्त को गाधीजी ने दुबारा सत्याग्रह किया। चुनाँचे उन्हे गिरफ्तार कर पहले तो सावरमती जेल में, और उसी दिन शामको मय महादेव भाई के, जो कि उन्ही के साथ सत्याग्रह करते समय गिरफ्तार हुए थे, यरवदा जेल पहुँचा दिया गया।

पूना छोड़कर चले जाने का हुक्म तोड़ने के जुर्म मे ता. ४ को दोनोंपर मुकदमा चलाया जाकर उन्हे एक-एक साल सादी कैद की सजा दी गई। सरकारी परिभाषा के अनुसार अव वे 'सजायाफ्ता कैदी' थे, और उन्हे प्रथम श्रेणी में रखा गया था। ता. १६ से उन्होंने उपवास शुरू किया, जो तवतक जारी रहनेवाला था जब तक कि जेल के भीतर से हरिजन-कार्य करने की सहूलियत नहीं मिल जाती। चूँकि

उक्त उपवास के कारणो पर अबतक कही भी प्रकाश नही डाला गया है, इसलिए मै उस विषयक सारी बात यहाँ सक्षेप मे निवेदन करूँगा।

सितबर १९३२ मे ब्रिटिश सरकार द्वारा घोषित हरिजनो सबधी करारनामे के विरुद्ध जब गाधीजी ने अनशन आरभ किया तब हर किसी को उनसे भेट-मुलाकात करनेकी पूरी इजाजत थी। किंतु पाँच दिन बाद अनशन भग होते ही इन भेट-मुलाकातो पर अकस्मात् प्रतिबध लगा दिया गया। इस सबध मे जेल-सुपरिटेडेट के नाम भेजे गये अपने पत्र में गाधीजी लिखते हैं: "देशभर मे असाधारण रूप से जो जागृति पैदा हुई है, एव उपवास का जो नतीजा नजर आ रहा है उससे सरकार बेखबर तो न होगी। किन्तु, इस उपवास की मर्यादाएँ जनता भली प्रकार समझ न पायी है, और उत्साही युवक भी उसका अदाधुद अनुकरण कर रहे है। अत अस्पश्यता के विषय में होनेवाली भेट मुलाकातो पर कतई रुकावट न रहना मैं जरूरी मानता हूँ।. कहना न होगा कि यही नियम इस विषयक पत्रव्यवहार को भी लागू रहे।"

चद दिन बाद उन्होंने बम्बई सरकार के गृहमत्री के नाम भी एक पत्र भेजा, जिसम वे लिखते है "निश्चय ही, अछूतोद्धार जैसा सुधार-कार्य सरकार और जनता दोनो की ही दृष्टि से एकसा महत्वपूर्ण माना जाना चाहिये।...आप जानते ही होगे कि मैंने अपना उपवास सिर्फ मुल्तवी रखा है। और अगर हिन्दुओ द्वारा हरिजनो की समस्या का उचितोचित समाधान न किया गया तो वह फिरसे जारी किया जायगा। अत यदि इस सुधार को पूरी तौर से कार्यान्वित करना हो तो, जनता के साथ मेरा सपर्क स्थापित कर दिया जाना अपरिहार्य है।"

उस समय सरकार द्वारा दी गई सहूलियतें गाधीजी को नाकाफी मालूम हुई। ता २८ अक्तूबर १९३२ को इन्स्पेक्टर जनरल आफ प्रिज़न्स के नाम भेजे गये अपने पत्र के आखिर मे वे लिखते है "अत आगामी पहली नवबर तक, या इससे पहले, ऊपर उल्लिखित प्रतिबध हटा न लिये गये तो, सत्याग्रह के नियमो के अनुसार सरकार के साथ का अपना सहकार्य यथासभव कम करनेके लिए मुझे बाध्य होना पडेगा। और इसके श्रीगणेश-स्वरूप मे, आहार विषयक जो सहूलियत सप्रति

स्वत' को मिल रही है वे अस्वीकार कर, अपने व्रत की मर्यादा के भीतर रहते हुए, एव अपने शरीर की सहनशक्ति क अनुसार, 'क' श्रेणी का आहार ग्रहण करने लगूगा । मुझे दृढ आशा है कि सरकार इससे धमकी का आशय न लेगी । वस्तुत 'सरकार की मनोवृत्ति क स्वाभाविक परिणाम-स्वरूप ही यह कदम उठाने के लिए मुझे बाध्य होना पड रहा है। जिस कार्य के निमित्त मैंने अनशन आरभ कर फिर स्थगित किया है वह बे-रोकटोक न कर सकने की हालत मे अपना जीवन मेरे लिए नीरस बन जायगा । हॉ, इतना याद रहे कि यदि इन नैतिक एव धार्मिक सुधारो का सविनय-अवज्ञा से जरा भी सबध होता तो इस विषय मे मैं जरूर ही चुपकी साध लेता ।"

ता. ३१ को जेल-सुपरिटेडेट के नाम भेजे गये पत्र मे वे लिखते ह "अपने लिए मिलनेवाला विशेष आहार लेना मैं कल से बद कर दूँगा ।"

उसी मुताबिक ता १ नवबर को गाधीजी ने 'क' वर्ग का आहार लिया । उसी दिन रातके ९॥ बजे भारत सरकार का निम्न सदेश उन्हे पहुँचा दिया गया । "श्री गाधी को सूचित किया जाय कि उनका ता. २४ अक्तूबर का पत्र भारत सरकार को ता ३१ अक्तूबर को प्राप्त हुआ । उसमे उल्लिखित बाते अभी सरकार के विचाराधीन है, और उसे आशा है कि दो-तीन दिन मे अपने निर्णय से वह आप को सूचित करेगी । इस बीच सरकार की यही सलाह है कि श्री गाधी स्वतः पर आहार विषयक प्रतिबध लगा लेने से पहले अपनी प्रार्थना पर पूर्ण विचार करन् का अवसर सरकार को प्रदान कर ।"

अगले दिन प्रात ७ बजे गाधीजी ने भारत सरकार के होम सेक्रेटरी के पास पहुँचा देने के लिए एक पत्र, इस अनुरोध के साथ कि वह जरूरी तार की तरह भेजा जाय, जेल-सुपरिटेंडेट के सुपुर्द किया । अपने नाम प्रेषित सरकार के सँदेसे की पहुँच देते हुए उक्त पत्र मे गाधीजी लिखते है "मुझे यह ज्ञात कर, कि ता २४ का अपना पत्र सरकार को ता ३१ को मिला, सखेद आश्चर्य हुआ । उपवास का प्रश्न बडे ही महत्व का है, और सरकार द्वारा स्वीकृत यरवदा-पैक्ट के भीतर से पैदा हुआ है । फिर भी मेरा पत्र आपको पहुँचने मे जो खेदजनक

विलंब हुआ है उसके, एवं आपके संदेसे में उल्लिखित सूचनाओं के कारण, मैं आहार विषयक वे बंधन, जो कि कल से मैंने स्वत पर लाद लिये है, फिलहाल स्थगित रख रहा हूँ। विश्वास है कि ता ३१ अक्तूबर को यरवदा सेंट्रल प्रिजन के सुपरिटेंडेंट के नाम भेजा गया मेरा पत्र आपके भी देखने में आया होगा। उक्त पत्र का आशय जान लेने के हेतु जब वह मुझसे मिले तब मैंने उन्हें समझाते हुए कहा कि अगर अगले मास की चार तारीख तक मेरी माँग पूरी न की गई तो मुझे, दूसरी बातों के साथ ही, अपनी खुराक भी बंद कर देनी पड़ेगी। इसका उल्लेख करने का कारण केवल यही है कि मेरी उत्कट भावनाओं से सरकार कुछ तो अवगत हो जाय। अस्पृश्यता के विषय में सुधारकों एवं सनातनियों द्वारा लिखे गये खत–पत्र प्राय रोज ही मेरे पास आ रहे है। ये लोग चाहते है कि मेरी ओर से इनका तुरंत जवाब मिले, ताकि वह प्रकाशित किया जा सके। अत लाखों लोगों को प्रभावित करनेवाले इस प्रकार के विषय की चर्चा, ऐसे खानगी पत्रव्यवहार द्वारा, जिसके प्रकाशन पर प्रतिबंध लगा दिया गया हो, नहीं की जा सकती। हाल ही में स्थापित अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी लीग की ओर से भी मेरे नाम कई पत्र और तार आये है, जिनमें कार्यप्रणाली संबंधी सलाह और मार्गदर्शन की माँग की गई है। कालिकत के कतिपय 'अछूत' मित्रों की ओर से भी पत्र आये है, जो कि अत्यंत महत्वपूर्ण है। वे चाहते है कि लौटती डाक से उन्हें मुझसे मुलाकात करने की इजाजत मिल जाय। यह बहुतसारी बातें एवं अछूतोद्धार के कार्य के लिए मैंने अपने प्राणों की जो बाजी लगा दी है वह जानते हुए, पत्रद्वारा मैंने जिन अनिर्बंध सहूलियतों की माँग की है वे प्रदान करना सरकार के लिए यदि संभव न हो तो, कमसे कम इस कार्य के निमित्त अपने प्राण होमने की मेरी अभिलाषा एवं तत्परता की वह अवश्य ही कद्र करेगी ऐसी आशा है। क्योंकि एक कैदी के सामने, इस प्रकार की असह्य और अपनी आत्मा का हनन करनेवाली स्थिति से मुक्ति पाने के लिए, इसके सिवा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं रहता।"

इसके उत्तर-स्वरूप प्राप्त सरकार के आदेशों की सूचना गांधीजी को ता ३ नवंबर १९३२ को दे दी गई। यही सूचित किया गया था कि

गांधीजी द्वारा अपने पत्र मे उल्लिखित सभी कारणो से सरकार सहमत है। और आखिर मे गाधीजी के ही ये शब्द, कि " जब भी जरूरत होगी तब इन भेंट-मुलाकातो और पत्रव्यवहार की निगरानी करने का सरकार को अधिकार होगा," उद्धृत किये गये थे।

गाधीजी द्वारा इन मर्यादाओ का किस प्रकार पूर्णतया पालन किया गया यह बात हर कोई देख ले सकता है। उनके द्वारा सत्याग्रह शुरू किया जाने, याने ता. १ अगस्त १९३३ के एक दिन पहले, सरकार-पक्षीय समाचारपत्रो ने यह घोषित किया कि अबकी बार उन्हे पहले की भाँति जेल के भीतर से पत्रव्यवहार करने की सहूलियते नही दी जायँगी। ३० जुलाई को अहमदाबाद में उनसे अपनी भेंट होनेपर मैंने इसका जिक्र किया। सुनकर वे सविनय किंतु दृढनिश्चयी स्वर मे बोले, " आप इसकी चिंता न करे। इस कार्य के निमित्त जेल का फाटक खुलकर ही रहेगा।"

स्मरण रहे कि अपनी गिरफ्तारी के दिन स ही इस विषय पर सरकार के साथ उनका पत्र-व्यवहार चल रहा था।

बम्बई सरकार के होम-सेक्रेटरी के नाम प्रेषित ता. ४, ८ और १४ के अपने पत्रो में उन कारणो का पुनरुच्चार करते हुए, जो कि पहले ही उनके द्वारा सरकार को सूचित किये जाने पर स्वीकृत हो चुके थे, वे आगे लिखते है कि "कृपाभाव से नही, अपितु यरवदा-पैक्ट के अनुसार न्यायत, ये सहूलियते प्रदान करने के लिए सरकार बँधी हुई हैं।"

किन्तु सरकार ये सहूलियत इतने अधिक प्रतिबधो के साथ देने जा रही थी कि अपने कार्य की दृष्टि से गाधीजी को वे बेकारसी मालूम हुई। चुनाँचे उन्हाने दुबारा सरकार के सामने अपनी न्यूनतम माँगे उपस्थित की, और दूसरे दिन उनके उत्तर-स्वरूप कुछ भी सूचना प्राप्त न होनेपर, ता. १६ की दुपहर बाद, १२ से १७ तक के गीताध्यायो एव 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' भजन का पाठ कर, उपवास शुरू किया।

उपर्युक्त होम-सेक्रेटरी के नाम ता. १९ को गाधीजी ने निम्नाशय का पत्र भेजा —" श्री एण्ड्र्यूज से ज्ञात हुआ कि चूँकि अब मे ' स्टेट प्रिजनर '

से 'कन्विक्टेड प्रिजनर' बन गया हूँ, इसलिए मुझे सहूलियतें प्रदान करने सबधी भारत सरकार द्वारा जारी किये गये आदेशो का पालन करने में कठिनाई पैदा हुई है। लेकिन यह समझ सकने में, कि जो बाते एक बार अपने लिए आवश्यक समझकर स्वीकृत की गई वे ही अब सिर्फ इसी कारणवश कम आवश्यक कैसे मानी जाती है, मैं असमर्थ हूँ। जब 'कन्विक्ट' होने की हालत में भी मेरी शारीरिक आवश्यकताएँ सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुकी है, तब अस्पृश्यता विषयक मेरी आध्यात्मिक आवश्यकताएँ तो निश्चय ही स्वीकृत की जानी चाहियें।"

गाधीजी को, उनका स्वास्थ्य बहुत अधिक गिर जानेके कारण, ता. २० को मध्यान्होपरात तीन बजे पूना के ससून अस्पताल मे पहुँचाया गया, और अबतक उनके साथ रहनेवाले श्री महादेव देसाई को उनसे अलग कर उनका बेलगाव की जेल मे तबादला कर दिया गया। बा को, जो कि साबरमती जेल में थी, उसी दिन यरवदा लाया गया। और ता २१ की दुपहर को गृह-मत्री ने बम्बई की धारा-सभा के पूना-अधिवेशन में घोषित किया कि—"*श्रीमती गाधी की सजा बेमुद्दत मुल्तवी रखी गई है।*" इसके बाद वे रिहा कर दी गई, और उसी दिन शामको उन्होने उपर्युक्त अस्पताल में गाधीजी के दर्शन किये। वस्तुत. १६ से उनका भी उपोषण ही चल रहा था, जिससे वह काफी कमजोर दिखाई दी। उन्हे रातके वक्त अस्पताल में रहने की इजाजत नही मिली। इन दिनो श्री एण्ड्रयूज पूना में होम-मेम्बरी से अक्सर मिलते रहे, और वायसराय के साथ भी उनका पत्रव्यवहार चलता रहा। 'टाइम्स आफ इडिया' के ता. २१ के सपादकीय से अधिकारियो की इस समय की मनोवृत्ति का आभास मिलता है। 'टाइम्स' लिखता है: "यदि श्री गाधीने उपोषण करने की ही ठानी तो उनका स्वास्थ्य चिन्ताजनक बननेपर ही सरकार उन्हे रिहा कर सकती है।"

ता. २४ को गाधीजी की हालत इतनी खराब हुई कि वे काफी मात्रा में पानी लेने में भी असमर्थ थे। किन्तु, देह उनकी जीवन-मरण के बीच झूलती रहनेपर भी, आत्मा पूर्णतया शात रही। मृत्यु का सहर्ष स्वागत करने के लिए वे तैयार हो बैठे थे। बा को उद्देश्य कर वे बोले,

"तुम भयाकुल न हो जाना। जब सरकार मुझे मरने देना चाहती है, तब साहस के साथ ही मृत्यु का सामना क्यों न किया जाय? हरिजन-सेवा के निमित्त अपने प्राण न्योछावर करने से बढ़कर गौरवास्पद बात मेरे लिए दूसरी क्या हो सकती है? पहले भी तो कई अनशनकारियों को सरकार ने मरने दिया है। फिर इसके लिए मैं ही अपवाद-स्वरूप माना जाऊँ ऐसी दुराशा हम उससे कैसे कर सकते हैं? बल्कि उसने तो इस घटना के बाद पैदा होनेवाली स्थिति का मुकाबिला करने की भी तैयारी कर ली है।"

किंतु उसी दिन दुपहर के ३ और ४ बजे के बीच वे रिहा कर दिये गये। सतरे का रस प्राशन कर उन्होंने अपना अनशन भग किया। फिर बा और श्री एण्ड्रयूज के साथ, बहुत ही कमज़ोरी की हालत में, वे 'पर्णकुटी' लाये गये।

अब उनके सामने बडा भारी सवाल यही था कि आगे क्या किया जाय? महादेव भाई पास न होने से उनकी कमी भी उन्हे बेहद खटक रही थी। किन्तु सदा की भाँति इस बार भी उन्होंने ईश्वर के प्रति अपने अटल विश्वास का पुनरुच्चार करते हुए उससे यथासमय एव यथोचित मार्गदर्शन प्राप्त होने की आशा व्यक्त की। उपवास की समाप्ति के बाद उनके द्वारा श्री सतीशचद्र दासगुप्ता, देशबधु दास की बहन श्रीमती उर्मिला देवी, जनाब अब्बास तय्यबजी, लाहौर के लाला गिरधारीलाल आदि के नाम भेजे गये पत्रो में उनकी इस मन-स्थिति का स्पष्ट दर्शन होता है। इसी अवधि मे 'टाइम्स आफ इडिया' के पूना स्थित सवाददाता द्वारा उक्त पत्र के लिए भेजी गई यह रिपोर्ट पढकर, कि "पर्णकुटी सरीखे सग-मरमर के महल में गाधीजी राजसी ठाट-बाट से रह रहे हैं, और उनके लिए लेडी ठाकरसी का १९ हजार रुपया खर्च हुआ है," गाधीजी को काफी चोट पहुँची।

आखिर ता ९ सितबर को उन्होंने घोषित किया कि आगामी अगस्त की ४ तारीख तक वे अपने आपको एक कैदी मानकर चलेंगे, और इस मुद्दत में अपना सारा समय हरिजन-कार्य म ही लगाये रखेंगे। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे स्वेच्छा से अपनी हलचलों

पर प्रतिबंध लगा देंगे, लेकिन विचारोंपर हर्गिज नहीं। इसके यही माने थे कि कांग्रेस-कार्यकर्ताओं के सामने भाषण देने एवं उनका यथासंभव पथप्रदर्शन करने के लिए उन्होंने अपने आपको मुक्त रखा था। ता. २३ सितंबर को एक कांग्रेस-कार्यकर्ता के नाम भेजे गये पत्र में इसी सिलसिले में वे लिखते हैं:–" मैं अपना सारा ध्यान आन्दोलन को अहिंसक एवं हर प्रकार से निर्दोष रखनेकी ओर ही लगा दूँगा।"

जनवरी १९३४ के द्वितीय सप्ताह में गांधीजी हरिजन दौरे के सिलसिले में गुरवायुर पहुँचे। वहाँ श्री राघवन् नामक एक युवक ने, जो पहले साबरमती आश्रम में रह चुका था, और उस समय त्रिचुर के खादी भंडार में मपत्लिक कार्य कर रहा था, गांधीजी से पूर्व अनुमति प्राप्त कर एक दिन प्रातः ४ बजे उनसे भेंट की। उसके साथ हुई अपनी बातचीत से गांधीजी को आज पहली ही बार यह मालूम हुआ कि केवल खादी-कार्य के भरोसे किसी की जीविका चल नहीं सकती। चुनाँचे उन्होंने खादी को मुख्य याने सूर्य ग्रह मान कर उसके इर्दगिर्द घरेलू उद्योग-धंधों रूपी उप-ग्रहों की माला निर्माण करने की सोची। अ. भा. चरखा संघ के अवैतनिक मंत्री श्री शंकरलाल बैंकर तत्समय उसी प्रदेश का दौरा कर रहे थे। उपर्युक्त विषयपर विचार-विनिमय करने के हेतु गांधीजी ने उन्हें कालिकत में मिलने के लिए बुला भेजा। तभी से गांधीजी ग्रामीण उद्योग-धंधों के पुनरुद्धार की बराबर चर्चा करते रहे। और हरिजन-दौरे की समाप्ति के बाद वर्धा में अपने बस जानेपर उन्होंने अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग संघ की स्थापना की। इस संस्था ने विगत वर्षों में बढ़ते बढ़ते विशाल वृक्षका-सा रूप धारण कर लिया है, और आज देशभर में उसकी शाखा-प्रशाखाएँ फैली हुई हैं। किंतु, स्मरण रहे कि, जनवरी १९३४ के पूर्वोक्त प्रातःकाल के समय हुए वार्तालाप के दरमियान ही इसका बीजारोपण किया गया था।

१९३४ के मई के अंतिम सप्ताह में गांधीजी ने पैदल ही हरिजन-यात्रा करने का निश्चय किया। यह विचार ,उन्हें पहले-पहल तब सूझा जब कि इसी यात्रा में उनकी मोटर के नीचे चार-पाँच फालतू कुत्ते दबकर मर गये। इसके कारण उन्हें इतनी अधिक व्यथा हुई कि

उन्होंने इस दौरे मे एक स्थान से दूसरे स्थानतक मोटर से जाने के बजाय पैदल ही पहुँचना तय किया । किंतु एक अन्य घटना भी इसके लिए इतनी ही कारणभूत हुई है । बिहार के जसिदीह नामक स्थानपर सनातनियो द्वारा अपने ऊपर किये गये हमले के बाद उनका उपर्युक्त विचार और अधिक दृढ हो गया । इस पैदल-यात्रा मे उन्हे असाधारण रूप से सफलता प्राप्त हुई ।

इसी हरिजन-यात्रा के दरमियान लालनाथ प्रकरण एव उसके कारण गाधीजी के सात दिन के उपोषण का प्रादुर्भाव हुआ । लालनाथ सनातनियो के एक गुट्ट का अगुआ था, और एनकेन प्रकारेण गाधीजी की यात्रा मे विघ्न उपस्थित कर उसे भग कर देनेपर तुला हुआ था । गाधीजी की इस यात्रा को "सत्याग्रह का अपलाप" सबोधित कर वह बोला, "आप के स्वयसेवको या पुलिस के हाथो हम घायल होना चाहते हैं । क्योकि मैं जानता हूँ कि ऐसी दुर्घटना के बाद ही आप अपनी यह यात्रा भग कर देंगे ।" ५ जुलाई को अजमेर में आयोजित एक विशाल सार्वजनिक सभा के अवसरपर लालनाथ की यह इच्छा पूरी हुई । सभा मे गाधीजी के पहुँचने से पहले ही किसीने लालनाथ की गजी खोपडी पर प्रहार किया, जिससे उसके माथे मे सगीन चोट आयी । इस वारदात की खबर मिलते ही गाधीजी ने लालनाथ को अपने सरक्षण में ले लिया, एव अपने भाषण में भी इसका सखेद उल्लेख करने से वे नही चूके । इतना ही नही बल्कि इसके लिए निकट भविष्य मे ही प्रायश्चित्त करने के अपने निश्चय की भी उन्होंने सभा-स्थानपर ही घोषणा कर दी । इस घोषणा से सारा देश चिंतित हो उठा । क्योकि सभी जानते थे कि प्रायश्चित्त का अर्थ उपोषण है । ता. ९ जुलाई को गाधीजी ने कराची से श्री घनश्यामदास बिडला के नाम निम्न तार भेजा—"५ या ६ अगस्त से, याने अपने वर्धा पहुँच जाने के बाद, लालनाथ पर हुए हमले के प्रायश्चित्त-स्वरूप सात दिन का उपवास करने का इरादा रखता हूँ । मेरी राय मे यह निहायत जरूरी है । अब इसकी घोषणा कर देनेका समय आ गया है । तार से सम्मति दें ।" श्री घनश्यामदास बिडला, श्री के. नटराजन्, श्री मथुरादास त्रिकमजी, श्री महादेव देसाई, मौलाना आजाद आदि ने उन्हे अपने उक्त निर्णय से विमुख करने की भरसक चेष्टा की । किंतु व्यर्थ ! उपवास हो कर ही रहा ।

१९३४ के सितवर मे गाधीजी ने काँग्रेस से अलग हो जानेका निर्णय किया। इन दिनो काँग्रेस-क्षेत्र में दलवदी, अधिकार-ग्रहण करने की लालसा, विधायक कार्य की ओर दुर्लक्ष्य आदि दुर्गुणो का जो वोलवोला हो गया था उससे ऊवकर ही गाधीजी इस निर्णयपर पहुँचे थे। काँग्रेसियो की इस प्रवृत्ति को उन्होने प्रकारातर से अपने नेतृत्व के प्रति उनकी अविश्वास की भावना का द्योतक ही माना। सोचते थे कि इससे काँग्रेस की प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जायगा। चुनाँचे काग्रेस के वम्वई-अधिवेशन के तुरत वाद वे उससे अलग हो गये। फिर भी वादके वर्षा मे, विशेष कर प्रातीय धारा-सभाओ के १९३७ के चुनाओ के समय, और अनतर काँग्रेसियो द्वारा पदग्रहण करने न करने का प्रश्न पैदा होनेपर, सिद्धान्तत काँग्रेस से अलग रहते हुए भी, गाधीजी ने उसका जो अचूक मार्गदर्शन किया वह अव हमारे इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय वन गया है।

वडौदा,
२१-९-१९४८

मतपरिवर्तन करानेका उनका मार्ग

पी. सुब्बारायन

मेरे सवसे छोटे पुत्र का नाम मोहन है। वापू के प्रति अपने प्यार और आदर के कारण ही मैंने उसका यह नामकरण किया था। इसीलिए उसके साम्यवादी वन जानेपर मुझे झुझलाहट हुई, और मैंने पत्र द्वारा वापू से पूछा कि क्या करना चाहिये ? उत्तर म वापूने मुझे व्यासजी के इस वचन का, कि "प्राप्तेतु पोडशे वर्षे पुत्र मित्र वदाचरेत", स्मरण दिलाया। यह उपदेश मुझे वहुत ही जँचा, और अपने सभी वच्चा के साथ, खास तौरमें उनके वडी उम्र के हो जानेपर, इस उपदेश के अनुसार ही चलने की मैं वरावर चेष्टा करता रहा हूँ।

इग्लैंड से अपने लौटनेपर मोहन साम्यवादी दलके कामा में सक्रिय भाग लेने लगा। कुछ दिन तक वह गुप्त भी रहा। आखिर पकडा जाकर एक साम्यवादी पड्यत्र में भाग लेने क अभियोग मे उसपर मुकदम चला। मैंने वापू को एक पत्र भेजकर पूछा कि क्या आपने अदालतके सामने मोहन द्वारा दिया गया वक्तव्य पढ़ लिया है? मैं इस विपयक

उनकी प्रतिक्रिया जानना चाहता था। उत्तर मे वापू ने मुझे यह सूचित करते हुए, कि संक्षिप्त रूप मे उक्त वक्तव्य अपनेको पढ़ने मिला है, लिखा कि यदि मैं सपूर्ण वक्तव्य उनके पास भेज सका तो वे पुनः उसे ध्यानपूर्वक पढकर अपनी राय से मुझे अवगत करावेगे। पढकर मैं गद्गद् हो गया। क्योकि उस समय अत्यधिक कार्य-व्यस्त होते हुए भी जिस तत्परता के साथ यह लवा वक्तव्य 'साद्यत पढ़ने के लिए वे तैयार हुए थे उससे हमारे परिवार के प्रति उनके प्रेम-भाव का मुझे पता चल गया। मैंने 'हिंदू' से उक्त वक्तव्य की कतरन निकालकर उनके पास भेज दी। कोई सप्ताहभर वाद उन्होंने मुझे सूचित किया कि यह वक्तव्य तो भारत के एक साहसी सुपुत्र के सर्वथा योग्य ही है, और, उसकी विचारधारा से अपने खुदके सहमत न होनेपर भी, वे यही राय देगे कि उसे अपने विचारानुसार देशकी सेवा करने दी जाय।

पश्चात्, मार्च १९४० मे, रामगढ कॉंग्रेस के अवसरपर, मोहन को सग लेकर मैं वापू से मिलने गया, और उन्हीके पास उसे छोड आया। जब मैं दुवारा वापू से मिला तब वे वोले, "मोहन से बाते तो मैंने खूब की, किंतु मैं उसका मतपरिर्तवन कर सका हूँ ऐसा मुझे नही लगता। युवकोपर अपने विचार हमें हर्गिज थोपने नहीं चाहिए। वल्कि हम उन्हे प्यार के साथ अपने विचारानुकूल बनाने की कोशिश करते रहें।" तभी से उनके साथ मोहन का सपर्क बरावर वना रहा, और अपने दल के काम से कई दफा वह उनसे मिला भी। मोहन के वारे में वापू का आखरी खत १९४५ मे आया, जो कि उन उभय की किसी खास विषयपर चर्चा हो जाने के वाद लिखा गया था। अपने उक्त पत्र मे वापू लिखते हैं: "मोहन मिलने आया था। मै उसका मतपरिवर्तन करने के फेर मे नही पडा, उसके प्रति अपने प्यार का मैंने उसे भान भर करा दिया।"

विरोधी को अपने विचारो का कायल बनाने की उनमें कैसी अपार क्षमता थी इसका उस पत्र से, जो कि लार्ड विलिंग्डन के नाम मेरे द्वारा भेजे गये पत्र के उत्तर-स्वरूप प्राप्त हुआ था, पता चल जायगा। मैंने लार्ड विलिंग्डन को यही लिखा था कि महात्मा गाधी द्वारा, १९३१ की

गोलमेज-परिषद् से अपने लौटते ही, खान अब्दुल गफ्फार खां एवं पं. जवाहरलाल नेहरू की क्रमश: सरहद और युक्त-प्रांत मे हुई गिरफ्तारियां के सिलसिले में आपसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की जानेपर, आपने जिस संकोच का परिचय दिया उससे यह साफ झलकता है कि, ब्रिटिश सरकार मे, जिसका कि आप प्रतिनिधित्व करते है, राजनीतिज्ञता का अभाव हो गया है। इस दोषारोपण का स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हुए लार्ड विलिंग्डन ने निम्नाशय का उत्तर भेजा—"वास्तव में मैं उनसे मिलने मे हिचक रहा था, और सो इसी आशंका से कि कही वे मुझे अपने विचारो का कायल न बना दें। साथ ही ब्रिटिश सरकार के इस निश्चय के कारण, कि कॉंग्रेस से आगे कोई वार्तालाप न किया जाय, मैं स्वयं इस दिशा में कदम उठाने की मन स्थिति में नही था।" जब मैंने गांधीजी को इसकी सूचना दी तब उन्होने आश्चर्य व्यक्त करते हुए पूछा, "किसी भी व्यक्ति को मुझसे मिलने मे, जब कि मैं अपना दृष्टिकोण सर्वथा विशुद्ध भावसे उपस्थित करता हूँ, हिचकिचाहट क्यो मालूम हो?"

मद्रास,
१६-३-१९४८

गांधीजी और औषधि

जी. आर. तलवलकर

लगभग १९१८ के मध्य में मैं पहले-पहल प्रत्यक्ष रूप से गांधीजी से मिला। उस समय उन्हे आँव हो जाने के कारण उनका स्वास्थ्य बहुत अधिक गिर गया था। अहमदाबाद के डा. वी. एन्. कानूगा उनका इलाज कर रहे थे। उनके सामने यह बडी भारी उलझन पैदा हुई थी कि गांधीजी को एक खास इंजेक्शन लेने के लिए, जो कि इस बीमारी की एकमात्र दवा थी, कैसे राजी कर लिया जाय? क्योंकि गांधीजी किसी भी प्रकार की औषधि का टीका लगा लेने के लिए तैय्यार न थे, और चाहते थे कि अपने लिए प्राकृतिक चिकित्सा का प्रबंध किया जाय। किंतु यह स्वीकार करने के साथ, कि हम डाक्टरों ने प्राकृतिक चिकित्सा

को आजतक कभी वैसा आजमा कर नही देखा है जैसा कि महात्माजी चाहते रहे, मै यह भी कहने के लिए बाध्य हूँ कि आँव से पिंड छुडाने के लिए 'हैड्रोक्लोराइड एमिटाइन' की कुछ सूइयाँ लगा लेने के सिवाय दूसरा कोई अचूक इलाज है ही नही। लेकिन इसके लिए महात्माजी को राजी कराने के संबध मे हम प्राय निराश हो चुके थे। सहसा मुझे यह सूझा कि यदि उनके सामने बस्ती का प्रयोग रखा गया तो उसके लिए वे सहर्ष अपनी अनुमति प्रदान कर सकते है। वैसा ही हमने किया। वे तुरत इसके लिए राजी हुए। तब हमने बस्ती के पानी मे वमन की औषधि और अफीम का सत्व घोल दिया। इस छोटेसे प्रयोग ने चौबीस घटे के भीतर अपना इतना उत्तम प्रभाव दिखाया कि रोगी ने लगातार पाँच दिन उसकी पुनरावृत्ति करने के लिए कहा। परिणाम-स्वरूप हफ्ते-भर में ही उनकी आँव की शिकायत दूर होकर वे नदियाद से अहमदाबाद तक का सफर भी कर सके। और उन्होंने अपना स्वास्थ्य, बिना किसी सदेह के, मेरे हवाले कर दिया।

शीघ्र ही मुझे पता चला कि वे अन्न या दूध भी ग्रहण नही करते। उनकी ऐसी धारणा थी कि दर्जन–दो दर्जन सतरे खा लेने से पौष्टिक आहार की कमी की सहज पूर्ति हो सकती है। मै उनके इस विचार से सहमत नही हो सका। तब वे बोले कि अपनी उक्त धारणा मे गलत साबित कर दिखाऊँ। चुनाँचे एक सुप्रसिद्ध आहार-शास्त्रज्ञ के इस विषयक विचारो के आधारपर मैने उन्हे बताया कि अगर कोई शख्स सिर्फ सतरे खाकर ही जीना चाहे तो पुष्टिकर आहार की दृष्टि से उसे दिनभर में ५० से ७५ सतरे अपने पेट मे जरूर ही ढकेलने पडेंगे। लेकिन इससे उस आदमी के अतिसार का शिकार बन जानेका जबर्दस्त अँदेशा है। महात्माजी मेरी इस रायसे तुरत सहमत हुए, और उस दिन से भात-रोटी खाने लगे। लेकिन अभी वे दूध पीने के लिए तैयार जा न हो रहे थे। हम डाक्टरो की राय मे एक शाकाहारी हिन्दू के लिए स्वास्थ्यवर्धक अन्न की दृष्टि से दूध पीना निहायत जरूरी है। इसके लिए गांधीजी को मनाने की मैने बेहद चेष्टा की। किन्तु वे किसी भी प्रकार इस मुद्दपर झुकने के लिए तैयार न थे। आखिर कुछ मास बाद बम्बई

के सर्जन स्वर्गीय ए. के. दलाल ने, बा के सहयोग से, गाधीजी को बकरी का दूध पीने के लिए राजी कर लिया। अपनी 'आत्मकथा' मे गाधीजी ने इस घटना पर प्रकाश डाला ही है।

भात-रोटी खाने लग जाने के बाद भी गाधीजी की सेहत मे कोई सतोषजनक सुधार नजर नही आया। तब डा. केलकर नामक एक प्राकृतिक-चिकित्सक ने उन्हे यह सुझाव दिया कि पीठपर बरफ रगडने से शरीर की सुस्ती दूर भाग सकती है। पहले तो कुछ आश्रमवासियो ने इस भलेमानस की उक्त सलाह का मजाक उड़ाया, और गाधीजी भी इस उपचार का प्रयोग करने के लिए राजी न थे। किन्तु जब डा. केलकर की बरफ-चिकित्सा की मैने तहेदिल से ताईद की तब वे इसके लिए तैयार हुए। पखवाडे के भीतर ही उनकी सेहत इस कदर सुधर गई कि मैने उसका आधा श्रेय डा. केलकर को ही सहर्ष प्रदान किया।

१९३५ मे गाधीजी को रक्तचाँप की शिकायत हुई, जिससे उनके डाक्टर चिता में पड़ गये। तब किसी ने इसके उपचार-स्वरूप लहसुन के प्रयोग का सुझाव दिया। मैने भी लहसून के औषधि गुणो की प्रशसा करते हुए 'हरिजन' में एक लेख लिखा। क्योकि मैंने बहुत पहले यह सुन रखा था कि दक्षिणी इटली के गरीब लोग क्षयरोग-निवारण के लिए लहसून का उपयोग करते हैं। इसी भाँति आयर्लैण्ड के एक डाक्टर ने भी लहसून के उक्त गुणो की बडी तारीफ़ कर रखी थी। खुद मैं अपने क्षयी रोगियोंपर लहसून के अर्क का सफल प्रयोग करता रहा हूँ। गाधीजी ने भी अपने प्रतिदिन के आहार मे इसका प्रयोग अविलब शुरु कर दिया। और, मेरा ऐसा विश्वास है कि, रक्तचाँप की शिकायत हो जाने के बाद भी वर्षातक उनका स्वास्थ्य, डाक्टरो की चिता के बावजूद, मुख्यतया लहसून के नियमित प्रयोग के कारण ही नीरोग बना रहा। साराश, खुले दिल से हर किसी के विचार सुन लेने, एव वे जँच जानेपर तदनुसार आचरण करने के लिए गाधीजी सदैव तैयार रहते थे।

बम्बई,

५-१-१९४८

हमारी पहली मुलाक़ात

तान युन-शान

मैं गाधीजी से सर्वप्रथम अप्रैल १९३१ मे बार्डोली मे मिला। अवश्यही, इससे तीन वर्ष पूर्व, याने १९२८ की कलकत्ता-कॉंग्रेस के अवसर पर, दूर से मैं उनका दर्शन कर चुका था। उक्त कॉंग्रेस-अधिवेशन मे उपस्थित रहने के हेतु कलकत्ते के लिए प्रस्थान करने से पहले मैं गुरुदेव टागोर की सेवा मे पहुँचा। गुरुदेव ने कलकत्ते मे गाधीजी से मिलने की मुझे सलाह दी। मैंने पूछा, "क्या आप मुझे छोटासा परिचय-पत्र नही दे सकते?" कवि बोले कि इसकी कोई जरूरत नही। उन दिनो कलकत्ता मेरे लिए बिल्कुल अनोखी जगह होने की वजह से गाधीजी का पता-ठिकाना खोज निकालने मे मुझे दिक्कत मालूम हुई। अलावा इसके, यह सोचकर कि काग्रेस के कार्यो मे वे अत्यधिक व्यस्त होंगे, उनका कीमती वक्त बर्बाद करना भी मुझे कुछ ठीक न लगा। चुनाँचे मैंने उस समय उनसे मिलने का विचार स्थगित रखकर, कॉंग्रेस-अधिवेशन के उद्घाटन के अवसर पर दूरीसे ही उनके दर्शनभर कर लिये। पडाल में गाधीजी के पधारते ही लाखो लोगो ने तुमुल ध्वनि से उनका स्वागत किया, और भाषण देने के लिए उनके खडे होते ही सर्वत्र शाति स्थापित हुई। उस समय दूरीपर से हुए उनके इस दर्शन मे सताप मान कर मैं शातिनिकेतन लौट आया।

अनतर समय समय पर शातिनिकेतन पधारे हुए गाधीजी के कई मित्रो से मेरा मिलना-जुलना हुआ। उन सभीने मुझसे यही कहा कि मैं कुछ दिन के लिए उनके पास जाकर रहूँ। तब इस विषयक अपनी दीर्घ प्रत्याशा का उनसे उल्लेख करते हुए मैंने कहा कि वे मेरे अनेकानेक सादर प्रणिपात और प्रशसाभाव गाधीजी तक पहुँचा दे। वस्तुत मैंने भारत में अपने पहुँचने के पहले ही, शुरू के कुछ वर्ष शातिनिकेतन में गुरुदेव के पास बिताकर फिर दो-तीन वर्ष, और यदि सभव हुआ तो जीवन भर, साबरमती के सत्याग्रहाश्रम मे गाधीजी के सहवास में रहने का निश्चय

कर लिया था। किंतु शातिनिकेतन में दो वर्ष विताने के बाद मुझे अकस्मात् तिब्बत जाना पड़ा, और वहाँ से लौटने पर कौटुबिक कारणवश में स्वदेश लौट गया। इस प्रकार मेरा मूल विचार कार्यान्वित नही हो सका। फिर भी गाधीजी से मिले बिना मैं भारत से बिदा न हो सकता था।

तिब्बत के अपने निवास-काल मे मैंने दलाई लामा से गुरुदेव एव गाधीजी के कार्यों का जिक्र किया। खास कर गाधीजी की रहन-सहन और उनके सत्याग्रह-आदोलन सबधी बाते लामा ने दिलचस्पी के साथ सुन ली। और मुझसे कहा कि तिब्बत से अपने भारत लौटनेपर मैं उनका सँदेसा गाधीजीतक पहुँचा दूँ। इस नई जिम्मेदारी के कारण गाधीजी से मिलने की मेरी उत्कठा और अधिक बढ गई।

ल्हासा से शातिनिकेतन लौटने के तुरत बाद मैंने गाधीजी को पत्र द्वारा इसकी सूचना दी। उत्तर-स्वरूप उन्होने मुझे नई दिल्ली में मिलने के लिए बुलाया, दिल्ली जाते समय मार्ग॰मे पडनेवाले बौद्ध तीर्थस्थानो की यात्रा करने का मुझे मोह हो गया। फलत: मैं दिल्ली देरसे पहुँचा, और तबतक वे दिल्लीसे साबरमती लौट गये थे। सोचा, साबरमती का सत्याग्रहाश्रम देखने का पहलेसे ही अपना विचार था, अत. अब वही सही। किंतु आश्रम पहुँचनेपर ज्ञात हुआ कि कुछ आवश्यक और महत्वपूर्ण बैठकों के कामसे गाधीजी बार्डोली गये हुए है। आश्रम के मत्री श्री नारायणदास गाधी ने मेरा उत्तम प्रकार से स्वागत कर गाधीजी को मेरे आगमन की तार द्वारा सूचना दी। तुरत उनकी ओरसे जवाब आया। लिखा था कि अभी और कुछ दिनोतक बार्डोली रहने का अपना इरादा है, अतः मैं भी वही चला आऊँ। चुनाँचे उनके पीछे पीछे मैं भी बार्डोली जा पहुँचा।

रास्ते मे एक ऐसे सज्जन से भेंट हुई, जो दस सालतक अमेरिका मे रहने के बाद हाल ही में स्वदेश लौटे थे और गाधीजी से ही मिलने जा रहे थे। रेल मे उन्होने अपनी विलायती वेषभूषा को धता बता कर धोती-कुर्ता पहन लिया। बोले, "इसी प्रसग के लिए मैंने विशेष रूप मे यह खरीदी है।" और मेरे सरपर की गाधी टोपी देखकर

पुन कहने लगे, "मालूम होता है आपने भी इसी निमित्त यह खरीद ली है।" जवाब मे मै बोला, "जी नही, यह तो मुझे बिल्कुल कल ही सावरमती–सत्याग्रहाश्रम के मत्री द्वारा भेट मे मिली है। लेकिन मेरे पास धोती–कुर्ता जो नही है।" सुनकर वे हँस दिये, और साथ ही मै भी। इस तरह वार्डोली तक का हमारा वक्त मजेमे कटा।

वार्डोली के आश्रम मे पहुँचने पर गाधीजी के कनिष्ठ सुपुत्र देवदास ने हम दोनो का स्वागत कर मेरे मित्र से पूछा कि कितने दिन तक वार्डोली ठहरनेका उनका इरादा है। वे बोले कि यदि महात्माजी से अपनी मुलाकात तुरत हो सकी तो वे उसी दिन दोपहर बाद, या अगले दिन सुवह, कुछ जरूरी कामसे वम्बई के लिए रवाना हो जाना चाहते है। उनसे कहा गया कि वापू अभी बैठक की कार्यवाही मे भाग लेने के लिए गये हुए है, और अगर मुमकिन हुआ तो आज शामको ही उनसे आपकी मुलाकात करा दी जायगी। फिर मेरी ओर मुडकर देवदासने पूछा, "और महाशयजी, आपका क्या कार्यक्रम है? पिछले कई दिनो से बापू आपका इतजार कर रहे है। क्या आप कुछ दिन तक यहाँ ठहर नही सकते?" मेरे 'हाँ' कहते ही वे खुश होकर चल दिये, और कोई आध घटे बाद लौटकर बोले कि वापू उक्त प्रथम सज्जन से उसी दिन शामको, और मुझसे अगले दिन सुबह मिलनेका इरादा रखते है।

दूसरे दिन, यानें २७ अप्रैल १९३१ को, प्रात साढे दस बजे देवदास आकर मुझे गाधीजी के पास ले गये। गाधीजी ने मेरा हार्दिक स्वागत किया। मैने भी उन्हे सादर अभिवादन किया। फिर वे बोले कि दिल्ली और सावरमती मे वे मेरी प्रतीक्षा करते रहे, एव मेरे यहाँ न पहुँचने के कारण चितित थे। मैने कहा, "बौद्ध तीर्थ-स्थानो की यात्रापर जाने के कारण मै समय पर आपकी सेवा मे उपस्थित न हो सका। आशा है आप इसके लिए मुझे क्षमा कर देगे"। वे बोले, "आप इसका कोई खेद न मानें।" फिर पूछने लगे "कितने दिन तक यहाँ रहने का आपका इरादा है?" बोला, "जीवनभर।" सुनकर कहने लगे, "आपसे इतनी अधिक अपेक्षा तो मैं नही रखता। जबतक यहाँ मेरा मुकाम है तभी तक आप भी रहे।" सो मैने स्वीकार कर लिया। पश्चात् कुशलक्षेम विषयक बाते हुई। अनतर मैने दलाई

लामा द्वारा उनके नाम लिखा गया पत्र निकालकर उन्हे दिया, और लामा के साथ हुए अपने वार्तालाप से भी उन्हे अवगत कराया। पत्र पाकर उन्हे प्रसन्नता हुई। लेकिन वह कैसे पढा जाय यह एक सवाल था। पूछने लगे, "क्या वह तिब्बती भाषा मे लिखा गया है?" मैं बोला, "मालूम नही, उसे खोलकर पढना मुझे उचित नही लगा।" "अच्छा, अब आप खोलकर पढ सकते है," वे बोले। खोलकर देखने पर मालूम हुआ कि दरअसल वह तिब्बती भाषा मे ही लिखा गया है। लेकिन मुझे तिब्बती भाषा का अक्षरज्ञान भर होने से गांधीजी के लिए मैं वह पढ न सका। फिर भी वह पाकर वे प्रसन्न हुए। मैंने उनसे पूछा, "क्या आप उन्हे इसका जवाब नही भेज सकते?"

बोले, "क्यो नही? लेकिन उसे जवाब कैसे कहा जा सकता है? उनका लिखा हुआ पत्र तो हम पढ ही नही पाये। और चूँकि मुझे तिब्बती भाषा नही आती इस लिए मैं गुजराती में उन्हे पत्र भेजूँगा, जिससे वे वैसीही प्रसन्नता अनुभव करेंगे जैसी कि उनका पत्र पाकर मैंने अनुभव की।"

भगवान् बुद्ध के एक वचन की उन्हे याद दिलाते हुए मैं बोला, "आप दोनो परस्पर की भाषासे सर्वथा अनभिज्ञ होते हुए भी एक-दूसरे की विचारधारा से भली भाँति परिचित है। क्या आप ऐसा नही सोचते?"

वे मुस्कराकर मेरी ओर देखने लगे।

इसके बाद चीन और भारत के धार्मिक एव सास्कृतिक सबधो-पर हमारा वार्तालाप हुआ। मैंने उनसे कहा कि चीनी जनता उनके दर्शन के लिए उत्कठित है। उन्होने भी ऐसी ही उत्कठा प्रदर्शित करते हुए कहा, "जबतक भारत स्वाधीन नही हो जाता तब तक देश छोडकर कही भी जाने मे मैं असमर्थ हूँ। फिर भी आशा तो ऐसी ही है कि जीवन में कभी न कभी एक बार आपके देश की यात्रा करने का अवसर अवश्य मिल जायगा।"

अनतर एक दिन सध्या समय पास ही के एक देहात में आयोजित सभा से लौटते समय चीन के रीत-रिवाजो के सबध मे हमारा वार्तालाप हुआ।

वे बोले, " चीनी जनता कलाप्रेमी है। अपना दैनदिन जीवन भी वह कलापूर्ण रीतिसे बिताती है। किंतु बहुत अधिक प्रमाण मे उसका मॉस खाना मुझे अच्छा नही लगता।"

जवाब में मैंने उनसे कहा, "आपकी उक्त धारणा गलत है। क्योंकि, अधिकाश चीनी जनता मॉस विशेष प्रमाण में नही खाती। खास कर चीन की ग्रामीण जनता बहुत कुछ शुद्ध शाकाहारी ही है। तिज-त्योहारापर लोग मॉस खा लिया करते हैं। गो-वध पर भी प्राय. बदीसी ही है। मालूम होता है कि कलकत्ता-बवई जैसे भारत के वडे शहरो में वसे हुए चीनी लोगा की रहन-सहन देखकर ही आपने उक्त धारणा बना ली है।"

फिर, यह मालूम होनेपर, कि मैं शाकाहारी नहीं हूँ, उन्होंने शाकाहारी बनने की प्रतिज्ञा मुझसे कराई। वैसा ही मैंने किया और बडी खुशीके साथ। बोला, "मै इस प्रतिज्ञा को हम दोनो की सुखद भेंट के स्मृति-स्वरूप मानता रहूँगा।"

दूसरे दिन उनका मौन था। मैंने चीनी विद्यार्थियो के नाम सदेश देने की उनसे प्रार्थना की। उन्होंने लिखकर बताया कि वे बाद म यह सदेश एव दलाई लामा के लिए अपना पत्र भेज देंगे। और उन्होंने कलकत्ते का मेरा ठिकाना नोट कर लिया।

हम दोनो बार्डोली से सूरत तक साथ ही आये। सूरत से वे अहमदाबाद गये, और मैंने बबई की ओर प्रस्थान किया। बबई और मद्रास की अपनी यात्रा से मैं ता ६ मई १९३१ को कलकत्ते लौटा। चीनी विद्यार्थियो के नाम गाधीजी का आश्वासित सदेश एव दलाई लामा के नाम लिखा गया उनका पत्र पहले ही वहाँ पहुँच गया था पत्र गुजराती में लिखा गया था, और सदेश अग्रेजी में। चीन के लिए दिया गया गाधीजी का यही सर्वप्रथम सदेश था।

शातिनिकेतन,
१४-५-१९४८